झरी, मैं तो राम के रंग छकी

भगवान श्री रजनीश

ये प्यारे वचन तुम्हारे जीवन की एक अनूठी यात्रा का प्रारंभ बनें, ऐसी आशा करता हूं। सूत्र एक है और बहुत बार दोहरेगा जगजीवन के वचनों में: मनुष्य परमात्मा को नहीं खोज सकता, परमात्मा ही मनुष्य को खोज सकता है, तुम सिर्फ पुकारो! तुम प्यास बनो—ज्वलंत प्यास—और तुम जहां हो वहीं उसका हाथ आ जाएगा। उसके हाथ अनेक हैं। इसीलिए तो हमने उसके चित्र बनाए हैं अनंत हाथोंवाले। तुम कहां खोजोगे? तुम्हारी खोज में ही भूल हो जाएगी। खोज का मतलब ही है कि तुमने मान लिया कि मेरे बस में है पाना। मेरे बस में है तो अहंकार निर्मित हुआ। नहीं, तुम्हारे बस में कुछ भी नहीं है, सब उसके बस में है। इतना ही कहो—तेरी मर्जी पूरी हो! तू जैसा चलाए, चलें; तू जैसा रखे, रहें; उठाए तो उठें, बिठाए तो बैठें; जिलाए तो जिएं, मारे तो मर जाएं; लेकिन तेरी हर मर्जी में हम पूरे राजी हों!

इस राजीपन का नाम भक्ति है।

और भक्त को मिल जाता है—इतना, जितना प्रयास से कोई संबंध नहीं! प्रयास तो चुल्लू भर है; प्रसाद सागर भर।

भगवान श्री रजनीश
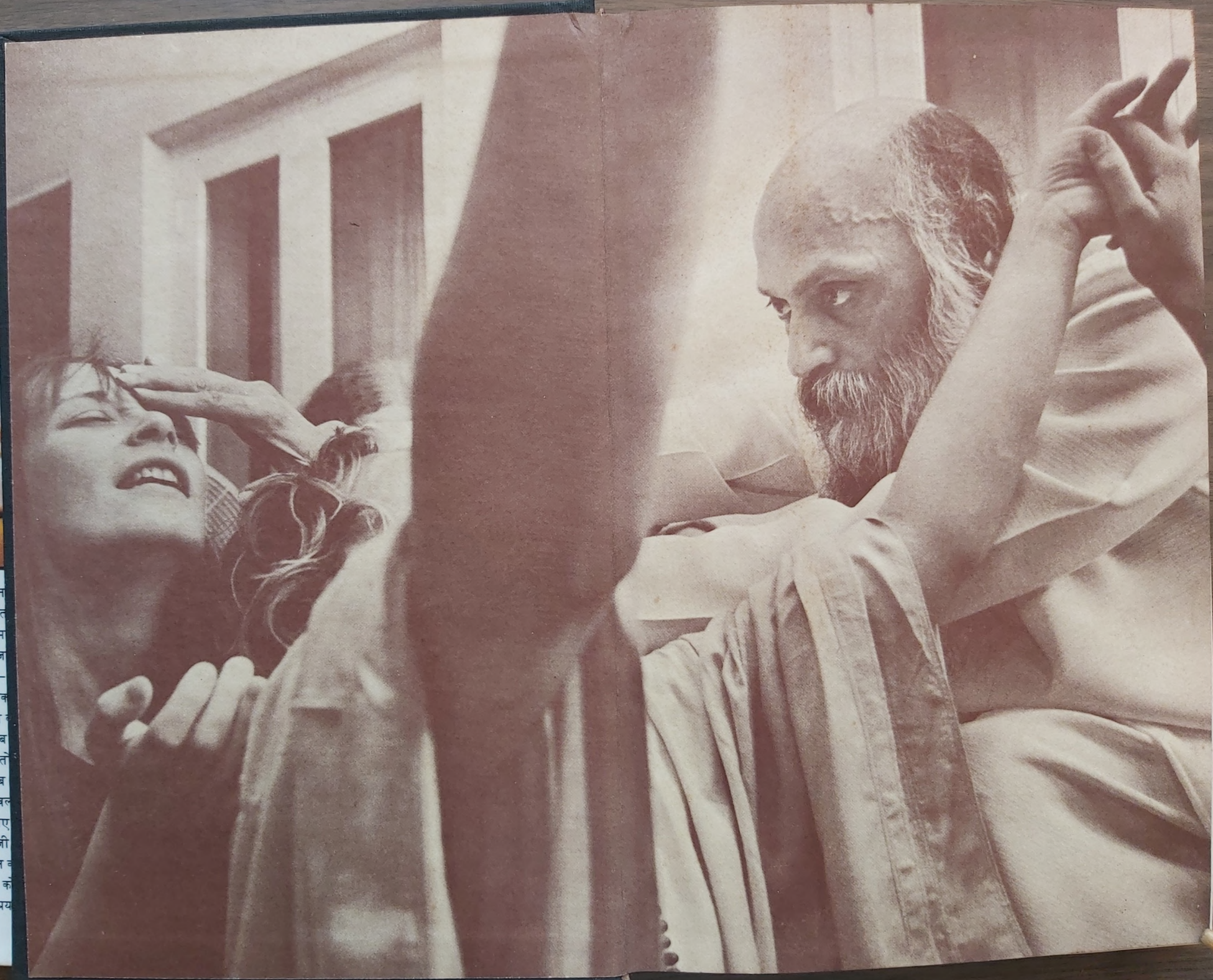
भगवान श्री रजनीश

अरी, मैं तो नाम के रंग छकी

जगजीवन साहब के वचनों पर भगवान श्री रजनीश के दस अमृत प्रवचन

रजनीश फाउन्डेशन लिमिटेड

सह–प्रकाशित साहित्य

- बिरहिनी मंदिर दियना बार
- प्रेम–रंग–रस ओढ़ चदरिया
- एस धम्मो सनंतनो–६
- असतो मा सद्गमय
- मैं कहता आंखन देखी
- सहज-योग
- गीता–दर्शन : अध्याय ६

अरी, मैं तो नाम के रंग छकी

भगवान श्री रजनीश
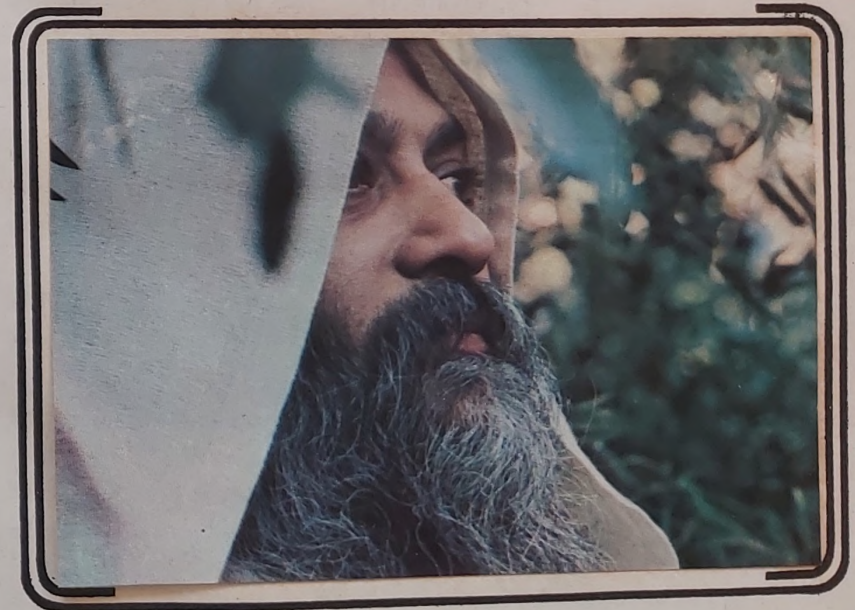
संपादन
स्वामी योग प्रताप भारती

संकलन
स्वामी अरुण सत्यार्थी
स्वामी योग अमित

संयोजन
स्वामी नरेंद्र बोधिसत्व

प्रारूप व सज्जा
मा प्रेम सर्बा

कापीराइट © रजनीश फाउंडेशन, पूना, १९७९

प्रकाशक
मा योग लक्ष्मी
रजनीश फाउंडेशन लिमिटेड
१७, कोरेगांव पार्क
पूना—४११ ००१

प्रथम संस्करण : जुलाई १९७९

प्रतियां : ३०००

मूल्य : ५० रुपये

मुद्रक
गो. आ. जोशी
के. जोशी एंड कं.
ब्लॉक मेकर्स एंड आर्ट प्रिंटर्स
निकट भिकारदास मारुति टेंपल
पूना—४११ ०३०

केवल भारत में विक्रय के लिये

आमुख

एक मित्र ने भगवान से पूछा है : 'मनुष्य क्या है ?'

कितना संक्षिप्त और सरल-सा प्रश्न ! किंतु गहनतम प्रश्न भी । मूलभूत प्रश्न भी । धर्म का बीजरूप प्रश्न भी ।

मनुष्य की शुरुआत इस प्रश्न की जिज्ञासा में व पूर्णता इसका अनुभवगत समाधान पा लेने में। हर मनुष्य-देहधारी को यह प्रश्न उठाना ही चाहिए ।

प्रश्न के उत्तर में भगवान ने कहा :

''एक अभीप्सा––स्वयं के अतिक्रमण की । जैसे बीज मिट जाना चाहे ताकि वृक्ष हो सके, ऐसा ही मनुष्य एक बीज है—मिट जाने को आतुर, ताकि परमात्मा हो सके ।

मनुष्य बीज है परमात्मा के फूल का । इसलिए जिस मात्रा में जो मिटने को राजी है, उतना ही ज्यादा मनुष्य है । और जो मिटने में जितना सफल हो गया, उतना ही धन्यभागी है ।

मनुष्य एक प्रार्थना है––लीन हो जाने की । क्योंकि होने में पीड़ा है । जैसे नदी दौड़ती है सागर की तरफ, पर्वतों को पार करती, मैदानों को पार करती—एक महत सागर-मिलन की प्रार्थना लिये । और सागर-मिलन में होगा क्या ? नदी खो जाएगी। लेकिन खो जाने में सागर भी हो जाएगी । ऐसा ही मनुष्य एक चैतन्य का सरित-प्रवाह है; जो जा रहा है अनंत की तरफ ।

सीमा पीड़ा देती है, असीम—आनंद । जहां-जहां सीमा है, वहां-वहां कारागृह है । मनुष्य एक कामना है सारी सीमाओं के पार पंखों को खोलकर उड़ जाने की ।

इसलिए जिस मनुष्य के जीवन में अपने से पार जाने का सपना पैदा नहीं हुआ,

वह देखने में मनुष्य जैसा लगता हो, उसके भीतर मनुष्यता नहीं जन्मी है। देह से मनुष्य होना एक बात है, प्राण से मनुष्य होना दूसरी बात है। प्राण से मनुष्य होने का अर्थ है : आकाश ने पकड़ा तुम्हें; तुम्हारी आंखें उठीं चांद-तारों की तरफ; ऊंचाइयों ने पुकारा; ऊंचाइयों की चुनौती तुमने स्वीकार की; अंधेरे खाई-खड्डों में रहने की अब तुम्हारी तैयारी नहीं रही--चाहे वे अंधेरे कितने ही सुरक्षापूर्ण क्यों न हों और उन अंधेरों में कितनी ही सुविधा क्यों न हो और उन अंधेरों में अनंत-अनंत लोग क्यों न रह रहे हों!

ऊंचाई की तरफ जो चलता है उसे अकेला हो जाना होता है, क्योंकि भीड़ ऊंचाई पर उठने का साहस नहीं करती। भीड़ तो भीड़ है। भेड़-चाल उसकी जीवन-शैली है। जहां सारी भीड़ जा रही है, वहीं अगर तुम जा रहे हो, तो तुम अभी आत्मवान नहीं हो। आत्मवान का अर्थ होता है, अकेले जाने की सामर्थ्य; अपने पर इतना भरोसा कि अकेला भी जी सकूंगा, कि अकेला भी खोज सकूंगा।

धार्मिक व्यक्ति अनुगमन नहीं करता, अनुसंधान करता है। धार्मिक व्यक्ति खोज करता है, विश्वास नहीं करता। विश्वासी को भूलकर भी धार्मिक मत समझना। विश्वासी धोखा खा रहा है और धोखा दे रहा है। धार्मिक व्यक्ति तब तक विश्वास नहीं करता जब तक जान न ले। और जब जान ही लिया तो फिर विश्वास क्या? जान लिया तो जान लिया, विश्वास नहीं करना होता। सुबह ऊगते सूरज पर तुम विश्वास थोड़े ही करते हो! या कि करते हो? या कि विवाद खड़ा होता है कि मानें सूरज को कि न मानें, कि आस्तिक और नास्तिक होते हैं? नहीं, जब सूरज ऊगता है, दिखायी पड़ता है, तो विश्वास अविश्वास की बात ही नहीं रह जाती। जो है, है।

सत्य को जानना है। लेकिन जानने के लिए कीमत चुकानी होती है। विश्वास सस्ता है, दो कौड़ी का है। हिंदू बन जाओ, मुसलमान बन जाओ, जैन-ईसाई बन जाओ--सस्ती बातें हैं, कुछ खोना नहीं पड़ता। सच तो यह है, हिंदू बने रहने में, मुसलमान बने रहने में लाभ-ही-लाभ हैं। क्योंकि भीड़ तुम्हारे साथ है, भीड़ की सुविधाएं तुम्हारे साथ हैं, भीड़ की सुरक्षा तुम्हारे साथ है, तुम अकेले नहीं हो।

मनुष्य वही है, जो एकाकी चल पड़े। रवीन्द्रनाथ ने कहा है : 'एकला चलो रे...!' क्योंकि अकेले चलोगे तो ही उसको पा सकोगे। भीड़ वहां तक जाती ही नहीं है। भीड़ तो यहीं घसिटती है। भीड़ ने अभी अभीप्सा ही नहीं की है अपने से ऊपर उठने की। जिसके भीतर आकांक्षा जगी है कि जैसा मैं हूं, जहां हूं, इतना काफी नहीं है, इससे तृप्ति नहीं होती, इससे प्यास मिटती नहीं, भूख बुझती नहीं--कोई सरोवर तलाशना है, जहां प्यास बुझे! कोई स्थान खोजना है, जहां सिर झुके! और कोई सागर खोजना है, जहां सारी सीमाओं को तोड़कर मैं लीन हो सकूं! मैं-भाव, अहंकार सीमा है। निर-अहंकार सारी सीमाओं का विसर्जन है।

तुम पूछते हो : 'मनुष्य क्या है?' निर-अहंकार होने की खोज। सीमाओं के

पार जाने की कामना। अपना अतिक्रमण!

इस जगत में मनुष्य के अतिरिक्त और कोई अपना अतिक्रमण नहीं कर सकता। इसलिए स्वात्म-अतिक्रमण मनुष्य की परिभाषा है। कोई आम का वृक्ष आम के वृक्ष के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता--आबद्ध है। नीम का वृक्ष नीम ही रहेगा, कुछ और होने का उपाय नहीं; अपना अतिक्रमण नहीं कर सकता, अपने से पार नहीं जा सकता। सिंह सिंह है, कुत्ता कुत्ता है। इससे पार जाने का कोई उपाय नहीं है। सिर्फ आदमी की क्षमता है कि आदमी के पार जा सकता है, बुद्धत्व को पा सकता है, भगवत्ता पा सकता है।

यह मनुष्य का गौरव भी है और मनुष्य की यातना भी। गौरव, क्योंकि यह संभावना खुली है, पूरा आकाश उसका है। हाथ फैलाए तो सारा अस्तित्व उसका है, अपने आलिंगन में ले ले सारे अस्तित्व को। इसलिए गौरव।

यातना भी बहुत है। यातना इसलिए कि जहां भी है वहीं चैन नहीं पाएगा, बेचैनी बनी ही रहेगी। और आगे, और आगे... यह दौड़ जारी रहेगी। एक महत यातना भीतर मौजूद रहेगी, तनाव बना रहेगा। कोई पशु-पक्षी तनाव में नहीं है, क्योंकि जो है, है; कुछ और होना नहीं है।

मनुष्य की तकलीफ, मनुष्य की पीड़ा, उसका विषाद, उसका संताप--कि जो है, उतने से राजी नहीं है, कुछ और होना है। उसके भीतर एक गहन तीर की तरह चुभी हुई वासना है--कुछ और होना है! आश्वस्त होकर बैठ नहीं सकता--यात्रा करनी है! मनुष्य एक यात्रा है। कोई पशु-पक्षी यात्रा नहीं है; मनुष्य भर एक यात्रा है।

और अगर धन की यात्रा की, पद की यात्रा की, तो यात्रा ही रह जाओगे। अगर धर्म की यात्रा की, तो तीर्थयात्रा हो जाओगे। काशी और काबा जाने से तीर्थयात्रा नहीं होती। मनुष्य जब परमात्मा होने की आकांक्षा से सब कुछ समर्पित करने को तैयार हो जाता है, तब तीर्थयात्रा होती है। तभी कोई पहुंचता है उस पवित्र स्थल पर--जहां तृप्ति है, जहां परम तृप्ति है, जहां परितोष है; जहां पहुंचने के बाद फिर आगे कुछ और पाने को शेष नहीं रह जाता है। उस स्थान को निर्वाण कहो, मोक्ष कहो--या जो नाम देना चाहो!

मनुष्य मोक्ष का बीज है।"...

अनुक्रम
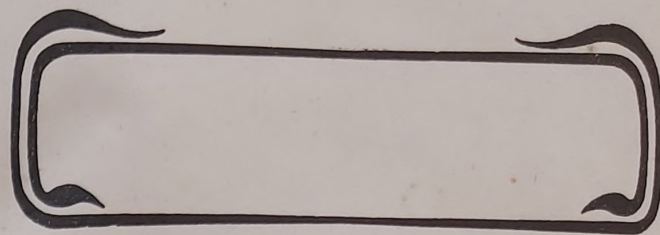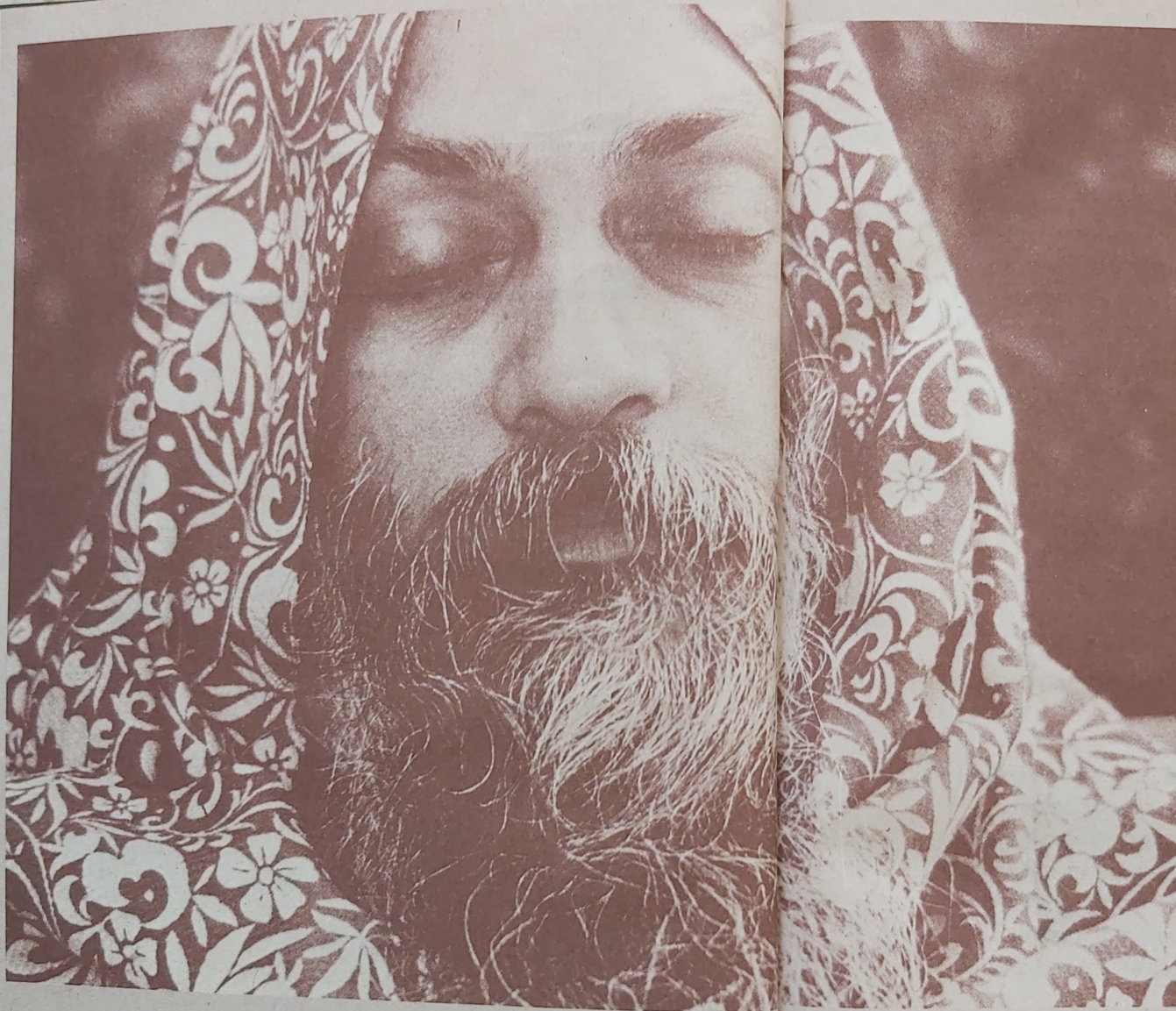
चाहत खेंचि सरन ही राखत

पहला प्रवचन; ११ सितम्बर १९७८; श्री रजनीश आश्रम, पूना

साईं, जब तुम मोहि बिसरावत ।
भूलि जात भौजाल-जगत मां, मोहिं नाहिं कछु भावत ।।
जानि परत पहिचान होत जब, चरन-सरन लै आवत ।
जब पहिचान होत है तुमसे, सूरति सुरति मिलावत ।।
जो कोई चहै कि करौं बंदगी, बपुरा कौन कहावत ।
चाहत खैंचि सरन ही राखत, चाहत दूरि बहावत ।।
हौं अजान अज्ञान अहौं प्रभु, तुमतें कहिकै सुनावत ।
जगजीवन पर करत हौ दाया, तेहिते नहिं बिसरावत ।।

बहुतक देखादेखी करहीं ।
जोग जुक्ति कछु आवै नाहीं, अंत भर्म महं परहीं ।।
गे भरुहाइ अस्तुति जेइ कीन्हा, मनहि समुझि ना परई ।
रहनी गहनी आवै नाहीं, सब्द कहे तें लरई ।।
नहीं विवेक कहै कछु औरे, और ज्ञान कथि करई ।
सूझि बूझि कछु आवै नाहीं, भजन न एको सरई ।।
कहा हमार जो मानै कोई, सिद्ध सत्त चित धरई ।
जगजीवन जो कहा न मानै, भार जाय सो परई ।।

बहु पद जोरि-जोरि करि गावहिं ।
साधन कहा सो काटि-कपटिकै, अपन कहा गोहरावहिं ।।
निंदा करहिं विवाद जहां-तहं, वक्ता बड़े कहावहिं ।
आपु अंध कछु चेतत नाहीं, औरन अर्थ बतावहिं ।।
जो कोउ राम का भजन करत है, तेहिकां कहि भरमावहिं ।
माला मुद्रा भेष किये बहु, जग परमोधि पुजावहिं ।।
जहंते आए सो सुधि नाहीं, झगरे जन्म गवावहिं ।
जगजीवन ते निंदक वादी, बास नर्क महं पावहिं ।।

जो न काबे में है महदूद न बुतखाने में
हाय वो और इक उजड़े हुए काशाने में
मिलती है उम्रे-अबद इश्क के मैखाने में
ऐ अजल तू भी समा जा मेरे पैमाने में
हरमो-दैर में रिन्दों का ठिकाना ही न था
वो तो ये कहिये अमां मिल गयी मैखाने में
आज तो कर दिया साकी ने मुझे मस्त-अलस्त
डालकर खास निगाहें मेरे पैमाने में
आप देखें तो सही रब्ते-मोहब्बत क्या है
अपना अफसाना मिलाकर मिरे अफसाने में
हब्बे-मय ने तिरा ऐ शैख भरम खोल दिया
तू तो मस्जिद में है नीयत तेरी मैखाने में
मश्वुरे होते हैं जो शैखो-बिरहमन में 'ज़िगर'
रिन्द सुन लेते हैं बैठे हुए मैखाने में

प्रेम का मार्ग मस्ती का मार्ग है। भक्ति अर्थात् एक अनूठे ढंग का पागलपन। तर्क नहीं, तर्कसरणी नहीं, प्रीति का एक सेतु।

बुद्धि से तलाश नहीं होती परमात्मा की, हृदय से होती है। बुद्धि से जो खोजते हैं, खोजते बहुत, पाते कुछ भी नहीं। हृदय से खोजो भी न, सिर्फ पुकार उठे, सिर्फ प्यास उठे, जहां बैठे हो वहीं परमात्मा का आगमन हो जाता है। प्रेमी को खोजने नहीं जाना पड़ता; परमात्मा खोजता हुआ चला आता है। भक्ति के शास्त्र का यह सबसे अनूठा नियम है।

जगजीवन के सूत्र इस नियम से ही शुरू होते हैं।

लेकिन यह बात बड़ी उल्टी है। ज्ञानी खोज-खोजकर भी नहीं खोज पाता और भक्त बिना खोजे पा लेता है। इसलिए बात थोड़ी बेबूझ है। दीवानगी की है, पागलपन की है। पर प्रेम पागलपन का ही निचोड़ है।

जो न काबे में है महदूद न बुतखाने में

खोजनेवाले जाएंगे कहां? या मन्दिर जाएंगे या मस्जिद जाएंगे। खोजनेवाला जाएगा ही बाहर। खोज का मतलब ही होता है--बाहर, बहिर्यात्रा। खोजनेवाला चारों दिशाओं में भटकेगा। जमीन में खोजेगा, आकाश में खोजेगा।

जो न काबे में है महदूद न बुतखाने में

और जो न मन्दिर में सीमित है और न मस्जिद में, न काबा में, न कैलाश में, उसे तुम कैसे खोजोगे काबा में-कैलाश में? उसे खोजने गये, उसी में भूल हो गयी। उसे खोजने गये, उसमें ही तुमने पहला गलत कदम उठा लिया। खोजने तो उसे जाना पड़ता है जो कहीं महदूद हो। कहीं सीमित हो। जो किसी दिशा में अवरुद्ध हो। जिसका कोई पता-ठिकाना हो। जिसकी तरफ इशारा किया जा सके कि यह रहा। उंगली उठायी जा सके।

परमात्मा तो सब जगह है। इसलिए उसका कोई पता तो नहीं है! न उत्तर, न पश्चिम, न पूरब। परमात्मा पूरब में नहीं है, पूरब परमात्मा में है। न परमात्मा पश्चिम में है। पश्चिम परमात्मा में है। परमात्मा वहां नहीं है, परमात्मा यहां है। तुम परमात्मा को खोजने जाते हो--उसीमें भटक जाते हो। क्योंकि तुम परमात्मा में हो। जैसे चली मछली सागर की खोज में! और सागर में है मछली। खोज ही भटकाएगी। खोज ही न पहुंचने देगी।

जो न काबे में है महदूद न बुतखाने में
हाय वो और इक उजड़े हुए काशाने में

जिस दिन उससे मिलन होता है, उस दिन बड़ी हैरानी होती है। जो सुन्दर-से-सुन्दर मन्दिरों में नहीं पाया जिसे, परंपरा से पूजित तीर्थों में नहीं पाया जिसे, उसे अपने टूटे घर में पाया! हाय वो और इक उजड़े हुए काशाने में। अपने इस छोटे-से घर में पाया उसे! उस दिन भरोसा नहीं आता, विश्वास नहीं आता, कि जिसे हम खोजने चले थे, वह खोजने वाले में ही छिपा था। और जब तक हम खोजते थे तब तक हम भटकते थे।

प्रेमी खोज छोड़ देता है। प्रेमी सिर्फ पुकारता है। जैसे छोटा बच्चा रोता है। खोजने जाए तो जाए कहां? असहाय भी है--अभी चल भी तो नहीं सकता। और आदमी इतना ही असहाय है। परमात्मा की यात्रा पर चलने वाले पैर हमारे पास कहां? सामर्थ्य कहां, शक्ति कहां? यह अहंकार ही है जो तुमसे कहता है, खोजो,

तो मिल जाएगा। यह अहंकार ही है जो तुम्हें भरमाता है, भटकाता है। रोओ--भक्त कहता है--खोजो मत; पुकारो! जैसे छोटा बच्चा अपने झूले में पड़ा ही पुकारता है। जाए तो जाए कहां? जाए तो जाए कैसे? न जाने की सामर्थ्य है, न उठने की सामर्थ्य है। लेकिन उसके रोने की आवाज सुनकर मां दौड़ी चली आती है। फिर मां और बच्चे में तो थोड़ी दूरी भी है, उतनी भी दूरी तुममें और परमात्मा में नहीं। तुम जिसे खोजने चले हो, वह तुम्हारा स्वरूप है।

गहन पुकार! तीव्र पुकार! बस तुम्हारे ही प्राणों को छेद जाती है बिजली की कौंध की भांति। और इसी टूटे घर में, इसी खंडहर में, जिसे तुमने कभी मन्दिर की तरह सोचा भी न था! और तुम्हारे तथाकथित साधु-संत तो तुम्हें इस शरीर की निन्दा सिखा रहे हैं। वे तो कह रहे हैं, इसी शरीर के कारण तुम भटक गये हो। और जिन्होंने जाना है, उन्होंने इसी शरीर में उसे जाना है। फिर यह शरीर कैसा ही हो--काला हो कि गोरा हो, स्वस्थ हो कि अस्वस्थ हो, जवान हो कि बूढ़ा हो, भेद नहीं पड़ता, इसीमें छिपा है। इसी टूटे घर में छिपा है। चैतन्य उसका ही दूसरा नाम है। तुम्हारे भीतर जो दिया जल रहा है होश का, यह उसकी ही उपस्थिति है।

मिलती है उम्रे-अबद इश्क के मैखाने में

यह प्रेम की मधुशाला में जो प्रविष्ट होता है, वही इस राज को समझ पाता है। और उसे ऐसी उम्र मिल जाती है जिसका कोई अंत नहीं। उसे शाश्वतता मिल जाती है। उसे अमृतत्व मिल जाता है। अमृतस्य पुत्रः। उसे अनुभव होता है कि मैं अमृत का ही बेटा हूं। कि मैं उसी से आया हूं, वही हूं, उसी तरफ जा रहा हूं। उसी में हूं, उसी का हूं। भटकूं तो भी उसी में भटक रहा हूं। भूल जाऊं तो भी उसी में हूं। बिलकुल स्मरण न रहे तो भी उससे दूर जाने का उपाय नहीं है।

मिलती है उम्रे-अबद इश्क के मैखाने में
ऐ अजल तू भी समा जा मेरे पैमाने में

भक्त के प्रेम में इतनी सामर्थ्य है कि मौत को भी उसमें डुबा लेता है। मौत समाप्त हो जाती है। उसके प्रेम में ही मौत मर जाती है। प्रेम एकमात्र स्वर है शाश्वतता का। प्रेम एकमात्र अनुभव है अमृत का!

हरमो-दैर में रिन्दों का ठिकाना ही न था

मन्दिर और मस्जिद में मतवालों के लिए जगह ही न थी। वहां तो होशियार अड्डा जमाकर बैठ गये हैं। वहां तो चालबाज, चतुर-चालाक, पंडित-पुरोहित, ध्यानी मालिक होकर बैठ गये हैं।

हरमो-दैर में रिन्दों का ठिकाना ही न था

वहां पियक्कड़ों को कौन घुसने दे? वहां प्रेमियों को कौन घुसने दे? वहां तो प्रार्थनाएं भी औपचारिक हो गयी हैं। उन प्रार्थनाओं से अब आंसू पैदा नहीं होते।

वहां तो पूजा भी जड़ हो गयी है। पैर नाचते नहीं, हृदय में नृत्य नहीं होता। आरती उतरती है, आदमी अछूता का अछूता रह जाता है। फूल चढ़ जाते हैं, प्राणों का फूल अनचढ़ा रह जाता है। पाखंड हो रहा है, प्रार्थना नहीं हो रही है। प्रार्थना तो प्रेम में ही हो सकती है। और प्रेम के कोई नियम नहीं होते। प्रेम की कोई मर्यादा नहीं होती। प्रेम की कोई भाषा नहीं होती। प्रेम के कोई बंधे हुए ढंग नहीं होते। प्रेम तो सहज होता है, स्वस्फूर्त होता है।

हरमो-दैर में रिन्दों का ठिकाना ही न था
वो तो ये कहिये अमां मिल गयी मैखाने में

वह तो यह गनीमत समझो कि कभी-कभी कोई मधुशाला भी होती है। मंदिरों और मस्जिदों के इस उपद्रव में कभी-कभी कोई मधुशाला भी होती है—खैर, समझो! कभी कोई बुद्ध, कभी कोई मीरा, कभी कोई जगजीवन, कभी कोई कबीर, कभी कोई क्राइस्ट, कभी कोई कृष्ण—कभी-कभी—जमीन तो मन्दिर-मस्जिदों से भरी है लेकिन कभी-कभी यहां कोई मधुशाला भी हो जाती है। वहीं शरण मिल जाती है। वहीं दीवाने बैठकर रो लेते हैं और पा लेते हैं। वहीं दीवाने बैठकर गा लेते हैं और पा लेते हैं। वहीं दीवाने बैठकर मस्त हो लेते हैं और परमात्मा आ जाता है। कहीं जाना नहीं पड़ता।

आज तो कर दिया साकी ने मुझे मस्त-अलस्त
डालकर खास निगाहें मेरे पैमाने में

एक बार तुम पागल होने की हिम्मत तो जुटाओ, भरें तो तुम्हारी आंखें आंसुओं से, भरे तो तुम्हारा हृदय पुकार से, प्यास से—और कर देगा वह तुम्हें मस्त!

आज तो कर दिया साकी ने मुझे मस्त-अलस्त
डालकर खास निगाहें मेरे पैमाने में

और तुम्हारे हृदय की प्याली में जिस दिन उसकी निगाहें पड़ेंगी...! पुकारो तो सही; रोओ तो सही; गुनगुनाओ तो सही, नाचो तो सही; नियम तो छोड़ो, मर्यादा तो तोड़ो; थोड़े सहजस्फूर्त, स्वाभाविक; न हिंदू न मुसलमान, न ईसाई न जैन, न बौद्ध, बस आदमी—बस उतना काफी है, उतना पर्याप्त है। एक असहाय शरणभाव कि मेरे खोजे से कुछ भी न होगा, अब तू मुझे खोज! मैं तो चलता रहा, चलता रहा, चलता रहा, जीवन-जीवन बीत गये, एक इंच भी यात्रा पूरी नहीं हो सकी, अब तो बैठ गया थक कर, अब तू ही हाथ बढ़ा! यही भक्ति का बुनियादी आधार है। परमात्मा खोजता है भक्त को।

आप देखें तो सही रब्ते-मोहब्बत क्या है

यह प्रेम का राज, यह प्रेम का रहस्य, यह प्रेम का रस, स्वाद क्या है, देखें तो सही!

आप देखें तो सही रब्ते-मोहब्बत क्या है
अपना अफ़साना मिलाकर मेरे अफ़साने में

और ऐसे दीवानों, जगजीवन जैसे दीवानों के पास अगर तुम्हें बैठना हो जाए, तो उनकी कहानी में अपनी कहानी मिला लेना, उनके गीत में अपना गीत डुबा देना, उनके प्रेम में अपने प्रेम को मिला लेना; उनके साथ नाच उठना, उनके साथ गा उठना!

आप देखें तो सही रब्ते-मोहब्बत क्या है
अपना अफ़साना मिलाकर मेरे अफ़साने में

और जब कभी ऐसी कोई मधुशाला जागती-जीती, जब कभी कोई ऐसा अलमस्त फकीर नाचता-गाता, जब कहीं मधुकलश पर मधुकलश ढाले जाते हैं, तो तुम यह मत समझो कि भक्त ही पाते हैं। मन्दिरों और मस्जिदों में बैठे हुए पुजारी और पंडित भी तड़फते हैं—आ नहीं पाते क्योंकि उनके न्यस्त स्वार्थ वहां अटके हैं; उनके सारे स्वार्थ वहां जुड़े हैं। हिम्मत नहीं जुटा पाते, लेकिन ईर्ष्या तो जगती है, जलन तो पैदा होती है।

उस जलन का लक्षण? कि वह इस तरह की मधुशालाओं का विरोध करते हैं।

नहीं तो क्या पड़ी! मन्दिर-मस्जिदों में बैठे हुए लोगों को मेरे विरोध की क्या पड़ी? पंडित-पुजारी को मुझसे क्या लेना-देना है? मैं अपना गीत गाऊंगा, विदा हो जाऊंगा—वे अपना काम करें। नहीं लेकिन वे बड़े बेचैन हैं। उनको भी ईर्ष्या जग रही है—कुछ घट रहा है, और वे चूके जा रहे हैं। इतना साहस भी नहीं है कि जीवन के छोटे-मोटे स्वार्थों को छोड़कर आ सकें!

मेरे पास साधुओं के पत्र आते हैं कि हम आना चाहते हैं, मगर कैसे आएं? हजार बाधाएं हैं। समाज आने नहीं देगा। हमारे श्रावक आने नहीं देंगे। लोगों को पता चल जाएगा कि हम आए थे तो हमें बड़ी मुसीबत होगी। ऊपर-ऊपर तो हम आपका विरोध ही करते हैं। भीतर-भीतर हम आपके वचनों को भी पढ़ते हैं, उनमें डूबते भी हैं, रस भी पाते हैं, जानते भी हैं कि कुछ हो रहा है, जाना था, हिम्मत नहीं जुटा पाते। आए दिन पत्र आते हैं! आए दिन लोग खबरें लेकर आते हैं कि फलां साधु, कि फलां महात्मा, कि फलां साध्वी आना चाहती है! तैयार है!

हज्वे-मय ने तिरा ऐ शैख भरम खोल दिया

और वह जो शराब की निंदा कर रहा है मन्दिर में बैठकर पुजारी, उसकी शराब की निंदा ने ही उसका भरम खोल दिया—

तू तो मस्जिद में है नीयत तेरी मैखाने में
मस्वुरे होते हैं जो शैखो बिरहमन में 'ज़िगर'
रिन्द सुन लेते हैं बैठे हुए मैखाने में,

वे जो मशवरे हो रहे हैं अस्तित्व में, जहां पहुंचे हुए लोगों के वार्तालाप हो रहे हैं --बुद्ध और महावीर, जहां कृष्ण और क्राइस्ट, जरथुस्त्र और मुहम्मद, और उनके बीच जो मशवरे हो रहे हैं, जो गुफ्तगू हो रही है, वह प्रेम में जो डूब जाते हैं--रिंद सुन लेते हैं बैठे हुए मैखाने में--वे अपनी मधुशाला में ही बैठे-बैठे सब पा लेते हैं। सारे बुद्धों का सार उन पर बरस जाता है।

ऐसे ही एक बुद्धपुरुष जगजीवन के वचनों में हम उतरते हैं --

'साईं, जब तुम मोहि बिसरावत।'

जगजीवन कहते हैं, यह मैं तुमसे कह दूं--परमात्मा से कह रहे हैं वह कि यह मैं तुमसे कह दूं--कि तुम जब मुझे बिसार देते हो, तब ही मैं तुम्हें भूल जाता हूं। यह बड़े मजे की बात ! जगजीवन कह रहे हैं कि जब तुम मुझे बिसार देते हो तब ही मैं भूल जाता हूं तुम्हें, याद रखना ! जब तुम मुझे याद कर लेते हो, तब मैं तुम्हें नहीं भूल पाता हूं। सब तुम्हारे हाथ है। याद करो तो तुम याद रहते हो मुझे, भूल जाओ तो मैं भूल जाता हूं। मैं इतना असहाय हूं कि याद भी मेरे बस में नहीं। इतनी भी मेरी सामर्थ्य नहीं है कि तुम्हें याद करूं--खोजने की तो बात छोड़ो ! वह तो जब कभी तुम मुझे याद आ जाते हो, तो मैं जानता हूं कि जरूर तुमने मुझे याद किया होगा ! नहीं तो तुम मुझे याद भी आ सकते थे, इसका मुझे भरोसा नहीं है। और जब मैं भूल जाता हूं, तब मैं जानता हूं कि तुमने मुझे बिसरा दिया !

यह प्रीतिभरा उलाहना देखा ?

यह सिर्फ भक्त ही हिम्मत कर सकता है। यह शिकायत देखी--यह प्रार्थना भरी शिकायत देखी ? यह निर्भय निवेदन देखा ? यह समर्पण की अंतिम पराकाष्ठा देखी ? सब छोड़ दिया ! --सब ! प्रार्थना भी, स्मरण भी !

'साईं, जब तुम मोहि बिसरावत।'

हे मेरे मालिक, जब तुम मुझे भुला देते हो, . . .

'भूलि जात भौजाल-जगत मां, . . .

तभी मैं संसार में उलझ जाता हूं। ध्यान रखना, दोष तुम्हारा है, मेरा नहीं। मैं तो अबूझ। बच्चा अगर खो जाए मेले में, तो दोष किसका है ? बच्चे का ? कि उसकी मां का, कि उसके पिता का ?

ज्ञानी की यह हिम्मत नहीं है। ज्ञानी की अकड़ है। ज्ञानी कहता है कि अगर मैं तुझे भूल गया--तो मैं भूल गया। समझना ! ज्ञानी कहता है, मैं भूल गया हूं तुझे, याद करूंगा ! खोजूंगा, तपश्चर्या करूंगा, व्रत-नियम-उपवास साधूंगा ! साधना--और एक दिन सिद्धि होगी। मैं ही तुझे याद करूंगा, मैं ही तुझे पाऊंगा। भक्त कहता है--न तो मैं तुझे पा सकता, न तुझे याद कर सकता, इतना जानता हूं कि कभी-कभी जरूर तू मुझे याद करता होगा, क्योंकि अनायास--अनायास! --न-मालूम किस कोर-

किस किनारे से तेरी याद मेरे भीतर आ जाती है ! मुझे कोई कारण मेरे भीतर नहीं दिखायी पड़ता। मेरे भीतर कोई जड़ नहीं दिखायी पड़ती जिसमें से वह सुरति पैदा होती है। लगता है कहीं तेरे तरफ से आती है।

यह भी क्या मंजर है, बढ़ते हैं न हटते हैं कदम
तक रहा हूं दूर से मंजिल को मैं, मंजिल मुझे

मेरी तो हालत ऐसी है।

यह भी क्या मंजर है, बढ़ते हैं न हटते हैं कदम

न आगे जा सकता है, न पीछे जा सकता है--ऐसी मेरी दशा है। हिल-डुल भी नहीं सकता। मेरी सामर्थ्य इतनी छोटी है। एक छोटी बूंद सागर की तलाश पर निकले भी तो क्या निकले! न-मालूम किन मरुस्थलों में कहां खो जाएगी। बूंद की सामर्थ्य क्या है सागर की खोज करे ! यह तो सागर ही उठाले तो उठाले।

यह भी क्या मंजर है, बढ़ते हैं न हटते हैं कदम
तक रहा हूं दूर से मंजिल को मैं, मंजिल मुझे

देखता रहता हूं टकटकी बांधे। लेकिन फासला ऐसा लगता है कि अंतहीन। अनंत। मैं पहुंच सकूंगा इतनी यात्रा कर दूर के तारे तक, यह मेरी सामर्थ्य नहीं। यह मेरा बस नहीं। लेकिन फिर भी कभी-कभी तू बड़े पास से सुनायी पड़ता है।

यादे-जानां भी अजब रूह-फ़ज़ा आती है
सांस लेता हूं तो जन्नत की हवा आती है

मर्गे-नाकामे-मोहब्बत मिरी तक्सीर मुआफ़
ज़ीस्त बन-बन कर मिरे हक में क़ज़ा आती है

नहीं मालूम वे खुद हैं कि मोहब्बत उनकी
पास ही से कोई बेताब सदा आती है

समझ मुझे कुछ पड़ता नहीं ! तूने पुकारा या तू खुद मेरे पास से गुजर गया !

नहीं मालूम वो खुद हैं कि मोहब्बत उनकी
पास ही से कोई बेताब सदा आती है

हृदय के बिलकुल पास से, इतने पास से कि हृदय के भीतर से कोई आवाज आती है, भर लेती है मुझे, आलिंगन में ले लेती है मुझे। कोई गंध छिटका जाता मुझ पर। कोई गीत बरसा जाता मुझ पर।

यादे-जानां भी अजब रूह-फ़ज़ा आती है
सांस लेता हूं तो जन्नत की हवा आती है

मगर कभी-कभी ऐसा होता है--जरूर तेरे कारण होता होगा; मेरे कारण होता तो सदा कर लेता . . . समझना ! अगर मेरे बस में होता तो चौबीस घंटे कर

लेता, तेरी याद भी, हे प्यारे, तेरी याद भी--'यादे-जानां भी अजब रूह-फ़ज़ा आती है।'

यह भी एक रहस्य है, कब आती है, कब नहीं आती ? क्यों आती है, क्यों नहीं आती ? कभी तो चाहता हूं और नहीं आती। और कभी ना-चाहे उतर आती है। अनायास ! भक्त चकित होता। भक्त सदा आश्चर्यविमुग्ध होता। कभी ऐसा प्रसाद बरसता है उस पर कि यह तो सोच भी नहीं सकता कि यह मेरे प्रयास का परिणाम है। कोई तालमेल नहीं। प्रयास इतना छोटा है कि इसमें संबंध जुड़ता नहीं -- कार्य-कारण का संबंध नहीं जुड़ता। भक्त की चेष्टा--ना-कुछ, बूंद जैसी। और भक्त की उपलब्धि--सब कुछ। महासागर जैसी। इसमें कुछ सम्बंध नहीं है कार्य-कारण का। कुछ मैंने पुकारा इसलिए तू मुझे मिल गया -- ऐसी भूलभरी बात भक्त नहीं कह सकता।

मर्गे-नाकामे-मोहब्बत मेरी तक्सीर मुआफ़
ज़ीस्त बन-बन के मेरे हक़ में क़ज़ा आती है

मौत भी आती है तो भी मेरे हक में जीवन बन जाती है। दुख भी आता है, तो मेरे हक में सुख बन जाता है। कांटा भी चुभता है तो न-मालूम कौन, किस चमत्कार से उसे फूल बना जाता है। भक्त के जीवन में दुर्घटनाएं भी सौभाग्य होने लगती हैं। इसलिए भक्त कहता है, यह मेरे किये नहीं हो रहा है। सब तेरा है।

'साईं, जब तुम मोहि बिसरावत।
भूलि जात भौजाल-जगत मां, मोहि नाहिं कछु भावत ।।'

सब भूल-भाल जाता हूं। स्मरण ही नहीं आता, परमात्मा की सुध भी नहीं उठती, सत्य का विचार भी नहीं जगता। ऐसे भटक जाता हूं जैसे तुझसे कोई पहचान ही नहीं। मगर दोष तेरा है। यह हिम्मत भक्त की है ! यह हिम्मत त्यागी की, तपस्वी की, ज्ञानी की नहीं है। यह हिम्मत भक्त की है, यह हिम्मत प्रेमी की है--कि दोष तेरा है। तू तो बड़ा है; तू तो रहमान है, रहीम है, हम भूलें भी, तो तू तो मत छोड़ ! हम हाथ भी छोड़ दें तो तू तो हाथ पकड़ रख ! हम अंधेरे में खो भी जाएं तो तू तो हमारा पीछा कर सकता है ! हम तेरी तरफ पीठ कर लें, लेकिन तुझे कौन रोकता था कि सामने आकर खड़ा न हो जाए !

'जानि परत पहिचान होत जब, चरन-सरन लै आवत।'

लेकिन यह बात तुम्हें तब समझ में आएगी जब पहचान होगी। जब प्रसाद बरसेगा तब समझ में आएगी यह बात कि अपने प्रयास की क्या सामर्थ्य, क्या औकात! जैसे कोई चम्मच से सागर को खाली करने में लगा हो, ऐसे हमारे प्रयास हैं। और एक दिन सागर खाली हो जाए तो क्या तुम समझोगे कि तुम्हारी चम्मच के खाली करने से खाली हो गया !

'जानि परत पहिचान होत जब',...

यह बात--जगजीवन कहते हैं--तुम तब समझ पाओगे जो मैं कह रहा हूं, जब पहचान होगी। तब तुम पाओगे, अपना किया तो रंचमात्र था और जो मिला है, वह अपार है। कोई सम्बंध हमारे कृत्य में और हमारी उपलब्धि में नहीं है। साधना और सिद्धि में कोई सम्बंध नहीं है। इसलिए भक्ति कहती है : प्रयास से नहीं मिलता परमात्मा, प्रसाद से मिलता है। उसकी ही अनुकंपा से मिलता है। जब वह तुम्हें चरण में ले लेता है, जब अचानक वह झुका लेता अपनी शरण में... तुम्हारे झुकने से तुम न झुकोगे।

इस सम्बंध में एक मनोवैज्ञानिक सत्य समझ लेना उपयोगी होगा।

तुम जो भी करोगे, उससे तुम्हारा अहंकार ही बढ़ेगा। जो भी ! बेशर्त ! उपवास करोगे, तो अहंकार बढ़ेगा। तुम जो भी करोगे तुम ही करोगे न ! तुम्हारे करने से तुम्हारा कर्ता पुष्ट होगा। तुम अगर अकर्ता होकर भी बैठ जाओगे, तुम कहोगे--मैं कुछ नहीं करता, तो भी कर्ता पुष्ट होगा भीतर से, तुम कहोगे कि देखो, मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं। मैं अकर्ता हो गया हूं। लेकिन 'मैं' बनेगा।

इस 'मैं' के बाहर जाने का उपाय क्या है ? और समस्त धर्मों ने कहा है : 'मैं' के जो बाहर गया, वही परमात्मा में गया।

इस 'मैं' के बाहर जाने की विधि क्या है फिर ? क्योंकि जो भी हम करेंगे उससे 'मैं' ही मजबूत होगा। अनिवार्यरूपेण। निरपवाद। कुछ भी करो। अकर्म भी करो, अक्रिया भी साधो, शांत होकर बैठ जाओ, मौन करो, ध्यान करो, लेकिन जो भी तुम करोगे वह तुम्हारे कर्ताभाव को मजबूत करेगा। और तुम्हारा कर्ताभाव ही तो अहंकार है। तो फिर उपाय क्या है ?

भक्त कहता है, उस पर छोड़ो। उसे करने दो ! तुम कहो कि यह रहा मैं, तू कर ! तुम प्रतीक्षा करो! प्रयास नहीं, प्रतीक्षा ! और प्रतीक्षा का ही नाम है प्रार्थना। प्रार्थना का अर्थ है, तू कुछ कर। प्रार्थना का सारसूत्र इतना ही है: मेरे किये सब अनकिया हो जाता है; मैं करता हूं तो गलत हो जाता है। ठीक भी करता हूं तो गलत हो जाता है। दान भी देता हूं तो लोभ के कारण देता हूं--ऐसी मेरी मुसीबत है। दया भी करता हूं तो अहंकार मजबूत होता है। जो भी मैं करूं, उसी में भूल हो जाती है, क्योंकि मेरा 'मैं' पीछे से आ जाता है। 'मैं' की छाया विषाक्त कर देती है मेरे कृत्य को। इसलिए अब मैं क्या करूं ? अब मैं कैसे करूं ? सब विधि-विधान व्यर्थ हैं। अब तू कुछ कर !

'जानि परत पहिचान होत जब, चरन-सरन लै आवत।'

और तब वह अपूर्व घटना घटती है : अज्ञात हाथ आते हैं और झुका लेते हैं। एक अज्ञात किरण उतरती है और अंधेरे को तोड़ जाती है--जन्मों-जन्मों के अंधेरे को। एक अज्ञात बाढ़ आती है और बहा ले जाती है सब कूड़ा-करकट, छोड़ जाती है निश्छल, पवित्र, शुद्ध चैतन्य पीछे।

'जब पहिचान होत है तुमसे, सूरति सुरति मिलावत ।।'

और जब तुम से पहचान होती है, तब मेरी सुरति और तुम्हारी सूरत एक ही बातों के दो नाम हैं। सुरति का अर्थ होता है : मेरा स्मरण, मेरी स्मृति, तुम्हारी याददाश्त। जब तुमसे पहचान होती है, तब मेरे भीतर तुम्हारी याद और तुम्हारा चेहरा और तुम्हारी सूरत, इन में भेद नहीं रहता। मेरी सुरति तुम्हारी सूरत, तुम्हारी सूरत मेरी सुरति ।

मिरी नज़र से तिरी जुस्तजू के सदके में
ये इक जहां ही नहीं, सैंकड़ों जहां गुजरे

हुजूमे-जल्वा में परवाज़े-शौक़ क्या कहना
कि जैसे रूह सितारों के दर्मियां गुज़रे

बस जरा-सी एक झलक और आत्मा आकाश में उड़ने लगती है।

हुजूमे-जल्वा में परवाज़े-शौक़ क्या कहना

फिर ऐसी हिम्मत आती, फिर ऐसा साहस उठता है, फिर डैने फैलाकर आदमी चांद-तारों के पास उड़ता है। जो छोटी-मोटी बदलियों के भी पार नहीं जा सकता था, वह अनंत आकाश को पार कर जाता है ।

मिरी नज़र से तिरी जुस्तजू के सदके में
ये इक जहां ही नहीं सैंकड़ों जहां गुज़रे

तेरी आंख से आंख भर मिल जाए कि एक जहां नहीं, सैंकड़ों जहां गुजर जाते हैं। पलभर में अनंत काल बीत जाता है। एक क्षण शाश्वत हो जाता है । 'हुजूमे-जल्वा में', और तेरे उस प्रसाद में, तेरे उस रहस्यपूर्ण अनुग्रह में, 'परवाज़े-शौक़ क्या कहना ।' ऐसी हिम्मत, ऐसा साहस इस ना-कुछ में उठता है कि बूंद सागर होने का रस लेने लगती है। ऐसे पंख फैलते हैं——

कि जैसे रूह सितारों के दर्मियां गुजरे——

फिर कुछ चिंता नहीं रह जाती ।

फिक्रे-मंजिल है न, होशे-जादा-ए-मंजिल मुझे
जा रहा हूं जिस तरफ ले जा रहा है दिल मुझे

फिर कोई चिंता नहीं कि मंजिल कहां है ! कोई फिक्र नहीं, तेरी आंख से आंख मिली कि मंजिल मिली। 'फिक्रे मंजिल है न,' अब कुछ चिंता नहीं कि कहां है मंजिल, कहां है गंतव्य——और न इस बात की चिंता है कि मैं ठीक रास्ते पर चल रहा हूं कि नहीं ? यह मजे की बात समझना ! यह गहरी बात पकड़ना !

'फिक्रे-मंजिल है न, होशे-जादा-ए-मंजिल मुझे

अब कौन फिजूल की बकवास में पड़े कि ठीक चल रहा हूं कि गलत चल रहा हूं,

कि ठीक दिशा में चल रहा हूं कि गलत दिशा में चल रहा हूं ! एक बार उसकी नज़र नज़र में पड़ी . . .

आज तो कर दिया साकी ने मुझे मस्त-अलस्त
डालकर खास निगाहें मेरे पैमाने में

एक बार उसकी नज़र नज़र में पड़ी, एक बार पहचान हुई, फिर सभी दिशाएं उसी से भरी हैं और सभी रास्ते उसी के हैं। फिर संसार ही निर्वाण है। फिर देह ही आत्मा है। फिर तुम जहां हो, वहां ठीक हो। तुम जैसे हो, वैसे ही ठीक हो। फिर दुर्भाग्य नहीं है, फिर सौभाग्य-ही-सौभाग्य है !

जा रहा हूं जिस तरफ ले जा रहा है दिल मुझे

बस, फिर तुम्हें पता चला——सुराग मिला हृदय का !

'जब पहिचान होत है तुमसे, सूरति सुरति मिलावत ।।
जो कोई चहै कि करौं बंदगी, बपुरा कौन कहावत ।'

उस बेचारे को क्या कहें हम, उस पर दया आती है, जो सोचता है कि——'जो कोई चहै कि करौं बंदगी', कि मैं प्रार्थना करूंगा, कि मैं बंदगी करूंगा, वह बेचारा दया का पात्र है। बंदगी परमात्मा करवाएगा तो होगी ! परमात्मा आएगा और झुकाएगा, तो !

प्राचीन शास्त्र कहते हैं : जब शिष्य तैयार होता है, गुरु उपस्थित हो जाता है। जब भक्त तैयार होता है, परमात्मा आकर उसे घेर लेता है।

और भी एक अनूठा सूत्र सूफी फकीरों के पास है। वे कहते हैं : जब तुम्हारे मन में परमात्मा की तलाश उठे, जब तुम परमात्मा को खोजने की आकांक्षा से भरो, तो समझ लेना कि उसने तुम्हें चुन लिया है। नहीं तो यह प्यास ही न उठती। जब तुम तैयार हो जाओ, तो इसका अर्थ केवल इतना ही हुआ कि उसने तुम्हें तैयार किया है। यही जगजीवन कह रहे हैं——

'जो कोई चहै कि करौं बंदगी, बपुरा कौन कहावत ।'

उस बेचारे को हम क्या करें ! दया का पात्र है। बंदगी कभी किसी ने की है ? प्रार्थना कभी किसी ने की है ? प्रार्थना हो जाती है, की नहीं जाती । कृत्य नहीं है, प्रयास नहीं है, प्रार्थना विधि नहीं है। जैसे प्रेम हो जाता है, ऐसे ही प्रार्थना हो जाती है।

'चाहत खैंचि सरन ही राखत ।' उसकी मर्जी पर सब है। 'चाहत खैंचि सरन ही राखत', वह चाहता है तो खींच कर अपने चरणों में रख लेता है। लाख भागो, भाग नहीं पाते। लाख दूर जाओ और दूर नहीं जा पाते। कहां जाओगे? सब जगह वही है ।

'चाहत खैंचि सरन ही राखत, चाहत दूरि बहावत ।।'

और अगर चाहता है, तो बह जाने देता है, दूर बह जाने देता है।

दिल ने सीने में तड़पकर उन्हें जब याद किया
दरो-दीवार को आमादा-ए-फरियाद किया

वस्ल से शाद किया हिज्र से नाशाद किया
उसने जिस तरह से चाहा मुझे बर्बाद किया

हमको देख ओ ग़मे-फ़ुर्क़त के न सुननेवाले
इस बुरे हाल में भी हमने तुझे याद किया

और क्या चाहिए सर्माया-ए-तस्कीं ऐ दोस्त
इक नज़र दिल की तरफ़ देख लिया, शाद किया

शरहे-नैरंगी-ए-असबाब कहां तक कीजै
मुख्तसर ये कि हमें आपने बर्बाद किया

मौत इक दामे-गिरफ़्तारी-ए-ताज़ा है 'ज़िगर'
ये न समझो कि ग़मे-इश्क़ ने आज़ाद किया

भक्त तो कहता है : आबाद करो तो तुम, बरबाद करो तो तुम। सारी जिम्मेवारी तुम्हारी। भक्त अपना सारा उत्तरदायित्व परमात्मा पर छोड़ देता है। यही समर्पण है।

शरहे-नैरंगी-ए-असबाब कहां तक कीजै
मुख़्तसर ये कि हमें आपने बर्बाद किया

और क्या चाहिए सर्माया-ए-तस्कीं ऐ दोस्त
इक नज़र दिल की तरफ़ देख लिया, शाद किया

जब चाहा और एक नज़र हमारे दिल की तरफ़ देखा, तब शाद किया। तब उत्सव बरस गया। तब आनंद के फूल खिल गये। तब वसंत आ गया। और जब नज़र फेर ली, तब बर्बादी छा गयी, पतझड़ हो गया। अंधेरी रात उतर आयी।

वस्ल से शाद किया हिज्र से नाशाद किया

कभी मिला लिया अपने में—और खूब मस्त किया! और कभी दूर कर दिया अपने से, विरह में तड़पाया और बड़ी अंधेरी रातें दीं! उसने जिस तरह से चाहा, मुझे बरबाद किया! भक्त कहता है कि बरबादी!—तो तुम्हारे हाथ पाता हूं। और आबादी!—तो तुम्हारे हाथ पाता हूं। एक बात तय है कि मैं नहीं हूं और तुम हो। लेकिन जिस दिन कोई इतनी सरलता से कह देता है कि मैं नहीं हूं, तुम हो, उसी दिन जीवन रूपांतरित हो जाता है। उसी दिन से तुम्हारे जीवन में एक नया सूत्रपात होता है, एक नयी किरण उतरती है—एक नया प्रभात, एक सूर्योदय!

'हौं अजान अज्ञान अहौं प्रभु, तुमतें कहिकै सुनावत।'

कह रहे हैं कि यह भी जो मैं कह रहा हूं, यह भी मेरा अज्ञान ही है। क्योंकि तुम तो जानते ही हो, तुमसे कहना क्या? अजान हूं, अज्ञान हूं। नहीं तो यह भी क्या कहना है?

'जगजीवन पर करत हौ दाया, तेहिते नहिं बिसरावत।।'

और यह भी तुम्हारी जो मैं चर्चा कर रहा हूं, यह भी तुम्हारी कृपा है। तुमने मुझे नहीं बिसराया, इसलिए तुम्हारी याद चल रही है, इसलिए तुम्हारी याद की धारा बह रही है। इसलिए नहा रहा हूं इस गंगा में, इसलिए तुम्हारी चर्चा कर रहा हूं। यह चर्चा भी तुम्हीं करवा रहे हो। नहीं तो मैं अज्ञानी, मैं अजान, मैं क्या कहूंगा?

जगजीवन के पास सैकड़ों लोग इकट्ठे हो गये थे—दीवाने, प्रेमी, भक्त। वह यह कह रहे हैं कि इनसे जो मैं कह रहा हूं, वह वही जो तुम मुझसे कहलवा रहे हो। यह मैं नहीं कह रहा हूं, यह तुम कह रहे हो। गल्ती हो तो तुम्हारी; ठीक हो तो तुम जानो! ऐसे पूर्ण समर्पण का नाम भक्ति है।

तुम चौंकोगे यह बात जानकर कि ठीक-ठीक परमात्मा को सौंप देना बहुत आसान है, क्योंकि उसमें भी अहंकार होता है। ऐसे वचन हैं शास्त्रों में कि जो कुछ ठीक, वह तेरा और जो कुछ गलत, वह मेरा। मगर सोचना, इसमें भ्रांति है। इसका मतलब यह हुआ कि अभी इतना अहंकार कायम है। ठीक तेरा! कि देख, जरा देख, मेरी दरियादिली देख, कि सब ठीक तुझे देता हूं, कि सब ठीक तेरा—और गलत-गलत? मेरा। जरा देख, मेरी हिम्मत देख, मेरी कूबत देख, यह मेरा त्याग देख, कि गलत अपने ऊपर ले रहा हूं! मेरा यह विनम्रभाव देख, मेरी सदाशयता देख, कोई छोटा-मोटा दिल नहीं है मेरे पास!

आमतौर से आदमी उल्टा करता है। ठीक-ठीक अपने पास रखता है, गलत-गलत परमात्मा पर छोड़ देता है। जब तुम सफल होते हो, तब तुम कहते हो—मैंने सफलता पायी। और जब तुम हार जाते हो, तुम कहते हो—भाग्य, भगवान! परिस्थिति बस में न थी!

अहंकार दूसरा रूप भी ले लेता है। वह और भी सूक्ष्म है। वह कहता है, देख, बुरा मैं ले लेता हूं अपने सिर! सब भला तेरा, सब बुरा मेरा। मगर अभी 'मैं' बचा। यह क्रांति नहीं हुई। यह अहंकार ने नया रंग लिया, नया ढंग लिया, नयी शैली सीखी। यह अहंकार ने विनम्रता के वस्त्र ओढ़े। सावधान, अहंकार बड़ा सूक्ष्म है। उसकी चालबाजियां बड़ी गहरी हैं। वह साधु बन जाता है, महात्मा बन जाता है। वह बड़ा उदार बन जाता है। अहंकार कोई भी वेश रख लेता है! अहंकार सभी वेशों में अपने को समा लेता है। अहंकार बहुरूपिया है। शैतान बन जाता है, साधु बन जाता है। पापी बन जाता है, पुण्यात्मा बन जाता है।

असली भक्त कुछ और कहता है। वह कहता है : बरबाद! तो तूने किया।

आबाद ! तो तूने किया । सही, तूने किया; गलत, तूने किया । करनेवाला ही तू है । तो अपनी गलती भी भगवान के चरणों में जो रख देता है । जो सब समर्पित कर देता है ।

तुमने कहानी सुनी ?

प्राचीन कहानी है, एक भक्त स्त्री की । वह कृष्ण की भक्त थी । सब चढ़ा देती थी । गांव में खबर फैल गयी कि वह सब कृष्ण को चढ़ा देती है । बुरा-भला भी चढ़ा देती है । जो कुछ है, सब चढ़ा देती है । क्रोध आता है उसको, तो वह कहती है-- सम्हाल ! यह तुझे चढ़ाया ! गाली निकल जाती है उसके मुंह से तो कह देती है-- कृष्ण को समर्पण ! यह अजीब औरत है, यह पागल है ! गाली और कृष्ण को समर्पण ?

और एक दिन तो हद हो गयी । वह यात्रा को गयी थी, जब लौटकर आयी तो घर में खूब कूड़ा-करकट इकट्ठा हो गया था--कई दिन तक सफाई नहीं हुई थी । उसने सब साफ किया, सब कूड़ा-करकट इकट्ठा किया और जाकर कृष्ण की मूर्ति के पास सब समर्पित कर दिया : समर्पण है । जो है, तेरा है । बुरा तो तेरा, भला तो तेरा । यह समग्रता देखो !

और कहते हैं, वह जो कचरा उसने फेंका था, वह बैकुंठ में कृष्ण के ऊपर गिरा । जरूर गिरा होगा । इतने प्यार से फेंका गया हो, इतने समर्पण से फेंका गया हो-- और तुम्हारे फूल भी नहीं पहुंचते, उसका कचरा भी पहुंचा ! और जब उनके स्वर्ण-सिंहासन पर कचरा गिरने लगा तो वह हंसे । और जब देवताओं ने पूछा, यह माजरा क्या है ? यह कचरा कहां से आ रहा है ? यह कौन आप पर कचरा फेंक रहा है ? यह किसकी सामर्थ्य ? कृष्ण ने कहा : वह बुढ़िया, जो गालियां फेंकती है, वह सभी कुछ देती है । अब जब उससे अच्छा-अच्छा लिया है, तो अब बुरा-बुरा थू कहते मुझसे भी नहीं बनता । फूल भी चढ़ाती है, कचरा भी फेंकती है--जब सभी दे दिया तो मैं भी सभी लेता हूं । और जब कोई सभी देता है, तभी मैं सभी लेता हूं । जो बचा-बचाकर देता है, उसका कुछ भी नहीं लिया जा सकता ।

शर्त से नहीं दिया जाता । बेशर्त दिया जाता है ।

'हौं अजान अज्ञान अहौं प्रभु, तुमतें कहिकै सुनावत ।
जगजीवन पर करत हौ दाया, तेहिते नहिं बिसरावत ।। '

'बहुतक देखादेखी करहीं । '

मगर ख्याल रखना, ऐसा सुनकर देखादेखी मत करने लगना । कि फूल तो अभी चढ़ाए ही नहीं और कचरा चढ़ा दिया । देखादेखी मत करने लगना । धर्म को सबसे बड़ी बाधा अधर्म के कारण नहीं है, देखादेखी के कारण है । धर्म के मार्ग

पर सबसे बड़ी अड़चन देखादेखी के कारण है लोग मंदिर जा रहे हैं, तुम भी चले । देखा देखी चले । बस, व्यर्थ हो गया जाना । तुम्हारे हृदय का आविर्भाव न हुआ । तुम कार्बन कापी हो गये । परमात्मा तक सिर्फ मूल प्रतियां पहुंचती हैं, कार्बन कापियां नहीं । धर्म के जगत में सबसे महत्त्वपूर्ण बात याद रखने जैसी अगर कोई है तो यह-- देखादेखी मत करना ! क्योंकि देखादेखी का मतलब होता है, ऊपर-ऊपर । ऊपर-ऊपर रंग-रोगन कर लिया, भीतर-भीतर जैसे थे वैसे रहे । आचरण भी सम्हाल लिया, चरित्र भी बना लिया, एक जीवनशैली रच ली । पूजा भी की, पाठ भी किया, प्रार्थना भी की--सब देखादेखी । सब ऊपर-ऊपर । और भीतर? जैसे थे वैसे-के-वैसे रहे । देखादेखी प्राणों तक नहीं जा सकती । नकल असल नहीं हो सकती । नकल असल जैसी दिखती है, इसलिए धोखा दे सकती है ।

इसलिए दुनिया में असली खतरा धर्म को नास्तिक से नहीं है--नास्तिक तो कम-से-कम साफ है कि नास्तिक हूं; बात खतम हो गयी ! न कोई परमात्मा है, न मुझे खोजना है । है ही नहीं, तो खोजना क्या है ? कम-से-कम ईमानदार है । बेईमान हैं तुम्हारे तथाकथित आस्तिक । भरोसा भी नहीं है परमात्मा पर, खोजें भी चले जाते हैं । किसे धोखा दे रहे हो ? यह कैसी आत्मवंचना है ? प्रार्थना करते हो और भीतर कोई श्रद्धा भी नहीं है । कर रहे हो तब भी तुम जानते हो कि कुछ होना नहीं है । मगर चलो देख लो कर के, शायद ! शायद मौजूद है । तो प्रार्थना नहीं हो सकती । तुम जानते हो भलीभांति कि पहले भी प्रार्थना नहीं सुनी गयी है, यह भी नहीं सुनी जाएगी, पर हर्जा क्या है ?

मेरे एक शिक्षक मरणशय्या पर थे । मैं उन्हें देखने गया । वे जीवन भर नास्तिक थे । मैंने उन्हें राम-राम जपते देखा । ओंठ से राम-राम, राम-राम कर रहे हैं । मैंने उन्हें हिलाया; मैंने कहा, यह क्या कर रहे हैं ? पूरी जिन्दगी पर पानी फेरे दे रहे हैं । नास्तिकता का क्या हुआ? उन्होंने कहा--छोड़ो जी, नास्तिकता की बात ! अब मरते वक्त, कौन जाने परमात्मा हो ही ! अब मरते वक्त यह बात मत उठाओ । राम-राम कर लेने में हर्ज क्या है ? वैसे ही बिस्तर पर पड़ा हूं, कोई काम दूसरा है भी नहीं, हुआ तो ठीक है, न हुआ तो ठीक है । न हुआ तो अपना कुछ बिगड़ न गया, वैसे ही बिस्तर पर पड़े थे । और अगर हुआ, तो कहने की बात रह जाएगी कि देख, आखिरी वक्त याद किया था ।

मगर यह आस्तिकता है ? यह याद है? यह याद पहुंचेगी ? उस बुढ़िया का कचरा भी पहुंच गया था, यह याद भी नहीं पहुंचेगी । यह याद यूं ही घुटकर मर जाएगी । यह कंठ के बाहर ही न निकलेगी, इसमें पंख हो ही नहीं सकते । इसमें प्राण ही नहीं हैं, तो पंख कैसे होंगे ? यह आकाश की यात्रा पर नहीं जा सकती । यह आदमी किसको धोखा दे रहा है ? अपने को ही धोखा दे रहा है ।

'बहुतक देखादेखी करहीं' । और इस जगत में धर्म के नाम पर बहुत-से लोग देखादेखी ही कर रहे हैं । तुम्हारे मां-बाप मन्दिर जाते थे तो तुम भी मन्दिर जाने लगे । वे तुम्हें मन्दिर ले गये बचपन से, आदत बन गयी । आदत से कहीं धर्म हुआ ? आदत और धर्म ? लोग सोचते हैं कि कुछ आदतें अच्छी होती हैं, कुछ आदतें बुरी होती हैं, मैं तुमसे कहता हूं : आदत मात्र बुरी होती है । अच्छी आदत जैसी चीज होती ही नहीं । आदत का मतलब होता है, यांत्रिक । अच्छाई यांत्रिक नहीं होती, सहज-स्फूर्त होती है ।

अच्छाई आदत से नहीं होती । किसीने गाली दी और तुम आदत की वजह से क्रोधित न हुए, यह कोई अच्छाई न हुई । क्रोध तो भीतर आ ही गया! आदत थी पुरानी, अभ्यास था, सम्हाल गये--गटक गये, दबा लिया कंठ के नीचे, ऊपर मुस्कुराहट जारी रखी, हंसते रहे । मगर क्रोध तो हो ही गया ! तुमने प्रगट नहीं किया, इससें क्या फर्क पड़ता है ! घटना तो घट ही गयी, तुम्हारे प्राण तो दूषित हो ही गये; धुआं तो उठ ही गया, आग तो लग ही गयी, जहर तो फैल ही गया । इतना ही हुआ कि बाहर न आया, तुम्हारे भीतर ही रहा । दूसरे व्यक्ति को थोड़ा लाभ मिला । लेकिन तुम्हें कुछ लाभ नहीं हुआ । आदत--अच्छी आदतें जिनको हम कहते हैं, सामाजिक व्यवस्थाएं हैं । उनसे समाज के जीवन में थोड़ी सुविधा होती है ।

जैसे इंजिन में तेल डालते हैं न, तो तेल के कारण इंजिन के कल-पुर्जे जल्दी नहीं घिसते, ऐसे ही अच्छी आदतें व्यक्तियों के बीच में तेल का काम करती हैं, जल्दी घिसने नहीं देतीं, जल्दी झगड़ा खड़ा नहीं होता । आदत बना ली कि जब भी कोई रास्ते पर मिला, 'जयराम जी' ! यह तेल है । इसमें रास्ता बना रहता है । इससे झगड़ा-झांसा ज्यादा खड़ा नहीं होता । हालांकि न तुम्हें मतलब है 'जयराम जी' से, न उन्हें मतलब है 'जयराम जी' से ! राह पर कोई मिला, पूछ लिया--कहिये कैसे हैं ? न तुम्हें मतलब है ! और इसीलिए कभी-कभी कोई ऐसा नासमझ भी हो जाता है, कि तुमने पूछा, कहिये कैसे हैं, वह रोककर सारी कथा बताने लगता है कि कैसा है ! तब तुम घबड़ाते हो, कि भई, हमारा यह मतलब नहीं था ! मगर अब अच्छे फंसे ! यह तो पूछकर फंस गये । वह बताने लगा अपनी सारी कहानी कि पत्नी बीमार है और बेटे की नौकरी नहीं लग रही है--अब तुमने पूछा ! नहीं, कोई इसलिए तो पूछता भी नहीं कि कहिये कैसे हैं । यह तो सिर्फ बीच का तेल है । इससे जिन्दगी घिसटती-पिसटती चलती रहती है । अच्छी आदतें 'लुब्रीकेंट' हैं ! उससे ज्यादा नहीं ।

आदतें कोई अच्छी नहीं होतीं । अच्छा आदमी आदतों से मुक्त होता है । वह प्रतिपल जीता है । अच्छा आदमी स्वभाव से जीता है, बुरा आदमी आदत से जीता है । अच्छा आदमी 'जयराम जी' करता है स्वभाव से । तुम्हें देखकर राम

की याद आती है । आनी चाहिए । क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति उसीकी प्रतिमा है । तुम्हें देखकर राम की सुध आ जाती है । एक जीवंत व्यक्ति पास से निकले, जीवन का एक झोंका निकल जाए पास से और तुम्हें राम की याद न आए--तुम मुर्दा हो । सहजस्फूर्त 'जयराम जी' उठे, आदत से नहीं । तब शुभ का जन्म होता है ।

लेकिन तुमने जो जीवन बना रखा है, वह आदत का जीवन है । लोग माला भी फेर लेते हैं आदत से । दूकान पर बैठे रहते हैं, ग्राहक भी चलाते रहते हैं, नजर भी रखे रहते हैं--कोई सामान तो चोरी नहीं ले जा रहा है, कुत्ता भीतर तो नहीं घुस गया, मुनीम कुछ पैसे तो नहीं नदारद कर रहा है, तौलनेवाला दांडी मार रहा है कि नहीं मार रहा है--सब चल रहा है और माला भी चल रही है ! और राम-राम का जप भी चल रहा है । यह आदत है । आदत से कोई धार्मिक नहीं होता !

लेकिन हमने दुनिया में यह धोखा खड़ा कर लिया है । इसलिए दुनिया में दो तरह के लोग हैं । एक ईमानदार नास्तिक और एक बेईमान नास्तिक ! बेईमान नास्तिकों को लोग आस्तिक समझते हैं । आस्तिक तो सच में कभी-कभार होता है । कभी कोई एकाध लाखों में आस्तिक होता है । बाकी तो सब झूठे आस्तिक हैं । बहुतक देखादेखी करहीं ।

ऐ हुस्ने-यार ! शर्म, ये क्या इन्क़िलाब है
तुझ से ज्यादा दर्द तिरा कामयाब है

आशिक़ की बेदिली का तग़ाफ़ुल नहीं जवाब
उसका बस एक जोशे-मोहब्बत जवाब है

मैं इश्क़े-बेनियाज़ हूं, तुम हुस्ने-बेपनाह
मेरा जवाब है, न तुम्हारा जवाब है

मैखाना है उसीका, ये दुनिया उसीकी है
जिस तश्ना-लब के हाथ में जामे-शराब है

ऐ मोहतसिब ! न फेंक, मिरे मोहतसिब ! न फेंक
ज़ालिम ! शराब है, अरे, ज़ालिम ! शराब है

अपने हुदूद से न बढ़े कोई इश्क़ में
जो ज़र्रा जिस जगह है, वहीं आफ़ताब है

मेरी निगाहे-शौक़ भी कुछ कम नहीं मगर
फिर भी तिरा शबाब, तिरा ही शबाब है

सर्माया-ए-फ़िराक़ 'जिगर' आह कुछ न पूछ
इक जान है, सो अपने लिए खुद अज़ाब है

हाथ में प्याली हो भरी, प्रेम की, प्रार्थना की, उसकी याद की और तुम पिओ, तो आस्तिकता !

मैखाना है उसीका, ये दुनिया उसीकी है
जिस तश्ना-लब के हाथ में जामे-शराब है

लेकिन शराब की बातों से थोड़े ही कोई बेहोश हो जाता है ? शराब चाहिए। और लोग शराब की बातों से ही बेहोश हो रहे हैं ! किसको धोखा दे रहे हो ? लोग डोल रहे हैं शराब की बातों से ! बातों से कहीं कोई डोला ? तुम अपने को ही वंचना दे रहे हो। इतना सस्ता नहीं है मामला ! देखादेखी छोड़ो ! बहुतक देखादेखी करहीं।

'जोग जुक्ति कछु आवै नाहीं', न तो मिलने का राज पता है कि कैसे तुमसे मिलें, न मिलने की कोई विधि-कला पता है कि कैसे उससे मिलें, 'अंत भर्म महं परहीं'। अंत में बहुत पछताओगे । जिन्दगी भर का धोखा अंत में टूट जाएगा । मौत आएगी और गिरा देगी सारे ताश के महल और डुबा देगी सारी कागज की नावें, और तब तुम चौंकोगे, तब तुम तड़फोगे, लेकिन तब किये कुछ भी न हो सकेगा ! बहुत देर हो गयी ! अब पछताये होत का, चिड़िया चुग गयी खेत ।

और जिन्दगी भर देखादेखी में पड़े रहे । लोग उधार जी रहे हैं, बासे जी रहे हैं । रामायण रट ली है तोतों की भांति, हाथ में शराब का प्याला नहीं है—हाथ में राम का प्याला नहीं है । गीता कंठस्थ कर ली है यंत्र की भांति । ग्रामोफोन के रिकार्ड हो गये हैं । दोहराए चले जा रहे हैं । तुम सोचते हो कि ग्रामोफोन के रिकार्ड, जिनमें भजन भरे हैं, मोक्ष पहुंच जाएंगे ? बैकुंठ पहुंच जाएंगे ? तो तुम कैसे पहुंच जाओगे ? भजन जगना चाहिये—जीवंत, एक लपट की भांति, जो तुम्हारे अहंकार को राख कर जाए । जलो भजन में ! तभी नया जन्म होता है ।

'जोग जुक्ति कछु आवै नाहीं, अंत भर्म महं परहीं ।।'

अंत में बहुत पछताना होगा, क्योंकि अंत में पता चलेगा कि जिन्दगी यूं ही गयी । व्यर्थ गयी ! हिसाब-किताब लगाने में चली गयी । न हाथ कुछ आया, न हाथ कुछ लगा । खाली हिसाब लगाते रहे ।

बुद्ध कहते थे, एक आदमी अपने घर के सामने बैठकर रोज घर के सामने से निकलती हुई गाय-भैंसों को गिनता रहता था । गांव भर की गाय-भैंसें चरने जातीं नदी के पास, वह बैठा गिनता रहता । सांझ को भी बैठा गिनता कि जितनी गयी थीं उतनी वापिस लौटीं कि नहीं ? बुद्ध ने कहा, मैं उसे देखता । मैंने उससे पूछा, मेरे भाई, तू दूसरों की गाय-भैंसें गिनने से तुझे सार क्या है ? कितनी गयीं, कितनी आयीं—तेरी तो इसमें एक भी नहीं है । ऐसा ही बुद्ध कहते मैं तुमसे कहता हूं कि कब तक तुम वेद गिनते रहोगे, कुरान गिनते रहोगे ? कब तक तुम शास्त्रों के शब्द दोहराते रहोगे ? इनमें एक भी तुम्हारा अपना नहीं है, निज का नहीं है । एकाध तो अनुभव तुम्हारा

निज का हो जाने दो । उस पर ही भित्ति खड़ी होती है । जीवन का मंदिर उसी पर निर्मित होता है ।

'गे भरुहाइ अस्तुति जेइ कीन्हा, मनहिं समुझि ना परई ।'

मगर तुम भूल जाते हो । लोगों की स्तुतियां ! लोग कहते हैं—आह ! कैसा ज्ञान आपका ! पंडित जी, धन्यभागी आप ! लोग स्तुति कर जाते हैं, लोग कहते हैं कि वाह, पूरे उपनिषद कंठस्थ हैं आपको ! वेद याद है आपको ! प्रसन्न हो गये तुम, फूले नहीं समाते । 'गे भरुहाइ'...खूब फूल जाते हो स्तुति से...'मनहि समुझि ना परई', इतनी-सी बात तुम्हें समझ में नहीं आती कि इसमें तुम्हारा कुछ भी नहीं है ? दोहराते रहो वेद, क्या होगा ? वेद का जन्म होना चाहिए तुम्हारे प्राणों में । बाहर से भीतर की तरफ नहीं जाता वेद, भीतर से बाहर की तरफ आता है ।

फर्क ऐसा ही है जैसे हम एक सीमेन्ट की हौज बना लेते हैं, उसमें पानी भर देते हैं—बाहर से । मगर हौज में और कुएं में कुछ फर्क है या नहीं ? कुएं में पानी भीतर से आता है, उसमें से हम पानी निकालते जाते हैं और पानी आता चला जाता है । कुएं के संबंध जुड़े हैं सागर से, दूर झरनों से । उसके बड़े स्रोतों का जाल फैला है । गरीब नहीं है कुआं, जितना दिखता है उतना ही नहीं है कुएं में, बहुत है, अदृश्य छिपा है । तुम निकालते जाओ और कुआं भरता चला जाता है—और नया ताजा जल आता चला जाता है । लेकिन हौज भरी तो कुएं जैसे ही दिखायी पड़ती है, मगर निकालो पानी तो पता चल जाएगा कि हौज है । नया कुछ नहीं आता । और हौज ज्यादा दिन भरी रहे तो जो भर दिया था पानी—जब भरा था, ताजा था, जब निकालोगे तो गंदा हो चुका होगा, मुर्दा हो चुका होगा । पानी बहता रहे तो ताजा होता है । भर जाए तो मर जाता है ।

पंडित में ज्ञान बाहर से भरा जाता है—पंडित हौज है । ज्ञानी कुआं है । उसमें भीतर से आविर्भूत होता है, उसके पास झरने हैं, वह परमात्मा से जुड़ा है । मगर झूठी स्तुति बड़ा रस दे देती है लोगों को । जरा देख लेना कि किसकी स्तुति से प्रसन्न हो रहे हो ? न उन्हें कुछ पता है, न तुम्हें कुछ पता है, अंधे अंधों की स्तुति कर रहे हैं । कुछ समझो । ऐसे नहीं चलेगा । इस तरह कभी नहीं चला ।

काम आख़िर जज्बा-ए-बेइख़्तियार आ ही गया
दिल कुछ इस सूरत से तड़पा उनको प्यार आ ही गया

जब निगाहें उठ गयीं अल्लाह री मे'राजे-शौक
देखता क्या हूं वो जाने-इन्तिज़ार आ ही गया

हाय ये हुस्ने-तसव्वुर का फ़रेबे-रंगो-बू
मैंने समझा जैसे वो जाने-बहार आ ही गया

हां सज़ा दे ऐ खुदा-ए-इश्क़ ऐ तौफ़ीक़े-गम
फिर ज़बाने-बेअदब पर ज़िक्रे-यार आ ही गया

इस तरह खुश हूं किसी के वादा-ए-फ़र्दा पे मैं
दर हक़ीक़त जैसे मुझको एतिबार आ ही गया

हाए काफ़िर दिल की ये काफ़िर जुनूं-अंगेज़ियां
तुमको प्यार आए न आए मुझको प्यार आ ही गया

जान ही दे दी 'जिगर' ने आज पाए-यार पर
उम्र भर की बेक़रारी को क़रार आ ही गया

जब तक तुम सच में ही न झुकोगे उसके चरण पर--
जान ही दे दी 'जिगर' ने आज पाए-यार पर
आज प्रेमी के पैर पर प्राण दे दिये--
उम्र भर की बेक़रारी को क़रार आ ही गया

तभी जीवन भर की अशांति मिटती है और शांति के मेघ घिरते और बरसते हैं। तभी जीवन का अंधकार मिटता है और सुबह होती है।

काम आख़िर जज़्बा-ए-बेइख़्तियार आ ही गया

लेकिन भावनाएं चाहिए उबलती हुई, प्रार्थनाएं चाहिए नाचती हुई।

काम आख़िर जज़्बा-ए-बेइख़्तियार आ ही गया

असीम आकांक्षा चाहिए, अभीप्सा चाहिए।

दिल कुछ इस सूरत से तड़पा उनको प्यार आ ही गया

तड़पो! लेकिन बहुत हैं जो तड़पना ही नहीं जानते। बहुत हैं जो बिना तड़पे ही मान लेते हैं। वे झूठों में पड़ जाते हैं। वे भ्रांतियों में उलझ जाते हैं। वे अपने ही मन के सपनों में भटक जाते हैं।

'रहनी गहनी आवै नाहीं, सब्द कहे तें लरई ।।'

न तो रहना आता, न परमात्मा को गहना आता--न उसे ग्रहण करने की क्षमता है, न उसे जीने की क्षमता है--न परमात्मा को अपने भीतर प्रविष्ट होने देते हो--डरे हो, सब तरफ से द्वार-दरवाजे बंद करके बैठे हो, न सूरज की किरण घुस सके, न हवा आ सके, न वर्षा आ सके--सब तरफ से द्वार-दरवाजे बंद किये बैठे हो, जरा भी जगह खाली नहीं छोड़ी है, खुली नहीं छोड़ी है, ऐसे डरे हो! कब्र बना ली है अपने चारों तरफ। खुला करो अपने को। आने दो उसकी रोशनी, आने दो उसकी वर्षा, आने दो उसका पवन, बहने दो उसे तुम्हारे भीतर।

'रहनी गहनी आवै नाहीं', न तो तुम गहन करते हो उसे--तो रहोगे कैसे? उसे जिओगे कैसे? आने दो उसे भीतर। फिर तुम्हारा जीवन उसीसे आपूरित हो

जाएगा। लेकिन शब्दों में खूब उलझ गये हो। इतने उलझ गये हो कि शब्दों के पीछे बड़ा लड़ाई-झगड़ा कर रहे हो। जरा कुरान के खिलाफ बोल दो! मुसलमान आ गया लेकर लट्ठ। इसे क्या पता है कुरान क? ।जरा वेद के खिलाफ बोल दो! चले, आर्यसमाजी आ गये! झगड़ा करने! जैसे उन्हें पता है कि वेद में क्या है। अपने भीतर क्या है, उसका जब तक पता न हो तब तक न वेद का पता होता है, न कुरान का पता होता है।

सब वेदों की वेद, सब किताबों की किताब भीतर है। पहले उसे पढ़ो। उसे पढ़ लिया तो सब शास्त्र पढ़ लिये। उसे बिना पढ़े तुमने जो भी पढ़ा है, सब कूड़ा-करकट है। बोझ है, भार है; मुक्ति का मार्ग नहीं है, बंधन का उपाय है। उससे तुम अपनी जंजीरें गढ़ सकते हो। और सुन्दर जंजीरों को तुम चाहो तो आभूषण भी मान सकते हो। मगर तुम कारागृह में बंद रहोगे।

जगजीवन कहते हैं, शब्दों पर लोग लड़ने को तैयार हैं। शब्दों पर लोग लड़ते रहे हैं। बुद्ध, महावीर और कृष्ण और क्राइस्ट का थोड़े ही कोई झगड़ा है--कैसा झगड़ा--लेकिन लोगों का झगड़ा चल रहा है। ईसाई मुसलमानों को काटते रहे, मुसलमान ईसाइयों को काटते रहे, हिन्दुओं ने बौद्धों को जला दिया-- यह चलता रहा। मंदिर जलाए जाते रहे, मस्जिदें उखाड़ी जाती रहीं, शास्त्र मिटाए जाते रहे, मूर्तियां तोड़ी जाती रहीं-- ये कौन लोग हैं? जो शब्दों पर लड़ रहे हैं। शब्द का इतना मूल्य नहीं है। असली मूल्य है रहनी-गहनी का।

'रहनी गहनी आवै नाहीं, सब्द कहे तें लरई ।।'

और अगर ऐसे लोगों से तुम यह भी कहो कि भाई, कुछ रहो, कुछ जिओ, कुछ ग्रहण करो, तो भी लड़ने को तैयार हो जाते हैं। वे कहते हैं--तुमने हमें समझा क्या है? हम कोई अज्ञानी हैं! जरा-जरा सी बात पर लोग लड़ने को तैयार हो जाते हैं।

'नहीं विवेक कहै कछु औरे, और ज्ञान कथि करई।'

कुछ तो लोग कहते हैं और कुछ करते हैं। उनका कहना एक है और करना बिल्कुल विपरीत है। और उन्हें जरा-भी होश नहीं है कि किस तरह से जी रहे हो? यह कैसा धोखा? यह कैसा अपने को खंडों में काट लिया है? वही कहो, जो जीते ो। वही जिओ, जो कहते हो। एकरस बनो। क्योंकि जो एकरस होगा, वही उस परम रस को पा सकेगा। जो एक होगा, वही उस एक को पा सकेगा। उस एक को पाने के लिए कम-से-कम इतनी भीतर तो तैयारी करो कि एक हो जाओ।

'नहीं विवेक कहै कछु औरे, और ज्ञान कथि करई।
सूझि बूझि कछु आवै नाहीं, भजन न एकौ सरई ।।'

तुमने कितनी प्रार्थनाएं की हैं, कोई प्रार्थना फली? तुमने कितने भजन किये

हैं, कोई फूल लगे ? तुम कितनी बार मंदिर में झुके, रोशनी बरसी ? सब करते रहे और कुछ भी तो हुआ नहीं--फिर भी तुम्हें समझ नहीं आती कि करने में कहीं चूक हो रही है। 'सूझि बूझि कछु आवै नाहीं', तुम्हें इतनी सूझ-बूझ भी नहीं, कितने दफा तुम सिर पटक आए हो मंदिर की देहली पर--पाया क्या है ? उपलब्धि क्या है ? जैसे के तैसे। ऐसे कब तक समय को गंवाए चले जाओगे ?

'कहा हमार जो मानै कोई'। जगजीवन कहते हैं, सुनो, गुनो, मान लो हमारी, क्योंकि हम जी कर कह रहे हैं, क्योंकि हम वेद से नहीं कह रहे हैं, यह वेद हमारे भीतर जन्मा है उससे कह रहे हैं।

मैंने सुना है, एक यहूदी फकीर बोलता था, अपने अनुभव की बोलता था। लेकिन अनुभव की बात जरा बेबूझ होती है। उसके सुननेवाले जो आते थे सिनागॉग में, उनको उसकी कुछ बातें जंचती नहीं थीं। बेबूझ लगती थीं। अतर्क्य लगती थीं। कुछ तारतम्य नहीं बैठता लगता था, कुछ संगति नहीं मालूम पड़ती थी। तो एक दिन उन्होंने कहा कि हम आपको सुनने आते हैं हमेशा, लेकिन कुछ समझ में नहीं आता। कुछ ऐसा कहो कि हमारी समझ में पड़े। उसने कहा, अगली बार। अगली बार वह फकीर खड़ा हुआ, पहले उसने अपना बायां हाथ ऊपर उठाया और दो अंगुलियां लोगों को दिखायीं। लोगों ने बड़े गौर से देखा ! ऐस उसने कभी किया नहीं था ! फिर बोलना शुरू किया। धाराप्रवाह ! लोगों को मस्त कर दिया ! ऐसा बोला जैसा कभी नहीं बोला था। और जब बोलना खत्म किया तो तालियों की गड़गड़ाहट से सिनागॉग गूंज गया। तब उसने अपना दूसरा हाथ उठाया और दो अंगुलियां ऊपर उठायीं।

जब वह उतरा मंच से तो लोगों ने उसे घेर लिया कि और सब तो समझ में आया, मगर यह राज क्या ? पहले बायें हाथ की दो अंगुलियां उठायीं, फिर दायें हाथ की। उसने कहा, ये उद्धरण-चिन्ह, 'कोटेशन मार्क्स'। यह अपना नहीं था, यह सब उधार था। इसलिए तुम्हें जंचा। अरे मूढ़ो, ये सब किताब की लिखी कही। ये उद्धरण चिन्ह थे। इनके बीच में जो भी कहा, अपना था ही नहीं। सब कचरा था। इसीलिए तुम्हें जंचा। तुम कचरे के आदी हो गये हो। मैं अपनी गुनी कहता हूं, तुम्हें जंचती नहीं। क्योंकि जब सीधे-सीधे अनुभव से कुछ आता है, तो समझने के लिए पात्रता चाहिए। जब सीधा-सीधा अनुभव बरसता है, ताजा और गर्म, तो हिम्मत चाहिए अपने को खोलने की। और जब सीधा-सीधा कुछ आता है तो न तो हिन्दू होता, न मुसलमान होता, न यहूदी होता। वह फकीर इतने दिन से बोलता था और किसी की समझ में नहीं आता था। उस दिन समझ में आया, क्योंकि उस दिन वह वही बोला जो यहूदी किताबों में लिखा है। कचरा। उधार। बासा।

तुम भी जब कोई गीता सुनाने लगता है, एकदम सिर हिलाने लगते हो। वह सिर तुम आदत के वश हिला रहे हो। शायद तुम्हें ठीक-ठीक पता भी न हो कि क्यों

हिला रहे हो ? और लोग हिला रहे हैं शायद इसलिए हिला रहे हो। 'बहुतक देखा-देखी करहीं'। या यह सोचकर कि जब सब हिला रहे हैं, अपन न हिलाओ, जरा ठीक नहीं मालूम होता !

मार्क ट्वेन फ्रांस गया। मार्क ट्वेन अमरीका का बड़ा लेखक था। फ्रांस में उसके बेटे का बेटा पढ़ता था। उसके स्वागत का समारोह हुआ। मार्क ट्वेन आया था तो पेरिस में बड़ा समारोह हुआ। उसे फ्रांसीसी भाषा नहीं आती थी। मगर उसका जो बारह-तेरह साल का नाती था, उसको आती थी। मार्क ट्वेन ने होशियारी की। उसने कहा कि मैं इसको देखता रहूंगा, इसके अनुसार चलता रहूंगा--किसी को पता भी नहीं चलेगा। तो जब उसका बेटा ताली बजाए तो वह भी ताली बजाए। जब उसका बेटा हंसे तो वह भी हंसे। आखिर में वह बड़ा प्रसन्न था कि किसी को पता भी नहीं चल पाया कि मुझे फ्रांसीसी भाषा नहीं आती। जब लौटने लगे तो बेटे ने कहा--दादा जी, आपने मेरी तक बड़ी फजीहत करवायी। फजीहत ! उसने कहा--हां। क्योंकि जब वे आपकी तारीफ करते थे तब मैं ताली बजाता था--और आप भी ताली बजाने लगते थे ! लोग बड़े चौंकते थे। मेरा ताली बजाना ठीक, लोगों का ताली बजाना ठीक, आप तो कम-से-कम संयम रखते ! आप क्यों ताली बजाते थे ? उन्होंने कहा--हद हो गयी, मैं तो तुझे ही देखकर चल रहा था। मैंने तो यही सोच लिया था कि तू जो करेगा, वही करूंगा, क्योंकि मुझे भाषा आती नहीं।

अक्सर लोग वही कर रहे हैं जो दूसरे कर रहे हैं, क्योंकि जीवन की भाषा उन्हें नहीं आती। और जीवन की भाषा ही परमात्मा की भाषा है। और उसकी पाठशाला तुम्हारे भीतर है।

'कहा हमार जो मानै कोई, सिद्ध सत्त चित धरई।'

अगर कोई हमारी बात मान ले, तो सत्य दूर नहीं है। चित्त में ही छिपा है। सिद्धि भी दूर नहीं है, तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। तुम्हारा स्वरूपसिद्ध अधिकार है।

'जगजीवन जो कहा न मानै, भार जाय सो परई ॥' उसकी मर्जी ! भाड़ में पड़ेगा !

'बहु पद जोरि-जोरि करि गावहिं'।

गीत उठने दो अपना। उठने दो वाणी अपनी। खिलने दो फूल अपने, उधार मत खरीद लाओ बजार से। ले आ सकते हो, प्लास्टिक के फूल मिलते हैं बाजार में, लटका दे सकते हो वृक्षों में--शायद पड़ोसियों को धोखा भी हो जाए।

मुल्ला नसरुद्दीन मेरे करीब कुछ दिन रहा। पड़ोस में ही उसका मकान था। रोज मैं उसको देखता, मैं थोड़ा हैरान होता, उसने अपनी खिड़की पर एक गमला लटका रखा था, उसमें फूल-पत्तियां दूर से बड़े प्यारे लगते थे, मैं रोज उसको देखता

कि वह उसमें लोटे से पानी डाल रहा है, लेकिन पानी उसमें से, लोटे में से कभी गिरता ही नहीं। खाली लोटा ! एक दिन मैंने उससे पूछा कि नसरुद्दीन, चमत्कार कर रहे हो तुम ! कई दफे मैं देख चुका, कभी पानी तुम्हारे लोटे में से गिरता नहीं है। उसने कहा, फूल ही ये कौन सच्चे हैं ! प्लास्टिक का है। मगर मोहल्ले के लोगों को धोखा देने के लिए कि प्लास्टिक का नहीं है, मैं पानी दिखाने का भी ढोंग करता हूं रोज सुबह कि पानी डालता हूं। नहीं तो लोग समझेंगे पानी तो कभी डालता ही नहीं, तो फूल नकली होंगे। फूल ही कौन असली हैं, जो असली पानी डालो ! फूल भी नकली हैं, पानी भी नकली है।

ऐसी तुम्हारी जिंदगी है––फूल भी नकली हैं, पानी भी नकली है। फिर तुम आनंदित होना चाहते हो ? आनंद नकल से संभव नहीं है। असल होना होगा। असल होने का ही पुरस्कार है आनंद।

'बहु पद जोरि-जोरि करि गावहिं।'

एक तो कवि होता है, जिसके भीतर से गीत उठता है। और एक होता है, तुकबंद। तुकबंद के भीतर से गीत नहीं उठता। वह तुकबंदी कर लेता है। वह जोड़-तोड़ कर शब्दों को जमा-बिठा कर मात्रा-छंद का सब हिसाब बिठा देता है, मगर होता तुकबंद ही है। उसे तकनीक मालूम है, लेकिन उसके प्राणों में काव्य नहीं है। यही तो कवि और तुकबंद का भेद है।

और यह भेद तुम्हें सब जगह मिलेगा।

कोई चाहे तो चित्रकला सीख सकता है, उसको रंगने की कला आ जाएगी। लेकिन अगर उसके भीतर चित्र ही नहीं जन्मते, अगर उसके भीतर सपने ही नहीं उठते रंगीन, तो वह क्या खाक चित्र बनाएगा ? वह रंग भरने की कला जानता है, किसी तरह रंग भर देगा, नकल कर देगा, झाड़ बाहर हैं वैसे ही झाड़ बना देगा....।

पश्चिम के बहुत बड़े चित्रकार विन्सेंट वानगाग ने इस तरह के चित्र बनाए हैं कि लोग बड़े चकित होते थे। एक चित्र में झाड़ इतने ऊंचे चले गये हैं, इतने ऊंचे चले गये हैं कि चांद-तारों को छू गये। किसी ने पूछा कि वानगाग, हमने वृक्ष बहुत देखे हैं, मगर कोई वृक्ष चांद-तारों को नहीं छूता। वानगाग ने कहा, मैं कोई फोटोग्राफर नहीं हूं, चित्रकार हूं। फोटोग्राफर तो उतना ही कर सकता है जितना बाहर है। मैं वृक्षों की आत्मा को पहचानता हूं। मैं इनके पास बैठा हूं। मैंने वृक्षों के भीतर झांका और देखा है। मैंने वृक्षों का अनुभव किया है। माना कि चांद-तारों तक पहुंच नहीं पाते लेकिन आकांक्षा है। पहुंचना चाहते हैं। मैंने सुना कान लगा कर उनके हृदय की धड़कन को, हर वृक्ष चांद-तारों को छूना चाहता है। यह मैं तुमसे कहता हूं, मेरी मानो, भरोसा करो, मैं उनकी भाषा जानता हूं। जो वे नहीं कर पाते हैं, वह मैंने उनके लिए किया है।

यह चित्रकार है। यह कोई फोटोग्राफर नहीं है। फोटोग्राफी में और चित्रकला में यही तो फर्क है।

अभी कुछ दिन पहले पश्चिम में बड़ा तहलका मचा था। चर्चिल की पत्नी ने चर्चिल का एक बनाया हुआ चित्र जिसकी कीमत कम-से-कम दस लाख से लेकर पचास लाख रुपया थी, जला दिया। जब बनाया गया था चित्र, चर्चिल जिन्दा था। लेकिन जैसे ही चित्र बनाया गया, पत्नी को पसंद नहीं आया। चर्चिल को भी पसंद नहीं आया। उन्होंने उसे तलघरे में छिपाकर रख दिया। जिस चित्रकार ने बनाया था––दुनिया के बड़े चित्रकारों में से एक। फिर उस चित्र का कुछ पता ही नहीं चला। फिर चर्चिल के मरने के बाद खोजबीन शुरू हुई कि वह चित्र कहां है ? लेकिन तब भी उसकी पत्नी ने कुछ पता नहीं चलने दिया। फिर अभी पत्नी मरी। जब पत्नी मरी तब खोजबीन पूरी तरह शुरू हुई कि अब तो चित्र मिलना ही चाहिए। खोजबीन करने से पता चला कि वह चित्र मिला नहीं, लेकिन खबर मिली नौकर-चाकरों से कि वह चित्र चर्चिल की पत्नी ने जला दिया। वह लाखों रुपये की अमूल्य निधि जला दी, क्यों ? पत्नी नाराज थी, चर्चिल भी नाराज था उस चित्र से। चर्चिल ने चित्रकार से कहा भी था कि क्या मैं ऐसा दिखायी पड़ता हूं ? चित्रकार ने कहा––आप ऐसे दिखायी नहीं पड़ते, लेकिन आप ऐसे हैं। यह भेद भारी है। यह आपकी आत्मा है, खूंख्वार, चालबाज, बेईमान, सब तरह से कपटी राजनीतिज्ञ को होना पड़ता है। राजनीति का वह धंधा है। राजनीतिज्ञ दिखता कुछ और है, होता कुछ और है। चित्रकार ने कहा, मुझे तुम्हारे दिखने से क्या लेना-देना, यह तो चार पैसे का कैमरा भी उतार देगा––इसमें रखा क्या है ? जो तुम दिखायी पड़ते हो, यह तो कैमरा कर देगा, इसमें मुझे मेहनत करने की क्या जरूरत है ? मैं तो वह आंक रहा हूं, जो तुम हो। मगर वह बरदाश्त नहीं था। उसे छिपा दिया, उसको जला दिया चित्र को।

साधारण चित्रकार कैमरे का काम करता है, वह चित्रकार नहीं है; तक्नीशियन है। वास्तविक जो चित्रकार है, वह आत्माओं में उतरता है, गहराइयों में डूबता है, ऊंचाइयों में उड़ता है, वह मोती लाता है गहरे सागर से। 'बहु पद जोरि-जोरि करि गावहिं'। ऐसे तुकबंदी मत करो जीवन की। और परमात्मा को तुम उधार कर सकोगे ? उधार जाग सकोगे ? जी सकोगे ? उधार पा सकोगे ? इस भ्रान्ति में न पड़ो। परमात्मा तो एक गीत है जो तुम्हारे प्राण जब गाएंगे, तभी तुम जानोगे। तुकबंदी नहीं, परमात्मा तो एक संगीत है। जब तुम शांत होओगे तब तुम्हारे भीतर जगेगा, उठेगा। और तुम्हारे प्राणों को आपूरित कर देगा। आकंठ तुम भर जाओगे, आल्हादित हो उठोगे। परमात्मा वेद और कुरान में नहीं है, परमात्मा तुम्हारी श्वांस-श्वांस में है, हृदय की धड़कन-धड़कन में है।

'साधन कहा सो काटि-कपटिकै, अपन कहा गोहरावहिं।'

शास्त्रों से ले-लेकर, उधार, अपना बता-बता कर तुम किसको धोखा दे रहे हो? 'निंदा करहिं विवाद जहां तहं, . . .और इस कारण जगह-जगह तुम्हें विवाद में पड़ना पड़ता है, जगह-जगह निंदा में पड़ना पड़ता है . . . 'वक्ता बड़े कहावहिं।' बस एक ही शायद तुम्हें मजा आ रहा हो कि लोग कहते हैं––खूब बोलने वाला! कि खूब लिखने वाला! कि खूब सुन्दर वचनों का धनी! लेकिन यह सब वचन ऊपर-ऊपर हैं, ये थोथे हैं, ये तुम्हारे प्राणों के नहीं हैं। इनकी जड़ें तुम्हारे अस्तित्व में नहीं हैं। इससे तुम हो सकता है दूसरों से थोड़ी वाह-वाही ले लो, थोड़े लोग तालियां बजा दें और तुम्हारी प्रशंसा कर दें, स्तुति कर दें, तुम्हारा अहंकार थोड़ा भर जाए, लेकिन जितना अहंकार भरेगा उतने ही तुम दूर चले गये परमात्मा से। पास आना तो दूर, और दूर चले गये।

'आपु अंध कछु चेतत नाहीं, औरन अर्थ बतावहिं ।।'

आंख तो खोलो अपनी। दूसरों को राह बताने चल पड़े हो! इस दुनिया में अगर पंडित लोगों को राह बताना बंद कर दें तो बहुतों को राह मिल जाए। पंडितों के कारण राह नहीं मिल पाती। उन्हें खुद पता नहीं है लेकिन बताने का मजा लेते हैं। जिन्हें कुछ पता नहीं है ध्यान का, वे ध्यान पर किताबें लिखते हैं। जिन्हें कुछ पता नहीं है ध्यान का, वे ध्यान की दीक्षा देते हैं। जिन्होंने कभी प्रार्थना जानी नहीं है, वे प्रार्थना समझाते हैं, करवाते हैं।

मैं चकित हुआ हूं यह देखकर––इस देश के बड़े-से-बड़े साधु-संन्यासियों से सब से मेरा संबंध आया––मैं चकित हुआ यह जानकर: कोई ध्यान का उन्हें पता नहीं।

जैनों के एक बड़े गुरु हैं, आचार्य तुलसी। मुझे निमंत्रण दिया था तो मैं गया। फिर दोपहर मुझसे अलग मिलना चाहे। मैंने कहा, अलग मिलने की क्या जरूरत? और भी बहुत लोग उत्सुक हैं सुनने को कि मेरे आपके बीच क्या बात होगी, उनको भी सुनने दें! उन्होंने कहा कि नहीं, यह बात एकान्त में करने की है। मैंने सोचा कि जरूर उन्हें कोई गहरी बात पूछनी होगी, एकान्त में करने की, ठीक है।

एकान्त में मिलना हुआ। जो पूछा वह यह था कि ध्यान कैसे करें? तो मैंने कहा, आप सात सौ साधुओं के गुरु हैं, इनको आप क्या सिखाते हैं? इनको आप क्या करवाते हैं? आप सात सौ साधुओं के बड़े पंथ के आचार्य हैं। अगर ध्यान भी इनको नहीं सिखाया है, तो किस धोखे में डाल रखा है? आप को भी पता नहीं है! तो आप सिखाएंगे कैसे? और जिस गुरु ने आपको आचार्य के पद पर बिठाया, उसको पता था? अगर पता था तो तुमको तो कम-से-कम आचार्य के पद पर नहीं बिठा सकता था। तब से जो मुझसे नाराज हुए हैं, तो नाराज ही हैं!

मैंने कहा, मैं ध्यान समझा सकता हूं, करवा भी सकता हूं, लेकिन सवाल यह है कि यह धोखाधड़ी क्या है फिर? और फिर सबके सामने स्वीकार करने में डर क्या है? एकान्त की क्या जरूरत है? यह ज्यादा साधुतापूर्ण हुआ होता कि अपने सारे––

कोई बीस हजार लोग इकट्ठे हुए थे वहां––सारे अपने श्रावकों के सामने मुझसे कहा होता कि मुझे ध्यान नहीं आता। यह ज्यादा साधुतापूर्ण हुआ होता। यह ज्यादा विनम्रतापूर्ण हुआ होता।

लेकिन ठीक है, मुझसे पूछा है तो मैंने उनसे ध्यान के संबंध में बात की। ध्यान उन्हें समझाया और उसका जो उन्होंने उपयोग किया वह केवल इतना है कि अब वह दूसरों को ध्यान करवा रहे हैं। उन्होंने किया नहीं है। क्योंकि मैं कुछ गलत बातें उनको बता आया था, वे भी वह दूसरों को समझा रहे हैं। अगर किया होता तो वे गलत बातें छूट जातीं। इसलिए जानकर मैं उतनी शर्त उसमें लगा आया था। वह जिसने ध्यान किया है वह तो बातें कह ही नहीं सकता। वह मैं जान कर ही रख आया था, थोड़ी-सी तरकीब उसमें लगा आया था कि यह करेंगे तो मुझे पता चल जाएगा, कि इन्होंने किया कि नहीं किया! लेकिन अब वह शिविर लेते हैं––ध्यान के शिविर! दूसरों को ध्यान करवा रहे हैं! 'आपु अंध कछु चेतत नाहीं, औरन अर्थ बतावहिं ।।'

औरों को अर्थ बताने चल पड़ते हैं। 'जो कोइ राम का भजन करत है, तेहि कां कहि भरमावहिं।' और यहां तक हो जाती है हालत कि कभी-कभी सीधे-साधे लोग––जो राम से जुड़ ही जाते––इन बताने वालों के कारण नहीं जुड़ पाते। सीधे-साधे लोग, जिनको व्यवस्था नहीं है, विधि नहीं है, विधान नहीं है, ज्ञान नहीं है, पांडित्य नहीं है, शायद सरलता से, निर्दोषता से परमात्मा को पुकारते और जुड़ जाते––तो इनके कारण नहीं जुड़ पाते। क्योंकि ये उनको विधि-विधान देने को तैयार खड़े हैं। ये कहते––ऐसा करो!

टालस्टाय की प्रसिद्ध कहानी है। एक फकीर की खूब ख्याति हो गयी। तो रूस का जो सबसे बड़ा धर्मगुरु था, उसने पता लगवाया। पता चला कि एक फकीर नहीं है, वे तीन हैं। चूंकि उनका नाम नहीं है किसी का भी कुछ, इसलिए वे एक की तरह ही जाने जाते हैं। एक झील के पार रहते हैं। और वहां हजारों लोग उनके दर्शन को जाते हैं और बड़ा आनंद पाते हैं। उसने कहा, यह हमें पता भी नहीं है। और मेरे बिना कोई संतत्व को उपलब्ध हो जाए, यह हो नहीं सकता। ईसाइयत में यह नियम है। जैसे सर्टिफिकेट होता है, ऐसे ही ईसाई चर्च सर्टिफिकेट देता है संतत्व का कि कौन संत? जब तक ईसाइयत से सर्टिफिकेट न मिल जाए, चर्च से, तब तक कोई अपने को संत नहीं कह सकता।

बड़ा नाराज हुआ प्रधान धर्मगुरु और गया नाव में बैठकर। देखा उन तीन सीधे-साधे आदमियों को, वे झाड़ के नीचे बैठे थे बड़े प्रसन्न, सुबह की धूप थी, बड़े आनंदित, डोल रहे थे। तीनों ने उठकर चरण छुए धर्मगुरु के, धर्मगुरु तो उसीसे आश्वस्त हो गया कि जब इन्होंने चरण मेरे छुए––मामला खत्म हो गया, काहे के संत-वंत हैं! वह तो बेचारे सीधे-साधे लोग थे, संत थे, इसीलिए चरण छुए। लेकिन उसने सोचा, जब

मेरे चरण छू रहे हैं तो बात साफ हो गयी कि मैं इनसे ऊपर हूं यह भी जानते हैं। पूछा कि तुम्हारा ये सारे संतत्व का इतना प्रचार कैसे हुआ? उन्होंने कहा, हमें कुछ पता नहीं, लोग आने लगे। हम तो समझाते हैं कि भाई, यहां न आओ, क्यों भीड़-भाड़ करते हो? भीड़-भाड़ छोड़कर तो हम यहां जंगल में आ गये हैं, मगर लोग पीछा नहीं छोड़ते! मगर उनके चेहरे पर एक चमक तो थी। वह तो इस अंधे धर्मगुरु को भी दिखायी पड़ रही थी। चमक ऐसी थी कि अंधा भी देख लेता। कहा––लेकिन तुम करते क्या हो? तुम्हारी साधना क्या है? उन्होंने कहा, हम, आपसे क्या छिपाना! तू बता दे, उन्होंने अपने साथी से कहा। उसने तीसरे से कहा कि भाई, तू बता दे! वे तीनों एक-दूसरे पर टालने लगे, बड़े शर्मिन्दा होने लगे, आंखें नीची झुकाने लगे। उस धर्मगुरु ने कहा ऐसी शर्मिन्दगी की बात क्या है, कोई खराब काम करते हो? नहीं, खराब काम नहीं करते, लेकिन अब आपसे क्या कहना, कैसे कहना? हमें प्रार्थना इत्यादि कुछ आती नहीं, हम बेपढ़े-लिखे गंवार हैं, तो हमने खुद ही गढ़ ली है प्रार्थना।

ईसाइयत मानती है, परमात्मा के तीन रूप हैं। परमात्मा पिता, परमात्मा बेटा ––जीसस––और दोनों के मध्य में पवित्र-आत्मा। ऐसे तीन परमात्मा के रूप हैं। तो हमने अपनी एक प्रार्थना खुद ही गढ़ ली है कि हे प्रभु, तुम भी तीन हो, हम भी तीन हैं, हम तीनों पर कृपा करो! धर्मगुरु ने सुना तो चौंक गया यह प्रार्थना! उसने कहा, बंद करो यह प्रार्थना, यह बकवास है! यह है हमारी स्वीकृत प्रार्थना।

बड़ी लम्बी स्वीकृत प्रार्थना उसने दोहरायी।

उन तीनों ने कहा, एक दफा और दोहरा दें क्योंकि हम भूल जाएंगे। जब धर्म-गुरु चलने लगा तो उन्होंने फिर पकड़ कर कहा कि एक दफा और, बस एक दफा और! जब वह नाव में बैठने लगा तो उन्होंने कहा, बस एक दफा आखिरी दोहरा दें, हम भूल जाएंगे तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी! फिर उसने दोहरायी और वह बड़ा प्रसन्न हुआ कि तीन भटके हुए लोगों को रास्ते पर ले आया। और जब वह नाव में बैठकर चला और बीच झील में नाव थी, तब उसने देखा कि वे तीनों भागते चले आ रहे हैं पानी पर। घबड़ा गया जब उनको पानी पर दौड़ते देखा! एक बवन्डर की तरह चले आ रहे हैं। उन्होंने कहा कि रुको, हम भूल गये, फिर से एक बार! तब उसे होश आया कि मैंने क्या किया? झुककर उनके चरण छुए और कहा––तुम्हारी प्रार्थना सुन ली गयी है, तुम अपनी प्रार्थना जारी रखो, मेरी प्रार्थना भूल जाओ। मैं तो जनम-जनम से कर रहा हूं यह प्रार्थना, अभी पानी पर चलने की मेरी सामर्थ्य नहीं। तुम्हारी प्रार्थना सुन ली गयी है। तुम अपनी पुरानी प्रार्थना में ही लग जाओ।

कभी-कभी ऐसा हो जाता है, सीधे-सरल लोग पहुंच जाते हैं। मगर पंडित नहीं पहुंचने देते।

'जो कोउ राम का भजन करत हैं, तेहिकां कहि भरमावहिं।'

जा भी ऐ नासेह! कहां का सूद और कैसा ज़ियां
इश्क़ ने समझा दिया है इश्क़ का हासिल मुझे

कह देना धर्मोपदेशकों से––जाओ भी, 'जा भी ऐ नासेह!' ये हिसाब-किताब की, पाप-पुण्य की, लाभ-हानि की, स्वर्ग-नर्क की बकवास मुझसे मत कर!

जा भी ऐ नासेह! कहां का सूद और कैसा ज़ियां
इश्क़ ने समझा दिया है इश्क़ का हासिल मुझे

मुझे तो प्रेम में ही मिल गया है सब, प्रेम ही प्रेम की उपलब्धि है, और कुछ मुझे पाना नहीं है––न कोई बैकुन्ठ; न कोई स्वर्ग; न कोई नर्क का मुझे भय है और न मुझे किसी स्वर्ग का कोई लोभ है। 'इश्क़ ने समझा दिया है इश्क़ का हासिल मुझे।' बस प्रेम पर्याप्त प्रार्थना है।

'माला मुद्रा भेष किये बहु, जग परमोधि पुजावहिं॥'

ये जो पंडित-पुजारी परमात्मा की पूजा करते हैं, असल में परमात्मा की पूजा में इनका रस नहीं है, ये चाहते हैं––ये पूजे जाएं लोगों के द्वारा। जगत इनको पूजे।

आंखों का था क़ुसूर न दिल का क़ुसूर था
आया जो मेरे सामने मेरा ग़ुरूर था

वो थे न मुझसे दूर न मैं उनसे दूर था
आता न था नज़र तो नज़र का क़ुसूर था

और जो आदमी अपने को पुजवाना चाहता है, वह क्या पूजा करेगा? हां, जो पूजा करता है, उसकी पूजा शुरू हो जाती है––यह बात और है। ये दोनों एक जैसी दिखायी पड़ती हैं, पर बड़ी भिन्न हैं। जो परमात्मा की पूजा करते-करते परमात्मा में लीन हो जाता है, हजारों लोगों को उसमें परमात्मा के दर्शन होने लगते हैं––उसके व्यक्तित्व में, उसकी मौजूदगी में, उसके अस्तित्व में, उसकी आभा में, उसके मौन में, उसके शब्दों में। लोग उसके प्रति झुकने लगते हैं इसलिए नहीं कि उसके प्रति झुकते हैं, बल्कि उसके बहाने परमात्मा के प्रति झुकने लगते हैं। वह तो होता ही नहीं। वह तो मिट गया। वह तो एक झरोखा है। उस झरोखे से लोग दूर के चांद-तारे देखने लगते हैं।

मगर जो इसी चेष्टा में लगे हैं कि हमारी पूजा हो, उनको परमात्मा का मिलना तो बहुत दूर, हां, उनका अहंकार जरूर भरेगा। और इस अहंकार के भरने के कारण वे न-मालूम कितने लोगों को भटकाने का कारण हो जाएंगे।

नास्तिकों ने दुनिया को नहीं भटकाया है, तथाकथित आस्तिक पंडितों ने, पुरोहितों ने, दुनिया को भटकाया है। नास्तिक में तो मैं सदा एक ईमानदारी देखता हूं। जब कोई आदमी मुझसे आकर कहता है मैं नास्तिक हूं, मैं खुश हो जाता हूं। मैं

कहता हूं, तब रास्ता आसान है। कम-से-कम तुम ईमानदार हो। ईमानदारी अच्छी शुरुआत है। जब मुझसे कोई आकर कहता है कि मैं आस्तिक हूं, तब मुझे बेचैनी होती है। और जब मुझसे कोई आकर कहता है कि मैंने इतने शास्त्र पढ़े हैं, इतना ज्ञान है, इतना अनुभव है, इतने मैंने प्रयोग किये हैं, इस-इस तरह की साधना की है, इस-इस तरह के उपवास-व्रत किये हैं, तपश्चर्या की है, तब तो मुझे उस पर बड़ी दया आने लगती है। क्योंकि वह सिर्फ अहंकार को मजबूत करके आ गया है। परमात्मा और उसके बीच चीन की दीवाल खड़ी हो गयी है।

'जहंते आये सो सुधि नाहीं, झगरे जनम गवावहिं।'

और ऐसे पंडित-पुरोहित, इन्हें यह भी पता नहीं कहां से आए, कौन हैं; मैं कौन हूं, इसका भी उत्तर इन्हें मिला नहीं और झगड़े में, विवाद में जीवन गंवा रहे हैं।

'जगजीवन ते निंदक वादी'; और इनका कुल धंदा इतना है, निंदा करो-- हिन्दू हो तो मुसलमान की निंदा करो, मुसलमान हो तो हिन्दू की निंदा करो। हिन्दू हो तो मुसलमान की निंदा में रस है, ईसाई की निंदा में रस है--निंदा में ही रस है। और कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि तुम इन निंदकों को भी खूब पूजने लगते हो।

अगर निंदा का रस देखना हो, तो आर्यसमाज के तथाकथित महर्षि दयानंद की किताब 'सत्यार्थ प्रकाश' पढ़नी चाहिए; तो तुम्हें पता चलेगा कि निंदा में कैसा लोग रस लेते हैं। सब की निंदा! निंदा-ही-निंदा! जैसे सब की निंदा करने से परमात्मा की प्रशंसा हो जाएगी। 'जगजीवन ते निंदक वादी, बास नर्क महं पावहिं।।' और अगर ऐसे लोग नर्क जाएं, तो आश्चर्य नहीं। ऐसे लोग यहां भी नर्क में रहते हैं। नर्क ही उनका जीवन है। दुख ही उनकी उपलब्धि है। विवाद नहीं करना है।

सदाक़त हो तो दिल सीनों से खिचने लगते हैं वाइज़
हक़ीक़त खुद को मनवा लेती है, मानी नहीं जाती

सत्य हो, तो विवाद की जरूरत नहीं होती। सत्य की मौजूदगी प्रमाण बन जाती है।

हक़ीक़त खुद को मनवा लेती है, मानी नहीं जाती

सत्य स्वत: प्रमाण है।

ये प्यारे वचन तुम्हारे जीवन की एक अनूठी यात्रा का प्रारम्भ बनें, ऐसी आशा करता हूं। सूत्र एक है और बहुत बार दोहरेगा जगजीवन के वचनों में : मनुष्य परमात्मा को नहीं खोज सकता, परमात्मा ही मनुष्य को खोज सकता है, तुम सिर्फ पुकारो! तुम प्यास बनो--ज्वलंत प्यास--और तुम जहां हो वहीं उसका हाथ आ जाएगा। उसके हाथ अनेक हैं। इसीलिए तो हमने उसके चित्र बनाए हैं अनंत हाथोंवाले। तुम कहां खोजोगे? तुम्हारी खोज में ही भूल हो जाएगी। खोज का मतलब ही है कि

तुमने मान लिया कि मेरे बस में है पाना। मेरे बस में है तो अहंकार निर्मित हुआ। नहीं, तुम्हारे बस में कुछ भी नहीं है, सब उसके बस में है। इतना ही कहो--तेरी मर्जी पूरी हो! तू जैसा चलाए, चलें; तू जैसा रखे, रहें; उठाए तो उठें, बिठाए तो बैठें; जिलाए तो जिएं, मारे तो मर जाएं; लेकिन तेरी हर मर्जी में हम पूरे राजी हों।

इस राजीपन का नाम भक्ति है।

और भक्त को मिल जाता है--इतना, जितना प्रयास से कोई संबंध नहीं! प्रयास तो चुल्लू भर है, प्रसाद सागर भर।

आज इतना ही।
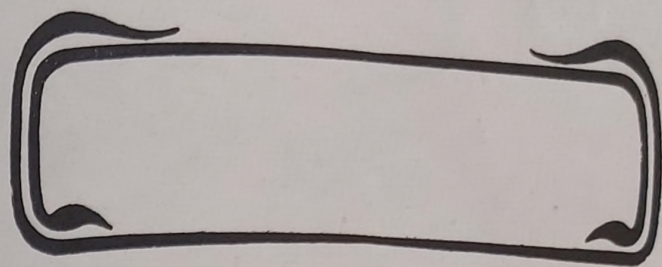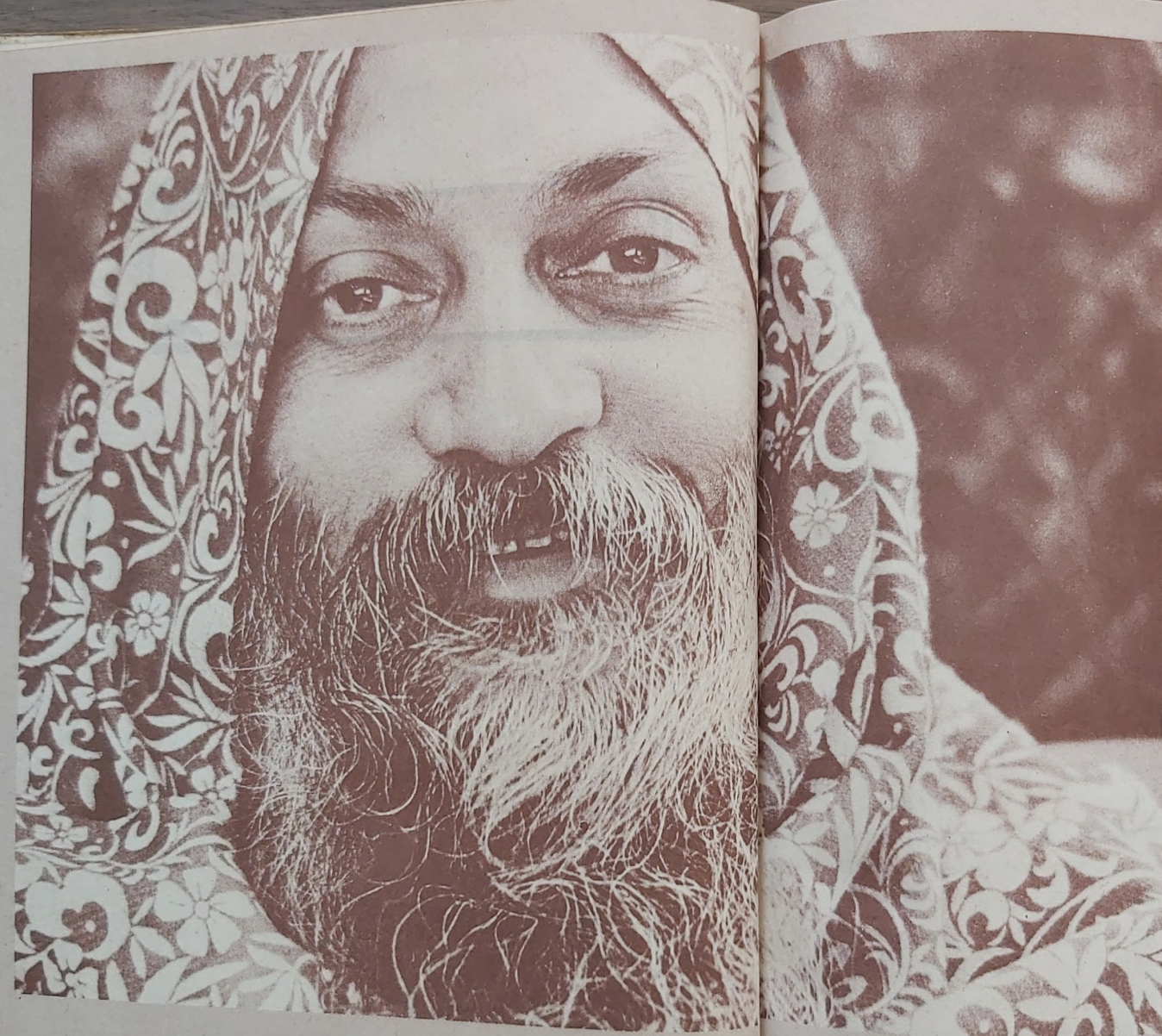
सत्संग सरोवर, भक्ति स्नान

दूसरा प्रवचन; १२ सितम्बर १९७८; श्री रजनीश आश्रम, पूना.

मनुष्य क्या है ?

परमात्मा की पहली झलक क्या है ? यह कब घटित होती है ?

क्या सत्संग और भक्ति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं ?

प्रभु जग से नाता तोड़ी रे
मैं तुझसे नाता जोड़ी . . .

यदि सब परमात्मा के हाथ में है, तो फिर व्यक्ति की स्वतंत्रता बेमानी हो जाती है। कृपया समझाएं।

पहला प्रश्न : मनुष्य क्या है ?

एक अभीप्सा—स्वयं के अतिक्रमण की। जैसे बीज मिट जाना चाहे ताकि वृक्ष हो सके, ऐसा ही मनुष्य एक बीज है—मिट जाने को आतुर, ताकि परमात्मा हो सके।

मनुष्य बीज है परमात्मा के फूल का। इसलिए जिस मात्रा में जो मिटने को राजी है, उतना ही ज्यादा मनुष्य है। और जो मिटने में जितना सफल हो गया, उतना ही धन्यभागी है।

मनुष्य एक प्रार्थना है—लीन हो जाने की। क्योंकि होने में पीड़ा है। जैसे नदी दौड़ती है सागर की तरफ, पर्वतों को पार करती, मैदानों को पार करती—एक महत सागर-मिलन की प्रार्थना लिये। और सागर-मिलन में होगा क्या ? नदी खो जाएगी। लेकिन खो जाने में सागर भी हो जाएगी। ऐसा ही मनुष्य एक चैतन्य का सरित-प्रवाह है; जो जा रहा है अनंत की तरफ।

सीमा पीड़ा देती है, असीम—आनंद। जहां-जहां सीमा है, वहां-वहां कारागृह है। मनुष्य एक कामना है सारी सीमाओं के पार पंखों को खोलकर उड़ जाने की।

इसलिए जिस मनुष्य के जीवन में अपने से पार जाने का सपना पैदा नहीं हुआ, वह देखने में मनुष्य जैसा लगता हो, उसके भीतर मनुष्यता नहीं जन्मी है। देह से मनुष्य होना एक बात है, प्राण से मनुष्य होना दूसरी बात है। प्राण से मनुष्य होने का अर्थ है : आकाश ने पकड़ा तुम्हें; तुम्हारी आंखें उठीं चांद-तारों की तरफ; ऊंचाइयों ने पुकारा; ऊंचाइयों की चुनौती तुमने स्वीकार की; अंधेरे खाई-खड्डों में रहने की अब तुम्हारी तैयारी नहीं रही—चाहे वे अंधेरे कितने ही सुरक्षापूर्ण क्यों न हों और उन अंधेरों में कितनी ही सुविधा क्यों न हो और उन अंधेरों में अनंत-अनंत लोग क्यों न

रह रहे हों !

ऊंचाई की तरफ जो चलता है उसे अकेला हो जाना होता है, क्योंकि भीड़ ऊंचाई पर उठने का साहस नहीं करती। भीड़ तो भीड़ है। भेड़-चाल उसकी जीवन-शैली है। जहां सारी भीड़ जा रही है, वहीं अगर तुम जा रहे हो, तो तुम अभी आत्मवान नहीं हो। आत्मवान का अर्थ होता है, अकेले जाने की सामर्थ्य; अपने पर इतना भरोसा कि अकेला भी जी सकूंगा, कि अकेला भी खोज सकूंगा।

धार्मिक व्यक्ति अनुगमन नहीं करता, अनुसंधान करता है। धार्मिक व्यक्ति खोज करता है, विश्वास नहीं करता। विश्वासी को भूलकर भी धार्मिक मत समझना। विश्वासी धोखा खा रहा है और धोखा दे रहा है। धार्मिक व्यक्ति तब तक विश्वास नहीं करता जब तक जान न ले। और जब जान ही लिया तो फिर विश्वास क्या ? जान लिया तो जान लिया, विश्वास नहीं करना होता। सुबह ऊगते सूरज पर तुम विश्वास थोड़े ही करते हो ! या कि करते हो ? या कि विवाद खड़ा होता है कि मानें सूरज को कि न मानें, कि आस्तिक और नास्तिक होते हैं ? नहीं, जब सूरज ऊगता है, दिखाई पड़ता है, तो विश्वास अविश्वास की बात ही नहीं रह जाती। जो है, है।

सत्य को जानना है। लेकिन जानने के लिए कीमत चुकानी होती है। विश्वास सस्ता है, दो कौड़ी का है। हिंदू बन जाओ, मुसलमान बन जाओ, जैन-ईसाई बन जाओ—सस्ती बातें हैं, कुछ खोना नहीं पड़ता। सच तो यह है, हिंदू बने रहने में, मुसलमान बने रहने में लाभ-ही-लाभ हैं। क्योंकि भीड़ तुम्हारे साथ है, भीड़ की सुविधाएं तुम्हारे साथ हैं, भीड़ की सुरक्षा तुम्हारे साथ है, तुम अकेले नहीं हो।

मनुष्य वही है, जो एकाकी चल पड़े। रवीन्द्रनाथ ने कहा है : 'एकला चलो रे...!' क्योंकि अकेले चलोगे तो ही उसको पा सकोगे। भीड़ वहां तक जाती ही नहीं है। भीड़ तो यहीं घसिटती है। भीड़ ने अभी अभीप्सा ही नहीं की है अपने से ऊपर उठने की। जिसके भीतर आकांक्षा जगी है कि जैसा मैं हूं, जहां हूं, इतना काफी नहीं है, इससे तृप्ति नहीं होती, इससे प्यास मिटती नहीं, भूख बुझती नहीं—कोई सरोवर तलाशना है, जहां प्यास बुझे ! कोई स्थान खोजना है, जहां सिर झुके ! और कोई सागर खोजना है, जहां सारी सीमाओं को तोड़कर मैं लीन हो सकूं ! मैं-भाव, अहंकार सीमा है। निर-अहंकार सारी सीमाओं का विसर्जन है।

तुम पूछते हो : मनुष्य क्या है ? निर-अहंकार होने की खोज। सीमाओं के पार जाने की कामना। अपना अतिक्रमण !

इस जगत में मनुष्य के अतिरिक्त और कोई अपना अतिक्रमण नहीं कर सकता। इसलिए स्वात्म-अतिक्रमण मनुष्य की परिभाषा है। कोई आम का वृक्ष आम के वृक्ष के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता—आबद्ध है। नीम का वृक्ष नीम ही रहेगा, कुछ और होने का उपाय नहीं; अपना अतिक्रमण नहीं कर सकता, अपने से पार नहीं जा सकता। सिंह सिंह है, कुत्ता कुत्ता है। इससे पार जाने का कोई उपाय नहीं है। सिर्फ आदमी की क्षमता है कि आदमी के पार जा सकता है, बुद्धत्व को पा सकता है, भगवत्ता पा सकता है।

यह मनुष्य का गौरव भी है और मनुष्य की यातना भी। गौरव, क्योंकि यह संभावना खुली है, पूरा आकाश उसका है। हाथ फैलाए तो सारा अस्तित्व उसका है, अपने आलिंगन में ले ले सारे अस्तित्व को। इसलिए गौरव।

यातना भी बहुत है। यातना इसलिए कि जहां भी है वहीं चैन नहीं पाएगा, बेचैनी बनी ही रहेगी। और आगे, और आगे... यह दौड़ जारी रहेगी। एक महत यातना भीतर मौजूद रहेगी, तनाव बना रहेगा। कोई पशु-पक्षी तनाव में नहीं है, क्योंकि जो है, है; कुछ और होना नहीं है।

मनुष्य की तकलीफ, मनुष्य की पीड़ा, उसका विषाद, उसका संताप—कि जो है, उतने से राजी नहीं है, कुछ और होना है। उसके भीतर एक गहन तीर की तरह चुभी हुई वासना है—कुछ और होना है ! आश्वस्त होकर बैठ नहीं सकता—यात्रा करनी है ! मनुष्य एक यात्रा है। कोई पशु-पक्षी यात्रा नहीं है; मनुष्य भर एक यात्रा है।

और अगर धन की यात्रा की, पद की यात्रा की, तो यात्रा ही रह जाओगे। अगर धर्म की यात्रा की, तो तीर्थयात्रा हो जाओगे। काशी और काबा जाने से तीर्थ-यात्रा नहीं होती। मनुष्य जब परमात्मा होने की आकांक्षा से सब कुछ समर्पित करने को तैयार हो जाता है, तब तीर्थयात्रा होती है। तभी कोई पहुंचता है उस पवित्र स्थल पर—जहां तृप्ति है, जहां परम तृप्ति है, जहां परितोष है; जहां पहुंचने के बाद फिर आगे और कुछ पाने को शेष नहीं रह जाता है। उस स्थान को निर्वाण कहो, मोक्ष कहो—या जो नाम देना चाहो !

मनुष्य मोक्ष का बीज है।

मनुष्य एक बूंद है, जिसके भीतर निर्वाण छिपा है। लेकिन बूंद जब तक सागर से मिल न जाए निर्वाण प्रगट न हो सकेगा। मनुष्य खिले तो उसमें से परमात्मा की सुगंध उठती है। और इसलिए जब तक तुम परमात्मा न हो जाओगे, तब तक कोई उपाय नहीं है सांत्वना का ! कितना ही अपने को समझा लो, कितना ही अपने को उलझा लो, याद आती रहेगी ! सब व्यवस्था को तोड़-तोड़कर याद आती रहेगी कि तुम व्यर्थ कर रहे हो; जो भी कर रहे हो, सब व्यर्थ है। यह कामधंधा, यह दुकानदारी, यह बाजार-व्यवसाय, यह सब ठीक है, लेकिन अभी असली काम तुमने नहीं किया है—यह कचोट उठती रहेगी। यह घाव भीतर याद दिलाता रहेगा। और अच्छा है कि यह कचोट उठती रहे, यह कांटा चुभता रहे, क्योंकि यही कांटा चुभता रहे तो शायद एक दिन तुम वह हो सको, जो होना तुम्हारी नियति है।

रूह क़ालिब से निकलकर अस्ल में गुम हो गई
नै से होते ही जुदा नग़्मा परीशां हो गया

जैसे बांसुरी से कोई स्वर निकल जाता है, और बांसुरी से अलग होते ही परेशान हो जाता है।

नै से होते ही जुदा नग़्मा परीशां हो गया

जैसे कोई बांसुरी का स्वर भटक गया है बांसुरी से और परेशान है और अपने मूल-स्वर को, अपने मूलस्रोत को, उद्‌गम को खोजने चला है, ऐसा मनुष्य है--बांसुरी से जुदा हो गया स्वर, परमात्मा से दूर निकल गयी किरन, अपने घर से भटक गया यात्री।

रूह क़ालिब से निकलकर अस्ल में गुम हो गई

और एक दिन इस देह के ऊपर उठकर असलियत में गुम हो जाना है। 'रूह क़ालिब से निकलकर अस्ल में गुम हो गई।' वह जो असली है, वह जो यथार्थ है, उसमें जब तक तुम लीन न हो जाओगे, तब तक तुम बांसुरी का ऐसा स्वर हो, जो भटक रहा है, तलाश कर रहा है अपने मूलस्रोत की। बेचैन है, तड़प रहा है।

रूह जब तड़पी निगाहे-शौक़ आशिक़ बन गई
दिल जब उछला जल्वागाहे-हुस्ने-जानां हो गया

एक मर्कज़ पर सिमट आया जहाने-आर्ज़ू
कस्रते-मौहूम से जब दिल परीशां हो गया

चश्म-पुरनम, ज़ुल्फ़ आसुफ़्ता निगाहें बेक़रार
इस पशेमानी के सदक़े मैं पशेमां हो गया

वर्ना क्या था सिर्फ़ तर्तीबे-अनासिर के सिवा
ख़ास कुछ बेताबियों का नाम इन्सां हो गया

ऐसे तो आदमी भी क्या है-- पांच महाभूतों का जोड़-तोड़! 'वर्ना क्या था सिर्फ तर्तीबे-अनासिर के सिवा' ... मिट्टी, पानी, हवा का एक जोड़; और क्या था आदमी? वह तो धन्यभाग... 'खास कुछ बेताबियों का नाम इंसां हो गया'... लेकिन कुछ अभीप्साएं हैं, कुछ बेताबियां हैं, कुछ बेचैनियां हैं।

मिट्टी मिट्टी ही है, अगर उसमें अमृत होने की बेचैनी नहीं है। देह देह ही है, अगर उसमें परमात्मा पाने का सपना नहीं जगा है।

यह पंच महाभूतों का जो जोड़ है आदमी, इसको ही आदमी मत समझ लेना; यह तो केवल संभावना है। इसके भीतर जब अभीप्सा पैदा हो जाएगी--अपने से

पार जाने की, अपने से ऊपर उठ जाने की, अपने से ऊपर छलांग लगा जाने की, तब वास्तविक मनुष्य का जन्म होता है। उस मनुष्य को ही हम 'द्विज' कहते हैं--जिसका दूसरा जन्म हुआ।

एक जन्म मां के पेट से होता है। एक जन्म ध्यान से होता है, प्रार्थना से होता है, पूजा से होता है, अर्चना से होता है, दूसरे जन्म को ध्यान में रखो। दूसरे जन्म के बाद ही, द्विज बनकर ही, तुम ठीक अर्थों में मनुष्य होते हो। उसके पहले, नाम के आदमी हो!

दूसरा प्रश्न: परमात्मा की पहली झलक क्या है? यह कब घटित होती है?

चिन्मय! जैसे ही तुम मिटे, बस परमात्मा की पहली झलक घटित हुई। तुम्हारे रहते घटित न होगी। तुम चाहो कि तुम्हें होगी परमात्मा की पहली झलक, तो कभी न होगी। तुम रहे, तो झलक नहीं। तुम ही बाधा हो। कोई और बाधा नहीं है--ख्याल रखना।

अक्सर लोग सोचते हैं कि कुछ और बाधाएं हैं--कर्म की बाधा है, पाप की बाधा है, अज्ञान की बाधा है; इनको हटा दें तो परमात्मा की झलक मिल जाए। भूल में पड़े हो। न कर्म की बाधा है, न पाप की बाधा है, न अज्ञान की बाधा है; बाधा अगर कोई है तो तुम हो। 'मैं' की बाधा है।

और जब तक मैं न मिट जाए, तब तक उसकी झलक नहीं। जहां तक मैं है वहां तक द्वार बंद है। सूरज ऊगा रहे, तुम तक रोशनी नहीं पहुंचेगी। मैं गया, द्वार खुला। तुम मिटो, तो परमात्मा हो जाए।

परमात्मा की पहली झलक तुम्हारी मृत्यु पर घटती है; तुम्हारे विसर्जन पर।

आना है जो बज़्मे-जानां में पिन्दारे-खुदी को तोड़ के आ
ऐ होशो-ख़िरद के दीवाने, यां होशो-ख़िरद का काम नहीं

अगर आना है उस प्यारे की दुनिया में... 'आना है जो बज़्मे जानां में'... उस प्यारे की महफिल में आना है तो... 'पिन्दारे-खुदी को तोड़ के आ'। बस एक चीज को तोड़कर आ जाओ, मैं-भाव को तोड़कर आ जाओ। 'ऐ होशो-ख़िरद के दीवाने'! ... और अगर तुम अपनी अक्ल, अपनी चतुराई, अपनी होशियारी, अपना पांडित्य, अपना चरित्र, अपना त्याग, अपनी साधुता, अपना महात्मापन, इस सब को लेकर आ गये ... 'ऐ होशो-ख़िरद के दीवाने! यां होशो-ख़िरद का काम नहीं'... तो वहां पहुंच न पाओगे। वहां न तो बुद्धिमानी की जरूरत है; न चतुराई की जरूरत है, न गणित की, न किताब की। वहां सिर्फ एक बात की जरूरत है--शून्य होकर आ जाओ। तुम्हारे शून्य में उसका पूर्ण उतरता है। तुम्हारी शून्यता ही बस उसकी पूर्णता को खींच लेती है।

मिटो, ताकि पा सको।

लोग परमात्मा की झलक तो पाना चाहते हैं, लेकिन यह कीमत नहीं चुकाना चाहते। बस फिर झलक कभी नहीं मिलती। या, फिर जो झलकें मिलती हैं। वे उसके मन के ही खेल होते हैं। वे झलकें परमात्मा की नहीं होतीं, खुद की ही कल्पनाएं होती हैं। कृष्ण खड़े बांसुरी बजाते, कि राम खड़े धनुष-बाण लिये, कि जीसस दिखायी पड़ते हैं सूली पर चढ़े। ये सब तुम्हारे मन के ही खेल हैं। यह तुम्हारे मन का जाल है। परमात्मा का कोई रूप नहीं, कोई गुण नहीं। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है कि जिसकी झलक मिलेगी।

परमात्मा तो एक अनुभव है, एक स्वाद है, जो पूरे प्राण पर फैल जाता है, रोएं-रोएं पर फैल जाता है। परमात्मा एक अनुभूति है, व्यक्ति नहीं। जैसे प्रेम की अनुभूति होती है, ऐसी परमात्मा की अनुभूति है। प्रेम का कोई साक्षात्कार थोड़े ही होता है—कि मिल गये और प्रेम से दो बातें कीं। प्रेम का आविर्भाव होता है।

इक लफ्ज़े-मोहब्बत का अदना ये फ़साना है
सिमटे तो दिले-आशिक़, फैले तो ज़माना है

छोटा-सा 'प्रेम' शब्द है ... ढाई आखर प्रेम के. . .कोई बड़ा शब्द नहीं है, छोटा-सा। 'इक लफ़्ज़े-मोहब्बत का अदना ये फ़साना है'! उसकी छोटी-सी कहानी है। मगर उससे बड़ी और कोई कहानी नहीं है। उस छोटे-से शब्द में सब समा गया है—सारे शास्त्र ! कबीर ने कहा : ढाई आखर प्रेम के, पढ़ै सो पंडित होय। सारे वेद, कुरान, पुरान, सब उसमें समा गये हैं। 'सिमटे तो दिले-आशिक़ फैले तो ज़माना है।' बस इस प्रेम का ही सारा खेल है। अगर सिमट गया तो आशिक का दिल बन जाता है। और अगर फैल गया, तो परमात्मा बन जाता है।

सिकोड़ो मत अपने प्रेम को, फैलने दो! इतना फैल जाए कि सारा अस्तित्व तुम्हारे प्रेम का आंगन बन जाए। इतना फैल जाए कि तुम बचो ही न। तुम धड़को जगत के प्राणों में, वहो वृक्षों की हरियाली में, खिलो फूलों में, चांद-तारों में, पहाड़ों में, पर्वतों में! इतने फैलो . . . फैलते जाओ कि यह जो छोटी-सी गांठ तुमने सिकोड़कर अहंकार की बना ली है, यह गल जाए। इसे इतना फैला दो कि यह मिट जाए। इतना विरल कर दो कि यह मिट जाए। बस फिर पहली झलक।

मगर ख्याल रखना, पहली झलक का मतलब यह नहीं कि तुम्हें झलक मिलेगी। तुम नहीं रहोगे, तब पहली झलक। यह विरोधाभास है।

जब तक भक्त रहता है तब तक भगवान नहीं है। और जब भगवान है; तब भक्त कहां? भक्त का कभी भगवान से मिलन नहीं हुआ। भक्त मिटा तो मिलन हुआ, भक्त न रहा तो मिलन हुआ। इसीलिए तो 'अनलहक', 'अहं ब्रह्मास्मि' का उद्घोष उठा। ऐसी घड़ी आती है जब भक्त तो बचता नहीं, भगवान ही शेष रह जाता है।

उसी घड़ी में उद्घोष उठता है 'अहं ब्रह्मास्मि' का। मैं ही ब्रह्म हूं!

जब तक तुम्हें भगवान अलग दिखायी पड़े, तब तक समझना अभी मन के जाल के बाहर नहीं गये हो। अगर भगवान तुम्हें वहां दिखायी पड़े, दूर खड़ा, तो समझना कि अभी तुम्हारा अहंकार मौजूद है। अभी देखनेवाला मौजूद है तो दिखायी पड़नेवाला भगवान कल्पना होगा। जब तक द्रष्टा मौजूद है, तब तक दृश्य तुम्हारा कल्पना-जाल है। एक ही बचना चाहिए। द्रष्टा और दृश्य एक हो जाने चाहिए। उस घड़ी में पहली झलक।

और पहली झलक मिलती है तो पता चलता है कि हमने जो किया—वही जगजीवन कल कहते थे—कि हमने जो किया, उससे पाने का कोई कार्य-कारण संबंध नहीं है। हमारा किया ना-कुछ है। हमारा किया व्यर्थ था। हमारे किये से, जो हुआ है उसका कुछ लेना-देना नहीं है।

हमारा किया ऐसा है जैसा मैंने सुना है एक छिपकली एक महल में रहती थी। छिपकलियों में कहीं शादी-विवाह था। बैंडबाजे बजे, शहनाई बजी, निमंत्रण आया। लेकिन उस छिपकली ने कहा, मैं आ न सकूंगी। देखते हो मेरा काम? अगर मैं जाऊं तो यह पूरा महल गिर जाए। इसे मैं सम्हाले रखती हूं। मुझ पर बड़ा दायित्व है। तुम जो घास-फूस की झोपड़ियों में रहते हो, ठीक है; तुम चले भी जाओ तो कुछ हर्ज नहीं है। लेकिन यह बड़ा महल है . . . भारी हानि हो जाएगी मेरे जाने से। मेरा आना संभव नहीं।

अब छिपकली ऐसा सोचे तो आश्चर्य नहीं है! क्योंकि सभी छिपकलियां ऐसा सोचती हैं: आदमी भी ऐसा ही सोचता है। मेरे बिना सब अस्तव्यस्त हो जाएगा। मैं न रहूंगा तो दुनिया का क्या होगा? महल गिर जाएंगे, जिंदगी का तारतम्य टूट जाएगा। यह जो 'मैं-भाव' है, यह बड़े-बड़े सूक्ष्म रास्तों से लौट आता है। यह धर्म के नाम पर तपश्चर्या बन जाता है, योग बन जाता है। फिर तुम सोचते हो कि मेरे योग से परमात्मा करीब आएगा। मेरी साधना से सिद्धि होगी। मगर तुम्हारी साधना और तुम्हारी सिद्धि में उतना ही संबंध है जितना छिपकली में और महल के सम्हलने में; इससे ज्यादा नहीं।

जिस दिन झलक पहली बार उतरती है उस दिन पता चलता है कि मैं भी खूब पागल था! मैं सोचता था, ऐसा करूंगा, ऐसा भोजन करूंगा, इतनी बार भोजन करूंगा, रात पानी न पीऊंगा, पानी छानकर पीऊंगा, इतने कपड़े पहनूंगा, इतने देर सोऊंगा, ब्रह्ममुहूर्त में उठूंगा,, ऐसा करूंगा ऐसा करूंगा . . . इस सबके जोड़ में मुझे परमात्मा मिलेगा। जब परमात्मा मिलेगा, तब तुम्हें हंसी आएगी कि मैं भी खूब पागल था! क्या जोड़ बिठा रहा था! क्या खाया, क्या पिया; कितने कपड़े पहने, कितने नहीं पहने; कहां रहा, कैसे नहीं रहा; कितने उपवास किये, कितने व्रत,

कितने नियम-- सब ऐसे व्यर्थ हो जाते हैं ! कुछ तारतम्य ही नहीं है । जो मिलता है इतना विराट है कि अगर तुम्हारे उपवासों से मिला हो तो दो कौड़ी का हो जाएगा। तुमने जो कीमत चुकाई है, अगर वही परमात्मा की कीमत है तो परमात्मा पाने-योग्य भी नहीं रह जाएगा। क्योंकि तुम शीर्षासन पर खड़े रहे रोज एक घंटा, इसलिए परमात्मा मिला, तो यही परमात्मा की कीमत हो गयी--सिर के बल खड़े रहना एक घंटा। यह कोई बात हुई ! कि तुम कांटों पर लेटे रहे; तो यह परमात्मा की कीमत हो गयी ! कार्य-कारण का कोई संबंध नहीं है। जिस दिन प्रसाद बरसता है उस दिन सब प्रयास बह जाते हैं; जैसे बाढ़ आ गयी और सब झाड़-झंखाड़ किनारों के बह गये; कुछ पता न चला, सब गया। ऐसे ही तुम्हारी सारी साधना चली जाती है सिद्धि की बाढ़ में।

इसलिए जिन्होंने जाना है उन्होंने कहा है कि हमने जो किया, उससे मिलने का कोई संबंध नहीं है। यद्यपि जब तक नहीं मिला था तब तक हम यही सोचते थे कि न करेंगे तो कैसे मिलेगा ?

अहंकार हमेशा करने की भाषा में सोचता है। इस संसार में और सब चीजें करने से मिलती भी हैं। अगर कुछ न करोगे, तो धन नहीं मिलेगा, पद नहीं मिलेगा। कुछ नहीं करोगे, हाथ पर हाथ रखे बैठे रहोगे तो बुद्धू बने रहोगे, दूसरे लोग मार ले जाएंगे हाथ तुमसे पहले । यहां तो आपाधापी करनी होगी, मारधाड़ करनी होगी, गलाघोंट प्रतियोगिता है, झूम-झटक करनी होगी। ऐसे थोड़े ही कि बस तुम बैठे रहे, और लोग आ गये और कहा कि आप प्रधानमंत्री हो जाइये ! कि नहीं, आपको तो होना ही पड़ेगा !! नहीं, यहां तो बहुत झंझटें हैं। यहां तो काफी सिर-फुड़ौवल होगी, तब अगर घुस पाए भीड़ में तो घुस पाए ! फिर भी कुछ पक्का नहीं है, पहुंचते-पहुंचते लोग चूक जाते हैं। बिल्कुल हाथ पहुंचते-पहुंचते छिटक जाता है। भारी संघर्ष है !

तो यहां तो सब कर्म से मिलता है। इसलिए हमारे भीतर एक गणित का जन्म हो जाता है कि सभी कुछ कर्म से मिलता है तो परमात्मा भी कर्म से मिलेगा। बस वहीं भूल हो जाती है । परमात्मा इस जगत के गणित के बाहर है । कर्म से नहीं मिलता, समर्पण से मिलता है। अकर्म से मिलता है, झुक जाने से मिलता है । संघर्ष से नहीं मिलता, आक्रमण से नहीं मिलता, मिट जाने से मिलता है। जो बैठ रहा, चुप होकर, शांत होकर -- इतना शान्त होकर कि भीतर कोई तरंग भी न रही--किस अनायास घड़ी में उसका आगमन हो जाता है, पता भी नहीं चलता। और इसलिए बड़े-से-बड़ा चमत्कार यही है कि जो नहीं करते उनको मिलता है। जो अकर्म की गहराइयों में उतर जाते हैं, उनको मिलता है। जो शून्य की अतल तलहटियों में डूब जाते हैं, उनको मिलता है।

पूछते तुम कि पहली झलक क्या है ? यह कब घटित होती है ?

चिन्मय, जब तुम मिट जाओगे, तब घटित होगी। इसलिए मिटाओ अपने को। इसलिए बह जाने दो, मत बचाओ अपने को। किसी बहाने मत बचाना। किसी सहारे मत बचाना। किसी खूंटी पर अपने को टांगे मत रखना। ज्ञान की खूंटी हो त्याग की खूंटी हो, तपश्चर्या की, साधुता की-- सब जाने दो ! सब खूंटियां तोड़ डालो। कोई सहारे, कोई निमित्त मत छोड़ो। इतना ही तुम कर सकते हो कि अपने अहंकार को न बनाओ।

और मजा यह है कि अहंकार बनाओ तो ही बनता है, न बनाओ तो है ही नहीं अहंकार। इसलिए जैसे ही तुम्हें यह समझ में आ जाता है कि अहंकार के न होने से परमात्मा मिलेगा, वैसे ही अहंकार का बनाना धीरे-धीरे शान्त हो जाता है। अहंकार तो ऐसे ही है जैसे कोई आदमी साइकिल चलाता है। पैडल मारते रहो तो साइकिल चलती है। पैडल मारना बंद कर दो, साइकिल रुक ही जाएगी, थोड़ी-बहुत दूर चलकर रुक जाएगी। कितनी दूर चलेगी ?

अहंकार कोई चीज नहीं है। पैडल मारना होता है निरंतर तो अहंकार बनता है। इसलिए अहंकारी को निरंतर कुछ-न-कुछ करने में लगा रहना पड़ता है। उपमंत्री है तो मंत्री हो जाए। मंत्री है तो फिर कैबिनेट में पहुंचे, दिल्ली पहुंच जाए। दिल्ली पहुंच गया तो कुछ और हो जाए--होता ही रहे. . . ! पैडल उसे मारते ही रहने पड़ते हैं। हजार रुपये हैं तो दस हजार हो जाएं, दस हजार हैं तो लाख हो जाएं, लाख हैं तो दस लाख हो जाएं। उसे पैडल मारते ही रहने होते हैं। ऐसा नहीं है कि दस लाख हो गये, अब बस ठीक है, अब क्या करना है, अब मजा करें। पैडल मारना बंद किये कि चारों खाने चित गिरोगे।

अहंकार तो निरंतर सक्रियता में जीता है। अहंकार तो ऐसा है जैसे नट चलता है रस्सी पर। अगर तुम न अहंकार को गति दो, न उसे भोजन दो, तो अहंकार तिरोहित हो जाता है। अहंकार कोई वस्तु नहीं है।

इसलिए मुझसे यह मत पूछना कि फिर अहंकार को कैसे मिटाएं ? अक्सर लोग वह पूछने लगते हैं। उनसे कहो कि अहंकार नहीं होगा तो परमात्मा मिलेगा, तो वे कहते हैं : अहंकार को कैसे मिटाएं ? अगर तुम ही मिटाओगे, तो नया अहंकार पैदा हो जाएगा कि मैं निरहंकारी हूं ! देखो, मैंने अहंकार मिटा दिया ! यह और सूक्ष्म अहंकार है, और भी खतरनाक ! पहले से भी ज्यादा इसकी गहरी जड़ें हो जाएंगी। यह फिर रुकावट हो जाएगी !

इसलिए यह तो पूछना ही मत कि अहंकार को कैसे मिटाएं ? क्योंकि तुम अगर मिटाओगे, तो मिटेगा नहीं। इतना ही समझ लो कि अहंकार को कैसे न बनाएं। बस इतना ही पहचान लो कि किन-किन तरकीबों से हम अहंकार को बनाते हैं,

उन-उन तरकीबों को शिथिल कर दो। अचानक तुम पाओगे : अहंकार सिकुड़ने लगा, बिखरने लगा; गिरने लगे उसके पत्ते, आ गयीं पतझड़; जल्दी ही उसकी जड़ें सूख जाएंगी, बस पानी मत दो, जल्दी ही तुम पाओगे, अहंकार गया।

और जिस घड़ी अहंकार गया, तत्क्षण परमात्मा का आविर्भाव हो जाता है-- पहली झलक! और पहली झलक ही तो अंतिम झलक है। एक झलक मिल गयी तो सब मिल गया। फिर पहले और अंतिम में कुछ भेद थोड़े ही है। एक बार परमात्मा की अनुभूति हो गयी कि हो गयी अनुभूति, फिर तुम्हारे लौटने का कोई उपाय नहीं है। फिर कौन अहंकार की गंदगी में लौटेगा? क्यों लौटेगा? जिसने स्वर्ग का सुख जाना, फिर नर्क में क्यों पड़ेगा? जिसे हीरे-जवाहरात मिल गये, अब कंकड़-पत्थर क्यों बीनेगा?

कुछ इस अदा से आज वो पहलूनशीं रहे
जब तक हमारे पास रहे हम नहीं रहे

ईमानो-कुफ्र और न दुनिया-ओ-दीं रहे
ऐ इश्क! शादबाश कि तन्हा हमीं रहे

यारब किसी के राजे-मुहब्बत की ख़ैर हो
दस्ते-जुनूं रहे न रहे, आस्तीं रहे

जा और कोई ज़ब्त की दुनिया तलाश कर
ऐ इश्क! हम तो अब तिरे क़ाबिल नहीं रहे

मुझको नहीं क़ुबूल दो आलम की वुसअ़तें
क़िस्मत में कू-ए-यार की दो गज ज़मीं रहे

बस भक्त की इतनी आकांक्षा है--

मुझको नहीं क़बूल दो आलम की वुसअ़तें

मुझे दो दुनियाओं के जो सुख हैं, नहीं चाहिए। वे जो विशाल दो दुनियाओं के रहस्य हैं, मुझे नहीं चाहिए।

मुझको नहीं क़ुबूल दो आलम की वुसअ़तें
किस्मत में कू-ए-यार की दो गज ज़मीं रहे

उस प्यारे के गली की दो गज़ ज़मीन काफी है।

इस इश्क की तलाफ़ी-ए-माफ़ात देखना
रोने की हसरतें हैं जब आंसू नहीं रहे

और ऐसा होता है। जब परमात्मा का दर्शन होता है, तो रो भी न पाओगे, हंस भी न पाओगे। धन्यवाद भी न दे पाओगे, झुक भी न पाओगे, क्योंकि, वे सारी

क्रियाएं भी अहंकार के साथ गयीं। अवाक...सन्नाटा रह जाएगा! न कोई धन्यवाद उठेगा, न अनुग्रह के दो आंसू गिराने के उपाय रह जाएंगे।

इस इश्क की तलाफ़ी-ए-माफ़ात देखना
रोने की हसरतें हैं जब आंसू नहीं रहे

जब धन्यवाद करने का मौका आएगा, तो जबान न खुलेगी, ओंठ न खुलेंगे, कंठ अवरुद्ध हो जाएगा। जब दो आंसू गिराना चाहोगे, पाओगे कि आंसुओं का कुछ पता नहीं। जब सिर झुकाना चाहोगे, सिर न पाओगे। जब चाहोगे कि अब नाचूं आनंदमग्न होकर, तो अपने को न पाओगे। अब नाचनेवाला कहां?

यह धर्म का विरोधाभास है।

जब तक तुम हो, रो भी सकते हो, गा भी सकते हो, नाच भी सकते हो-- तब तक नाचने की कोई घटना नहीं घटती। और जब घटना घटती है कि नाचो, ऐसे नाचो पागल होकर आनंद में, मदमस्त होकर, लेकिन तब कौन नाचनेवाला बचा? गये वे दिन, जब तुम थे, अब परमात्मा ही है। ऐसी घड़ी में पहली झलक!

सोज़ में भी वही इक नग़मा है जो साज़ में है
फ़र्क़ नज़दीक की और दूर की आवाज में है

बस इतना ही फर्क है। अभी भी तुम नहीं हो, परमात्मा ही है; बस तुम्हें भ्रांति है अपने होने की। दुख में भी वही स्वर है जो सुख का है। इस पृथ्वी पर भी स्वर्ग की ही हवा है। इस सूरज की किरणों में भी उसकी ही किरणें हैं। इन लोगों में भी वही धड़क रहा है। तुम्हें पता नहीं है, बस इतना ही फर्क है।

सोज़ में भी वही इक नग़मा है जो साज़ में है

उसी वीणा से तो आनंद का संगीत उठ आता है, उसी वीणा से विरह के गीत भी पैदा हो जाते हैं। वही वीणा ऐसा साज छेड़ सकती है कि तुम नाच उठो। और वही वीणा ऐसी विरह की पीड़ा को जगा सकती है कि तुम जार-जार रो उठो। वीणा वही है, स्वर भी वही है।

सोज़ में भी वही इक नग़मा है जो साज़ में है
फ़र्क़ नज़दीक की और दूर की आवाज में है

बस जरा-सा फर्क है। तुमने परमात्मा की आवाज अभी नजदीक से नहीं सुनी, बहुत दूर से सुनी है। वेदों में सुनी है, कुरानों में सुनी है, बाइबिल में सुनी है, बहुत दूर से सुनी है, उधार सुनी है, बुद्धों से सुनी है, नानक से सुनी है, कबीर से, जगजीवन से--तुमने नहीं सुनी है। बस दूर और पास की आवाज का फर्क है। तुम सुन लो, सब हो जाए।

ये सबब है कि तड़प सीना-ए-हर-साज में है
मेरी आवाज़ भी शामिल तेरी आवाज़ में है

जिस दिन जानोगे उस दिन पाओगे : तुम्हारी आवाज भी उसकी ही आवाज थी। तुम जो बोले थे, वह भी वही बोला था। तुम्हें पता नहीं कि तुम्हारे कंठ में भी वही विराजमान है। उसके अन्यथा कोई और है ही नहीं। इसलिए तुम्हें पता नहीं है, यह और बात, लेकिन तुम हो तो परमात्मा में ही। मछली को पता न हो कि सागर में है, इससे क्या फर्क पड़ता है, है तो सागर में ही।

जो न सूरत में न मानी में न आवाज में है
दिल की हस्ती भी उसी सिलसिला-ए-राज़ में है

आशिकों के दिले-मजरूह से कोई पूछे
वो जो इक लुत्फ़ निगाहे-गलत-अंदाज़ में है

प्रेमियों से पूछो, बस एक जरा-सी नजर, उसकी आंख का आंख में पड़ जाना, उसकी बांकी नजर, उसकी तिरछी नजर और क्रांति घट जाती है। जो मिटाए नहीं मिटता था, पाया नहीं जाता। जो खोजे नहीं मिलता था, वह एकदम सामने खड़ा है और पता चलता है सदा से सामने खड़ा था।

आशिकों के दिले-मजरूह से कोई पूछे
वो जो इक लुत्फ़ निगाहे-गलत अंदाज में है

गोशे-मुश्ताक़ की क्या बात है अल्लाह-अल्लाह
सुन रहा हूं मैं वो नग़्मा जो अभी साज़ में है

फिर तो ऐसी सूक्ष्मता पैदा होती है कि जो नग़्मा अभी वीणा से जगा भी नहीं है, अभी वीणा के तारों में सोया हुआ है, वह भी सुनायी पड़ने लगता है। अभी तो वीणा बजती है, वह भी सुनायी नहीं पड़ती है—बिल्कुल बहरे हो। वीणा बज रही है और तुम पूछते हो—कहां है साज, कहां है संगीत? और कोयल में वीणा बज रही है, और पपीहे में बज रही है, और वृक्षों के पास से गुजरती हवाओं में बज रही है। सागर में नाचती हुई उतरती नदी में बज रही है। तुम्हारे कंठ में, तुम्हारे पड़ोसी के कंठ में—सब तरफ उसी की वीणा का नाद है। उसका ही नाद है। सारी आवाजें उसकी आवाजें हैं। सब अनाहत है!

गोशे-मुश्ताक़ की क्या बात है अल्लाह-अल्लाह
सुन रहा हूं मैं वो नग़्मा जो अभी साज़ में है

और फिर जब आंख खुलती है, पहचान आती है, पहली झलक मिलती है, तो जो अभी गीत पैदा भी नहीं हुआ वह भी सुनायी पड़ने लगता है। अभी जो गीत गाया भी नहीं गया, वह भी सुनायी पड़ने लगता है, उसकी मस्ती छाने लगती है। अभी तो दृश्य भी दिखायी नहीं पड़ता, तब अदृश्य भी दिखायी पड़ने लगता है।

और धर्म की अगर कोई परिभाषा करनी हो, तो यही परिभाषा है : अदृश्य को दृश्य कर लेने की कला। जो नहीं दिखायी पड़ता; जो नहीं दिखायी पड़ सकता, उसे देख लेने की कला; जो अव्यक्त है, उसे छू लेने की कला, जिसे छुआ नहीं जा सकता।

अगर सच में पूछो तो कोई अगर अछूत है तो सिर्फ परमात्मा! उसे छुआ नहीं जा सकता। लेकिन उसे छू लेने की कला का नाम धर्म है। असंभव को संभव बना लेने की कला का नाम धर्म है।

मगर कला का एक सूत्र बुनियादी है : तुम मिटो! अहंकार जाए। परमात्मा आया ही हुआ है, बस अहंकार जाए और आंख खुल जाती है, और कान खुल जाते हैं। साज में सोए हुए गीत भी सुनायी पड़ने लगते हैं।

तब जीवन एक अनुभव है। तब जीवन एक अद्‌भुत सौंदर्य है! तब जीवन बहुत रंगीन है! तब जीवन उत्सव है!

तीसरा प्रश्न : कृष्ण उद्धव को कहते हैं, मेरा ऐसा निश्चय है कि सत्संग और भक्तियोग को छोड़कर संसार-सागर से पार होने का और दूसरा उपाय नहीं है। क्या सत्संग और भक्ति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं? कृपा करके समझाएं।

नरेन्द्र! सत्संग है सरोवर और भक्ति है स्नान। सत्संग संक्रामक वातावरण का नाम है; जहां परमात्मा की बीमारी पकड़ जाए, जहां धर्म का रोग लग जाए।

सत्संग का अर्थ है : जहां कोई परमात्मा को उपलब्ध हो गया है, उसके पास बैठना। जैसे बीमारी संक्रामक होती है, वैसे ही स्वास्थ्य भी संक्रामक होता है। और जैसे पाप संक्रामक होता है, वैसे ही पुण्य भी संक्रामक होता है। और जैसे जुआरी के पास बैठकर जुआ खेलने की कामनाएं उठने लगती हैं, वैसे ही प्रार्थना में लीन व्यक्ति के पास बैठकर प्रार्थना की तरंगें उठने लगती हैं।

हम अलग-अलग टूटे हुए नहीं हैं, हम जुड़े हैं। हम एक दूसरों से जुड़े हैं। जब तुम जाओगे हिमालय के पास तो जिन्होंने कभी ऊपर आंखें नहीं उठायी हैं, वे भी गौरीशंकर पर क्वांरे बर्फ को जमा हुआ देखकर, सूरज की रोशनी में चमकता हुआ—जैसे सोना पिघलता हो, कि चांदी पिघलती हो—एक बार तो आंख ऊपर उठा ही लेंगे। जो सदा जमीन पर आंखें गड़ाकर चलते रहे, जिनकी पहचान जमीन के गड्ढों और नालियों और कूड़े-करकट के अतिरिक्त और किसी चीज से नहीं है, वे भी हिमालय के करीब जाएंगे तो एक बार तो आंख उठाकर देखना ही होगा गौरीशंकर को। और आंख पर एक झलक पड़ जाए गौरीशंकर की, यात्रा शुरू हुई।

सत्संग का अर्थ होता है : किसी ऐसे व्यक्ति के पास बैठ जाना जो गौरीशंकर जैसा हो; जिसके पास बैठकर सपने पर खोलने लगें; जिसके पास बैठकर अभीप्साएं जगने लगें, सोई हुई आकांक्षाएं सजग होने लगें; जिसके पास बैठकर परमात्मा को

पाने का पागलपन पकड़ने लगे।

सत्संग सरोवर है और जो उसमें डुबकी लगा लेते हैं वे भक्त हो जाते हैं। सत्संग के बिना भक्ति नहीं। कैसे भक्ति सीखोगे, कहां भक्ति सीखोगे? इसका स्वाद कैसे लगेगा? जिसने चखा हो, शायद उसकी बात सुनकर, शायद उसकी भावदशा देखकर, शायद उसके पास बैठकर, उसकी तरंगों से आंदोलित होकर, उसकी आंखों में झांककर, उसका हाथ हाथ में लेकर, उसके चरणों में सिर रखकर, थोड़ी-सी बूंद तुम्हारे कंठ में भी उतर जाए। इतना तो पक्का है कि जिसने परमात्मा को जाना है, उसके पास से तुम वैसे ही न लौट सकोगे जैसे गये थे। या तो दोस्त होकर लौटोगे, या दुश्मन होकर लौटोगे। जो दोस्त होकर लौटा, उस पर भक्ति की छाप लगनी शुरू हो गयी। जो दुश्मन होकर लौटा, उसने अपने को बचाने का उपाय शुरू कर दिया। वह घबड़ा गया। दुश्मनी आत्मरक्षा है।

जो व्यक्ति बुद्ध के पास से दुश्मन होकर लौट गया है, उस पर नाराज मत होना, क्रोध मत करना, वह दया का पात्र है। वह घबड़ा गया। यह जो बाढ़ आती थी बुद्ध की उसकी तरफ, वह डर गया। उसने जोर से किनारे को पकड़ लिया। उसने बुद्ध की बाढ़ को इनकार कर दिया। उसने कहा कि नहीं, कोई बाढ़ ही नहीं है। वह इतना भयभीत हो गया कि उसे लगा कि अगर मैंने एक बार और आंख खोलकर देखा इस गौरीशंकर को, तो फिर मैं अपने कदमों को रोक नहीं सकूंगा। फिर ये कदम यात्रा पर निकल जाएंगे। फिर क्या होगा, मैंने वह सब जो घर-गृहस्थी बना रखी है, वे सब जो मैंने जाल फैला रखे हैं बाजार में? और अभी सब तो अधूरा है। अभी कुछ तो पूरा नहीं हुआ। अभी बेटे का विवाह करना है। अभी बेटी को बच्चा होनेवाला है। अभी नयी-नयी दुकान का शुभमुहूर्त किया है। अभी सब नया-नया है, कच्चा-कच्चा है। . . .और हमेशा सब नया-नया रहता है, हमेशा सब कच्चा-कच्चा रहता है। पकता यहाँ कुछ है नहीं, कभी नहीं पकता। बूढ़े-से-बूढ़े आदमी की जिंदगी में सब उलझा रहता है। सुलझता यहां कुछ है ही नहीं। उलझन पर उलझन आती चली जाती है। . . .यह सब का क्या होगा, अगर मैं चल पड़ा इस गौरीशंकर को देखकर? अब इस गौरीशंकर से बचने का उपाय क्या है? एक ही उपाय है कि मैं इनकार ही कर दूं; मैं कह दूं कि गौरीशंकर है ही नहीं। ऐसा इनकार कर दूं कि फिर यह भाव, सवाल, यह प्रश्न मन में जगे ही नहीं।

इससे लोग बुद्धों के पास जाकर कभी-कभी दुश्मन होकर लौट जाते हैं। ये अपनी रक्षा कर रहे हैं। ये कह रहे हैं: नहीं, कोई बुद्ध नहीं है। यह आदमी भ्रांति में पड़ गया है। कहां कैसा परमात्मा, कहां कैसा सत्य? यही संसार सब कुछ है। जो मैंने जाना, वही ठीक है। मैं अपने जानने को अस्त-व्यस्त नहीं करना चाहता हूं। मैंने बड़ी मुश्किल से थोड़ी-सी दुनिया बनायी है; मत कहो मुझसे कि वह सब भ्रम है।

मत जगाओ मुझे मेरी नींद से। मैंने सुंदर सपने संजोये हैं। मैं बामुश्किल सपने बना पाया हूं, किसी तरह दुख-स्वप्नों से बाहर हुआ हूं, थोड़े भले दिन करीब आ रहे हैं, और तुम आ गये और तुम कहते हो, यह संसार सब सपना है! और परमात्मा को खोजो!

नहीं, कोई परमात्मा नहीं है। इनकार करना ही होगा। अगर अपना संसार बचाना है तो परमात्मा को इनकार करना ही होगा। और परमात्मा का जो संदेश लेकर आया है, उसे भी इनकार करना होगा। अगर यह बात तुम अपने को समझाने में राजी हो गये कि न कोई परमात्मा है, न कोई परमात्मा को कभी पाता है, ये सब भ्रांतियां हैं––तो तुम सुरक्षित! तुम फिर अपने सपने में उलझ जाओगे।

मगर बुद्धपुरुषों के पास से कोई भी तटस्थ नहीं लौट पाता। यह बुद्धपुरुषों की परीक्षा है। उनके पास से या तो कोई डूब जाता है, उनके रंग से भर जाता है, या कोई दुश्मन होकर आ जाता है। या तो मैत्री या शत्रुता––बुद्धों के साथ दो ही तरह के नाते होते हैं; तीसरा कोई नाता नहीं होता। बुद्धों की कोई उपेक्षा नहीं कर सकता। यह असंभव है। और दुश्मनी करो, तो तुम अपने हाथ से अवसर गंवाते हो!

फ्रेड्रिक नीत्शे ने कहा है कि मैं ईश्वर को स्वीकार नहीं कर सकता। क्योंकि ईश्वर को स्वीकार करने का अर्थ होता है कि मैं गलत हूं। और मैंने जो किया है, सब गलत है।

नीत्शे ईमानदार आदमी मालूम होता है। सच्ची बात तो कह रहा है कम-से-कम, कि मैं स्वीकार नहीं कर सकता ईश्वर को! कैसे करूं? अपने को गलत! और मैंने जो किया है, सब गलत! और मेरी सारी जिंदगी की दौड़धूप व्यर्थ! यह अहंकार के विपरीत पड़ती है बात। इससे तो बेहतर यही है, उस अज्ञात-अगोचर को, पता नहीं हो या न हो, उसको ही इनकार कर दो।

दो ही उपाय हैं। अगर परमात्मा को स्वीकार करते हो तो तुम फिर अपनी जिंदगी में उसी ढंग से न रह सकोगे जैसे कल तक रहे हो। तुम्हें जिंदगी की शैली बदलनी ही होगी। बदलनी ही होगी! कोई उपाय नहीं है। तुम्हें अपनी जिंदगी नये ढंग से शुरू करनी ही होगी! कोई उपाय नहीं है। तुम्हें फिर से नयी बुनियादें डालनी होंगी, नये शिलान्यास करने होंगे। फिर से श्रीगणेश करना होगा।

जिसमें इतनी हिम्मत है कि फिर से श्रीगणेश कर सके––हो सकता है पचास साल जी लिया, साठ साल जी लिया, सत्तर साल जी लिया––फिर से श्रीगणेश कर सके, जिसमें इतना साहस है, मौत द्वार पर दस्तक दे रही है, फिर से श्रीगणेश कर सके, वही बुद्धों से मैत्री बना पाता है। बुद्धों से मैत्री बनाने का नाम सत्संग है।

नीत्शे ठीक कहता है कि नहीं मानूंगा ईश्वर को, क्योंकि फिर तो मैं गलत हुआ। फिर मेरा किया-धरा सब गलत हुआ। इससे तो आसान यही है कि एक बार ईश्वर

को ही इनकार कर दूं। अपने सारे संसार को इनकार करने के बजाय यही उचित है, ईश्वर को ही इनकार कर दूं।

मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन पर अदालत में एक मुकदमा था। उसने अपनी स्त्री को गोली मार दी। मजिस्ट्रेट ने उससे पूछा कि नसरुद्दीन, ऐसा क्या कारण आ गया? तो उसने कहा कि मैं घर आया, मैंने पर-पुरुष के साथ इसे सोये देखा, तो मैंने गोली मार दी। मॅजिस्ट्रेट ने पूछा, साधारणतः अगर तुम नाराज ही इतने हो गये थे तो उस पुरुष को गोली क्यों नहीं मारी? तो उसने कहा कि रोज-रोज नये-नये पुरुषों को गोली मारने के बजाय एक स्त्री से ही झंझट छुड़ा लेनी बेहतर थी।

संसार का तुम्हारा बड़ा विस्तार है--दुकान है, बाजार है, धन है, पद है, प्रतिष्ठा है, परिवार है--एक परमात्मा को ही भुला देना आसान मालूम पड़ता है। एक परमात्मा को ही गोली मार देनी आसान मालूम पड़ती है। शेष सब बच जाता है।

सत्संग का अर्थ होता है : तुम बेचैनी में पड़ोगे। इसलिए पहले तो लोग सत्संग से बचते हैं। सब तरह के उपाय करते हैं। अगर किसी भूल-चूक से आ भी गये, घटना-वशात, संयोगवशात आ भी गये, तो भी अकड़कर बैठे रहते हैं। अपना बचाव करते रहते हैं। तैयारी में रहते हैं कि कैसे यहां से निकल भागें! कहीं उलझ न जाएं! छोटे-छोटे बहाने खोज लेते हैं! छोटे-छोटे निमित्त कारण बना लेते हैं कि इस कारण अभी समय नहीं आया। कल के लिए स्थगित कर देते हैं, कि जब समय आएगा तब। और अगर ऐसा लगता है कि खिंचे जा रहे हैं किसी प्रवाह में, तो फिर क्रोध खड़ा होता है--कि यह कौन है जो मेरी जिंदगी के बने-बनाये खेल को, तमाशे को नष्ट किये दे रहा है?

छोटे बच्चों से खिलौने छीने हैं कभी? जो उनकी हालत हो जाती है, वही सत्संग में उनकी हो जाती है जो खिलौनों से बहुत ज्यादा लगाव बना लिये हैं। किसी छोटे बच्चे से खिलौना छीनना, रोता है, चिल्लाता है। तुम्हें पता है कि खिलौना है, मगर उसे पता नहीं है। वह अपने खिलौने को अपनी छाती से लगाकर रखना चाहता है। रात सोता भी है तो अपने खिलौने को छाती से लगाकर सोता है। तुम भी रात अपना खिलौना छाती से लगाकर सोते हो। कुछ लोग अपने धन का हिसाब लगाते सोते हैं--वह खिलौना छाती से लगाए हैं। कोई चुनाव लड़ने की योजना बनाते हुए सोते हैं। कल उठकर सुबह कौन-से उपद्रव तुम्हें करने हैं, उसका सब आयोजन करके सोते हैं।...खिलौने!

सत्संग में खिलौने छीन लिये जाएंगे। सत्संग में और कुछ छीना नहीं जाता है, सिर्फ खिलौने छीने जाते हैं; खिलौने तोड़े जाते हैं।

और ध्यान रखना, अगर कहीं कोई साधु-महात्मा तुम्हारे खिलौनों को संवारता हो, तुम्हें सांत्वना देता हो, तुम्हें भरोसा-ढाढ़स बंधाता हो, तो समझ लेना कि वह

सत्संग नहीं है। सत्संग तो वहीं है जहां तुम्हारे सारे खिलौने तोड़ दिये जाएंगे, बुरी तरह तोड़ दिये जाएंगे, बेरहमी से तोड़ दिये जाएंगे। तुम्हारे खिलौनों पर रहम तुम पर बेरहमी है। तुम पर रहम करना हो तो तुम्हारे खिलौनों पर बेरहम होना ही पड़ेगा।

इसलिए सत्संग कठोर प्रक्रिया है। सिर्फ हिम्मतवर की है। सिर्फ जिनके भीतर साहस है, दुस्साहस है, वे ही सत्संग कर पाते हैं। इसलिए कहा ज्ञानियों ने : खड्ग की धार है।

सत्संग का अर्थ होता है : तुम तैयार हो अब। अगर तुम्हारे सपने छीने जाएंगे, तो तुम उनको बनाने की चेष्टा न करोगे। तुमने खुद भी खूब विषाद देख लिया। तुमने जिंदगी देख ली; कुछ पाया नहीं। हाथ खाली हैं। खिलौने से भरे हाथ खाली हाथ हैं, भरे हाथ नहीं हैं। तुम समझ गये, इतनी समझ तुम्हें आ गयी, तो सत्संग में दोस्ती बनेगी, मैत्री बनेगी।

और जो सत्संग में मित्र-भाव से बैठ जाता है, उसमें भक्ति का आविर्भाव होता है।

सत्संग सरोवर है, भक्ति स्नान। सत्संग में जो नहा लिया, ताजा हो जाता है। आंखें नयी हो जाती हैं। हृदय नया हो जाता है। देखने के ढंग, पहचानने के ढंग नये हो जाते हैं। सारी धूल हट जाती है। फिर से जन्म होता है। फिर से जीवन की शुरुआत होती है--सम्यक शुरुआत होती है। जो जीवन तुमने शुरू किया था जन्म के बाद, वह तो बेहोशी में हुआ था। तुम्हें कुछ पता न था, जो मां-बाप ने करवाया, वही तुमने किया। जो पास-पड़ोस के लोग करते थे, वही तुम करते रहे। तुम देखा-देखी चलते रहे। मंदिर गये तो मंदिर चले गये और मस्जिद गये तो मस्जिद चले गये। कुरान रटते थे तो तुम कुरान रट लिये और गीता रटते थे, तुमने गीता रटली--तुमने देखा-देखी की। यह स्वाभाविक भी था। बच्चे से और ज्यादा आशा की भी नहीं जा सकती है। बच्चा तो अनुकरण करता है। लेकिन अभागे हैं वे लोग, जो जिंदगी-भर बचकाने बने रहते हैं और जिंदगी-भर अनुकरण करते रहते हैं। बच्चे तो क्षम्य हैं। क्या करते और! जहां पिता गये थे, वहां बच्चा चला गया। जिस मूर्ति के सामने मां झुकी थी, उसके सामने बच्चा झुक गया था। घर में सत्यनारायण की कथा होती थी तो उसने समझा था--यही धर्म है। और घर में यज्ञ-हवन होते थे तो उसने समझा था--यही धर्म है। और कोई उपाय भी तो न था। इन्हीं लोगों से सीखना था।

बच्चे क्षमा किये जा सकते हैं।

लेकिन कब तक तुम बच्चे रहोगे? कब तक देखा-देखी? कब तक नकल? कभी तो प्रौढ़ बनो! जब कोई व्यक्ति प्रौढ़ बनता है, तो सत्संग के योग्य बनता है। तब वह अपनी तरफ से तलाश शुरू करता है। अब वह कहता है, मैं खोजूंगा किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसे मिल गया हो। मैं उनके पीछे नहीं चलूंगा, जिन्हें खुद भी पता

नहीं है; जो मेरे ही जैसे अंधे हैं। मैं अब बैठूंगा किसी ऐसी आभा के पास, किसी ऐसे आभामण्डल में, जहां सत्य की कोई प्रतीति हुई हो।

और ध्यान रखना, अगर तुम हिम्मतवर हो तो सत्संग में पहुंचते ही तत्क्षण तुम्हारा हृदय गवाही दे देगा कि हां, ठीक जगह आ गये! यह गवाही बुद्धि की नहीं होती, हृदय की होती है। हृदय कह देता है। और हृदय कभी झूठ नहीं बोलता। बुद्धि सदा झूठ बोलती है। क्योंकि बुद्धि जो भी बोलती है, सब उधार है। अगर तुम हृदय खोलकर बैठ जाओ किसी कबीर, किसी नानक, किसी जगजीवन के पास, बिना किसी अवरोध के, भर नजर देख लो कबीर को––तुम्हारा हृदय कह देगा, गवाही दे जाएगा। कोई तुम्हारे भीतर तरंग कह जाएगी तुमसे कि बस, आ गयी वह जगह जहां झुकना है! पहुंच गये उस स्थल पर, मिल गया तीर्थ!

हां, बुद्धि की अगर सुनी, तो अड़चन होगी। क्योंकि बुद्धि तो रटा-रटाया दोहराएगी। और कबीर जो कह रहे हैं, वह स्वानुभूत है। तुम्हारी बुद्धि और कबीर की बात में मेल नहीं पड़ेगा। बुद्धि तो कहेगी : नमाज पढ़ो। और कबीर कहते हैं : क्यों चिल्ला रहा है पागल, क्या तेरा खुदा बहरा हो गया है? और बुद्धि कहती है : नमाज पढ़ो और यह कबीर कहते हैं : क्या तेरा बहरा हुआ खुदाय? एकदम चोट लग जाएगी बुद्धि को। बुद्धि कहेगी : यह बात ठीक नहीं है। बुद्धि ने तो सुना है कि काशी में मरोगे तो मोक्ष जाओगे, बैकुंठ मिलेगा। और यह कबीर कह रहे हैं : काशी भर में मत मरना। क्योंकि काशी में मरे अगर मोक्ष गये, तो दो कौड़ी का मोक्ष। काशी में मरने के कारण मोक्ष मिलेगा तो दो कौड़ी का हो गया!

लोग काशी-करवट को जाते हैं। अनेक बूढ़े-ठूढ़े काशी रहते हैं जाकर इसीलिए कि वहीं मरना हो जाए। जिए तो नहीं धर्म को, काशी-करवट लेने गये हैं!

कबीर कहते हैं : जिओ!

मरते वक्त कबीर ने कहा––उठकर खड़े हो गये, और कहा कि चलो, अब मेरे मरने का वक्त करीब आ गया है––जिंदगी-भर काशी रहे––अब यहां से चलो! लोगों ने कहा : आप क्या कह रहे हैं? कबीर ने कहा : काशी में न मरूंगा। चलो, दूर निकल चलो काशी से!

हट गये काशी से दूर। पास के एक गांव में जाकर मरे। सिर्फ इसीलिए, यह सूचन देने को, कि स्थानों पर मरने से कोई मोक्ष नहीं होता। स्थितियां होनी चाहिए, अंतर्दशा होनी चाहिए।

जिओ! धर्म मरने की बात नहीं है, जीने की बात है। कहां मरे, इससे क्या होगा? कैसे जिए, इससे होगा। कबीर को सुनोगे, तो बुद्धि को तो अड़चन आएगी। अगर बुद्धि को बीच में लाए, दुश्मन होकर लौट जाओगे––सत्संग चूक गया! क्योंकि बुद्धि कहेगी : वेद में तो ऐसा लिखा है, कुरान में तो ऐसा लिखा है, गीता तो ऐसा

कहती है और यह कबीर क्या कह रहे हैं, यह बुद्ध क्या कह रहे हैं? यह तो बात जंचती नहीं है। यह तो तर्क के अनुकूल नहीं है। यह तो शास्त्र के अनुकूल नहीं है। चूक गये तुम सत्संग।

सत्संग हृदय से पकड़ा जाता है। बुद्धि को रख दो हटाकर। हृदय से अनुभव करो। शान्त बैठ जाओ––कबीर जैसे व्यक्ति के पास जाओ तो शान्त बैठ जाना, मौन बैठ जाना, बुद्धि को कहना : तू चुप, थोड़ा मेरे हृदय को बोलने दे; थोड़ा मेरे हृदय को डोलने दे; थोड़ा मेरे हृदय को पकड़ने दे तरंगें इस व्यक्तित्व की। और तुम चकित हो जाओगे, तुम्हारा हृदय जो कहेगा, वही निर्णायक है। अगर सत्संग है वहां, अगर सत्य को उपलब्ध हुआ व्यक्ति मौजूद है वहां, तो तुम्हारा हृदय तत्क्षण समर्पित हो जाएगा––तत्क्षण! हृदय को पता है, हृदय को ही पता है! बुद्धि को कुछ भी पता नहीं है। बुद्धि अंधी है; अंधेरे में टटोलती है। हृदय के पास आंखें हैं प्रेम की। हृदय को अनुभव हो जाता है। बस, फिर पड़ गयी भांवर, सत्संग शुरू हुआ, बंधा अनंत से नाता! यात्रा शुरू हुई! इसमें जितने डूबोगे, उतनी भक्ति निखरेगी।

सत्संग में डूबने से भक्ति निखरती है। फिर जब भक्ति अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच जाती है, तो भगवान की उपलब्धि होती है।

ये तीन सीढ़ियां समझ लो। सत्संग से शुरुआत है, भक्ति में मध्य है, भगवान में अंत है। मगर पहचान होती है हृदय से।

साक़ी की चश्मे-मस्त का क्या कीजिये बयान
इतना सरूर था कि मुझे भी सरूर था

कभी किसी परमात्मा के प्यारे को देखोगे, उसकी आंखों में झांकोगे, तो उसको इतना नशा है कि उसकी आंखों में देखकर तुम्हें नशा हो जाएगा।

साक़ी की चश्मे-मस्त का क्या कीजिये बयान
इतना सरूर था कि मुझे भी सरूर था

शराब पीनी भी नहीं पड़ेगी; साकी की आंखों में देखी लहराती शराब कि कुछ-न-कुछ नशा तुम पर भी छा जाएगा।

ज़ाहिद मगर इस रम्ज़ से आगाह नहीं है
सिजदा वही सिजदा है कि जो नंगे-जबीं है

तथाकथित धार्मिकों को कुछ पता नहीं है कि असली सिजदा, असली प्रार्थना क्या है? जहां माथा अपने-आप झुक जाए; सिर्फ झुके ही नहीं, मिट ही जाए! मंदिरों और मस्जिदों में तुम माथा झुका रहे हो, वह केवल आदत है, डर है, संस्कार है, भाव नहीं। और जहां भाव नहीं है वहां भक्ति कैसी? जब भाव से झुकता है माथा तो फिर उठता ही नहीं।

जिस रंग में देखो उसे वो पर्दानशीं है

और इस पे ये पर्दा है कि पर्दा ही नहीं है

जरा पहचान होने लगे, या किसी पहचानवाले से पहचान होने लगे, कि तुम पाओगे कि हर तरफ वही छिपा है। और मजा यह है कि छिपा जरा भी नहीं है। 'जिस रंग में देखो उसे वो पर्दानशीं है'। हर पर्दे के पीछे वही है। 'और इस पे ये पर्दा है कि पर्दा ही नहीं है'। उघड़ा खड़ा है, नग्न खड़ा है परमात्मा।

हर एक मकां में कोई इस तरह मकीं है
पूछो तो कहीं भी नहीं, देखो तो यहीं है

हर मकान में छिपा है। पूछो, तो कहीं भी नहीं, देखो, तो यहीं है। देखने-देखने की बात है, पूछने की नहीं।

कबीर ने कहा : 'लिखा-लिखी की है नहीं, देखा-देखी बात।' देखो! हृदय देखता है, बुद्धि पूछती है।

हर एक मकां में कोई इस तरह मकीं है
पूछो तो कहीं भी नहीं, देखो तो यहीं है

मुझसे कोई पूछे तेरे मिलने की अदाएं
दुनिया तो ये कहती है कि मुमकिन ही नहीं है

किसी प्रेमी से पूछो, दुनिया से मत पूछना। दुनिया को क्या पता? तुम परमात्मा के संबंध में उससे पूछना, जिसकी आँखों में तुम्हें परमात्मा का सरूर मिले; जिसके आसपास परमात्मा की शराब बहती हुई मालूम पड़े; जिसके पास बैठकर तुम डरने लगो कि कहीं डूब तो न जाओगे; जिसके पास बाढ़ आने लगे; जिसके पास तुम्हारा हृदय एक नयी उमंग से आंदोलित हो उठे; जिसके पास तुम्हारा हृदय एक नयी तरह से धड़कने लगे, साँस एक नयी शैली ले ले; जिसके पास बैठकर थोड़ी देर को तुम दुनिया को भूल ही जाओ, किसी और जगत के द्वार खुल जाएं, कोई रहस्य के पर्दे उठें, उससे पूछना! और पूछना क्या, देखना। क्योंकि देखना ही पूछने की असली बात है। पूछे-पूछे से कुछ भी न होगा। देखना।

सत्संग दर्शन है सद्गुरु का।

और कृष्ण ने उद्धव से जो कहा, ठीक ही कहा : मेरा ऐसा निश्चय है कि सत्संग और भक्तियोग को छोड़कर संसार-सागर से पार होने का और दूसरा उपाय नहीं है।

सत्संग से शुरुआत, भक्ति में मध्य, भगवान में पूर्णाहुति।

तीसरा प्रश्न : भगवान!

प्रभु, जग से नाता तोड़ी रे
मैं तुझसे नाता जोड़ी

जहां बिठाए बैठ रहूं मैं
जो दे-दे सो खा लूं
जो पहनाए पहन रहूं मैं
जहां सुलाए सो लूं
प्रभु, जग से नाता तोड़ी रे!

आर्या! जग भी उसका ही है। जग भी उसने ही दिया है। नाता तोड़ने की जरूरत ही नहीं है; बस उससे नाता जोड़ो! किसी से नाता तोड़ो मत; उससे नाता जोड़ो जरूर। उससे नाता जुड़ जाए, बस यही काफी है। फिर तुम अचानक पाओगे कि सब में वही व्याप्त है। जग में भी वही व्याप्त है। यह सारा विस्तार उसी का है। इस विस्तार में कहीं भी कुछ भ्रांति नहीं है। भ्रांति है हमारे अहंकार में। भ्रांति है हमारे मन में।

माया जगत का नाम नहीं है, माया हमारे मन का फैलाव है। जगत तो उसका ही है। लेकिन मन ने एक फैलाव कर लिया है, जो झूठा है। जो नहीं है, उसे देख लिया है, जो है, उसे अनदेखा कर दिया है। असार को पकड़ लिया है, सार को छोड़ दिया है।

जग से नाता नहीं तोड़ना है। यही तो मेरी बुनियादी शिक्षा है। जग उसका ही प्रगट रूप है। जग में वही छिपा खड़ा है। जग को उसकी प्रतिमा समझो।

आर्या, तेरे मन में पुराना संस्कार होगा गहरा। सदा से यह कहा गया है कि संसार से नाता तोड़ो और परमात्मा से नाता जोड़ो। मैं कहता हूं : सिर्फ परमात्मा से नाता जोड़ो, और तुम पाओगे कि संसार भी उसका ही रूप है। नाता तोड़ने की बात ही क्या करनी, यहां कोई दूसरा है ही नहीं। इसलिए मैं कहता हूं : घर छोड़कर मत जाओ, पत्नी भी मत छोड़ो, बच्चे भी मत छोड़ो, अन्यथा जल्दी ही उपद्रव शुरू हो जाएगा।

अब जैसे आर्या ने कहा कि प्रभु जग से नाता तोड़ी रे! अब जल्दी ही इसके मन में भाव उठने लगेंगे कि अब क्या पति, क्या बच्चे, क्या घर! सब छोड़ो-छाड़ो, सब झंझट है। हालांकि तू कह रही है—

जहां बिठाए बैठ रहूं मैं
जो दे दे सो खा लूं
जो पहनाए पहन रहूं मैं
जहां सुलाए सो लूं
प्रभु, जग से नाता तोड़ी रे!

...फिर प्रभु, फिर यह काहे के लिए, जग से नाता किसलिए तोड़ रही है? यही तो उसने जगह चुनी है तुम्हारे लिए। सोओ, खाओ, पिओ—यह उसका ही इंतजाम है।

मेरे पास रोज ऐसा मौका आ जाता है। कोई आ जाता है, वह कहता कि हम

तो सब आप पर छोड़ दिये, अब जो कहेंगे आप, वही हम करेंगे। और मैं कहता हूं : भाई, अपने घर जाओ ! वह कहते हैं कि हम जा ही नहीं सकते ! आप जो कहेंगे, वही हम करेंगे ! हम तो सब आप पर ही छोड़ दिये हैं ! अब हम कहीं जानेवाले नहीं हैं ! अब तो आपके चरणों में हैं, अब तो आपकी मर्जी हमारी मर्जी। और मैं उनसे कह रहा हूं कि भाई मेरे, तुम अपने घर जाओ ! अब तो यह हो ही नहीं सकता, हम तो सब आप पर ही छोड़ दिये हैं ! अब इन्हें कोई कैसे समझाए कि तुम क्या कह रहे हो ? अगर मुझ पर ही छोड़ दिये हो तो मैं कह रहा हूं : घर जाओ। वह कहते हैं, घर इत्यादि हमें जाना नहीं !

पुराना एक संस्कार है। संन्यास का अर्थ था : सब छोड़ दो, तब परमात्मा मिलेगा। संन्यास का पुराना अर्थ था : संसार और परमात्मा में विरोध है। यह बात इतनी अज्ञानपूर्ण है; अगर विरोध ही है तो संसार हो ही नहीं सकता। अगर परमात्मा संसार का विरोधी है तो बनाए क्यों ? तो चलने क्यों दे ? तो इसे सजाए क्यों ? इतने फूल क्यों खिलाए ? इतने चांद-तारे क्यों बनाए ? नये-नये बच्चों को जन्म क्यों देता चला जाए ?

तुम अगर किसी चीज के विरोध में हो तो तुम बनाना तो बंद ही कर दोगे न ? अगर कोई कवि कविताओं के विरोध में है तो कविताएं रचेगा नहीं। और कोई चित्रकार अगर चित्रों के विरोध में है तो क्यों सिर फोड़ेगा ? क्यों तूलिका उठाकर और कैनवॅस पर रंग पोतता रहेगा ? पागल है ? परमात्मा संसार को सजाए ही चला जाता है, नितनूतन किये जाता है। परमात्मा संसार के विरोध में नहीं है। परमात्मा तो संसार में पूरा-का-पूरा लिप्त है, डूबा हुआ है--आकंठ डूबा हुआ है। यह उसकी कृति है। जैसे नर्तक अपने नृत्य में डूबा होता है, ऐसा परमात्मा इस जगत में डूबा हुआ है।

लेकिन पंडितों ने, पुरोहितों ने एक विरोध खड़ा किया, संसार और परमात्मा के बीच एक द्वंद्व खड़ा किया। मैं तुम्हें द्वंद्व से मुक्त करना चाहता हूं। मै तुम्हें निर्द्वंद्व देखना चाहता हूं। कोई विरोध मत खड़ा करो। अगर परमात्मा को यह जगत स्वीकार है तो तुम कौन परमात्मा से ऊपर उठकर जगत को अस्वीकार करने की चेष्टा कर रहे हो ? उसे स्वीकार है तो तुम्हें भी स्वीकार हो। यही तो अर्थ है। जहां बिठाए वहां बठ रहो; जहां सुलाए वहां सो लो; जो पहनाए वह पहन लो। अगर उसने मां बनाया है तो मां, और अगर पति बनाया है तो पति, और पत्नी बनाया तो पत्नी, और उसने घर दिया तो घर। जो उसने दिया है, इसे सरल भाव से स्वीकार कर लो--धन्यवाद-पूर्वक ! यह उसका ही है। इसको प्रार्थनापूर्वक जिओ। वह है असली क्रांति ! पति में परमात्मा देखो, पत्नी में परमात्मा देखो। यह है असली क्रांति ! वह जो बेटा तुम्हारे घर में पैदा हुआ है, उसका ही रूप है। उसकी ही एक किरण उतरी तुम्हारे गर्भ से।

उसमें देखो परमात्मा को !

धर्म के नाम पर बहुत अनाचार हुआ है। सबसे बड़ा अनाचार हुआ कि लाखों लोग अपने घर-द्वार छोड़कर भाग गये। अगर किसी और कारण भागते तो हमने उनकी खूब निंदा की होती। लेकिन उन्होंने बहाना ऐसा खोजा कि निंदा भी लोग न कर सके। हम उनका सम्मान करने में लग गये और यह भूल ही गये--उनकी पत्नियों का क्या हुआ, उनके बच्चों का क्या हुआ ? उनके बच्चे भिखमंगे हो गये, अनाथ हो गये। उनको पत्नियां वेश्याएं हो गयीं। इस सबका हमने हिसाब नहीं रखा। बस एक आदमी संन्यासी हो गया, हम उसके स्वागत-सम्मान में लग गये, शोभायात्रा निकालने में लग गये, यह भूल ही गये कि वह जो कर आया है, उसके परिणाम क्या हुए ? लाखों लोगों ने घर छोड़ा। लाखों घर बर्बाद हुए। इस बर्बादी, इस दुख का जुम्मेदार कौन है ?

मेरे संन्यास की धारणा, आर्या, बिलकुल अलग है। मेरे संन्यास की धारणा है : सब उसका है ! सब में वही है ! उसका ही मानकर, उसका ही अंगीकार करके, संसार को जिओ--और एक क्रांति हो जाएगी। जिओ संसार में और फिर भी तुम पाओगे : संसार के बाहर हो। जल में कमलवत !

कोई ये कह दे गुलशन-गुलशन
लाख बलाएं, एक नशेमन

क़ामिल रहबर, कातिल रहज़न
दिल-सा दोस्त न दिल-सा दुश्मन

बस एक ही दोस्त है, एक ही दुश्मन है--दिल, तुम्हारा मन। न कहीं और कोई दोस्त है, न कहीं कोई दुश्मन है। छोड़ो, बदलो कुछ भी तो बस इस मन को बदलो।

और यहां फूल ही फूल हैं। जरा दामन फैलाओ और फूलों से भर लो।

कोई ये कह दे गुलशन-गुलशन
लाख बलाएं, एक नशेमन

कामिल रहबर, क़ातिल रहज़न
दिल-सा दोस्त न दिल-सा दुश्मन

फूल खिले हैं गुलशन-गुलशन
लेकिन अपना-अपना दामन

फूल तो खिले हैं सब तरफ, बात अगर कुछ है तो अपने-अपने दामन को फैलाने की। कोई अपने दामन में फूल भर लेता है, सुवासित हो जाता है उसका जीवन। और कोई अपने दामन को सिकोड़े खड़ा रहता है और फूलों से वंचित रह जाता है।

फूल खिले हैं गुलशन-गुलशन
लेकिन अपना-अपना दामन

उम्रें बीतीं, सदियां गुजरीं
है वही अब तक अक़्ल का बचपन

इश्क़ है प्यारे, खेल नहीं है
इश्क़ है कारे-शीशा-ओ-आहन

आज न जाने राज़ ये क्या है
हिज्र की रात और इतनी रौशन

आ, कि न जाने तुझ बिन कल से
रूह है लाशा, जिस्म है मदफ़न

कांटों का भी हक़ है कुछ आख़िर
कौन छुड़ाए अपना दामन

ऐसी भावदशा का नाम आस्तिकता है।

कांटों का भी हक़ है कुछ आख़िर
कौन छुड़ाए अपना दामन

अगर कांटा भी कभी दामन में उलझ जाए, तो छुड़ाने की जल्दी मत करना, कांटा भी उसी का है! फूल तो चुनना ही, कांटे को भी अंगीकार कर लेना। क्योंकि फूल ही उसके नहीं हैं, कांटे भी उसके हैं। कभी कोई दुख आ गड़े, उसको भी स्वीकार लेना। और तब तुम चकित होकर पाओगे कि जिस कांटे को स्वीकार कर लिया, वही कांटा फूल बन जाता है। और जिस दुख को भी अहोभाव से अंगीकार कर लिया, वहीं दुख का रूपांतरण हुआ। वहीं सुख का फूल खिल जाता है। और तब विरह की रात भी मिलन की रोशनी से भर जाती है। यह संसार भी परमात्मा से दीप्त हो उठता है!

आज न जाने राज़ ये क्या है
हिज्र की रात और इतनी रौशन!

विरह चल रहा है, लेकिन जिस दिन भक्त सब को स्वीकार कर लेता है--बेशर्त, निरपवाद--कांटे भी, फूल भी; रात भी, दिन भी; जीवन भी, मौत भी--उस दिन यह हिज्र की रात, यह विरह की रात मिलन की रोशनी से भर जाती है।

इसलिए आर्या, तेरा भाव ठीक है, लेकिन और ठीक करना पड़े! भाव में थोड़ी-सी कठिनाई है, उस कठिनाई को भी गिरा दे! जग स्वीकार ही करना है तो फिर बेशर्त स्वीकार कर लो। फिर अपनी मर्जी को बीच में लाओ ही मत। मर्जी आयी कि अहंकार आया। अहंकार आया कि परमात्मा से दूरी हुई। मर्जी गयी, अहंकार गया। अहंकार गया कि सिर्फ परमात्मा है और कुछ भी नहीं--न कोई जग है, न कोई मैं है, वही है! पूछो, तो पता नहीं चलता, देखो, तो दिखायी पड़ता है।

पांव उठ सकते नहीं मंज़िले-जानां के ख़िलाफ़
और अगर होश की पूछो तो मुझे होश नहीं

हुस्न से इश्क़ जुदा है न जुदा इश्क़ से हुस्न
कौन-सी शै है? जो आग़ोश-दर-आग़ोश नहीं

यहां कोई चीजें अलग-अलग नहीं हैं।

- हुस्न से इश्क़ जुदा है न जुदा इश्क़ से हुस्न

न तो यहां सौंदर्य प्रेम से अलग है और न प्रेम सौंदर्य से अलग है। यहां रात-दिन साथ-साथ हैं। यहां प्रेमी और प्रेयसी साथ-साथ हैं। यहां भक्त और भगवान साथ-साथ हैं। यहां माया और ब्रह्म साथ-साथ हैं।

पांव उठ सकते नहीं मंजिले-जानां के खिलाफ़
और अगर होश की पूछो तो मुझे होश नहीं

हुस्न से इश्क़ जुदा है न जुदा इश्क़ से हुस्न
कौन-सी शै है? जो आग़ोश-दर-आग़ोश नहीं

मिट चुके जिह्न से सब यादे-गुज़श्ता के नुक़ूश
फिर भी इक चीज़ है ऐसी कि फ़रामोश नहीं

कभी उन मदभरी आंखों से पिया था इक जाम
आज तक होश नहीं, होश नहीं, होश नहीं

देखो, ये मदभरी आंखें तुम्हें सब तरफ से तलाश रही हैं।

कभी उन मदभरी आंखों से पिया था इक जाम
आज तक होश नहीं, होश नहीं, होश नहीं

इश्क़ गर हुस्न के जल्वों का है मरहूने-करम
हुस्न भी इश्क़ के एहसां से सुबक़दोश नहीं

और निश्चित ही प्रेम सौंदर्य का बड़ा आभारी है, लेकिन सौंदर्य भी प्रेम का आभारी है। भक्त भगवान का आभारी है, सच, लेकिन भगवान भी भक्त का आभारी है। क्योंकि न तो भक्त को भगवान के बिना चैन है और न भगवान को भक्त के बिना चैन है। जुड़े हैं, संयुक्त हैं। यह सारा अस्तित्व इकट्ठा है। यहां कोई चीज अलग-अलग नहीं है। यहां भेद न करो—जगत अलग और परमात्मा अलग; और मुझे परमात्मा को खोजना है तो जगत को छोड़ना पड़ेगा—ऐसे गणित मत बिठाओ। ये गणित भ्रांत हैं। तुम जहां हो, जैसे हो, वैसे ही समर्पित हो जाओ। जैसा रखे, वैसे ही रहो। जैसा जिआए, वैसे ही जिओ।

जरा इस अनूठी कीमिया का उपयोग तो करो! सब अपनी मर्जी छोड़ दो और अचानक तुम पाओगे—सब गये बोझ! पहाड़ जैसे बोझ थे, गिर गये, निर्भार हुए। इतने निर्भार कि चाहो तो उड़ जाओ आकाश में। जमीन का गुरुत्वाकर्षण जैसे काम न करे। करके तो देखो! कुछ करना नहीं है और—जहां हो, जैसे हो, वैसे ही स्वीकार कर लो! यही उसकी मर्जी है—और उसकी मर्जी, मेरी मर्जी!

आखिरी प्रश्न : यदि सब कुछ परमात्मा के हाथ में है, एक पत्ता भी उसकी मर्जी के बगैर नहीं हिलता, तो फिर व्यक्ति की स्वतंत्रता बेमानी हो जाती है। कृपया समझाएं।

मैत्रेय! व्यक्ति है ही नहीं, कैसी स्वतंत्रता? व्यक्ति हो तो स्वतंत्रता। समष्टि है। व्यक्ति भ्रांति है।

व्यक्ति ऐसे ही है जैसे सागर में एक लहर। लहर सोचे कि मैं स्वतंत्र हूं, थोड़ी देर मान सकती है और थोड़ी देर को भ्रांति भी बन सकती है स्वतंत्र होने की। क्योंकि लहर उठती है आकाश की तरफ...उत्तुंग लहर! ...चांद-तारों को छूने को बढ़ती है, लगता है कि स्वतंत्र हूं, सागर से स्वतंत्र हूं, देखो मैं अलग हूं; और यह भी लगता है कि और लहरों से भी मैं अलग हूं—कोई लहर गिर रही, कोई लहर उठ रही, कोई मर रही, कोई जवान, कोई बढ़ रही; किसी दूसरी लहर के गिरने से मैं तो नहीं गिर रही हूं—तो निश्चित ही अलग हूं। किसी और लहर के बढ़ने से मैं तो नहीं बढ़ रही हूं, निश्चित ही अलग हूं।

लेकिन क्या सच में ही लहर अलग है? लहर की कोई स्वतंत्रता है? भ्रांति है। अहंकार है। लहर सागर से एक है। और बाकी सारी लहरें भी सागर से जुड़ी हैं। सारी लहरें सागर की! सागर लहरा रहा है। लहरें कहां हैं? सागर लहरा रहा है! लहरें कहां हैं?

परमात्मा लहरा रहा है; व्यक्ति कहां है? व्यक्ति भ्रांति है। मान लेना कि मैं हूं, तो फिर सवाल उठता है स्वतंत्रता का। कैसी स्वतंत्रता?

और तुम यह मत सोचना कि मैं यह कह रहा हूं कि तुम परतंत्र हो। क्योंकि जब स्वतंत्रता ही नहीं तो कैसी परतंत्रता? स्वतंत्रता-परतंत्रता तो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। न यहां कोई स्वतंत्र है—क्योंकि अलग नहीं—न यहां कोई परतंत्र है; क्योंकि कोई 'पर' ही नहीं, तो परतंत्र कैसे? तो न कोई स्वतंत्रता है न कोई परतंत्रता है। परतंत्रता-स्वतंत्रता के लिए दो का होना जरूरी है। दोनों के लिए दो का होना जरूरी है। अगर कोई भी न हो, तुम अकेले होओ, तो क्या तुम कहोगे मैं स्वतंत्र हूं? किससे स्वतंत्र, कैसे स्वतंत्र? और अगर तुम अकेले हो और कोई भी नहीं, तो क्या तुम कह सकोगे मैं परतंत्र हूं? कैसी परतंत्रता? दूसरा है ही नहीं। एक का आवास है। एक में ही लहरें उठ रही हैं। एक ही अनेक-जैसा भासता है।

इसलिए, सब स्वतंत्रता भ्रांति है, सब परतंत्रता भ्रांति है। छोड़ो स्वतंत्रता, छोड़ो परतंत्रता, छोड़ो दोनों का मूल आधार—अहंकार! और अहंकार के जाते ही जो घटता है—प्रसाद, जो महोत्सव—उसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते! उस प्रसाद की तुम कोई धारणा भी नहीं बना सकते। क्योंकि यह स्वतंत्रता-परतंत्रता यह अहंकार—यही तो तुम्हारे सारे कष्ट हैं, सारे नरक का कारण हैं। इन्हीं में तो, तुम उलझे हो। और कौन कब स्वतंत्र हो पाता है? सिकंदर भी स्वतंत्र नहीं है। मौत आती है तो परतंत्र सिद्ध हो जाता है। और परतंत्र से परतंत्र आदमी भी परतंत्र नहीं है।

यूनान में एक विचारक हुआ—एपिटेक्टस। उसको यूनान के सम्राट ने बुलाया और कहा कि मैंने सुना है कि तुम कहते हो कि तुम्हें कोई परतंत्र नहीं कर सकता, यह बात गलत है। एपिटेक्टस ने कहा : तो करके दिखाएं, महाराज! बड़ी हिम्मत की चुनौती थी! फकीर, नंगा फकीर, उसने कहा : तो करके दिखाएं! वह सम्राट भी बहुत दुष्ट प्रकृति का था। उसने जल्लाद बुला रखे थे। उसको बंधवा दिया हथ-कड़ियों से। कहा : अब? लेकिन उसने कहा : मैं परतंत्र नहीं हूं। जिसको आपने परतंत्र किया है, यह तो देह है, यह मैं नहीं।

उसने जल्लादों को कहा, इसकी टांग उखाड़ दो। तो जल्लाद उसकी टांग मरोड़कर तोड़ने लगे। उसने कहा कि देखो, तोड़ तो रहे हो, लेकिन अभी तक मैं महाराज के कुछ काम पड़ जाता था, अब आगे काम न पड़ सकूंगा — वह ख्याल रखना—मजे से तोड़ो! टांग उसकी तोड़ी जा रही है, लेकिन वह ऐसे कह रहा है जैसे कि कोई चीज किसी और की तोड़ी जा रही है। कहा : मजे से तोड़ो! अभी तो कुछ काम पड़ जाता था, अब आगे काम न पड़ सकूंगा—वह ख्याल रखना। उतना मैं सावधान किये देता हूं।

टांग तोड़ दी गयी, एपिटेक्टस हंसता रहा। एपिटेक्टस ने कहा कि तुम मेरी देह को चाहो तो जंजीरों में डाल दो, कारागृह में डाल दो, लेकिन मुझे तुम कैद न कर

सकोगे। मैं स्वतंत्रता हूं।

तो एक एपिटेक्टस है जो कहता है, मैं स्वतंत्रता हूं—कारागृह में पड़कर, टांग तोड़ी जा रही, जंजीरों में बंधा हुआ ! और एक सिकंदर है, जो मरते वक्त अनुभव करता है कि मेरा सारा साम्राज्य, सारा धन, सब व्यर्थ गया ! मैं मर रहा हूं ऐसे ही जैसे एक कुत्ता मरता है।

फर्क क्या ?

दोनों ही भ्रांतियां हैं। न तो कोई परतंत्र है, न कोई स्वतंत्र है। परमात्मा है—और एक है। तुम जो भ्रांति बनाना चाहो, बना सकते हो। अगर तुम्हें स्वतंत्रता की भ्रांति बनानी है तो शरीर से अपने को भिन्न मान लेना, तो स्वतंत्रता की भ्रांति पैदा हो जाएगी। अगर परतंत्रता की भ्रांति बनानी है, शरीर के साथ अपना तादात्म्य कर लेना, तो परतंत्रता की भ्रांति पैदा हो जाएगी। लेकिन एक ही है। दो होते तो स्वतंत्रता-परतंत्रता हो सकती थी। अगर तुम ठीक से समझना चाहो तो यह अस्तित्व एक परस्परतंत्रता है। न स्वतंत्रता, न परतंत्रता, परस्परतंत्रता, 'इंटरडिपेन्डेंस'। सब एक-दूसरे पर निर्भर है।

और अंतिम विश्लेषण में एक ही है। तुमने सांस ली, जब सांस तुम्हारे भीतर गयी तो तुम्हारी सांस हो गयी। और तुमने कहा, मेरी श्वांस है। और घड़ीभर पहले किसी और की श्वांस थी। और फिर क्षण-भर बाद तुम्हारी श्वांस बाहर गयी, किसी और ने ली, उसकी श्वांस हो गयी। तुमने वृक्ष से एक नाशपाती तोड़कर खायी। अभी तक बाहर थी, अलग थी; दो दिन बाद पच गयी, खून बन गयी, मांस-मज्जा बन गयी, तुम्हारा अंग हो गयी। एक दिन तुम मर जाओगे, तुम्हारी कब्र पर एक नाशपाती का झाड़ ऊगेगा, उसमें एक नाशपाती लगेगी, उसमें तुम्हारा लहू, मांस-मज्जा, सब खाद बन जाएंगे। हो सकता है तुम्हारा नाती-पोता उसको खाए—तो बाप-दादों को पचा गया !

सब परस्पर निर्भर है; सब जुड़ा है।

अंग्रेजी के महाकवि टेनिसन ने कहा है : घास के एक पत्ते को भी हिलाओ, दूर-दूर के चांद-तारे हिल जाते हैं। जैसे तुमने मकड़ी के जाले को कभी हिलाकर देखा ? एक जरा-सा धागा हिलाओ, सारा जाला हिल जाता है। एक पत्ता तोड़ो, सारा अस्तित्व कंप जाता है।

इसलिए तो महावीर ने अहिंसा की बात कही। पत्ता भी मत तोड़ो। क्योंकि यहां एक ही है।

इसलिए तो जीसस ने कहा : दुश्मन को भी क्षमा कर दो। क्योंकि दुश्मन भी दूसरा नहीं, तुम ही हो। दुश्मन से भी ऐसा ही प्रेम करो जैसा तुम अपने से करते हो, क्योंकि तुम और दुश्मन ऊपर-ऊपर अलग दिखायी पड़ रहे हैं, भीतर-भीतर एक हैं।

सारे धर्मों का सार क्या है ?

एक छोटा-सा शब्द कि यह अस्तित्व अद्वैत है। फिर उस अद्वैत के आधार पर सारे अनुशासन विकसित हुए हैं—अहिंसा का, प्रार्थना का, ध्यान का। सारे अनुशासन अद्वैत की धारणा से निकले हैं। अद्वैत की गंगोत्री से सारी गंगाएं विचार की निकली हैं। मगर मूलभाव समझ लेना चाहिए। यहां न कोई स्वतंत्र है, न कोई परतंत्र है। अगर तुम ऊपर-ऊपर से देखो, परिधि पर, तो परस्परतंत्रता; और अगर केंद्र पर देखो तो परस्परतंत्रता भी नहीं है, क्योंकि वहां भी क्या परस्पर; दो ही नहीं हैं, एक है।

एक को जान लेना परमात्मा को जान लेना है।

इसलिए तो बार-बार कहा जाता है कि अहंकारी नहीं जान पाएगा। क्योंकि अहंकारी मानकर चल रहा है कि मैं अलग हूं; उसने दो तो मान ही लिये। और दो के मान लेने में ही भ्रांति खड़ी हो गयी, दीवाल खड़ी हो गयी। मैं पृथक हूं, यही अज्ञान है। मैं पृथक नहीं हूं, यही ज्ञान की उद्घोषणा है; अहं ब्रह्मास्मि !

उद्दालक ने अपने बेटे श्वेतकेतु को कहा : 'तत्त्वमसि, श्वेतकेतु !' तू वही है। जरा भी भिन्न नहीं। रंचमात्र भिन्न नहीं।

इस भाव में डूबो। इस भाव में गहरे उतरो। इस भाव में जितनी गहराई बढ़ेगी, उतना ही सत्संग। जितना गहरा सत्संग, उतनी भक्ति। जितनी भक्ति, उतना भगवान करीब।

दूरी नहीं है : बस, जरा साहस चाहिए—अपने को छोड़ने का साहस !

मनुष्य है स्वयं को अतिक्रमण करने की अभीप्सा। जगाओ उस अभीप्सा को। जागो ! वह अभीप्सा जगे, ऐसी जगे कि लपटें बन जाएं और उसमें तुम जलकर राख हो जाओ ! इधर तुम राख हुए कि उधर तुम्हारे भीतर से नये का आविर्भाव हुआ—शाश्वत का, अमृत का ! अमृतस्य पुत्र !

आज इतना ही।
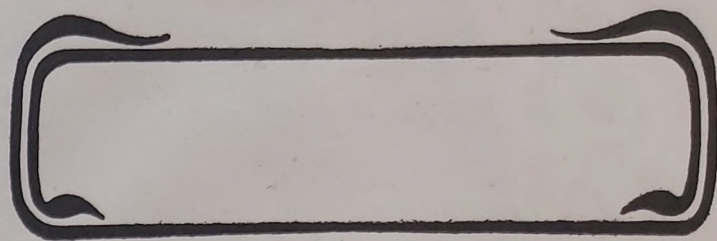
तुम जानत तुम देत जनाई

तीसरा प्रवचन; १३ सितम्बर १९७८; श्री रजनीश आश्रम, पूना.

जोगिन भइउं अंग भसम चढ़ाय ।
कब मोरा जियरा जुड़इहौ आय ।।
अस मन ललकै, मिलौं मैं धाय ।
घर-आंगन मोहिं कछु न सुहाय ।।
अस मैं ब्याकुल भइउं अधिकाय ।।
जैसे नीर बिन मीन सुखाय ।।
आपन केहि तें कहौं सुनाय ।
जो समुझौं तौ समुझि न आय ।।
संभरि-संभरि दुख आवै रोय ।
कस पापी कहं दरसन होय ।।
तन मन सुखित भयो मोर आय ।
जब इन नैनन दरसन पाय ।।
जगजीवन चरनन लपटाय ।
रहै संग अब छूटि न जाय ।।

अब की बार तारु मोरे प्यारे, बिनती करिकै कहौं पुकारे ।
नहिं बसि अहै केतौ कहि हारे, तुम्हरे अब सब बनहि संवारे ।।
तुम्हरे हाथ अहै अब सोई, और दूसरो नाहीं कोई ।
जो तुम चहत करत सो होई, जल थल महं रहि जोति समोई ।।
काहुक देत हौ मंत्र सिखाई, सो भजि अंतर भक्ति दृढ़ाई ।
कहौं तो कछु कहा नहिं जाई, तुम जानत, तुम देत जनाई ।।
जगत भगत केते तुम तारा, मैं अजान केतान बिचारा ।
चरन सीस मैं नाहीं टारौं, निर्मल मूरत निरत निहारौं ।।
जगजीवन कां अब विस्वास, राखहुं सतगुरु अपने पास ।।

मरके भी कब तक निगाहे-शौक़ को रुसवा करें
ज़िन्दगी तुझको कहां फेंक आएं, आख़िर क्या करें

ज़ख़्मे-दिल मुमकिन नहीं तो चश्मे-दिल ही वा करें
वो हमें देखें न देखें हम उन्हें देखा करें

ऐ मैं क़ुर्बां मिल गया अर्ज़े-मोहब्बत का सिला
हां उसी अंदाज़ से कह दो, तो फिर हम क्या करें

देखिए क्या शोर उठता है हरीमे-नाज़ से
सामने आईना रखकर खुद को इक सिज्दा करें

हाए ये मजबूरियां, महरूमियां, नाकामियां
इश्क़ आख़िर इश्क़ है, तुम क्या करो, हम क्या करें

प्रेम का आनंद है, प्रेम की पीड़ा भी। प्रेम समाधि है, प्रेम संताप भी। संताप से सीढ़ियां बनती हैं समाधि के मंदिर की। प्रेम की पीड़ाओं पर ही पग धर-धर कर प्रेम के आनंद तक पहुंचना होता है। जो कीमत चुकाने को राजी नहीं है, वह मंदिर तक नहीं पहुंच पाएगा। और मंदिर की सीढ़ियां पत्थरों से नहीं बनी हैं, पीड़ाओं से बनी हैं। तुम्हारा धन, तुम्हारा पद, तुम्हारी प्रतिष्ठा, कोई भी तुम्हें उसके मंदिर तक न ले जाएगी, जब तक कि तुम हृदय को जलाकर राख करने को राजी न हो जाओ।

लेकिन उसके मार्ग पर झेली गयी पीड़ा भी अहोभाग्य है ! उसके विपरीत सुख भी मिले तो दुर्भाग्य, उसकी खोज में दुख भी मिले तो सौभाग्य। उसे गंवा कर जिन्दगी फूलों से भी भर जाए तो आज नहीं कल गन्दगी और बदबू के सिवा कुछ भी न पाओगे। उसे खोजते हुए जिन्दगी कांटों से भी भर जाए तो हर कांटा फूल हो जाएगा——अंततः फूल हो जाएगा। उसके मार्ग पर फूल ही हैं। कांटे-जैसे जो मालूम होते हैं, वे भी अंततः फूल ही सिद्ध होते हैं। प्रेम की पीड़ा के लिए जो तत्पर है झेलने को, वही प्रेम के मंदिर में छिपे परमात्मा को खोज पाता है।

त्यागी, व्रती भी दुख झेलता है, मगर उसके दुख में गणित है। प्रेमी भी दुख झेलता है, पर उसके दुख में गणित नहीं, काव्य है। त्यागी दुख झेलता है, मगर उसका दुख रूखा-सूखा है। प्रेमी भी दुख झेलता है, मगर उसके दुख में हृदय की रसधार बहती है। प्रेमी का दुख हरा-भरा है। ज्ञानी का दुख आरोपित है। ऊपर से थोपा गया है। प्रेमी का दुख हृदय से उमगता है। और वही भेद है। और भेद बड़ा है। ऐसा भेद जिससे फिर सारे भेद पड़ जाते हैं।

त्यागी, ज्ञानी दुख झेलता है, वे दुख सतह पर होते हैं। कोई कांटों की सेज पर सोया है। तो देह पर कांटे चुभते हैं। और किसी ने उपवास किया है। तो पेट भूख की आग से झुलसता है। और कोई रात भर जागता रहा है, तो उसकी आँखें थकी हैं। लेकिन यह सब ऊपर-ऊपर है। प्रेमी का दुख हार्दिक है। कांटा हृदय में चुभता है, भूख हृदय में अनुभव होती है। उदासी, विषाद हृदय के केन्द्र में उमगता है। प्रेमी का दुख आत्मिक है।

और निश्चित ही जो आत्मिक दुख उठाने को तैयार है, उसने कीमत चुकायी, उसने अपने जीवन को यज्ञ बनाया। जो जीवन को यज्ञ बना लेते हैं, वे ही पहुंचते हैं।

वो काफ़िर आशना, नाआशना यूं भी है और यूं भी
हमारी इब्तिदा-ता-इन्तिहा यूं भी है और यूं भी

तअज्जुब क्या अगर रस्मे-वफ़ा यूं भी है और यूं भी
कि हुस्नो-इश्क़ का हर मसलआ़ यूं भी है और यूं भी

कहीं जर्रा कहीं सहरा कहीं क़तरा कहीं दरिया
मोहब्बत और उसका सिलसिला यूं भी है और यूं भी

वो मुझसे पूछते हैं, एक मक़सद मेरी हस्ती का
बताऊं क्या कि मेरा मुद्दआ़ यूं भी है और यूं भी

हम उनसे क्या कहें ? वो जानें उनकी मसलहत जाने
हमारा हाले-दिल तो बरमला यूं भी है और यूं भी

न पा लेना तिरा आसां न खो देना तिरा मुश्किल
मुसीबत में ये जाने-मुब्तला यूं भी है और यूं भी

उसे पाना बड़ा कठिन है। और उसे खो देना बड़ा आसान है। उसकी तरफ चलना बड़ा कठिन, उससे दूर जाना बड़ा आसान। उसके पास तक चलो, उसके करीब बढ़ो, तो भी दुख है और उससे दूर जाओ तो भी दुख है। हमारी इब्तिदा-ता-इन्तिहा यूं भी है और यूं भी। उससे दूर जाओ तो दुख है——मगर कोरा दुख, नपुंसक दुख, कांटे-ही-कांटे जिनमें फूल कभी नहीं लगते——उसके पास चलो तो भी दुख है। लेकिन बड़ा विधायक दुख। उसी दुख की भूमि में आनंद के फूल खिलते हैं।

उसे चूको तो भी संताप है, तो भी अंधेरी रात है और उसे खोजने चलो तो भी अंधेरी रात है। पर एक भेद है। उसकी तरफ पीठ करो तो अंधेरी रात का फिर कोई अंत नहीं, उसकी तरफ मुंह करके चल पड़ो, अंधेरा कितना ही घना होता चला जाए——जितना अंधेरा घना होता है, उतनी ही सुबह करीब आती है।

कहीं ज़र्रा कहीं सहरा कहीं क़तरा कहीं दरिया
मोहब्बत और उसका सिलसिला यूं भी है और यूं भी

न पा लेना तिरा आसां न खो देना तिरा मुश्किल
मुसीबत में ये जाने-मुब्तला यूं भी है और यूं भी

दुख तो ऐसे भी है, दुख वैसे भी है। लेकिन दुखों-दुखों में भेद है। व्यर्थ के लिए भी आदमी दुख झेलता है, सार्थक के लिए भी दुख झेलता है। इसलिए सभी दुखों को एक ही तराजू पर मत तौल लेना। कोई धन के लिए भी रोता है। और कोई ध्यान के लिए रोता है। दोनों के आंसुओं का एक ही मूल्य मत समझ लेना। यद्यपि विज्ञान के तराजू पर दोनों के आंसू एक जैसे ही हैं। और अगर रसायनविद से पूछोगे तो दोनों के आंसुओं का विश्लेषण भी एक जैसा है। दोनों का स्वाद भी एक जैसा है——खारा। कुछ भेद न बता पाएगा। अगर रसायनविद के पास ले गये किसी भक्त के आंसू, किसी प्रेमी के आंसू और जो धन के लिए रोया था और जो पद के लिए रोया था, उसके आंसू ले गये, तो भेद न बता पाएगा कि कौन-से आंसू प्रेमी के हैं, कौन-से पद के दीवाने के हैं।

लेकिन, अंतर तो है। रसायनशास्त्र न पकड़ पाए तो रसायनशास्त्र की सीमा सिद्ध होती है, अंतर तो है। पद के रास्ते पर भी आदमी रोता है, लेकिन तब

उसके आंसुओं की कोई गहराई नहीं। कोई मूल्य नहीं। उसके आंसुओं में कोई सुगंध नहीं, सुवास नहीं। क्योंकि उसके आंसुओं में कोई प्रार्थना नहीं। उसके आंसू नीचे की तरफ जानेवाले आंसू हैं। उसके आंसू नरक की यात्रा पर चले हैं। और जब कोई उस प्यारे के प्रेम में रोता है, तो आंसू तो आंसू ही जैसे हैं लेकिन यात्रा का पूरा-का-पूरा रूप बदल गया, आयाम बदल गया। अब ये आंसू आकाश की तरफ उठ रहे हैं। अब इन आंसुओं को पंख लग गये हैं। अब ये आंसू स्वर्गीय। अब ये आंसू ऊर्ध्वगामी।

भक्त भी रोता है, आसक्त भी रोता है, मगर भेद ख्याल रखना। वासनाग्रस्त भी नाचता है, प्रभु के प्रेम में डूबा हुआ भी नाचता है; वासना का भी नशा है, प्रार्थना का भी नशा है, पर भेद ख्याल रखना, दुख और दुख एक जैसे ही नहीं होते। लेकिन एक बात तो है ही––परमात्मा के रास्ते पर भी बहुत पीड़ाएं हैं; यद्यपि वे सभी पीड़ाएं धन्यभागियों को उपलब्ध होती हैं।

'जोगिन भइउं अंग भसम चढ़ाय।'

जगजीवन कहते हैं––जोगन हो गयी हूं। रोती हूं, पुकारती हूं, कोई उत्तर भी आता मालूम पड़ता नहीं, पीड़ा सघन होती जाती है, देह पर भी भसम चढ़ा ली है...यह प्रतीक है। भस्म है प्रतीक मृत्यु का। कोई मर जाता है तो राख पड़ी रह जाती है। ऐसे जीते जी मुर्दा हो गयी हूं। देह को तो जान ही लिया कि आज नहीं कल राख हो जाएगी। हो ही जाना है राख तो हो ही गया। जोगिन भइउं अंग भसम चढ़ाय।

प्रतीक को शब्दशः मत पकड़ लेना। कुछ नासमझों ने यही किया है। वे भसम चढ़ाकर बैठ गये हैं। वे सोचते हैं, भसम चढ़ा ली, काम पूरा हो गया। भसम चढ़ाना बड़ा गहरा प्रतीक है। उसका अर्थ है: इस देह को मुर्दा मान लिया। तेरे बिना यह देह मुर्दा है। तेरे बिना यह संसार मुर्दा है। तू आए तो रस आए, तू आए तो जीवन आए, तू आए तो हरियाली हो, तू आए तो फूल खिलें। तेरे बिना सब मौत है। तेरे बिना जीवन नहीं है, मरघट है।

और दूसरी बात ख्याल रखना। जैसे ही परमात्मा की तरफ कोई प्रेम से भरता है, पुरुष मिट जाता है, स्त्री का आविर्भाव हो जाता है। जगजीवन पुरुष हैं, लेकिन भाषा स्त्री की बोलने लगे हैं–– 'जोगिन भइउं अंग भसम चढ़ाय, कि मैं जोगन हो गयी हूं, अंग भसम चढ़ा ली है। प्रेम की भाषा स्त्रैण है पुरुष आक्रामक है। वह परमात्मा की खोज पर भी निकलता है तो ऐसे ही जैसे युद्ध के लिए निकला हो। बैंडबाजा बजाकर, भाले इत्यादि उठाकर। परमात्मा की यात्रा पर भी योद्धा की तरह जाता है। जैसे परमात्मा से कोई जूझना है। पुरुष की भाषा विजय की भाषा

है, स्त्री की भाषा समर्पण की भाषा है। और मजा यह है कि जो समर्पण करना जानते हैं, जीत उनकी है। जो जीतने चले हैं, हार उनकी निश्चित है। सौ प्रतिशत निश्चित है। परमात्मा से लड़ोगे, हारोगे। परमात्मा से हारोगे, जीत जाओगे। प्रेम का सूत्र है: जीत हार से उपलब्ध होती है।

और परमात्मा के साथ तो अगर हमारा कोई भी संबंध हो सकता है, तो प्रेम का ही हो सकता है। और प्रेम का गणित ख्याल रखना, कभी भूल मत जाना। हारना है वहां; अगर जीतना हो, तो हारना होगा। जिस समग्रता से हार जाओगे, उसी परिपूर्णता से जीत का सेहरा तुम्हारे सिर बंधेगा।

'जोगिन भइउं अंग भसम चढ़ाय।
कब मोरा जियरा जुड़इहौ आय।।'

खंड-खंड हो गया है मेरा हृदय। टुकड़े-टुकड़े हो गया है। जैसे दर्पण किसीने पटक दिया हो पत्थर पर। कब आओगे? कब मेरे इस खंड-खंड हृदय को जोड़ दोगे पुनः, कब मुझे फिर एक कर दोगे।

मनुष्य अनेक हो गया है। अनेक उसकी वासनाएं हैं, इसलिए अनेक हो गया है। अनेक उसकी आकांक्षाएं हैं, हर आकांक्षा अलग दिशा में खींचती है। कोई पूरब, कोई पश्चिम, कोई दक्षिण, कोई उत्तर। मनुष्य एक ऐसी बैलगाड़ी है जिसमें सब तरफ बैल जुते हैं। इसीलिए तो जीवन में कोई यात्रा नहीं हो पाती। यात्रा हो तो कैसे हो? एक हिस्सा पश्चिम जा रहा, एक पूरब जा रहा, एक उत्तर, एक दक्षिण। सब एक-दूसरे के विपरीत संघर्ष में रत हैं। ऐसी बैलगाड़ी नहीं चलेगी जिसमें सब तरफ बैल जुते हों! घसिट जाएगी थोड़ी बहुत, अस्थिपंजर टूट जाएंगे, मंजिल नहीं मिलेगी। मगर ऐसा ही आदमी है।

तुमने अपने मन को कभी जांचा, परखा; कभी जाग कर थोड़ा देखते हो? कैसी-कैसी इच्छाएं हैं! और एक-दूसरे के विपरीत! इच्छाओं में एक तारतम्य भी नहीं है। एक संगति भी नहीं है, बड़ी विपरीत इच्छाएं हैं।

जैसे एक आदमी चाहता है कि मुझे सम्मान मिले, मेरे अहंकार की प्रतिष्ठा हो, दुनिया कहे कि मैं कुछ विशिष्ट हूं। एक आकांक्षा। दूसरी तरफ आदमी यह भी चाहता है कि लोग समझें कि मैं विनम्र हूं। लोग कहें कि यह है साधुपुरुष। ऐसा विनम्र कभी देखा नहीं गया। अहंकार का भाव ही नहीं छू गया है। अब ये दोनों इच्छाओं में कशमकश जारी रहेगी। ये एक-दूसरे के विपरीत चलती रहेंगी। एक इच्छा कि दान दूं, बांटूं। लेकिन दूसरी इच्छा है: खूब इकट्ठा करूं। संपदा हो। सुरक्षा हो। अड़चन होगी। एक इच्छा है कि जीवन में नितनूतन नये का आविर्भाव हो। क्योंकि ऊब हो जाती है पुराने से। थक जाता है आदमी पुराने से। तो रोज कुछ नयी घटना घटे। कुछ नयी संवेदना जगे। कुछ नयी प्रतीति हो। एक इच्छा

और दूसरी इच्छा है : सुरक्षा रहे। सुरक्षा न खो जाए।

सुरक्षा पुराने के साथ रहती है। नये के साथ असुरक्षा है। कौन जाने नया कैसा होगा, क्या होगा ? नये का क्या भरोसा ? पुराना जाना-माना है, परिचित है, बहुत दिन साथ रहना हुआ है। पुराने के साथ रहो तो सुरक्षा है, लेकिन ऊब पैदा होती है। नये के साथ रहो तो उत्तेजना होती है, लेकिन खतरा पैदा होता है। और ऐसी अनंत-अनंत इच्छाएं हैं जो एक-दूसरे के विपरीत खड़ी हैं।

तुम अपने मन को ठीक से देखोगे तो तुम ठीक वैसी ही दशा पाओगे जैसा महाभारत के युद्ध में कौरव और पांडव एक-दूसरे के खिलाफ खड़े हैं। तुम्हारे भीतर महाभारत का युद्ध चल रहा है। इस तरफ भी अपने हैं, उस तरफ भी अपने हैं। एक ही व्यक्ति अनेक-अनेक खंडों में बंट गया है। अखंड कैसे होओगे ? वासनाओं में जीकर कोई अखंड नहीं होता। प्रार्थना अखंड करती है। क्योंकि प्रार्थना एक है। परमात्मा अखंड करता है। क्योंकि परमात्मा एक है। एक की आकांक्षा परमात्मा की आकांक्षा है। उस एक का पदार्पण हो जाए... जगजीवन ठीक कहते हैं--

'कब मोरा जियरा जुड़इहौ आय ॥'

मैं तो टूट गया, मैं तो पारे जैसा छितर-बितर हो गया हूं, तुम्हारा परस-स्पर्श न मिले तो मैं फिर इकट्ठा होऊं, इसकी आशा दुराशा मालूम होती है।

लागत अषाढ़ बाढ़ी विरहा की बाढ़
उए अंजनी पहाड़ बही नैनन सौं नदिया.

ह्वै गयी निपूती तै सपूती धरती की गोद
वारे वैस आंकुर पै रीझि गयी बुंदिया

पिया परदेश लागै सूनो-सूनो वेष--
रोवै हीरामनि चूनरी पै धानी रंग अंगिया

हेरि हारो अंगना री टेरि हारो कंगना
निहारि हारो कजरा बुलाय हारी बिंदिया

पुकारते-पुकारते बहुत देर हो गयी है। जन्मों-जन्मों से खोज रहे हैं।

हेरि हारो अंगना री टेरि हारो कंगना
निहारि हारो कजरा बुलाय हारी बिंदिया.

बुरी हार हो गयी है। पराजय में खड़े हैं। टूटे-बिखरे, खंड-खंड, अस्त-व्यस्त, एक खंडहर हो गये हैं। आओ तुम, तो फिर मंदिर बने। उतरो तुम, तो तुम्हारी मौजूदगी फिर टूटे खंडों को निकट ले आए, संघटित कर दे।

'अस मन ललकै, मिलौं मैं धाय।'

मन में ललक तो बहुत है कि मिल जाऊं तुमसे आकर, पर तुम्हारी कृपा न हो

तो क्या हो ? मैं तो बहुत चाहूं कि खोज लूं तुम्हें, लेकिन दूसरी तरफ से हाथ न फैलाया जाए तो मेरे हाथ बड़े छोटे हैं। ललक तो उठती है बहुत, पर मेरी सीमा है--मेरी ललक की भी सीमा है। छोटा-सा दिया है, लपट उठती भी है तो कितनी बड़ी उठेगी ? दीये का तेल भी थोड़ा है, बाती भी छोटी है।

'अस मन मैं ललकै, मिलौं धाय।'

होती तो बहुत ललक है, यह मेरा मन बार-बार प्रज्वलित हो उठता है, क्योंकि दिखायी पड़ रही है सारी व्यर्थता और दिखायी पड़ रहा है सारा अपना विक्षिप्त रूप--टूट गया, खंड-खंड, बिखर गया सब भांति--यह सब दिखायी पड़ रहा है; यह खंडहर हो गया हूं, यह मुझे मालूम पड़ रहा है, तुम आओ तो फिर घर बसे; ललक तो उठती है, पुकारता भी हूं, लेकिन मेरी सीमा है।

'घर-आंगन मोहिं कछु न सुहाय ।।'

अब कुछ भला भी नहीं लगता-- न कोई घर है, न कोई आंगन बचा -- रहनेवाला ही टूट गया, रहनेवाला ही मुर्दा है, मरघट हो गया है सब। किसी तरह ढो रहे हैं। तुम जिंदगी को ढो रहे हो, जी नहीं रहे। जीने की ललक कहां ? जीने की पुलक कहां ? जीने का उत्साह कहां ? जीने की उमंग कहां ? तुम्हारे पैरों में नृत्य तो नहीं। और न तुम्हारे प्राणों में गीत है। बांसुरी कब की नहीं बजी ! कब से स्वर खो गये हैं ! कब से तुम्हारा अपने मूल रूप से मिलन नहीं हुआ ! परदेश भटकते-भटकते, भीख मांगते-मांगते तुम भूल ही गये हो अपनी बादशाहत।

'घर आंगन मोहिं कछु न सुहाय ।।
अस मैं व्याकुल भइउं अधिकाय।
जैसे नीर बिन मीन सुखाय ।।'

और अधिक से अधिक मेरी पीड़ा होती जाती है। पीड़ा का अंत तो दूर, पीड़ा बढ़ गयी। खंड-संगठित हों, यह तो दूर, छोटे-छोटे खंड और छोटे-छोटे खंडों में टूटते जा रहे हैं। विमुक्ति आए, इसका तो सपना भी देखना मुश्किल है, विक्षिप्तता बढ़ती चली जाती है। कभी बैठकर घड़ी भर अपने मन में झांकना और तुम पागल भीड़ पाओगे वहां विचारों की, वासनाओं की, आकांक्षाओं की। तुम खुद ही चौंकोगे कि मैं कैसा पागल हूं ! यह भी कोई होना है ? यह शोरगुल भीतर, यह बाजार भीतर, यह कोलाहल भीतर, क्या इस कोलाहल के रहते जीवन के रस का कोई अनुभव हो सकेगा? क्या उस कोलाहल के चलते जीवन के सौन्दर्य से कुछ संबंध हो सकेगा ? सत्य से कोई मिलन हो सकेगा ? हालत वैसी ही है जैसे नीर बिन मीन सुखाय। जैसे किसी ने खींच ली हो सागर से मछली और डाल दी हो सूखे तट पर, जलती हो धूप, बर-सती हो आग सूरज से और मीन तड़फती हो और मीन चाहती हो कि वापिस सागर मिल जाए। जगजीवन कहते, ऐसी मेरी दशा है।

ऐसी प्रत्येक की दशा है ।

तुम चाहे मानो भी न--क्योंकि मानने में भी तकलीफ होती है; क्योंकि मानने का मतलब होता है, फिर सागर की तलाश करनी होगी। तुमने तो इस जलती हुई रेत में ही घर बना लिया है। तुमने इस सूरज से बरसती आग को ही अपना अस्तित्व समझ लिया है। तुम तो मान ही लिये हो कि यही है होने का ढंग, और कोई ढंग होता नहीं। अधार्मिक आदमी मैं उसको ही कहता हूं, जो मानता है कि जैसी जिंदगी चल रही है, बस जिंदगी की यही एक शैली है, यही एक उपाय है, और कोई जिंदगी होती नहीं। धार्मिक मैं उसे कहता हूं, जो कहता है: यह अगर जिन्दगी है, तो जिंदगी व्यर्थ है। जिंदगी का कोई और ढंग होना ही चाहिए। जिंदगी की कोई और शैली होनी ही चाहिए। मुझे भले पता न हो--तो खोजूंगा।

अधार्मिक कहता है, कोई ईश्वर नहीं है। उसका क्या प्रयोजन है कहने से कि ईश्वर नहीं है? उसका इतना ही प्रयोजन है कि जैसा जीवन है, बस ऐसा ही जीवन है, इससे अन्यथा कोई जीवन नहीं है। मत उठाओ आंखें ऊपर, ऊपर कुछ भी नहीं है, कोरा आकाश है। और मत पुकारो किसी को, कोई उत्तर न कभी आया है और न आएगा। मत खोजो कुछ और, जगत में कुछ भी रहस्य नहीं है। बस यही कूड़ा-करकट, यही जिंदगी है। इसी घांस-फूस में किसी तरह जी लो, गुजार लो चार दिन, यह जिंदगी एक दुर्घटना है, मिट्टी-मिट्टी में गिर जाएगी। यहां न कुछ पाने को है, न कुछ खोने को है, एक दुख-स्वप्न है, भोग लो, गुजार लो--अच्छे कि बुरे।

जो आदमी कहता है ईश्वर नहीं है, वह यही कह रहा है कि जैसी जिंदगी है, इससे अन्यथा जिंदगी की बात मत उठाओ! क्योंकि तुम अन्यथा जिंदगी की बात उठाते हो, तो फिर मुझे परिवर्तित होना पड़े। अगर सागर कहीं है, तो फिर मछली कैसे रेत में घर बनाए? अगर सागर कहीं है और सागर की शीतलता कहीं है, तो फिर कैसे मछली सूरज की तपती धूप को अंगीकार करे? फिर घर-आंगन कुछ भी सुहाएगा नहीं। फिर एक खोज पकड़ लेगी प्राणों को, मथ डालेगी। फिर एक प्रचंड झन्झावात आएगा, जीवन में अन्वेषण का जन्म होगा, अनुसंधान शुरू होगा।

नेह की बूंद झरी बदरी
पसुरी-पसुरी सब देह पिरानी

भीजत खीजत छोड़ि गयो
कर मीजति हौं मेरी बात न मानी

सूनी अटारी कटारी लगै

सुनि कोयल कीर मयूर की बानी

गाज गिरै ऐसे मौसम पे
जामै भीतर आगि औ बाहर पानी

जिंदगी अभी ऐसी है।

गाज गिरै ऐसे मौसम पे
जामै भीतर आगि औ बाहर पानी

बाहर-ही-बाहर सब रोशनी है, भीतर अंधेरा। बाहर-बाहर सब थोथे आयोजन शीतलता के, भीतर जलती प्रचड अग्नि।

सूनी अटारी कटारी लगै
सुनि कोयल कीर मयूर की बानी

और जब तक परमात्मा से, प्यारे से मिलन नहीं हुआ है, सूनी अटारी कटारी लगै, तब तक सब सूना है। समझा लो, बुझा लो, झूठे सपने देख लो--यह मेरी पत्नी, यह मेरा पति, यह मेरा बेटा, यह मेरा भाई-- किसी तरह भुलाए रखो अपने को संग-साथ में, समझाए रखो, मगर यह सब समझ मौत आएगी उखाड़ जाएगी। ये कागज की नावें डूब जाएंगी। इनके सहारे कोई कभी पार नहीं हुआ है।

सूनी अटारी कटारी लगै
सुनि कोयल कीर मयूर की बानी

और जिसको याद आनी शुरू हो गयी सागर की, उसे कोयल की पुकार, कुहू-कुहू की पुकार अनंत से आती अपने प्यारे की पुकार मालूम होने लगी। कटारी जैसी लगेगी! और जब पपीहा पुकारेगा: 'पी कहा!' तो उसके प्राणों में भी पुकार उठेगी कि 'पी कहां!' प्यारे को खो कर हम जी रहे हैं। सागर को खो कर मछली पड़ी है। 'जैसे नीर बिन मीन सुखाय', ऐसे हम सूख रहे हैं। जिसको तुम जिंदगी कहते हो, यह धीमे-धीमे मरने के अतिरिक्त और क्या है? आहिस्ता-आहिस्ता आत्मघात! और क्या है? सत्संग में अगर कभी तुम्हें एकाध बूंद का अनुभव हो जाए, तो तुम्हें सागर की याद आने लगे।

इसलिए सत्संग सरोवर है, भक्ति स्नान।

'नेह की बूंद झरी बदरी पसुरी-पसुरी सब देह पिरानी'। एकाध बूंद तुम्हारे भीतर उतर जाए तो तुम्हें पता चले कि जल भी है। और प्यासा रहना नियति नहीं है। अगर तुम प्यासे हो, तो तुम्हारा ही उत्तरदायित्व है। तुमने तलाश सरोवर की नहीं की। यहीं इसी जमीन पर, यहीं तुम्हारे बीच ऐसे लोग सदा रहे हैं, सदा हैं, सदा रहेंगे, जो तृप्त हो गये हैं। जो सूख नहीं रहे हैं, जो रोज हरे हो रहे हैं। जिन्हें परम जीवन मिल गया है। जिन्हें ऐसा जीवन मिल गया है जिसका कोई अंत नहीं

आता। जिन्होंने शाश्वत को पहचाना है। जिनके हाथ परमात्मा के हाथ में पड़ गये हैं। और जिन्होंने अपने हृदय को उसके हृदय में डुबा दिया है। जिन्होंने अपनी बूंद को उसके सागर में उतर जाने दिया है।

'आपन केहि तें कहौं सुनाय।
जो समुझौं तौ समुझि न आय॥'

जगजीवन कहते हैं, मैं रोऊं भी तो किसके सामने रोऊं? समझेगा कौन? लोग हंसेंगे। क्योंकि लोगों ने तो जिन्दगी बना ली है, घर-आंगन में ही सब समाप्त हो गया है; सारा आकाश उन्होंने अपना आंगन समझ लिया है। और अपने घर को सारा अस्तित्व मान लिया है। तड़फ रहे हैं, सड़ रहे हैं, गल रहे हैं, सूख रहे हैं, लेकिन यही उनकी जिंदगी की परिभाषा है।

'आपन केहि तें कहौं सुनाय'। मैं किसी से कहने भी जाऊं अपनी पीड़ा तो किससे कहूं? इसीलिए तो भक्त ने प्रार्थना खोजी। प्रार्थना की खोज के बुनियादी कारणों में एक कारण यह है कि किसी और से कहने का कोई अर्थ मालूम नहीं होता, तो परमात्मा से ही कहने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है। तो भक्त उसी से कह लेता है, उसी के सामने रो लेता है। आंसू बहा लेता है, निवेदन कर लेता है। उत्तर आए या न आए, यह सवाल नहीं है। एक बात तो कम-से-कम ठीक है कि परमात्मा सुने या न सुने, कम-से-कम हंसेगा तो नहीं। पागल तो न समझेगा। उत्तर न भी आएगा तो चलेगा।

लेकिन इस जगत में किसीसे अगर कहो, तो लोग हंसेंगे। धार्मिक आदमी को देखकर लोग सदा हंसे हैं। हंसी उनकी आत्मरक्षा है। हंसते हैं, क्योंकि उन्हें डर पैदा होता है कि हो-न-हो, कौन जाने यह आदमी सही हो! अगर यह आदमी सही है, तो उनके पैर के नीचे की जमीन खिसक गयी। इस आदमी को गलत होना ही चाहिए; तो ही उनके पैर के नीचे जमीन थिर रहती है। अगर बुद्ध सही हैं, तो तुम गलत हो गये। अगर कृष्ण सही हैं, तो तुम्हारा भवन गिरा। तुम दोनों सही नहीं हो सकते साथ-साथ। बुद्ध के और तुम्हारे सही होने में कोई समझौता नहीं हो सकता।

इसलिए लोग जब बुद्ध जीवित होते हैं तो बुद्ध से बचते हैं, और जब बुद्ध मर जाते हैं तो उनकी पूजा करते हैं। दोनों तरकीबें बचने की हैं। जिंदा होते हैं तो बचते हैं। क्योंकि सुनने में खतरा है। कौन जाने कोई बूंद कंठ में उतर ही जाए! तुम्हारे बावजूद उतर जाए। तुम चाहते भी न हो और उतर जाए। कोई बात समझ में पड़ ही जाए, तो फिर मुश्किल हो जाएगी। इसलिए बचते हैं, विरोध करते हैं। और जब बुद्ध मर जाते हैं, तो बचने की और भी अच्छी तरकीब मिल जाती है। तो फिर पूजा करते हैं, फिर उनकी मूर्ति बना लेते हैं। लेकिन समझते कभी भी नहीं। या तो गाली देते हैं या पूजा करते हैं। और ख्याल रखना, दोनों में कुछ भेद नहीं है। जिंदा हों

तो गाली देते हैं, मर जाएं तो पूजा करते हैं। मरे को तो वैसे भी कोई गाली नहीं देता न! बुरा-से-बुरा आदमी भी मर जाए, तो भी गांव के लोग प्रशंसा करने लगते हैं।

एक आदमी ने मुल्ला नसरुद्दीन को फोन किया कि भाई, ठीक तो हो? नसरुद्दीन ने कहा कि ऐसा पूछने का कारण? और उस आदमी ने फिर पूछा कि कहां से बोल रहे हो? नसरुद्दीन ने पूछा कि बात क्या है, मामला क्या है? उस आदमी ने कहा, कुछ नहीं, गांव में लोगों को तुम्हारी प्रशंसा करते सुना। तो मुझे शक हुआ कि कहीं मर तो नहीं गये! क्योंकि यहां जब कोई मर जाता तभी लोग प्रशंसा करते हैं।

मैंने सुना है, एक गांव में एक आदमी मरा—उस गांव का बड़ा उपद्रवी आदमी था। ऐसे तो नेता था, 'नेता जी' कहलाता था—मगर 'नेता जी' जैसे होते हैं! बड़ा उपद्रवी था, गांव उससे परेशान था। मरा तो सारा गांव प्रसन्न हुआ। दिल-ही-दिल लोग खुश हुए। लेकिन नेता था, उसके शागिर्द भी थे—'दादा' था, गांव में उसके और मानने वाले भी थे—तो सारे गांव को जाना तो पड़ा ही मरघट! क्योंकि मरकर भी उसकी ताकत तो थी ही। उल्लू भी मर जाएं तो औलाद तो छोड़ ही जाते हैं!

अब बड़ी मुसीबत वहां यह आयी कि गांव के लोगों से कहा गया कि कुछ प्रशंसा में बोलो नेता जी की, अब नेता जी मर गये हैं तो उनकी समाधि पर... तो लोग एक-दूसरे का मुंह ताकें। लोग बहुत सोचें कि बोलें क्या इनकी प्रशंसा में? ऐसा तो कभी इसने कुछ किया ही नहीं था जिसकी प्रशंसा की जा सके। आखिर जब कोई उपाय न हुआ तो गांव के एक पंडित जी को लोगों ने कहा, अब आप ही कुछ! ...आप शास्त्र के ज्ञाता हैं, वेद-पुराण के ज्ञाता हैं, आप ही कुछ ऐसी बात कहो कि मामला टले—कुछ तो कहना ही पड़ेगा! मर गया आदमी तो उसकी प्रशंसा में कुछ दो शब्द तो कहो! पंडित ने खड़े होकर कहा कि नेता जी चले गये, पांच भाई और छोड़ गये हैं पीछे, उन पांच भाइयों की तुलना में वे देवतातुल्य थे। और तो कुछ उसको भी नहीं सूझा कि अब वह कहे क्या? यह बात गांव के लोगों को भी जंची कि यह बात सच है, वे पांच भाई तो और पहुंचे हुए हैं।

कोई मर जाए तो प्रशंसा करनी ही होती है। फिर कुछ निंदा का कारण भी नहीं रहा। और जब बुद्ध जैसे व्यक्तियों की हम बहुत निंदा करते हैं उनके जीवन में, तो हमारे भीतर एक अपराध-भाव भी पैदा हो जाता है, क्योंकि कहीं प्राणों के किसी अंतस्तल में कोई कहता तो है कि हम गलत कर रहे हैं। हमारे प्राणों के प्राण में कोई स्वर गूंजता तो है कि हम गलत कर रहे हैं। करना पड़ता है, क्याकि हमारे जीवन की सुरक्षा इसमें है। नहीं तो हमारी दुकान क्या हो, हमारा बाजार क्या हो, हमारे संबंधों का क्या हो? अगर बुद्ध को सुनें, तो हमारी जिंदगी का सारा-का-

सारा इन्तजाम अस्त-व्यस्त हो जाता है। जिसको हमने जिंदगी कहा है, वह तो अस्त-व्यस्त हो जाती है। तो विरोध तो करना पड़ता है। लेकिन कहीं प्राण के किसी गहन तल पर सत्य को एकदम इन्कार कर भी तो नहीं सकते हो। तो बुद्धों के मरने के बाद हमें पश्चात्ताप घेरता है, अपराध-भाव घेरता है। उस अपराध-भाव के कारण फिर हम पूजा शुरू करते हैं कि चलो ठीक है, जो जिंदगी में हुआ, अब तो फूल चढ़ाओ ! अब किसी तरह अपने मन को हल्का कर लो।

तो जीसस को सूली दी और फिर दो हजार साल से पूजा चल रही। सुकरात को जहर पिलाया और ढाई हजार साल से सम्मान, और सुकरात की प्रशंसा में इतने गीत लिखे जा रहे हैं। बुद्ध को पत्थर मारे, महावीर के कानो में सलाखें ठोंक दीं, जिंदा रहना मुश्किल कर दिया—और फिर मंदिर खड़े हो रहे हैं, और पूजा के थाल उतारे जा रहे हैं।

यहां तो सच बात किसी से कहनी मुश्किल है। क्योंकि लोगों की जिन्दगी झूठ पर खड़ी है। सच का जरा-सा धक्का, जरा-सा झोंका और उनके लाशों के महल गिर जाते हैं। कौन सुनने को राजी है ? किसी से कहो भी, कोई सुनने को राजी भी हो जाए, तो भी कौन सहानुभूति तुम्हें दिखलाएगा ?

'आपन केहि ते कहौं सुनाय'। जगजीवन कहते हैं—किसी से अपने दिल की, अपने दुख की बात भी कह सको, ऐसा भी कोई संगी-साथी नहीं दिखायी पड़ता।

'जो समुझौं तौ समुझि न आय।।' न किसी दूसरे से कह सकते, खुद समझने की कोशिश करो तो कुछ समझ में आता नहीं, इतना सब बेबूझ है। क्यों में आया, क्यों जन्मा, क्यों हूं, किसलिए, किस तरफ चल रही है यात्रा, कौन खींचे लिये जाता है, कौन चलाता है इस जीवन के विराट उपक्रम को, कौन छिपा है इस सारे रहस्य के भीतर, किसके हाथ, किसके हस्ताक्षर इस विस्तार में हैं ? खुद समझो तो भी कुछ समझ में नहीं आता। यह बात समझने की नहीं। यह बात बुद्धि की नहीं। यह बात हृदय की है।

चूंकि समझ में नहीं आती बात, इसलिए भक्त समझ के केन्द्र से हट जाता है और प्रीति के केन्द्र में उतर जाता है। ज्ञानी वहीं उलझा रहता है। वह समझने की ही कोशिश करता कहता है। समझने की कोशिश परमात्मा को वैसे ही है जैसे कोई आंख से संगीत सुनने की कोशिश करे। हां, आंख से वीणा दिखायी पड़ेगी और संगीतज्ञ वीणा के तार छेड़ता हुआ भी दिखायी पड़ेगा, लेकिन सुनायी कुछ भी न पड़ेगा। या जैसे कोई कान से देखने की कोशिश शुरू करे। तो वीणा के तार दिखायी नहीं पड़ेंगे। न वीणा, न वीणावादक, लेकिन स्वर सुनायी पड़ेगा। आंख देखती है, सुनती नहीं। कान सुनता है, देखता नहीं। बुद्धि क्षुद्र पर समर्थवान है विराट पर नहीं। विराट पर हृदय का अधिकार है। जो बुद्धि से समझने चलते हैं सत्य को, उनके हाथ में क्षुद्र

सिद्धांत लगते हैं, सत्य नहीं। जो हृदय से सत्य को समझने चलते हैं, वे समझ पाते हैं।

लेकिन हृदय की भाषा समझने की भाषा नहीं है, प्रेम की भाषा है। प्रेम एक तरह के ज्ञान को जन्म देता है, उसी ज्ञान का नाम भक्ति है। भक्त यह नहीं कह सकता कि मैं भगवान को समझता हूं, लेकिन भक्त यह कहता है कि मुझे उसका स्वाद मिला। भक्त यह नहीं कह सकता कि मैं सिद्धांततः समझा सकता हूं कि भगवान क्या है, भक्त इतना ही कह सकता है कि मैंने डुबकी मारी, मैं जिआ, मैंने उसे अनुभव किया। मैं उसके ही रूप में डूब गया, वह मेरे रूप में डूब गया। मैं उसके साथ एकात्म हो गया हूं। भक्त यही कह सकता है कि मैं हूं प्रमाण उसका और कोई प्रमाण नहीं दे सकता। 'जो समझौं तौ समुझि न आय।।''

'संभरि-संभरि दुख आवै रोय।'

और बहुत अपने को सम्हालता हूं, मगर रह-रह कर, रह-रह कर बड़े दुख का आन्दोलन उठता है। कि और कितनी देर ! और कितना तड़फाओगे ? और कितनी देर दूर-दूर रखोगे ? 'संभरि-संभरि दुख आवै रोय'। रो-रो उठता हूं। यह भक्त की पीड़ा समझो। किसी से कह नहीं सकता—कोई समझेगा नहीं। कहे, तो लोग हंसेंगे, पागल समझेंगे। अपने ही भीतर गुपचुप सम्हाल कर रखना होगा। खुद भी समझना चाहे, समझ में आता नहीं। क्योंकि बुद्धि बड़ी छोटी है, सत्य उसमें समाता नहीं। तर्क काम नहीं पड़ते। सब तर्क गिर जाते हैं। शास्त्र, शब्द, सिद्धांत, सब थोथे मालूम होते हैं। कोई अनुभव की तरफ ले जाता मालूम नहीं होता। विधि-विधान, औपचारिक क्रियाकांड, सब ऊपर-ऊपर मालूम होते हैं। अंतस्तल नहीं छूता। अंतस्तल नहीं आन्दोलित होता। भीतर ऊर्जा नहीं उठती, उमंग नहीं जगती। उत्साह का आविर्भाव नहीं होता।

फिर करे क्या भक्त ?

रह-रह के रोने लगता है। सम्हालता है। क्योंकि कौन उसके आंसुओं को समझेगा ? उसके आंसू उसे व्यर्थ ही विक्षिप्त सिद्ध करवा देंगे। कौन उसके भाव को पहचानेगा ? भाव को पहचानने वाले समृद्ध लोग कहां ? उसके भाव को सम्मान दे सकें, ऐसे शालीन लोग कहां ? जहां कौड़ी-कौड़ी के लिए लोग टूटे मर रहे हैं, जहां क्षुद्र-क्षुद्र पदों के लिए संघर्ष चल रहा है, वहां परमात्मा के लिए कोई रोएगा —कौन समझेगा इसे ? लोग कहेंगे—गया काम से ! होश सम्हालो ! लोग कहेंगे —यह क्या कर रहे हो ? भटक जाओगे। अपने को वापिस दुनिया में लाओ। किन कल्पनाओं के जाल में खोए जाते हो ? कह भी नहीं सकता। रो भी नहीं सकता। पराये तो पराये, अपने भी पराये हो जाते हैं। पत्नी को परमात्मा का भाव जगे, पति से नहीं कह सकती। पति को जगे, पत्नी से नहीं कह सकता। अपने जो हैं, इतने

निकट जो हैं, वे भी ऐसी बातें नहीं समझेंगे।

मेरे पास रोज घटनाएं घट जाती हैं। कोई पति आ जाता है, कि आपने मेरी पत्नी को क्या कर दिया ? अकारण हंसती है, रोती है। अकारण। पास-पड़ोस में खबरें फैलने लगीं कि कुछ गड़बड़ हो गया। कोई कारण हो तो हंसो, कोई कारण हो तो रोओ, लेकिन अकारण, बैठे-बैठे ! तुम भी सोचोगे, तुम्हारी पत्नी एकदम बैठी रहे कुर्सी पर, एकदम खिलखिला कर हंसने लगे, तुम्हें भी शक होगा कि बात क्या है ? और पति कहते हैं कि अगर मैं समझाता हूं तो वह और हंसती है। मैं कहूं कि चुप रह, कोई मुहल्ला-पड़ोस के लोग सुन लेंगे, तो उसे और हंसी आती है। कभी-कभी बैठे रोने लगती है—कोई कारण ही नहीं है। और इससे भी ज्यादा अड़चन होती है कभी-कभी कि दोनों काम एक साथ करने लगती है। हंसना, रोना, दोनों। यह तो सिर्फ पागल ही करते हैं। तो मुझसे पूछते हैं वह कि क्या करें ? किसी चिकित्सक को दिखाएं ?

और चिकित्सक क्या करेगा ऐसे व्यक्ति को ? दे देगा, 'इलेक्ट्रिक शॉक' दे देगा। 'इलेक्ट्रिक शॉक' ऐसा ही है जैसे कभी-कभी तुम करते हो—कोई नयी बात नहीं है। तुम्हारी घड़ी बंद हो गयी, एक दिया झटका जोर से ! कभी-कभी चल पड़ती है, यह बात भी सच है। मगर यह कोई तरकीब है घड़ी चलाने की ! कोई घड़ीसाज, तुम कोई घड़ीसाज नहीं हो। कभी-कभी हो जाता है कि चल पड़ती है—कभी कोई तेल अटक गया था, कि कभी कोई एक धूल का कण अटक गया था, दे दिया झटका ! मगर यह संयोग की बात है, यह कोई कला नहीं है, यह कोई विज्ञान नहीं है।

कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि इलेक्ट्रिक का शॉक... मस्तिष्क बड़ी सूक्ष्म घड़ी-जैसी चीज है ... कभी-कभी ठीक चलने लगता है। तो लोग समझते हैं, यह कोई कला है। यह कोई कला नहीं है। इससे तुम कुछ वैज्ञानिक उपक्रम नहीं कर रहे हो, सिर्फ असमर्थता घोषित कर रहे हो कि हमारी समझ में कुछ नहीं आता, चलो कोशिश करके देख लें—दें एक जोर का धक्का, शायद चल जाए ! और जिन-जिन के पास घड़ी है, सभी को यह अनुभव होगा कि आदमी जरा ठोंक-पीट कर सोचता है कि अगर चल जाए तो बचें घड़ीसाज के पास जाने से। और कभी-कभी चलती भी। मगर कभी-कभी चलना अनायास है। सौ में निन्यानबे मौकों पर नहीं चलेगी। और खतरा भी है, कि जैसे कभी-कभी चल जाती है, कभी-कभी झटका देने से और भी बिगड़ जाएगी। जितनी बिगड़ी थी, उससे ज्यादा बिगड़ जाएगी।

क्या करेगा चिकित्सक ? कोई इलाज नहीं है। भक्ति का कोई इलाज नहीं है।

नानक बीमार पड़े थे भक्ति में, वैद्य ने आकर नाड़ी पकड़ी तो नानक हंसने लगे और कहा कि नाहक मेहनत मत करो, यह मरीज तुम्हारी दवा से ठीक न होगा। यह बीमारी इलाज हो सके, ऐसी नहीं है। यह तो परम चिकित्सक जब आएगा तभी ठीक हो सकेगी। यह तो औषधि जब समाधि की उतरेगी, तभी यह व्याधि जाएगी। उसके बिना नहीं। समाधि ही इस व्याधि के लिए औषधि है—और कुछ नहीं।

किससे कहो, कोई समझेगा नहीं। रोओ भी तो भी अकेले में रोना पड़ेगा। सम्हाल-सम्हाल कर भक्त को चलना पड़ता है। क्योंकि संसार भक्त के बिल्कुल ही प्रतिकूल है।

यहां तुम यह बात ख्याल रखना कि यहां संसार ज्ञानी के इतने प्रतिकूल नहीं है; क्योंकि ज्ञानी की भाषा और संसार की भाषा में एक तारतम्य है। ज्ञानी गणित और तर्क की भाषा बोलता है। वही भाषा बाजार की है। ज्ञानी बाजार की भाषा से भिन्न भाषा नहीं बोलता। उसकी तर्कसरणी वही है। दो और दो चार जैसे बाजार में होते, हैं, वैसे ही ज्ञानी की भाषा में दो और दो चार होते हैं। अड़चन तो भक्त की है। वहां पुराना कोई गणित काम नहीं करता। वहां एक और एक मिल कर दो नहीं होते, एक और एक मिल कर एक ही होता है। प्रेम में एक और एक मिलकर एक ही होता है, दो नहीं होते। गणित में एक और एक मिलकर दो होते हैं।

तो ज्ञानी को इतनी अड़चन नहीं है। और त्यागी को भी अड़चन नहीं है; क्योंकि उसकी भी भाषा संसार की ही भाषा है। तुम भलीभांति जानते हो कि अगर धन कमाना है तो बहुत-से त्याग करने पड़ते हैं। धन कमानेवाला कम त्यागी नहीं होता। अगर दुकान पर ग्राहक हैं, छोड़ देता है उस दिन दिन भोजन, उपवास कर जाता है। अगर धंधा जोर से चल रहा है, तो रात देर तक जागा रहता है। अगर रात भर भी जागकर हिसाब-किताब करना पड़े तो वह भी कर लेता है।

तुम जानते हो कि दुकानदार भी एक तरह की तपश्चर्या करता है। तुम जानते हो, पद का खोजी भी बड़ी चेष्टाएं करता है, बड़े उपक्रम करता है। सब तरह के त्याग करता है, जेल इत्यादि भी जाना पड़ता है—कि जेल वगैरह नहीं गये तो सर्टिफिकेट नहीं है। किसी से कहो कि भई, वोट दो, वह पूछता है— कितनी दफे जेल गये ? तो सर्टिफिकेट चाहिए कि इतनी दफे जेल गये। कोई भी बहाने से सही, मगर दो-चार दफा जेल जाना ही चाहिए, नहीं तो नेता कैसे ? त्यागी की भाषा भी संसार की भाषा से भिन्न नहीं है।

सबसे ज्यादा कठिनाई है भक्त की। क्योंकि उसकी भाषा में और संसार की भाषा में कोई तालमेल नहीं है। वे अलग ही भाषाएं हैं। उनका एक-दूसरे में अनुवाद भी नहीं हो सकता। संसार की भाषा है गणित की और तर्क की, भक्त की भाषा है भाव की और प्रेम की।

'संभरि-संभरि दुख आवै रोय।
कस पापी कहं दरसन होय।।'

और मैं जानता हूं कि तेरा क्या कसूर, मैं पापी ऐसा हूं कि दरसन भी हो तो कैसे हो ?

यह भक्त की भावदशा समझना।

भक्त दोष नहीं देता भगवान को। यह नहीं कहता कि तू नाराज है, कि तेरी कृपा की कमी है, कि तू रहीम नहीं, रहमान नहीं, कि तू करुणावान नहीं, इतना ही कहता है--'कस पापी कहं दरसन होय।' मैं पापी हूं, अज्ञानी हूं, मूढ़ हूं, दरसन हो भी तो कैसे हो ? और यह भी भलीभांति जानता हूं कि मेरे रोने से कोई मेरी पात्रता थोड़े ही हो गयी की दरसन होना चाहिए। मैंने तुझे प्रेम किया, इतना ही तो काफी नहीं है। मुझमें अभी हजार-हजार रोग हैं और हजार-हजार विशुद्धियां आने की अभी सम्भावनाएं, हजार-हजार अशुद्धियां अभी मुझ में हैं, अभी मैं पवित्र कहां, अभी तू आए इस योग्य मेरा घर कहां ?

'तन मन सुखित भयो भोर आय।'

लेकिन इतनी जैसे ही तैयारी कोई कर लेता है-- यही तैयारी है--सम्हल-सम्हल कर रोना, संसार से छिपा-छिपाकर प्रार्थना करना, अपने मन के भाव को अपने मन के भाव के जैसा ही रखना, इसकी अभिव्यक्ति भी न करना, एकांत में बहा लेना आंसू और जानते रहना कि परमात्मा की अनुकम्पा तो अपार है, मेरे ही पापों के कारण बाधा पड़ती होगी, वह तो सामने है, मेरी आंखों पर ही पर्दा होगा; वह तो आया ही हुआ है, मैं ही नहीं देख पा रहा हूं, कहीं मेरी ही भूल-चूक है, ऐसी ही भावदशा तो तैयार करती भक्त को, यही तो उसकी पात्रता का निर्माण है। और तब घटना घटती है। 'तन मन सुखित भयो भोर आय।' तुम आ गये ! ऐसे ही अचानक आना होता--है। मेरा तन-मन दोनों आनंद से भर गये हैं।

तिरे जल्वों में गुम होकर औ' खुद से बेखबर होकर
तमन्ना है कि रह जाऊं ज़सरतापा नज़र होकर

हिजाब अंदर हिजाबो-जल्वा अंदर जल्वा क्या कहिए
बला में फंस गए उश्शाक़ पाबंदे-नज़र होकर

कहां जाती है मिलकर ओ निगाहे-नाज़ बेपर्दा
मिरे पहलू में रह जा लज़्ज़ते-दर्दे-जिगर होकर

लताफ़त मानए-नज़्ज़ारा-ए-सूरत सही लेकिन
धड़कना दिल का कहता है वो गुज़रे हैं इधर होकर

पहले साफ-साफ समझ में आता भी नहीं। मगर गंध तो आ जाती है। स्पष्ट दिखायी भी नहीं पड़ता, पर धुंधली छाया तो अनुभव में आ जाती है। पैर दिखायी

न भी पड़ें, पगध्वनि तो सुनायी पड़ जाती है।

लताफ़त मानए-नज़्ज़ारा-ए-सूरत सही लेकिन
धड़कना दिल का कहता है वो गुज़रे हैं इधर होकर

और दिल एक नयी गति से, एक नयी लय से, एक नये छंद से धड़कने लगता है। वही पहचान है। और भक्त और चाहता क्या है !

तिरे जल्वों में गुम होकर औ' ख़ुद से बेख़बर होकर
तमन्ना है कि रह जाऊं ज़सरतापा नज़र होकर

बस तुझमें खो जाऊं, मिट जाऊं।

'तन-मन सुखित भयो मोर आय।
जब इन नैनन दरसन पाय।।'

आ गये तुम ! भरोसा नहीं आता। अनंत-अनंत प्रतीक्षा के बाद अचानक। ज्ञानी को तो भरोसा आ जाता है। निश्चित ही। क्योंकि उसने सारे उपाय किये हैं। उसे तो कठिनाई अगर कोई थी तो एक थी कि परमात्मा अभी तक आया क्यों नहीं? क्योंकि मैंने सब तो किया जो करना चाहिए। उसको शिकायत थी। ज्ञानी के सामने जब परमात्मा आए तो उसे कोई आश्चर्य नहीं होता। वह तो मानता है कि मैं दावेदार हूं। होना ही चाहिए था। भक्त आश्चर्यचकित होता है। अवाक होता है। क्योंकि भक्त जानता है, मैं तो पापी था। मेरी सामर्थ्य क्या ? मेरा बल क्या ? और तुम आए। तुम मेरी नजर में आए !

हज़ारों कुर्बतों पर यूं मिरा महजूर हो जाना
जहां से चाहना उनका वहीं से दूर हो जाना

निक़ाबे-रूए-नादीदा का अज़ख़ुद दूर हो जाना
मुबारक अपने हाथों हुस्न का मजबूर हो जाना

सरापा दीद होकर ग़र्क़ मौजे-नूर हो जाना
तिरा मिलना है ख़ुद हस्ती से अपनी दूर हो जाना

मोहब्बत क्या है, तासीरे-मोहब्बत किसको कहते हैं
तिरा मजबूर कर देना, मिरा मजबूर हो जाना

यकायक दिल की हालत देखकर मेरा तड़प उठना
उसी आलम में फिर कुछ सोचकर मसरूर हो जाना

'जिगर' वो हुस्ने-यकसूई का मंज़र याद है अब तक
निगाहों का सिमटना और हुजूने-नूर हो जाना

क्या है भक्त की यह अनुभूति ?

मोहब्बत क्या है, तासीरे-मोहब्बत किसको कहते हैं
तिरा मजबूर कर देना, मिरा मजबूर हो जाना

भक्त दावेदार नहीं है। भक्त तो सदा जानता है कि जब भी तुम मिलोगे, मैं अपात्र ही था। मिले तो तुम अपने प्रसाद से मिले, अपनी अनुकम्पा से मिले, मेरी पात्रता से नहीं। तुमने मुझे मजबूर कर दिया। तुमन मुझे झुका ही दिया। मुझे तो अपनीं तरफ से झुकना होता तो शायद मैं झुकता भी नहीं। मेरी अकड़ ऐसी! मेरा अहंकार ऐसा!

मोहब्बत क्या है, नासीरे-मोहब्बत किसको कहते हैं
तिरा मजबूर कर देना, मिरा मजबूर हो जाना

यह मेरे बस की बात नहीं थी कि मैं झुक जाता। तूने मजबूर कर दिया। तू आया और तूने मुझे अपने में डुबा दिया।

'तन-मन सुखित भयो मोर आय।' और ख्याल रखना, जगजीवन कह रहे हैं, मन तो आनंदित हुआ है, तन भी आनंदित हुआ है। भक्त के मन में तन और मन में भेद नहीं है। भीतर तो आनंद उमगा ही है, बाहर भी आनंद बरसा है। बाहर और भीतर में भेद नहीं है। चतन्य तो नाच ही उठा है, लेकिन पदार्थ भी आंदोलित हुआ है। भक्त के मन में चेतना और पदार्थ में भेद नहीं है।

'जगज़ीवन चरनन लपटाय।
रहै संग अब छूटि न जाय॥'

बस अब इतनी कृपा और करो; मैं तो तुम्हारे चरणों में लपट जाऊंगा, मगर मुझ पर मुझे भरोसा नहीं है, यह भी तुम्हारी ही कृपा हो तो ही बात बने, नहीं तो संग फ़िर छूट सकता है। मुझे अपनी भूल-चूकों का भलीभांति पता है। मुझे अपनी नासमझियों का भलीभांति बोध है। ज्ञानी को अपनी पात्रता का अहंकार होता है, भक्त को अपनी अपात्रता का बोध होता है। इसलिए भक्त की विनम्रता असीम है।

'जगजीवन चरनन लपटाय।' मैं तो चाहता हूं कि तुम्हारे चरणों में लपटूं तो फिर कभी छूटूं नहीं। अब तुम्हारे चरन मिल गये, लपट जाऊं? सदा लपटा रहूं। लेकिन ख्याल रखना, 'रहै संग अब छूटि न जाय'। यह मेरे बस के बाहर है। तुम्हीं ध्यान रखना कि कहीं यह संग जो है, छूट न जाए। तुम्हारी कृपा से बना, तुम्हारी कृपा से बना रहे।

कहां-कहां उड़के शो' ले पहुंचे ये होश किसको ये कौन जाने,
हमें बस इतना है याद अब तक लगी थी आग अपने घर से पहले
कहां ये शोरिश' कहां ये मस्ती, कहां ये रंगीनियों का आलम
जमाना ख्वाबो-खयाल-सा था, तिरे फुसूने-नज़र से पहले
उठा जो चेहरे से पर्दा-ए शब, सिमट के मर्कज़ पे आ गये सब

तमाम जल्वे जो मुन्तशिर थे, तुलूए-हुस्ने-बशर से पहले

वो यादे-आग़ाज़े-इश्क़ अब तक अनीसे-जानो-दिले-हज़ी है
वो इक झिझक-सी वो इक झपक-सी हर इल्तिफ़ाते-नज़र से पहले

हमीं थे क्या जुस्तजू का हासिल, हमीं थे क्या आप अपनी मंजिल
वहीं पे आकर ठहर गया दिल, चले थे जिस रहगुज़र से पहले

कहां थी ये रूह में लताफ़त, कहां थी कौनेन में ये वुसअत
हयात ही सो रही थी जैसे किसी की पहली नजर से पहले

उसकी एक नजर और जो छिपा था, प्रगट हो जाता है। और जो फूल दबे पड़े थे, खिल जाते हैं। और जो चांद-तारे दिखायी न पड़ते थे, दिखायी पड़ने लगते हैं।

कहां थी ये रूह में लताफ़त...

यह हमारे प्राणों में प्रसाद कहां था? यह आनंद कहां था? यह उत्सव कहां था?

कहां थी ये रूह में लताफ़त, कहां थी कौनेन में ये वुसअत

यह दुनिया का विस्तार इसके पहले कभी दिखा नहीं था। यह विराटता कहां छिपी थी? यह रहस्य-पर-रहस्य, हम कैसे अंधे थे!

ह्यात ही सो रही थी जैसे किसी की पहली नज़र से पहले

तेरी आंख जब तक हमारी आंख में न पड़ी, तब तक सारा अस्तित्व जैसे सोया हुआ था। जैसे हम बेहोश थे।

कहां ये शोरिश, कहां ये मस्ती, कहां ये रंगीनियों का आलम

कहां था यह सब रहस्य?—यह सतरंगी अस्तित्व, यह आनंद-उत्सव, यह प्रतिपल बरसता हुआ अमृत?

कहां ये शोरिश, कहां ये मस्ती, कहां ये रंगीनियों का आलम
जमाना ख्वाबो-ख़याल-सा था...

हम तो जैसे सपने ही देख रहे थे नींद में—

...तिरे फुसूने नज़र से पहले

वह तेरी आंख जब आंख में पड़ी तो सपने गये, सत्य प्रगट हुआ।

उठा जो चेहरे से पर्दा-ए-शब, सिमट के मर्कज़ पे आ गये सब
तमाम जल्वे जो मुन्तशिर थे, तुलूए-हुस्ने-बशर से पहले

जो-जो छिपा था, प्रगट हो गया। जो अदृश्य था, दृश्य हो गया। नहीं जो कभी सुने थे स्वर, वे सुनायी पड़ने लगे। सारे गीत बज उठे। सारे नृत्य सजग हो गये। आज तेरी नज़र की रोशनी में, आज तेरी मौजूदगी के अमृत में अब यह बात समझ में आती है—भरोसा आज भी नहीं आता।

हमीं थे क्या जुस्तजू का हासिल...
—क्या हमीं थे लक्ष्य जीवन का ?
हमीं थे क्या आप अपनी मंजिल
वहीं पे आकर ठहर गया दिल, चले थे जिस रहगुज़र से पहले

और यह क्या चमत्कार है कि हम तो समझ रहे थे कि गन्तव्य की तलाश कर रहे हैं और आज जब पहुंचे हैं तेरी नजर में और आज जब तुझसे मिलना हुआ है, तो पता चलता है कि स्रोत और गन्तव्य दो नहीं, एक ही हैं। पहली जो हमारी यात्रा की शुरुआत थी, वहीं हम वापिस लौट आए हैं। वर्तुल पूरा हो गया है। जहां से चले थे, वहीं वापिस आ गये हैं। इस अवस्था का नाम मोक्ष है। या निर्वाण, या जो भी नाम तुम देना चाहो।

'अब की बार तारु मोरे प्यारे, विनती करिकै कहौं पुकारे।'

जगजीवन कहते हैं कि बस, अब बहुत हो चुका, अब और नहीं। अब तेरे चरण मिल गये, अब छूटें न। अब प्रार्थना है कि अब मुझे तार लो। अब फिर मत फेंक देना इस विराट जंजाल में। अब फिर मत चले जाने देना भटकन की राहों पर।

'अब की बार तारु मोरे प्यारे, विनती करिकै कहौं पुकारे।'

और तो मैं क्या कर सकता हूं; दावा तो नहीं कर सकता, अधिकार मेरा कोई भी नहीं, विनती कर सकता हूं। पुकार कर सकता हूं। पुकारूंगा, विनती करूंगा।

'नहिं बसि अहै केतौ कहि हारे'...

मैं तो बहुत करके हार चुका था, और बहुत हैं जो कर-कर के हार चुके हैं, और कुछ भी न हुआ—

'नहिं बसि अहै केतौ कहि हारे, तुम्हारे अब सब बनहि संवारे।।'

लेकिन तुमने संवार दिया, बिगड़ी को बना दिया। मुझसे तो बिगड़ती ही चली जाती थी बात। जितना खोजता था, उतना दूर निकल जाता था। जितना करता था, उतना अनकिया हो जाता था। दान भी करता था तो भीतर लोभ संग्रहीत होता था। विनम्र बनता था, तो अहंकार पीछे के द्वार से आता था। त्याग करता था, तो वह भोग की आकांक्षा में करता था कि बैकुंठ का भोग मिलेगा। मेरे किये तो कुछ होता ही नहीं था—उल्टा ही होता था। 'नहिं बसि अहै केतौ कहि हारे'। मैं तो हार ही चुका था।

ख्याल रखना, जब खोज-खोजकर कोई हार जाता है, तभी उससे मिलन है। 'हारे को हरि नाम'। जीतने वालों को नहीं मिलता। हारों को मिलता है। जब तक तुम्हें जरा-सी भी आशा लगी है कि जीत लेंगे, तब तक अहंकार जारी है। जब तक तुम्हें थोड़ा-सा भी भरोसा है कि कुछ और कर लेंगे—ऐसा नहीं तो वैसा, वैसा

नहीं तो वैसा; नयी विधि, नया विधान, नया मार्ग खोजेंगे मगर पहुंच कर रहेंगे—जब तक तुम्हें थोड़ी-सी भी सम्भावना है अपने पहुंच जाने की, तब तक तुम चूकते रहोगे। तब तक भक्ति का उदय न होगा। जिस दिन तुम समग्ररूपेण जानोगे कि हार गये, पूरे हार गये, सौ प्रतिशत हार गये, गिर पड़ोगे हार में—'हारे को हरि नाम'—उसी क्षण अहंकार गया। अहंकार जीता है आशा में। आशा अहंकार का भोजन है।

इसलिए बुद्ध ने कहा है: धन्यभागी हैं वे जो परिपूर्ण रूप से निराश हो गये, हताश हो गये। बड़ा उल्टा वचन है। क्योंकि आमतौर से तो हम कहते हैं, निराश आदमी: बेचारा। हताश आदमी: बेचारा। बुद्ध कहते हैं: धन्यभागी है वह, जो परिपूर्ण रूप से हताश हो गया, निराश हो गया। जिसकी आशा जड़-मूल से मर गयी, कुम्हला गयी। क्योंकि जैसे ही आशा जड़-मूल से कुम्हला जाती है, अहंकार मर जाता है। अहंकार आशा का ही फूल है। और जहां अहंकार नहीं, वहीं परमात्मा का आविर्भाव है।

'नहिं बसि अहै केतौ कहि हारे, तुम्हरे अब सब बनहि संवारे।'

लेकिन अब देख लिया राज हमने। जगजीवन कहते हैं, अब...अब हम पहचान गये, तुम संवारते हो तो संवरता है। अब संवार लिया, अब छोड़ मत देना हाथ। अब गह लिया हाथ, अबसोई, अब छोड़ मत देना हाथ। तुम्हरे हाथ अहै, अबसाईं', अब सब तुम्हारे हाथ में है। सब बेशर्त तुम्हारे हाथ में है। 'और दूसरो नाहीं कोई।' अब कोई आशा नहीं किसी और की; न अपना भरोसा, न किसी और का भरोसा, अब सारा भरोसा तुम पर है। इस भावदशा का नाम श्रद्धा है। श्रद्धा सुवास है भक्त के हृदय की।

'जो तुम चहत करत सो होई'...

तुम जो चाहो, हो जाता है। हमारे चाहने से तो सब बिगड़ जाता है।

'जो तुम चहत करत सो होई, जल थल महं रहि जोति समोई।।'

अब मैं देख रहा हूं, जल में, थल में, सब तुम्हारी ही ज्योति समायी हुई है। कैसा अंधा था, अब तक यह क्यों मुझे नहीं दिखायी पड़ा? और ऐसा भी नहीं है कि ये वचन मैंने सुने नहीं थे। शास्त्र यही तो कहते हैं: सब में वही समाया है। कंठस्थ थे ये वचन मुझे। लेकिन बस दोहराता था तोते की भांति। तुमने दिखाया तो दिखा। तुमने नहीं दिखाया तो शब्द तो मुझे याद रहे, शब्द तो मैं दोहराता रहा, लेकिन दिखा मुझे कुछ भी नहीं। जैसे अंधा रोशनी की बातें करता रहा और बहरा संगीत की चर्चाएं छेड़ता रहा।

'जो तुम चहत करत सो होई, जल थल महं रहि जोति समोई।।'

अब देखता हूं कि सब तरफ तुम्हीं हो, सारी ज्योतियां तुम्हारी ज्योतियां हैं,

कण-कण में तुम्हीं व्याप्त हो, मगर यह तुमने दिखाया तो मुझे दिखा।

इश्क की हद से निकलते, फिर ये मन्जर देखते
काश हुस्ने-यार को, हम हुस्न बनकर देखते

गुंचा-ओ-गुल देखते या माहो-अख्तर देखते
तुम नजर आते हमें, हम कोई मन्जर देखते

फितरते-मजबूरी पे काबू ही कुछ चलता नहीं
वर्ना हम तो तुझसे भी तुझको छुपाकर देखते

फिर वही हसरत है साकी फिर उसी अंदाज से
फिर सिवा सागर के सब कुछ गर्के-सागर देखते

तिश्नगाने-दीदे-जल्वा, हमें समझा है क्या
तुम अगर सूरत दिखाते जान देकर देखते

मर मिटा इक बात पर किस आन से किस शान से
आप अगर ऐसे में होते दिल के तेवर देखते

मिट कर ही जाना जाता है। हार कर ही पाया जाता है। खो कर ही मिलन है।

मर मिटा इक बात पर किस आन से किस शान से
आप अगर ऐसे में होते दिल के तेवर देखते

तिश्नागाने-दीदे-जल्वा, हमें समझा है क्या
तुम अगर सूरत दिखाते जान देकर देखते

हम तैयार थे, जान भी देने को तैयार थे--तुम अगर सूरत दिखाते। मगर वह हमारी शर्तबंदी थी। वह हमारा सौदा था। लेकिन जिस क्षण हमने अपने को गंवाया, तुमने सूरत दिखायी। हम तो तैयार थे सब कुछ गंवाने को भी। लेकिन जब कोई गंवाने को तैयार होता है, तो भी अहंकार शेष रहता है। कहता है, मैं सब गंवाने को तैयार हूं, दिखाओ, दर्शन दो! प्रत्यक्ष हो जाओ! मगर, पहले प्रत्यक्ष हो जाओ, तो मैं सब देने को तैयार हूं। हालत उल्टी है। तुम सब दे दो, प्रत्यक्ष हो जाता है।

इसलिए भक्त बड़े-से-बड़ा जुआरी है। दांव पर लगा देता है, भरोसा कुछ भी नहीं कि कुछ मिलेगा कि नहीं मिलेगा। भक्त बड़ी-से-बड़ी जोखम उठाता है। तुमसे साधारणतः लोग कहते हैं--तुम्हारे पंडित-पुरोहित, साधु-महात्मा--कि भक्ति सरल है। उनकी बातों में मत आ जाना। भक्ति बड़ी जोखम है। ज्ञान सरल है, त्याग भी सरल है, प्रेम सबसे बड़ी जोखम है। क्योंकि ज्ञान में और त्याग में अहंकार मालिक रहता है, प्रेम में अहंकार को विदा देनी होती है।

इश्क की हद से निकलते, फिर ये मन्जर देखते
काश हुस्ने-यार को, हम हुस्न बनकर देखते

तुम उसे तभी देख पाओगे जब तुम उसमें परिपूर्ण लीन हो जाओगे, वही हो जाओगे, तभी देख पाओगे। सागर को जानने का एक ही उपाय है, सागर हो जाना। मगर सागर होने के पहले बूंद को मिटना पड़े। बूंद यह नहीं कह सकती कि पहले मैं सागर हो जाऊं, फिर मैं मिटने को तैयार हूं। बूंद को तो मिटना पहले होगा। और मिटने के पहले कोई 'गारंटी' कहां? कौन 'गारंटी' देगा कि मिटने से सागर हो ही जाओगे। जब बीज टूटता है और मिटता है तो 'गारंटी' क्या है कि वृक्ष बनेगा ही? हिम्मत चाहिए। बड़ी हिम्मत चाहिए। दुस्साहस चाहिए। मगर बीज दुस्साहस करता है और वृक्ष हो जाता है। बूंद दुस्साहस करती है और सागर हो जाती है। भक्त दुस्साहस करता है और भगवान हो जाता है।

'काहुक देत हौ मंत्र सिखाई, सो भजि अंतर भक्ति दृढ़ाई ।।'

सब तुम्हारे हाथ में है। चाहो तो किसी को राजों का राज दे देते हो--मंत्र दे देते हो। चाहो, तुम्हारी अनुकम्पा हो, तो वर्षा हो जाती है, सब कल्मष धुल जाता है।

'काहुक देत हौ मंत्र सिखाई, सो भजि अंतर भक्ति दृढ़ाई ।।'

और किसी के भीतर तुम्हारी अनुकम्पा से मंत्र का जन्म होता है और अंतर-भजन शुरू हो जाता है। अंतर-भजन, बाहर से सीखा हुआ नहीं। जैसे परमात्मा किसी के हृदय को छेड़ देता है, तारों को छेड़ देता है, उसके हाथ तुम्हारे हृदय को गुदगुदा जाते हैं।

'कहौं तो कछु कहा नहिं जाई,'...

जगजीवन कहते, ऐसा तुमने मेरे साथ किया, अब मैं यह लोगों से कहना भी चाहता हूं तो कह नहीं पाता। मैं कहता हूं, उसी ने मंत्र दिया। कोई मेरी मानता नहीं। मैं कहता हूं, वही आया, उसीने मेरे हृदय को गुदगुदाया। कोई मेरी मानता नहीं। मैं कहता हूं, वही आया, उसने मेरी हृदय-तन्त्री के तार छेड़ दिये; यह वही गा रहा है। कोई मेरी मानता नहीं।

'कहौं तो कुछ कहा नहिं जाई, तुम जानत तुम देत जनाई ।।'

तुम्हीं जानते हो और तुम्हीं जब जना देते हो, तब कोई जानता है। शेष सब व्यर्थ ही भटकते हैं। बड़े-से-बड़े पंडित भी अज्ञानी ही हैं। जब तक तुम नहीं जना देते तब तक कोई भी कुछ नहीं जानता। जो अपने से ही जानने की चेष्टा में लगे हैं, वे अम्बार लगा लेंगे सूचनाओं के, शास्त्रों के पहाड़ों के नीचे दब जाएंगे, मगर पहाड़ खोद कर उनको चूहा भी मिल जाए, इसकी सम्भावना नहीं। उनके हाथ कुछ भी न लगेगा--राख-ही-राख।

'तुम जानत तुम देत जनाई।' इस प्यारे वचन को हृदय में सम्हाल कर रख लेना। यंह मंत्र है—'तुम जानत तुम देत जनाई'। मेरे जानने से नहीं। तुम जनाओ। तुम जगाओ। तुम चेताओ। तुम चैतन्य हो, तुम चेता सकते हो। तुम जानते हो, तुम जना सकते हो। तुम पूर्ण हो, तुम मेरे भीतर पूर्ण को भर सकते हो। मैं शून्य हूं, मैं शून्य की भांति कितना ही दौड़ता रहूं, कुछ भी न होगा। आदमी अकेला रहे, रिक्त है, परमात्मा साथ हो, भरा है।

यक मय-ए-बेनाम जो इस दिल के पमाने में है
वो किसी शीशे में है साक़ी न मयखाने में है

यूं तो साकी हर तरह क़ी तेरे मयख़ाने में है
वो भी थोड़ी-सी जो इन आंखों के पैमाने में है

एक ऐसा राज़ भी दिल के निहांख़ाने में है
लुत्फ़ जिसका कुछ समझने में न समझाने में है

एक कैफ़े-नातमामे दर्द की लज्ज़त ही क्या
दर्द की लज्ज़त सरापा दर्द बन जाने में है

फ़िर निक़ाब उसने उलट कर रूह ताज़ा फूंक दी
अब न का'बे में है सन्नाटा, न बुतख़ाने में है

एक बार वह अपना पर्दा खुद उघाड़ दे—'घूंघट के पट खोल'—एक बार वह खुद ही अपना घूंघट खोल दे...

फिर निक़ाब उसने उलट कर रूह ताज़ा फूंक दी
अब न का'बे में है सन्नाटा, न बुतखाने में है

फिर सब तरफ गीतों की झंकार पैदा हो जाती है। काबा भी गा उठता है, मस्जिद भी गुनगुना उठती है, मंदिर भी पुनरुज्जीवित हो जाते हैं; मिट्टी में अमृत की धुन आने लगती है।

यक मय-ए-बेनाम जो इस दिल के पैमाने में है
वो किसी शीशे में है साक़ी न मयखाने में है

और एक मदिरा तुम्हारे दिल के भीतर है। वह किसी भी मधुशाला में नहीं मिलेगी। मगर उस मदिरा तक तुम्हारे हाथ पहुंच नहीं सकते—तुम्हारे हाथ तो बाहर-ही-बाहर पहुंचते हैं। उस मदिरा तक तो परमात्मा के हाथ ही पहुंच सकते हैं। उसने ही रखी है तुम्हारे हृदय में, वही तुम्हें पिलाए तो पीना हो!

एक ऐसा राज़ भी दिल के निहांख़ाने में है
लुत्फ़ जिसका कुछ समझने में न समझाने में है

न तो समझा जा सकता, न समझाया जा सकता। लेकिन, जाना जा सकता। वही जना दे, तो जाना जा सकता। भक्ति का सार-सूत्र है कि परमात्मा के किये ही कुछ होता है, मनुष्य के किये कुछ भी नहीं होता है।

'जगत भगत केते तुम तारा, ...'

और कितने लोगों को तुमने तार दिया, . . .'मैं अजान केतान बिचारा।' मैं भी एक छोटा-मोटा . . . मैं कुछ बहुत बड़ा भगत भी नहीं हूं, मेरी भक्ति भी कोई ऐसी नहीं कि तुम मुझे तारो ही; मुझे मेरी भक्ति पर भी कोई ऐसा भरोसा नहीं है, क्योंकि जगत में बड़े-बड़े भक्त हुए हैं, जगत में बड़े-बड़े भक्त हैं—'जगत भगत केते तुम तारा, मैं अजान केतान बिचारा'—लेकिन मैं, मेरी कौन गिनती? फिर भी तुम आए। फिर भी तुमने दर्शन दिये? फिर भी तुमने मेरे तन-मन को आनंद से सरोबोर किया। फिर भी तुमने मेरे हृदय में मदिरा उंडेली। फिर भी तुमने अपनी नक़ाब पलटी। इससे भरोसा आता है कि अगर मुझे हो सकता है, तो सब को हो सकता है। मैं तो ना-कुछ, मेरी कोई बिसात नहीं। हुआ होगा बड़े भक्तों को, वे बड़े थे, मेरी तो कोई बिसात नहीं, मैं अजान केतान बिचारा, लेकिन जब तुम मेरे सामने प्रगट हो गये तो एक बात पक्की हो गयी, एक बात निश्चित हो गयी कि अब तुम किसी के भी सामने प्रगट हो सकते हो। मैं तो अंतिम से अंतिम हूं, अगर मैं तुम्हारी अनुकम्पा का अधिकारी हूं, तो प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारी अनुकम्पा का अधिकारी है।

'चरन सीस मैं नाहीं टारौं,' अब मैं तुम्हारे चरणों से अपने सीस को नहीं हटाऊंगा। 'निर्मल मूरत निरत निहारौं,' अब तो देखता रहूंगा यह तुम्हारा प्यारा रूप, यह तुम्हारे सौंदर्य में नहाता रहूंगा।

'जगजीवन कां अब विस्वास, राखहु सतगुरु अपने पास॥'

अब मुझे भरोसा हो गया है, अब मुझे श्रद्धा उमगी है—जगजीवन को अब विस्वास— अब तक मुझे विश्वास नहीं था कि मैं भी पार हो सकूंगा। अब तक मुझे विश्वास नहीं था कि कभी मैं भी इस योग्य हो सकूंगा कि तुम्हारे दर्शन होंगे। जब यह अपूर्व घटना घट गयी—अनायास, अनपेक्षित—तो अब एक घटना और भी घटेगी इसका भी भरोसा बैठता है: 'राखहु सतगुरु अपने पास,' अब तुम मुझे अपने पास रखो। अब यह भी श्रद्धा बनती है कि जब इतना हुआ, तो इतना भी होगा। एक श्रद्धा दूसरी श्रद्धा में ले जाती है। एक श्रद्धा दूसरी श्रद्धा के लिए द्वार बन जाती है।

निगाहों का मर्कज़ बना जा रहा हूं
मोहब्बत के हाथों लुटा जा रहा हूं

मैं क़तरा हूं लेकिन ब-आग़ोशे-दरिया
अज़ल से अबद तक बहा जा रहा हूं

वही हुस्न जिसके हैं ये सब मज़ाहिर
उसी हुस्न में हल हुआ जा रहा हूं

न जाने कहां से न जाने किधर को
बस इक अपनी धुन में उड़ा जा रहा हूं

न इद्राके-हस्ती न एहसासे-मस्ती
जिधर चल पड़ा हूं चला जा रहा हूं

न सूरत न मानी न पैदा न पिन्हां
ये किस हुस्न में गुम हुआ जा रहा हूं

उसके चरणों पर हाथ पड़ते ही——न सूरत न मानी न पैदा न पिन्हां——फिर कुछ सूझ-बूझ नहीं रह जाती। होश-हवाश नहीं रह रह जाता। न सूरत न मानी न पैदा न पिन्हां... न कोई अर्थ, न कोई अभिप्राय, न कोई हेतु, ये किस हुस्न में गुम हुआ जा रहा हूं... और यह किस सौन्दर्य में डूबता जा रहा हूं ?

निगाहों का मर्कज़ बना जा रहा हूं
मोहब्बत के हाथों लुटा जा रहा हूं

धन्यभागी हैं वे जो प्रेम के हाथ लुट जाएं !

मैं कतरा हूं लेकिन ब-आगोशे-दरिया...

हूं तो एक छोटी-सी बूंद, एक कतरा, लेकिन सागर ने मुझे अपनी गोद में ले लिया है।

मैं कतरा हूं लेकिन ब-आगोशे-दरिया
अज़ल से अबद तक बहा जा रहा हूं

अब तो शाश्वतता मेरी है। प्रारम्भ से अंत तक सब मेरा है। अनंतता मेरी है।

मैं कतरा हूं लेकिन ब-आगोशे-दरिया...

हूं तो बूंद, लेकिन यह सागर की गोद में जो पड़ गया हूं तो अब सीमा नहीं है मेरी, अब असीम हूं ...

मैं कतरा हूं लेकिन ब-आगोशे-दरिया
अज़ल से अबद तक बहा जा रहा हूं

वही हुस्न जिसके हैं ये सब मज़ाहिर
उसी हुस्न में हल हुआ जा रहा हूं

और जिस सौंदर्य से यह सारा अस्तित्व परिव्याप्त है, उसी में डूबता जा रहा हूं, उसी में पिघलता जा रहा हूं, उसी में लीन होता जा रहा हूं।

न जाने कहां से न जाने किधर को

बस इक अपनी धुन में उड़ा जा रहा हूं

न इद्राके-हस्ती न एहसासे-मस्ती
जिधर चल पड़ा हूं चला जा रहा हूं

न सूरत न मानी न पैदा न पिन्हां
ये किस हुस्न में गुम हुआ जा रहा हूं

भक्त की पराकाष्ठा है : गुम हो जाना। भक्त की पराकाष्ठा है : लीन हो जाना, तल्लीन हो जाना। जैसे बूंद सागर में लीन हो जाती है। जरा भी भिन्न नहीं रह जाती। कोई सीमा का भेद नहीं रह जाता। उस अभेद में ही भक्त भगवान हो जाता है। 'अनलहक'। 'अहं ब्रह्मास्मि'।

आज इतना ही।
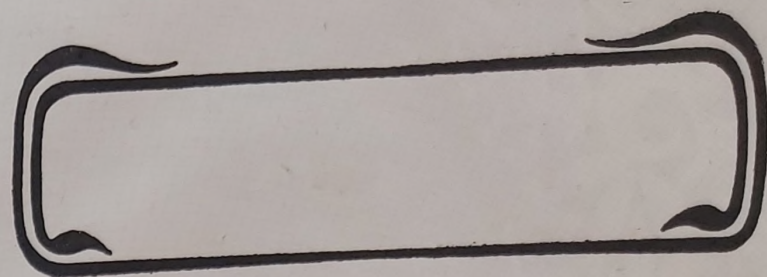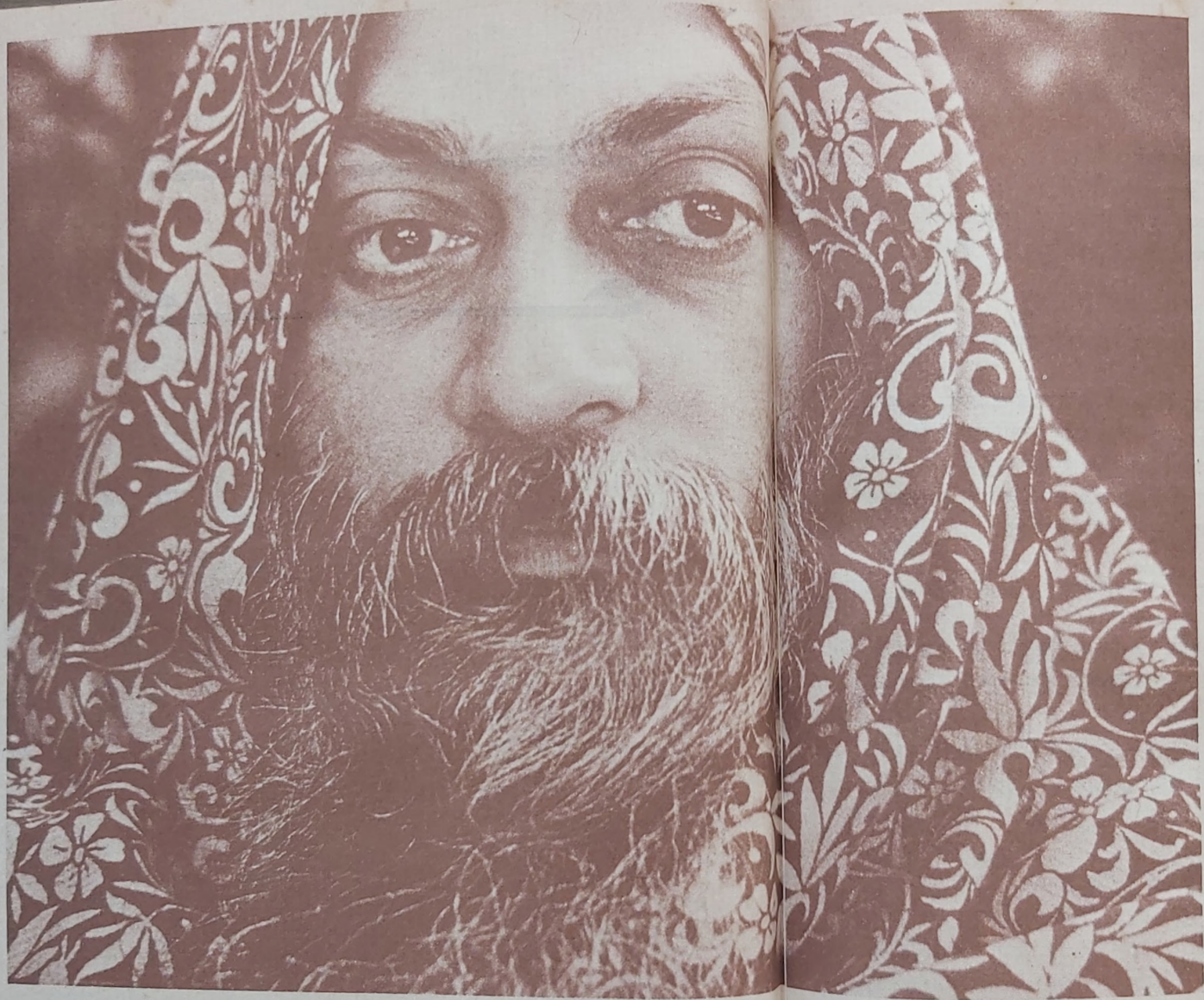
महासुख : फैलना और फैलते जाना

चौथा प्रवचन; १४ सितम्बर १९७८; श्री रजनीश आश्रम, पूना.

हम खुदा के तो कभी कायल न थे
तुम्हें देखा तो खुदा याद आया।
शवूर सिजदा नहीं है मुझको, तू मेरे सिजदों की लाज रखना
यह सिर तेरे आस्तां से पहले, किसीके आगे झुका नहीं है।

भगवान,
मेरी पत्नी के मन में कोई प्रश्न नहीं उठता! क्या कारण है?

जब भी कभी ईश्वर-स्मरण की भावना भीतर उमड़ती है, तब कोई-न-कोई रूप उमड़ आता है। किंतु आपके कथन से आश्वस्त हूं कि सब आकार मन की सीमा के भीतर हैं और कल्पनाएं हैं। कृपया बताएं कि दिन-भर में या ध्यान के समय जब भी प्रभु-स्मरण की प्रबल भावना उमड़े, तब उसका क्या स्वरूप हो?

मनुष्य जीवन का मूल संताप क्या है?

एक मित्र का एक ध्यान-अनुभव से उत्पन्न स्थितियों पर प्रकाश डालने के लिए व भावी साधना हेतु मार्गनिर्देशन करने के लिए भगवान से अनुरोध!

पहला प्रश्न : हम खुदा के तो कभी कायल न थे
तुम्हें देखा तो खुदा याद आया।
शवूर सिजदा नहीं है मुझको, तू मेरे सिजदों की लाज रखना
यह सिर तेरे आस्तां से पहले, किसी के आगे झुका नहीं है।

और क्या कहूं, बस अब आप कुछ ऐसी तदबीर करें कि जिससे यह जो एक तीर-ए-नीमक़श दिल में चुभा है, सीने के पार हो जाए। प्रश्न लिखने के बहाने ही आंसू बह निकले हैं। आप इसका जवाब देंगे तब भी खूब बहेंगे, नहीं देंगे, तब भी। क्या करूं, अब तो बरसात आ ही गयी! पर पता नहीं बर का साथ कब होगा? होगा भी या नहीं?

कृष्णतीर्थ! सत्संग का यही अर्थ है। जिस निमित्त परमात्मा की याद आ जाए, वही सत्संग है। सागर में उठते हुए तूफान को देखकर परमात्मा की याद आ जाए, तो वहीं सत्संग हो गया। आकाश में ऊगे चांद को देखकर याद आ जाए, तो वहीं सत्संग हो गया। जहां सत्य की याद आ जाए, वहीं सत्य से संग हो जाता है।

और परमात्मा तो सभी में व्याप्त है। इसलिए याद कहीं से भी आ सकती है--किसी भी दिशा से। और परमात्मा तुम्हें सब दिशाओं से तलाश रहा है, खोज रहा है। कहीं से भी रंध्र मिल जाए, जरा-सी संधि मिल जाए, तो उसका झोंका तुममें प्रवेश हो जाता है। वृक्षों की हरियाली को देखकर, ऊगते सूरज को देखकर, पक्षियों के गीत सुनकर, पपीहे की 'पी कहां' की आवाज सुनकर...। और अगर तुम गौर से सुनो तो हर आवाज में उसी की आवाज है। तुम्हें अगर मेरी आवाज में उसकी आवाज सुनायी पड़ी, तो उसका कारण यह नहीं है कि मेरी आवाज ही केवल उसकी आवाज है, उसका कुल कारण इतना है कि तुमने मेरी ही आवाज को गौर से

सुना। सभी आवाजें उसकी हैं। जहां भी तुम शांत होकर, मौन होकर, खुले हृदय से सुनने को राजी हो जाओगे, वहीं से उसकी याद आने लगेगी।

खुदा के कायल होना ही होगा, क्योंकि खुदा तो सब तरफ मौजूद है। आश्चर्य तो यही है कि कुछ लोग कैसे बच जाते हैं खुदा के कायल होने से? चमत्कार है कि परमात्मा से भरे इस अस्तित्व में कुछ लोग नास्तिक रह जाते हैं? उनके अंधेपन का अन्त न होगा! वे बहरे होंगे। उनके हृदय में धड़कन न होती होगी। उनके हृदय पत्थर के बने होंगे। यह असंभव है! अगर कोई जरा आंख खोले तो चारों तरफ वही मौजूद है, उसी की छबि है। मंदिरों और मस्जिदों में जाने की जरूरत इसीलिए पड़ती है कि हम अंधे हैं। अन्यथा जहां हो वही मंदिर है—खुली आंख चाहिए। थोड़े जाग्रत होकर जहां भी बैठ जाओगे, वहीं तुम उसकी वर्षा पाओगे। बरस ही रहा है। उसकी वर्षा अनवरत है।

तुम कहते हो—

हम खुदा के तो कभी कायल न थे
तुम्हें देखा तो खुदा याद आया।

इससे मेरा कुछ सम्बंध नहीं है। जिस ढंग से तुमने मुझे देखा, उसी ढंग से अब औरों को भी देखना शुरू करो। और तुम्हें जगह-जगह खुदा ही नजर आएगा और तुम कायल-पर-कायल होते चले जाओगे। और एक दिन वह अपूर्व चमत्कार भी घटेगा: दर्पण के सामने खड़े अपनी तस्वीर देखोगे और खुदा दिखायी पड़ेगा। जिस दिन वह भी घट जाए, उस दिन जानना है कि यात्रा पूरी हुई। जिस दिन तुम्हें अपने में भी परमात्मा की ही याद आने लगे।

सबसे कठिन बात वही है। क्योंकि लोगों को सदा से आत्मनिंदा सिखायी गयी है। तुम्हारे सबके मन आत्मनिंदा से भरे हैं—मैं ना-कुछ, अपात्र, पापी! तुम्हें सिर्फ तुम्हारी भूलें ही दिखायी पड़ती हैं क्योंकि तुम्हारी भूलें ही तुम्हें सुझाई गयी हैं बार-बार। बचपन से लेकर अब तक, सदियों-सदियों में तुम्हें एक ही बात सिखायी गयी है कि तुम दो कौड़ी के हो। तुम्हारा कोई मूल्य नहीं है। मैं तुम्हें याद दिलाना चाहता हूं: तुम अमूल्य हो! तुम्हारे भीतर परमात्मा विराजमान है। तुम्हारी छोटी-मोटी भूलों इत्यादि से तुम्हारे भीतर के परमात्मा का कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं। तुम्हारी निर्मलता वैसी-की-वैसी है। जैसे आकाश में बादल घिरते हैं और विदा हो जाते हैं और आकाश का क्वांरापन जरा भी खंडित नहीं होता, ऐसा ही तुम्हारा क्वांरापन है।

अगर तुम्हें मेरे पास बैठ-बैठ कर परमात्मा का स्मरण आने लगा है, तो अब इस भूल में मत पड़ जाना कि परमात्मा बाहर है; नहीं तो फिर चूके! पहले चूकते रहे, क्योंकि परमात्मा नहीं है—एक चूक—फिर दूसरी चूक कि परमात्मा बाहर है,

किसी और में है। नास्तिक चूकता है, आस्तिक भी चूक जाता है। नास्तिक चूकता है मानकर कि परमात्मा नहीं है और आस्तिक चूक जाता है मानकर कि 'राम' में है, 'कृष्ण' में है, 'बुद्ध' में है।

धार्मिक कौन है?

धार्मिक वह है, जिसे दिखायी पड़ता है: 'मुझमें'। और जब मुझमें है, तो सब में ही होगा। क्योंकि मुझ तक में हो सकता है, मुझ ना-कुछ में हो सकता है, तो फिर कोई स्थान रिक्त नहीं है।

तुम कहते, कृष्णतीर्थ—

शवूर सिजदा नहीं है मुझको, तू मेरे सिजदों की लाज रखना
यह सिर तेरे आस्तां से पहले, किसीके आगे झुका नहीं है

सिर है ही कहां? झुकाओ तो पता चलता है कि है ही नहीं। न झुकाओ तो पता चलता है कि है। अहंकार छोड़ना थोड़े ही पड़ता है। हो तो छोड़ो। जब आंख खुलती है तो पता चलता है कि है ही नहीं। रात तुमने स्वप्न देखा कि तुम सम्राट हो, बड़ा साम्राज्य है, महल हैं स्वर्ण के, अप्सराओं जैसी तुम्हारी रानियां हैं। देवताओं जैसे सुंदर तुम्हारे पुत्र हैं। और फिर सुबह आंख खुली, फिर क्या रात के सपने को छोड़ना पड़ता है? हंसी आती है। इस धोखे में पड़ सके, इस पर भरोसा नहीं आता! छोड़ना क्या है? जब तक जागे नहीं, तब तक सपना है। और तब तक सपना सच है। तब तक सपना बहुत सच है। जागे कि सपना कहां? झुके कि सिर कहां? इसलिए झुकने के बाद फिर कोई सिजदा की कला थोड़े ही सीखनी होती है! झुकने के बाद तो पता चलता है कि सिजदा चल ही रहा था, हम नाहक ही सिर के सपने में पड़ गये थे। सिर था ही नहीं। झुक कर ही पता चलता है कि सिर नहीं है। अगर एक बार भी झुक गये, तो फिर तुम दुबारा अपने सिर को न खोज पाओगे। झुके कि अहंकार गया।

अहंकार उस नींद का नाम है, जिसको अकड़ कहें। झुके, झुक सके, एक बार भी, तो झलक मिल जाएगी। झलक मिल जाए समर्पण की, आनंद बरस जाए। फिर कौन पकड़ता है उस नर्क को जिसका नाम अहंकार था!

नहीं, सिजदा कीं कोई कला नहीं होती। सिजदा सीखना भी नहीं होता। सीखा जा भी नहीं सकता। हां, कभी अनायास किसी की सन्निधि में घट जाता है। निमित्त मात्र। किसी की मौजूदगी कारण बन जाती है। कभी-कभी तो ऐसा होता है, व्यक्ति न भी हो तो भी सिज़दा हो जाता है।

कभी सुबह एकान्त में, वन के किसी राह पर, ताजा-ताजा सूरज ऊगता हो, जमीन से उठती हो सोंधी सुगंध, वृक्ष हरे हों, घास पर अभी ओस के मोती जमे हों, पक्षी गीत गाते हों—नहीं क्या कभी मन होता कि झुक जाएं, घुटने टेक दें भूमि पर,

सिर लगा दें जमीन पर ? नहीं कोई चरण हैं, नहीं कोई मूर्ति है, लेकिन फिर भी झुक जाने का एक अपूर्व भाव उठता है। और अगर झुक जाओ––किसके सामने झुके ? कोई भी न था। लेकिन किसके सामने झुकने का सवाल ही नहीं है, झुकने में असली राज है। झुक गये, सिजदा हो गया। उठोगे, दूसरे ही आदमी होकर उठोगे। बिना सिर के हो जाओगे। संन्यासी का अर्थ ही यही है : जिसका सिर दूसरों को दिखायी पड़ता है, उसकी तरफ से नहीं हो गया है। उनको दिखायी पड़ता है जो अभी भी सो रहे हैं। उनके सपने में है। लेकिन उसके जागरण में सिर खो गया है।

'शबूर सिज्दा नहीं है मुझको'. . .। किसको है ? इसकी कोई कला तो नहीं होती। कला का उपाय ही नहीं। और अगर किसी ने कला सीखकर सिर झुकाया, तो सिर झुकाना झूठा हो जाता है––यह भी याद रहे ! मंदिरों-मस्जिदों में कितने लोग तो सिर झुका रहे हैं, मगर झुकता कहां ? हालत उल्टी है। मंदिर-मस्जिद में जानेवाले का सिर और अकड़ जाता है। वह और अकड़कर बाहर आता है कि मैं धार्मिक हूं ! कि देखो रोज मंदिर जाता हूं––और तुम पापी !

मुहम्मद एक दिन एक युवक को लेकर मस्जिद गये। पहली दफा युवक मस्जिद गया मुहम्मद के साथ। जब प्रार्थना कर के वापिस लौटते थे––गर्मी के दिन थे और कुछ लोग अभी भी रास्तों पर अपने बिस्तरों में सोए थे––उस युवक ने मुहम्मद से कहा : हजरत ! इन पापियों का क्या होगा ? ये नर्क में पड़ेंगे ? यह समय प्रार्थना का और ये अभी भी बिस्तरों में पड़े हैं। इन काहिलों, इन आलसियों की क्या गति होगी, कुछ बताएं। मुहम्मद ठिठक कर खड़े हो गये। उनकी आंख से आंसू गिरने लगे। हाथ जोड़ लिये, वहीं झुक गये जमीन पर और परमात्मा से क्षमा मांगने लगे। वह युवक तो बहुत घबड़ाया। उसने कहा, बात क्या है, आप किस बात की क्षमा मांग रहे हैं ? उन्होंने कहा, मैं क्षमा मांग रहा हूं कि मैं तुझे मस्जिद क्यों ले गया ? तू न जाता मस्जिद तो ही भला था। कम-से-कम तुझे यह तो ख्याल नहीं था कि तू पुण्यात्मा है और दूसरे पापी हैं। मुझसे और एक भूल हो गयी। तू भी सोया पड़ा रहता था रोज, तेरे मन में कभी यह अहंकार न उठा था कि मैं पुण्यात्मा और दूसरे पापी। आज एक बार तू मस्जिद क्या हो आया, तू पुण्यात्मा हो गया ! दूसरे नरक में पड़ेंगे, इसका विचार करने लगा, किस नरक में पड़ेंगे, पूछताछ करने लगा ! मुझे वापिस जाना होगा मस्जिद। मुझे नमाज फिर से करनी होगी। भाई, तू घर जा और सो। मेरी नमाज खराब हो गयी ! मैं सोचा था कि मेरे संग-साथ तेरी नमाज भी उड़ जाएगी पंख खोलकर, . . .मेरी नमाज तक के पंख तूने तोड़ दिये। मुझसे बड़ी भूल हो गयी।

मुहम्मद दुबारा गये। फिर से नमाज पढ़ी।

धार्मिक आदमी जिसको तुम कहते हो, उसकी अकड़ देखते हो ? किसी ने

जनेऊ पहन रखा है, किसी ने तिलक लगा रखा है––उसकी अकड़ देखते हो ? वह रोज मंदिर हो आता है, थोड़ा मंदिर की घंटी बजा देता है . . . वह घंटा भी क्यों लटका रखा है मंदिर में, मालूम है ! वह खबर कर रहा है भगवान को––कि सुनो, मैं आ गया। जोर से घंटा बजा रहा है, कि कहीं झपकी खा रहे होओ, या सो गये होओ तो जाग जाओ ! ––देखो, कौन आया ? और फिर वह घूमता है जगत में एक पवित्र अहंकार लिये। और अहंकार कहीं पवित्र हुआ है ! नहीं, सिज्दे की कोई कला नहीं होती। प्रार्थना की कोई कला नहीं होती। प्रार्थना तो सरलता है।

तो कृष्णतीर्थ, झुक गये, बस उसी झुकने में प्रार्थना है। यह पूछो ही मत : कैसे झुकें ? कैसे झुके रहें ? ––पूछो ही मत ! जिसने झुका लिया है, वही आगे भी झुकाता रहेगा। तुम अपने हाथ में यह काम मत ले लेना। तुम प्रार्थना करने को अपना कृत्य मत बना लेना। उसने झुका लिया है, वही झुकाए रखेगा। तुम इसे औपचारिक नियम मत बना लेना।

मनुष्य की बड़ी-से-बड़ी भूलों में एक है कि वह जीवन की श्रेष्ठतम चीजों को भी औपचारिक नियम बना लेता है। बस, जैसे ही औपचारिक नियम बनते हैं, श्रेष्ठता खो जाती है, जीवन खो जाता है, जड़, मुर्दा चीजें हाथ में रह जाती हैं।

कहा है : 'और क्या कहूं, बस आप ऐसी तदबीर करें जिससे कि यह जो एक तीर-ए-नीमकश दिल में चुभा हुआ है, सीने के पार हो जाए'। न तो मेरी तरकीब से होगा, न तुम्हारी तरकीब से होगा। जैसे अनायास यह तीर लग गया है सीने में और आधा पार हो गया है, ऐसे ही अनायास पूरा भी पार हो जाएगा। कार्य-कारण के नियम काम नहीं करते।

फिर जल्दी भी न करो,। थोड़ा तड़पो ! यह जो आधा-आधा छिदा हुआ तीर है हृदय में, इसकी पीड़ा को भी आनंद से भोगो। इसकी पीड़ा मधुर है, मीठी है। जल्दी मत करो, अधैर्य भी मत करो कि जल्दी यह पार हो जाए। इसको ही मैं आस्तिकता कहता हूं, इसीको मैं श्रद्धा कहता हूं––जो हो रहा है, उससे आनंदित। और जितनी देर प्रतीक्षा करनी होगी, उतनी देर प्रतीक्षा को तैयार। अगर जन्मों-जन्मों भी लगेंगे, तो भी तैयार। जैसे ही तुमने सोचा कि जल्दी हो, पूरा हो जाए, वैसे ही जो हो रहा था, वह भी रुक जाएगा। तुम आ गये, तुम बीच में आ गये। परमात्मा को करने दो––यही जगजीवन का सार-सूत्र है। यही भक्ति का अर्थ है : उसे करने दो। अगर आधा तीर चुभा है तो अभी आधे को ही जरूरत होगी। अभी जरूरत होगी कि तुम तड़पो। क्योंकि तड़पने से निखार आता है। अभी पीड़ा आवश्यक होगी, क्योंकि पीड़ा मांजती है। पीड़ा प्रौढ़ता देती है। यह आग तुम्हारी शत्रु नहीं है। इसी आग से गुजरकर तुम शुद्ध स्वर्ग बनोगे, कुंदन बनोगे।

मैं तुम्हारी तकलीफ भी जानता हूं। हम सब जल्दी में हैं। और हमारी जल्दी

के कारण ही देर हुई जा रही है। और तुम्हें भी भलीभांति पता है, तुम्हारे जीवन के सामान्य अनुभव में भी रोज होता है—जब तुम जल्दी करते हो, देर हो जाती है। ट्रेन पकड़नी है, समय हो गया, टैक्सीवाला हॉर्न बजाए जा रहा है और तुम भाग-दौड़ में लगे हो और अपना किसी तरह सामान बांध रहे हो। चाभी हाथ में है और चाभी खोज रहे हो! चश्मा नाक पर चढ़ा है और चश्मे की तलाश कर रहे हो कि चश्मा कहां है? जल्दी में और देर हुई जा रही है। नहीं तो ऐसी भूलें नहीं होतीं। जल्दी में मन उत्तप्त हो जाता है। जितनी जल्दबाजी, उतना ही मन चिन्तित हो जाता है। जितना चिंतित हो जाता है, उतना ही अंधा हो जाता है।

परमात्मा की खोज अनंत प्रतीक्षा है। अनंत प्रतीक्षा ही प्रार्थना है।

नहीं, कोई जल्दी न करो। और मैं तुम्हारी तकलीफ समझता हूं। जिन्हें स्वाद नहीं लगा है बिलकुल, उन्हें तो जल्दी होती ही नहीं। जल्दी का कोई कारण ही नहीं है, स्वाद ही नहीं लगा है। जिन्हें स्वाद लगा—तुम धन्यभागी हो, तुम्हें स्वाद लगा! तीर छुआ है तुम्हारे हृदय को, चोट लगी है, चुभन हो रही है—अब तुम चाहते हो कि यह जो घटना घट गयी, यह पूरी घट जाए। मगर अगर तुमने बहुत जल्दबाजी की, तुमने अगर बहुत आतुरता दिखायी, तुम अगर बहुत चिंतित हो गये, तो तीर जो आधा चुभा है, वह भी गिर जाएगा। नहीं, राह देखो। धन्यवाद दो जो हुआ है! और इस पीड़ा को अहोभाव से भोगो! और यह पीड़ा बड़ी अनूठी पीड़ा है। यह प्रेम की पीड़ा है! जल्दी क्यों! यह विरह की रात लम्बी हो तो लम्बी सही। यह विरह की रात है। और उसकी याद में बीतेगी। और उसका इंतजार भी उसके मिलने से कुछ कम आनंद की बात नहीं।

तुम ठीक कहते हो कि 'बरसात तो आ गयी, अब बर का साथ कब होगा?' वह भी होगा। जब बरसात आ गयी तो बर भी आता ही होगा।

> है कितना दिलफ़रेब यह बरसात का आलम।
> अल्हड़ हसीं का जैसे ख़यालात का आलम ।।
> आता है इस तरह से पवन झूमता हुआ।
> हो जैसे किसी रिंद-ए-ख़राबात का आलम ।।
> दिखलाई नहीं देतीं यों आकाश में चिड़ियां।
> जैसे कि दिल आने पे वज़ूहात का आलम ।।
> छिपती है किरन अब्र के घूंघट से झांककर।
> तौबा ये कनाए से इशारात का आलम ।।
> तेज़ी से गुज़रना है ये घनघोर घटा का।
> या सुबहे-शबे-वस्ल में लमहात का आलम ।।
> रुकती ही नहीं बूंदों की छनछूम-छननछूम।
> ये बरखा की छागल के हैं नगमात का आलम ।।
> कोयल कहे है कौन है, पी बोले पपीहा।
> उफ़ रे! यह सवालातो-जवाबात का आलम ।।
> शाख़ों की दुल्हन पहने हुए फूलों के ज़ेवर।
> अल्लाह रे! ये पहली मुलाक़ात का आलम ।।

बूंद पड़ने लगी। पहली-पहली बरखा की बूंदें आ गयीं। रुकती ही नहीं बूंदों की छनछूम-छननछूम। बाढ़ भी आती होगी। घनघोर वर्षा भी होगी। बरसात आ गयी। दबे बीज, जन्मों-जन्मों दबे बीज फूटेंगे, अंकुरित होंगे; फलेंगे, फूलेंगे। भरोसा रखो!!

और मैं जानता हूं कि जब तीर लगता है और आधा-आधा लगता है—और सदा आधा-आधा ही लगता है शुरू में; यही प्रक्रिया है जीवन-रूपांतरण की—तो कहते भी नहीं बनता कि क्या हो रहा है—जबान लड़खड़ाती है।

> क्या हुस्न का अफ़साना महदूद हो लफ़्जों में
> आंखें ही कहें उसको आंखों ने जो देखा है

शब्द कह नहीं पाते। भीतर जो अनुभव होता है, वह भी वही समझ पाएगा जिसे अनुभव हुआ है। तो इस तीर-ए-नीमक़श की बात उनसे मत करना जिन्होंने न तीर देखे हैं, न खाए हैं। जो कभी प्रेम से घायल नहीं हुए, उनसे इसकी बात मत करना। अन्यथा वे हंसेंगे और पागल समझेंगे। और झुकना हो गया है, तो असली बात तो घट गयी, द्वार तो खुल गये मंदिर के।

> सरे-नियाज़ न जब तक किसी के दर पे झुका
> बराबर इक ख़लिश-सी मिरी जबीं में रही

जब तक सिर झुकता नहीं, तब तक एक चुभन-सी बनी रहती है। झुकने का आनंद अपूर्व है।

झुकने का आनंद मिटने का आनंद है।

झुकने का आनंद निर्भार होने का आनंद है।

झुकने का आनंद अहंकार से छुटकारे का आनंद है।

जैसे पक्षी छूट जाए पिंजड़े से, सारा आकाश उसका अपना हो। अहंकार बड़ा छोटा पिंजड़ा है। जो नहीं झुक पाते, वे अभागे हैं। तुम सौभाग्यशाली हो! और तुम झुके तो तीर भी लगा।

अब प्रतीक्षा करो! अश्रुपूर्ण होगी प्रतीक्षा। लेकिन आंसू तुम्हारे आनंद के आंसू हों। आनंद, तुम्हारे अहोभाव, तुम्हारी कृतज्ञता के आंसू हों। इस पीड़ा को छाती से लगाकर पड़े रहो।

> फुर्सत कहां कि छेड़ करें आस्मां से हम

लिपटे पड़े हैं लज़्ज़ते दर्दे-निहां से हम
इस भीतर की पीड़ा की लज़्ज़त अनुभव करो।
लिपटे पड़े हैं लज़्ज़ते दर्दे-निहां से हम
यह संपदा है, इसे छाती से लगा लो।
फ़ुर्सत कहां कि छेड़ करें आस्मां से हम
लिपटे पड़े हैं लज़्ज़ते दर्दे-निहां से हम

इस दर्जा बेक़रार थे दर्दे-निहां से हम
कुछ दूर आगे बढ़ गये उम्रे-रवां से हम

ऐ चारा-साज़! हालते-दर्दे-निहां न पूछ
इक राज़ है जो कह नहीं सकते ज़बां से हम

बैठे ही बैठे आ गया क्या जाने क्या ख़याल
पहरों लिपट के रोये दिले-नातुवां से हम

आएंगे ख्याल—दूर आकाश से उड़ते हुए—अनंत के, अज्ञात के और खूब आंसू बहेंगे। कंजूसी मत करना। कृष्णतीर्थ, कृपणता मत करना! आंसुओं के अतिरिक्त हमारे पास और कोई अर्घ्य है भी नहीं जो हम चढ़ाएं परमात्मा के चरणों में। आंसुओं के अतिरिक्त और हमारे पास है भी क्या जो हम भेंट करें! इसलिए बचाना मत। जो दिल खोलकर रो सकता है, वह पहुंच ही गया। उसके पहुंचने में देर नहीं है।

प्रेम के मार्ग पर आंसुओं से सीढ़ियां पार की जाती हैं। एक-एक आंसू सोपान बन जाता है। रोओ, आनंदमग्न होकर रोओ। इस पीड़ा को आलिंगन करो। और अनंत प्रतीक्षा की तैयारी रखो।

अंतिम बात। जो अनंत प्रतीक्षा की तैयारी रखता है, उसकी घटना हो सकता है अभी घट जाए, यहीं घट जाए। और जो चाहता है अभी घटे, यहीं घटे, हो सकता है उसे अनंतकाल तक प्रतीक्षा करनी पड़े और कभी न घटे। ऐसा उल्टा नियम है अध्यात्म का। यहां दौड़ने वाले चूक जाते हैं, यहां बैठे रहनेवाले पहुंच जाते हैं।

दूसरा प्रश्न: मेरी पत्नी के मन में कोई प्रश्न नहीं उठता। क्या कारण है?

सुमति सरस्वती! तुम धन्यभागी हो, तुम्हारी पत्नी तुमसे ज्यादा बुद्धिमान है।

सुमति सरस्वती ने कम-से-कम दो दर्जन प्रश्न पूछे हैं आज। और सुमति को ख्याल होगा कि इस तरह के इतने प्रश्न पूछना बुद्धिमानी का लक्षण है। इतने प्रश्न पूछना सिर्फ विक्षिप्तता का लक्षण है, बुद्धिमानी का नहीं। और जब तुम्हारे प्रश्न मैंने देखे, तो मुझे तुम्हारी पत्नी पर बहुत दया आयी। न-मालूम किन कर्मों का फल बेचारी को तुम मिले! एक-से-एक अद्भुत प्रश्न हैं। नमूने के तौर पर—

'ध्यान से छुटकारा कब होगा?'

अभी ध्यान हुआ नहीं, अभी ध्यान का कुछ पता नहीं है, लेकिन छुटकारे का पहले से उपाय कर रहे हैं। ध्यान का मतलब ही क्या होता है? चित्त से छूट जाने का नाम ध्यान है। फिर ध्यान से कैसा छुटकारा? ध्यान का अर्थ ही परम छुटकारा है। तुम्हारा प्रश्न ऐसा ही है जैसे कोई कारागृह में पड़ा हुआ बंदी पूछे कि ठीक है, कारागृह से तो छुटकारा हो जाएगा, फिर स्वतंत्रता से कब छुटकारा होगा? स्वतंत्रता से छुटकारा! तो तुम समझे ही नहीं। ध्यान तो दूर है, अभी तुम्हें ध्यान का अर्थ भी पता नहीं है। मगर हां, प्रश्न उठ रहे हैं—संगत, असंगत। नमूने के लिए—

पूछा है, 'कुछ ऐसा कर दें कि मेरे और मेरी पत्नी के बीच झगड़ा न हो।'

पत्नी का तो कसूर दिखायी नहीं पड़ता। कृपा आपकी ही होगी! तुम्हारे दो दर्जन प्रश्न देखकर सब साफ हो गया मुझे कि कौन झंझट खड़ी कर रहा होगा? अब देखो, यह भी प्रश्न, इससे तुम्हें क्या लेना-देना है कि तुम्हारी पत्नी के मन में प्रश्न क्यों नहीं उठते? यह भी तुम्हारा प्रश्न है! यह भी पत्नी को ही पूछने दो।

तुम उसकी जान खाते होओगे कि पूछ! प्रश्न क्यों नहीं पूछती? बुद्धू है? मूढ़ है? प्रश्न क्यों नहीं पूछती? जैसे कि प्रश्न पूछना कोई बड़े ज्ञान की बात है। प्रश्न उठता ही हमारी विक्षिप्तता से है, हमारी उलझन से। और मैं तुम्हें जो उत्तर देता हूं, वह इसलिए नहीं देता कि तुम्हारे प्रश्न बड़े सार्थक हैं, उत्तर सिर्फ़ इसलिए देता हूं ताकि धीरे-धीरे, धीरे-धीरे तुम्हें यह दिखायी पड़ना शुरू हो जाए कि सब प्रश्न व्यर्थ हैं। उस दिन शुभ घड़ी होगी जब तुम्हारे मन में कोई प्रश्न न उठेगा। जिस दिन मन में कोई प्रश्न न उठेगा। जिस दिन मन निष्प्रश्न हो जाता है, उसी दिन भीतर का उत्तर प्रगट हो जाता है।

उत्तर तुम्हारे भीतर है। मगर तुम प्रश्नों में उलझे हो। इसलिए उत्तर का पता नहीं चलता। तुम प्रश्नों में इतना शोरगुल मचा रहे हो कि उत्तर भीतर है भी तो सुनायी नहीं पड़ सकता। उसकी धीमी-धीमी आवाज, उसका धीमा-धीमा स्वर तुम्हारे कोलाहल में खो जाता है। तुम्हारे सारे प्रश्न शान्त हो जाएं, तो तुम चकित हो जाओगे—जीवन के सारे उत्तर तुम्हारी चेतना में छिपे पड़े हैं। तुम जब तक पूछते रहोगे, तब तक चूकते रहोगे। जिस दिन पूछोगे नहीं, उसी दिन तुम्हारे भीतर ही वेदों का वेद जन्मता है। तुम्हारे चैतन्य में ही सारा रहस्य बीज रूप में पड़ा है। मगर तुम बाहर भटक रहे हो। प्रश्न पूछने का मतलब है: कोई दूसरा उत्तर देगा। और तुम्हारे प्रश्नों से मुझे लगा कि तुम अपनी पत्नी से भी कहते होओगे कि पूछ, चल किसी से न पूछ तो मुझसे ही पूछ!

एक बात ख्याल रखना कि पत्नी दुनिया में जब सब के भीतर परमात्मा देख लेगी, आखिर में पति के भीतर देख पाती है— अंतिम। यद्यपि पतियों की कोशिश

बड़ी पुरानी है कि समझाते हैं स्त्रियों को कि पति परमात्मा है। तुम्हारे समझाने से ही जाहिर हो रही बात, कि तुम्हें शक है। थोपते रहे हो स्त्रियों के ऊपर कि पति को परमात्मा मानो। और पत्नियां मुस्कुराती हैं कि तुम और परमात्मा! किसी पत्नी को यह भरोसा नहीं आ सकता है कि पतिदेव और परमात्मा। किसी और का पति हो सकता है, मगर अपने पति को तो स्त्रियां भलीभांति जानती हैं। तुमसे ज्यादा अच्छी तरह तुम्हारी पत्नी तुम्हें पहचानती है। तुम्हारी नस-नस से वाकिफ है। तुम्हारी नाड़ी कहां से दबानी, कब दबानी, कैसे दबानी, सब उसे पता है। तुम्हें एक क्षण में पूंछ हिलाने को मजबूर कर देती है। तुम्हारा सारा ज्ञान इत्यादि उसे पता है। तुम्हारे ज्ञान-ध्यान का कोई मूल्य उसके सामने नहीं है। तुम सोचते होओगे कि वह तुमसे पूछे।

एक महिला--पढ़ी-लिखी महिला यहां आती है। चोरी से आना पड़ता है, क्योंकि पति कहते हैं: कहीं जाने की जरूरत ही नहीं है। जब मैं तेरा पति हूं, तो कहीं जाने की क्या जरूरत? क्या पूछना है, मुझसे पूछ? मेरी किताबें इत्यादि पति फेंक देते हैं। फिर डर के कारण उठाकर उनको सिर से भी लगा लेते हैं--क्योंकि भय भी लगता है कि कहीं कोई नुकसान न हो जाए! उनकी पत्नी ने ही मुझे कहा: कि मेरे सामने तो फेंक देते हैं, और फिर मैंने चोरी-छिपे देखा कि सिर झुकाकर उनको नमस्कार करते हैं और माफी मांगते हैं कि क्षमा करना! अब ऐसे पति से क्या पत्नी डरेगी? और पत्नी के सामने अकड़कर बैठ जाते हैं कि पूछ, क्या तुझे पूछना है? किस तरह का ज्ञान चाहिए? मेरी मौजूदगी में तुझे कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं। अब उनकी पत्नी कहती है कि इनसे पूछने का मन ही नहीं होता। इनसे पूछना क्या है? यह तो मुझसे पूछें उल्टे। छोटी-छोटी बात में चिंतित हो जाते हैं, छोटी-छोटी बात में बच्चे की तरह हो जाते हैं--मुझे इनकी मां का भी काम करना पड़ता है। इनसे मैं क्या पूछूंगी? मगर अकड़। पुरुष का अहंकार। पुरुष का दंभ।

मैंने मुल्ला नसरुद्दीन से पूछा कि तेरी पत्नी और तेरे बीच कभी झगड़ा नहीं सुनायी पड़ता? उसने कहा, झगड़े का कोई कारण ही नहीं। शादी के दिन ही हमने निर्णय कर लिया कि जिंदगी के जो बड़े-बड़े सवाल है, वे मैं तय करूंगा, जो छोटे-मोटे सवाल हैं, वे तू तय करना। और तब से समझौता चल रहा है और कोई झंझट नहीं आती। मैंने कहा, फिर भी मैं थोड़ा पूछना चाहता हूं कि बड़े-बड़े सवाल से तुम्हारा क्या मतलब? और छोटे-छोटे सवाल से तुम्हारा क्या मतलब? उसने कहा, आप यह न पूछें तो अच्छा! मैंने कहा, फिर भी मैं किसी को कहूंगा नहीं। तो उसने कहा, बड़े-बड़े सवाल, जैसे ईश्वर है या नहीं? कितने स्वर्ग हैं? कितने नर्क हैं? वियतनाम का युद्ध होना चाहिए कि नहीं? इज़रायल और मिश्र के बीच समझौता किस ढंग से हो? ऐसे जो बड़े-बड़े सवाल हैं--धर्म के, राजनीति के, अध्यात्म के, दर्शनशास्त्र के--वे मैं तय करता हूं। छोटे-मोटे सवाल, जैसे लड़के को किस स्कूल में भर्ती करवाना, किस फिल्म को देखने जाना, कौन सी कार खरीदनी? ये सब छोटे-मोटे सवाल पत्नी तय करती है।

अब तुम समझ लो, कि बड़े-बड़े सवाल का मतलब है कि बेकार सवाल! जिनसे कुछ लेना-देना नहीं। अब ईश्वर है या नहीं, करते रहो तय! तुम से पूछ कौन रहा है कि इज़राइल और मिश्र के बीच समझौता कैसे हो? वियतनाम में युद्ध होना चाहिए कि नहीं होना चाहिए; तुम्हारी सलाह कौन मांग रहा है? स्त्रियां कुशल हैं, व्यावहारिक हैं। स्त्रियां भूमि के बहुत निकट हैं। इसलिए स्त्रियों को पृथ्वी कहा है। अत्यंत व्यावहारिक हैं। तुम्हारे जैसे व्यर्थ सवाल तुम्हारी पत्नी नहीं पूछेगी। अब जैसे पत्नी को यह सवाल ही नहीं उठ सकता कि ध्यान से छुटकारा कैसे हो? यह बात ही मूढ़तापूर्ण है। पत्नी को यह सवाल नहीं उठेगा।

तुम इस चिंता में पड़ो क्यों? अच्छा है, शुभ है कि पत्नी के मन में सवाल नहीं उठते हैं। तुम्हारे मन में उठते हैं, वह पूछो कि मेरे मन में इतने सवाल क्यों उठते हैं? क्योंकि तुम्हारे सवाल गिरें तो अच्छा है! तुम्हारे सवाल विदा हो जाएं तो अच्छा है! एक ऐसी घड़ी आ जाए जब तुम्हारे भीतर कोई प्रश्न न रह जाएं तो वही घड़ी ध्यान की घड़ी होगी।

बुद्ध अपने शिष्यों को कहते थे कि जब तक तुम्हारे भीतर सवाल उठते हैं, तब तक मत पूछो। वर्ष-दो वर्ष ध्यान में डूबो। फिर जब सवाल न उठें, तब पूछ लेना। यह भी खूब रही! जब सवाल न रहें, तब पूछ लेना! जब सवाल न रह जाते तो कोई पूछता कैसे? बुद्ध अपने शिष्यों को पूछते थे साल-दो साल ध्यान करने के बाद कि अब कुछ पूछना है? शिष्य हंसते थे और कहते थे: नहीं, कुछ पूछना नहीं। बुद्ध कहते: देखो, जब तुम पूछते थे, अगर मैं जवाब देता तो व्यर्थ ऊहापोह होता। न तुम्हारी कुछ समझ में आता, न तुम्हारी कुछ पकड़ में आता। और मेरे जवाब तुम्हारे लिए नये-नये प्रश्न पूछने का कारण बन जाते, और कुछ भी न होता।

इसका यह अर्थ नहीं है कि बुद्ध ने जवाब नहीं दिये हैं। बुद्ध ने जवाब दिये हैं उनको, जिनको ध्यान के लिये फुसलाना है और राजी करना है। लेकिन जिनमें भी बुद्ध ने देखा कि ध्यान की क्षमता है, करीब ही किनारे के खड़े हैं--जरा-सा धक्का और ध्यान की लपट जल उठेगी, उनको जवाब नहीं दिये हैं।

मैं भी तुम्हें जवाब देता हूं, सिर्फ इसीलिए कि तुम्हें राजी करना है। किसी तरह तुम ध्यान में उतर जाओ। एक बार तुम ध्यान में उतर जाओ, तो सब प्रश्न गिर जाएंगे, सब उत्तर की आकांक्षा समाप्त हो जाएगी। तुम निश्चिंतमनः, आश्वस्त भाव से जानोगे--क्या है? वह परम अनुभव की दशा ही तृप्ति दे सकती है, किसी

और के दिये गये उत्तर नहीं।

मैं तुम्हें उत्तर देता हूं, उसमें जो समझदार हैं वे उत्तर के माध्यम से अपने प्रश्नों को हटा देते हैं। जो नासमझ हैं, वे मेरे उत्तर में से और दस प्रश्न खड़े कर लेते हैं।

अब दो दर्जन प्रश्न पूछने का कोई कारण नहीं है! एकाध प्रश्न तुम्हारे जीवन में जो मूल्यवान हो, पूछो। प्रश्न पूछने के लिए ख्याल रखना चाहिए, जैसे जब तुम जाते हो पोस्ट ऑफिस टेलीग्राम करने तो एक-एक शब्द का ख्याल रखते हो, क्योंकि एक-एक शब्द की कीमत चुकानी पड़ती है। दस शब्द जा सकते हैं एक रुपये में तो तुम काटते जाते हो, काटते जाते हो—बारह हैं तो दो और काटो, और काटो। एक रुपये में जितने जा सकते हैं उतने भेज देते हो। और तुमने एक चमत्कार देखा? कि तुम्हारी दस पन्नों की चिट्ठी का वह असर नहीं होता, जो दस शब्दों के तार का होता है! क्या कारण होगा? क्योंकि व्यर्थ तुमने काट दिया, सार्थक-ही-सार्थक बचा लिया। जो अत्यंत आवश्यक था, अपरिहार्य था, वही बचा लिया।

ऐसे ही तुम्हें प्रश्न भी पूछने चाहिए।

तुम्हारे जीवन के लिए जो अत्यंत सार्थक मालूम पड़े, जिसके बिना पूछे तुम्हें चैन न पड़े, वही पूछना चाहिए, उतना ही पूछना चाहिए। तो शायद धीरे-धीरे तुम्हारी यात्रा निष्प्रश्न ध्यान की ओर शुरू हो जाए। लेकिन तुम कुछ भी पूछे जाते हो। जो भी तुम्हारे सिर में उठ आता है, बस लिख दिया, चले पूछने। अब यह भी कोई प्रश्न है! मेरी पत्नी के मन में कोई प्रश्न नहीं उठता; क्या कारण है?

तुम्हारी पत्नी बुद्धिमान है। या हो सकता है, तुम्हारे कारण प्रश्न नहीं उठता। डरती होगी कि प्रश्न उठाया कि तुम उत्तर दोगे। इससे प्रश्न न उठाना ठीक है।

एक बार ऐसा हुआ। एक सिंधी मित्र थे मेरे, बहुत बकवासी! मेरे साथ पंजाब की यात्रा पर गये। उनकी पत्नी कभी मेरे साथ यात्रा पर नहीं गयी थी, इस बार उनकी पत्नी भी यात्रा पर गयी। मैं बड़ा हैरान हुआ—दोनों में बड़ा विरोधाभास! पति इतना बकवासी कि चुप हो ही न, बोले ही चला जाए। और पत्नी ऐसी चुप कि जैसे उसे बोलना ही नहीं आता। पति स्नान करने को गये तो मैंने पत्नी से पूछा कि यह जरा हैरानी की बात है! तुम्हारे पति इतने बकवासी हैं, तुम इतनी चुप क्यों हो? पत्नी ने कहा कि मेरी तरफ से और उनकी तरफ से, दोनों का काम वही कर रहे हैं। शादी जब हुई थी तो मैं भी कुछ-कुछ बोलती थी, मगर उन्होंने मौका ही नहीं दिया।

इतने बकवासी पति के पास अब करना क्या और? चुप रहना ही, क्योंकि बोलना तो खतरनाक है। तुम एक शब्द बोलो, वह घंटों बकवास करेंगे। बिना बोले बकवास करते हैं। अगर चुप बैठे हो तो पूछते हैं—चुप क्यों बैठी है? अगर बोलो

तो मुश्किल, न बोलो तो मुश्किल।

उनकी पत्नी मुझे बोल रही थी—बम्बई रहते थे दोनों—कि जब मैं पति की आवाज सुन लेती हूं—तीसरे मंजिल पर रहती हूं—जब मैं पहली मंजिल पर उनकी आवाज सुन लेती हूं कि वह आ गये, तब मैं खाना पकाना शुरू करती हूं। और जब तक वह घर में आते हैं, तब तक खाना पक जाता है। क्योंकि चपरासी से लेकर और जो मिलेगा, और लिफ़्टमैन, और जो...उससे चलता ही रहता है उनका! जब मैं आवाज सुन लेती हूं तब मैं शुरू करती हूं भोजन पकाना—कि आ गये पतिदेव! कम-से-कम घंटा-डेढ़ घंटा उनको लग जाता है—तीन मंजिल पार करने में! जब तक वह आते हैं घर में, घंटी बजती है, तब तक भोजन उनका तैयार हो जाता है।

उस महिला ने मुझे कहा कि मुझे एक लाभ रहा है इनके साथ कि बिना किसी धर्मगुरु के पास गये, मौन आ गया। और बड़ी शान्ति रहती है। और मैं सुनती रहती हूं, क्योंकि और कोई उपाय नहीं है। धीरे-धीरे सुनना भी साक्षीभाव से होने लगा है कि अब यह तो उन्हें बकना ही है, बकने दो। यह क्या कहते हैं, क्या नहीं कहते, अब इसका हिसाब-किताब भी नहीं रखती।

शायद यही दशा सुमति, तुम्हारी पत्नी की हो। मौन आ गया हो। उसको मौन रहने दो। तुम अपनी चिंता करो। इतने प्रश्न व्यर्थ ही हो सकते हैं। सार्थक प्रश्न थोड़े होते हैं। सार्थक प्रश्न तो अगर ठीक से समझो तो एक ही है: 'मैं कौन हूं?' बाकी कोई प्रश्न सार्थक नहीं है। यही पूछो। बस इसी एक प्रश्न को ध्यान बना लो: 'मैं कौन हूं!' उठो, बैठो, सोओ, यह एक प्रश्न तुम्हारे भीतर गूंजता रहे कि मैं कौन हूं? और जल्दी उत्तर मत देना। क्योंकि तुमसे मुझे डर है। तुम्हारे पास उत्तर भी काफी हैं। एक दफ़ा पूछोगे: मैं कौन हूं? और जल्दी से उत्तर दोगे: 'अहं ब्रह्मास्मि'। कि मैं ब्रह्म हूं। उपनिषद और वेद सब चले आएंगे। यह उत्तर तुम्हारा नहीं है। इनको इनकार कर देना। कहना ये उत्तर मेरे नहीं हैं। तुम तो उस उत्तर की प्रतीक्षा करना जो सद्यःस्नात, ताजा-ताजा, नया तुम्हारे भीतर उमगे।

जब तक वह उत्तर न आए, इनकार करते जाना, बाकी सब कचरा है। किसी ने कहा हो, कितने ही महाज्ञानी ने कहा हो, मगर तुम्हारा नहीं है तो सत्य नहीं है। उधार यानी असत्य। बुद्ध ने कहा हो, महावीर ने कहा हो, कृष्ण-क्राइस्ट नेक हो, तुम्हारा नहीं है तो किसी काम का नहीं है। न तो तुम बुद्ध की आंख से देख सकते हो और न कृष्ण की जबान से बोल सकते हो। न महावीर के पैर से चल सकते हो। न कृष्ण की धड़कन से जी सकते हो। तुम्हारा ज्ञान ही तुम्हारे जीवन को आलोकित करेगा।

पूछते जाना इस एक प्रश्न को: 'मैं कौन हूं?' उत्तर आएंगे—रटे-रटाये, तोते की तरह, कंठस्थ। जो तुमने पढ़े हैं, सुने हैं, पूछे हैं लोगों से, वे उत्तर उठेंगे। उनको

इनकार करते जाना; कहना : नहीं; नेति-नेति, कहते जाना : यह भी नहीं, यह भी नहीं। एक दिन ऐसी घड़ी आती है जब प्रश्न ही रह जाता है और कोई उत्तर नहीं रहता। 'मैं कौन हूं?' और सन्नाटा। 'मैं कौन हूं?' और सन्नाटा। 'मैं कौन हूं?' और सन्नाटा गहन होता जाता है, कोई उत्तर नहीं आता। यह बड़ी परम घड़ी है। क्योंकि वह सन्नाटा ही उत्तर है। वह शून्य जो 'मैं कौन हूं' के पीछे आता है—जैसे तूफान के पीछे शांति आती है, ऐसे उस 'मैं कौन हूं' के झंझावात के पीछे जो सन्नाटा, शान्ति, मौन, शून्य आता है, उसी शून्य के स्वाद में तुम्हें उत्तर मिलेगा। उसी शून्य में तुम पूर्ण को बिराजमान पाओगे। वही ध्यान है, वही समाधि !

तीसरा प्रश्न : जब भी कभी ईश्वर-स्मरण की भावना भीतर उमड़ती है, तब कोई-न-कोई रूप उमड़ आता है। अधिकतर श्रीकृष्ण अथवा श्रीविष्णु अथवा शिव। किन्तु आपके कथन से आश्वस्त हूं कि सब आकार मन की सीमा के भीतर हैं और कल्पनाएं हैं। तो कृपया बताएं कि दिन भर में या ध्यान के समय जब भी प्रभु-स्मरण की प्रबल भावना उमड़े, तब उसका क्या स्वरूप हो? वे हैं, इसे किस रूप में अनुभव करूं?

रूप तो मन की ही योजना होगी। नाम-रूप मन के ही अग हैं। इसलिए परमात्मा है, इसे नाम और रूप में अनुभव नहीं किया जा सकता। जो नाम-रूप में परमात्मा को अनुभव करने की चेष्टा करेगा, उसने पहले से ही गलत कदम उठा लिये। वह कल्पना-जाल में पड़ जाएगा। और मीरा, क्योंकि तुझे समझ में बात आ रही है कि ये सब आकार मन की ही कल्पना के जाल हैं, इसलिए अड़चन ज्यादा नहीं है।

परमात्मा है, इसे हम दो तरह से अनुभव कर सकते हैं। एक, रूप में अर्थात् पर की भांति। कृष्ण खड़े हैं। राम खड़े हैं। या बुद्ध, या महावीर। तुमसे भिन्न। तुम हो द्रष्टा और जिस परमात्मा को तुम देख रहे, वह है दृश्य। दृश्य यानी रूप। एक तो यह ढंग है परमात्मा को स्मरण करने का। वह गलत ढंग है। इससे सावधान। दूसरा ढंग है, द्रष्टा की भांति अनुभव करना—दृश्य की भांति नहीं। साक्षी की भांति अनुभव करना। यह जो चैतन्य मेरे भीतर है, यह जो मैं हूं—यही। तब कल्पना का कोई उपाय नहीं।

कृष्ण दिखायी पड़ रहे हैं, लेकिन किसको दिखायी पड़ रहे हैं? देखनेवाला कोई है। मीरा, तेरे भीतर कौन साक्षी है जो कृष्ण को देख रहा है? जोर कृष्ण पर मत डालो, जोर देखनेवाले पर डालो। सारा ध्यान देखनेवाले पर केन्द्रित कर दो। उस साक्षी को पकड़ो। कृष्ण तो आएंगे, चले जाएंगे, साक्षी सदा है। उस साक्षी में ही भगवान को अनुभव करने की चेष्टा सम्यक चेष्टा है। परमात्मा साक्षी रूप है,

चैतन्य रूप है।

कृष्ण के भीतर साक्षी का भाव घटा, इसलिए कृष्ण को हमने भगवान कहा। कृष्ण ने जाना कि मैं साक्षी हूं, इसलिए कृष्ण को हमने भगवान कहा। बुद्ध को अनुभव हुआ द्रष्टा का, दृश्य से मुक्त हुए, बाहर से भीतर लौटे, तो हमने भगवान उनको कहा। यह बुद्ध को, कृष्ण को, राम को, महावीर को भगवान कहने का कारण सिर्फ इतना ही है कि उन्होंने अपने भीतर के चैतन्य को पहचाना, चैतन्य के साथ पूरा तादात्म्य किया, चैतन्य में डुबकी लगायी—बस इससे ज्यादा कुछ भी नहीं। ऐसा ही तुम भी करो।

तुम राम की पूजा करो, इससे कुछ भी न होगा। तुम कृष्ण की पूजा करो, इससे कुछ भी न होगा। कृष्ण ने किसकी पूजा की थी, कभी पूछा? कृष्ण ने तो किसी की पूजा नहीं की है। कृष्ण तो जागे, होश से भरे। ऐसे ही तुम भी होश से भरो। अगर तुम्हारा कृष्ण से प्रेम है, तो इतना ही सार लो कि जो उन्होंने किया' वही तुम भी करो। यही ठीक अनुकरण होगा, नहीं तो अन्धानुकरण है।

बुद्ध ने मरते वक्त अपने शिष्यों को कहा: 'आत्मदीपो भव'। अपने दिये बनो। रोने लगे थे शिष्य . . . बुद्ध से विदा हो रहे हैं, बुद्ध अब सदा को लीन हो जाएंगे; यह लहर, यह प्यारी लहर, यह अद्भुत लहर फिर कभी प्रगट न होगी, सागर में खो जाएगी! . . . रोना स्वाभाविक था। इस व्यक्ति के साथ चालीस वर्ष तक रहनेवाले भिक्षु थे। इसके साथ जिंदगी आयी, गयी। इसके साथ जवानी-बुढ़ापा आया। इसके साथ बहुत-बहुत अनुभव हुए। इस प्यारे आदमी को विदा देना आसान तो बात न थी; छाती टूटती होगी। लेकिन बुद्ध ने आंखें खोलीं और कहा : रोओ मत। मुझसे मत बंधो। तुम मुझसे बंध जाओगे तो चूक जाओगे। यही तो मेरी देशना का सार है कि वह बाहर नहीं है, भीतर है। वह तुम्हारे भीतर मौजूद है। वह तुम हो।

मीरा, कृष्ण हों, कि विष्णु, या कोई और रूप हो—हिन्दू का, मुसलमान का, ईसाई का— इससे फर्क नहीं पड़ता। एक बात का ख्याल रखना, जब भी हम कुछ अनुभव करते हैं तो उस अनुभव में दो खंड हो जाते हैं : एक दृश्य और एक द्रष्टा। अगर दृश्य को पकड़ा, चूके। अगर द्रष्टा में डूबे, पहुंचे।

इश्क़ की बर्बादियों को रायगां समझा था मैं
बस्तियां निकलीं, जिन्हें वीरानियां समझा था मैं

और तुमने कभी भीतर झांककर देखा ही नहीं—तुम तो समझते हो, वहां क्या? भीतर क्या रखा है? वहां तो तुम्हें शून्य मालूम होता है। अकेले छूट जाते हो कभी एकान्त में, तो मन नहीं लगता। कहते हो : कोई चाहिए, कोई दूसरा चाहिए—कोई मित्र मिल जाए। अकेले में एकदम जी ऊबता है—क्यों? खाली खाली लगते हो, रिक्त-रिक्त लगते हो। कुछ खोया-खोया लगता है। तुम्हें अपना

पता ही नही । तुम्हें पता ही नहीं कि संपदाओं की संपदा तुम्हारे भीतर पड़ी है। पूर्ण परमात्मा तुम्हारे भीतर मौजूद है।

इश्क़ की बर्बादियों को रायगां समझा था मैं
बस्तियां निकलीं, जिन्हें वीरानियां समझा था मैं

हर निगह को तबए-नाज़ुक पर गरां समझा था मैं
सामने की बात थी, लेकिन कहां समझा था मैं

क्या ख़बर थी ख़ुद वो निकलेंगे बराबर के शरीक
दिल की हर धड़कन को अपनी दास्तां समझा था मैं

ज़िंदगी निकली मुसलसल इम्तिहां-दर-इम्तिहां
ज़िंदगी को दास्तां ही दास्तां समझा था मैं

मेरी ही रूदादे-हस्ती थी मिरे ही सामने
आज तक जिसको हदीसे-दीगरां समझा था मैं

जिसको तुमने दूसरा समझा है, वह दूसरा नहीं है । लेकिन तुम्हारी अपने से पहचान ही नहीं है अभी, इसलिए दूसरा दूसरा दिखायी पड़ रहा है । अपने से पहचान हो जाए तो दूसरा भी दूसरा नहीं है ।

मेरी ही रूदादे हस्ती थी मिरे ही सामने
आज तक जिसको हदीसे-दीगरां समझा था मैं

जब तुम विष्णु को देखते, कृष्ण को देखते, राम को देखते, तो अभी तुम्हें अपने से पहचान नहीं, इसलिए वे पर मालूम होते हैं । जब अपने से पहचान हो जाएगी, तो तुम चकित हो जाओगे, वे तुम्हारी ही तरंगें हैं ! फिर कुछ भेद नहीं है। फिर एक ही है । फिर मैं और तू में कोई अन्तर नहीं है । लेकिन पहले मैं को पहचानना होगा, इस मैं की गहराई में जाना होगा । इस मैं की गहराई को जाने बिना कोई भी पर-मात्मा से परिचित न हुआ है, न हो सकता है ।

और आसान लगता है 'पर' । किसी मित्र से प्रेम किया, पत्नी से प्रेम किया, पति से प्रेम किया, बेटे से प्रेम किया--ये सब 'पर' से प्रेम थे । फिर इसी 'पर' के ही गणित में परमात्मा से प्रेम किया । तो फिर मित्र और पति और पत्नी जैसे 'पर' थे, ऐसे ही परमात्मा को भी 'पर' बना लिया--विष्णु, कृष्ण, राम... ।मगर यह बात वही-की-वही रही, रूपांतरण न हुआ । पत्नी की जगह राम को रख लिया, पति की जगह कृष्ण को रख लिया--भेद कहां हुआ ? कुछ भेद न हुआ । असली क्रांति तो तब घटती है जब 'पर' की जगह 'स्व' आ जाए । तो रूपांतरण। तो आंख फिरी । तो लौटे घर की तरफ । तो दृष्टि जो बाहर जाती थी, अन्तर्मुखी हुई ।

अन्तर्यात्रा शुरू हुई ।

रखते हैं खिज्र से, न गरज़ रहनुमां से हम
चलते हैं बच के दूर हर इक नक़्शे-पा से हम

न तो किसी पथ-प्रदर्शक से हमारा कोई सम्बंध है, न किसी पैगम्बर से।

रखते हैं खिज्र से, न गरज़ रहनुमां से हम
चलते हैं बच के दूर हर इक नक़्शे-पा से हम

और चरणचिन्ह तो बहुत बने हैं समय की धार पर । कितने बुद्ध चल चुके हैं, कितने चरणचिन्ह बन चुके हैं ! उन्हीं की पूजा में मत उलझ जाना ।

मानूस हो चले हैं जो दिल की सदा से हम
शायद कि जी उठें तिरी आवाज़े-पा से हम

भीतर की आवाज से परिचित हो लो ।

मानूस हो चले हैं जो दिल की सदा से हम

यह जो पहचान हो जाए भीतर की आवाज से, अन्तरतम की आवाज से, तो शायद तुम परमात्मा के चरणों की आवाज को भी पहचान पाओ, क्योंकि तुम्हारे भीतर की आवाज उसके चरणों की ही आवाज है ।

ओ मस्ते-नाज़े-हुस्न, तुझे कुछ ख़बर भी है
तुझ पर निसार होते हैं किस-किस अदा से हम

ये कौन छा गया है दिल-ओ-दीदा पर कि आज
अपनी नज़र में आप हैं, नाआशना-से हम

और एक चमत्कार घटता है । जब तुम अपने से परिचित हो जाओगे, तो तुम चकित होओगे कि जिसको तुमने अब तक समझा था कि मैं हूं, वह तो तुम नहीं हो । वह तो भ्रांति थी । जिस नाम को तुमने समझा था 'मैं', जिस रूप को समझा था 'मैं', जिस देह को समझा था 'मैं', जिस मन को समझा था 'मैं', वह तो तुम नहीं हो, वह तो तुम्हारा व्यक्तित्व था, बाहर की खोल थी, वस्त्र थे, परिधान थे । उन सब के भीतर छिपी हुई ज्योतिर्मय किरण हो तुम । उस ज्योतिर्मय किरण का नाम ही परमात्मा है ।

वह सब के भीतर है। लेकिन सबसे पहली पहचान अपने भीतर करनी होती है, क्योंकि वहीं से हम निकटतम हैं मंदिर के । कहीं जाना नहीं है । कहीं झोली नहीं फैलानी है । सम्राट हो तुम, भिखारी बने हुए झोली मत फैलाओ ! न कृष्ण के सामने, न राम के सामने । क्योंकि राम और कृष्ण तुम्हारे भीतर मौजूद हैं । यह बात बड़ी विरोधाभासी लगेगी, मगर मैं तुमसे कहना चाहता हूं, इसे याद रखना, राम और कृष्ण को पकड़ा तो राम और कृष्ण को कभी न पा पाओगे । छोड़ो राम-कृष्ण को,

पकड़ो स्वयं को। और उसी पकड़ने में राम भी मिल जाएंगे, कृष्ण भी मिल जाएंगे।

चौथा प्रश्न : मनुष्य जीवन का मूल संताप क्या है?

एक ही संताप है कि मनुष्य वह न हो पाए जो होने को पैदा हुआ है। एक ही संताप है, कि बीज बीज रह जाए, फूल की तरह खिल न पाए। बिखेर न सके अपनी सुवास को अनंत-अनंत हवाओं में, कर न सके गुफ़्तगू चांद-तारों से; निवेदन न कर पाए अपने रंगों का आकाश के प्रति; अभिव्यक्त न हो पाए--एक ही संताप है। कवि के भीतर की कविता प्रगट न हो सके--तो संताप। चित्रकार चित्र न बना सके--तो संताप। नर्तक नाच न सके, पैरों में जंजीरें पड़ी हों--तो संताप। संताप का एक ही अर्थ होता है : जो हम होने को हैं, जो हमारी सहज प्रकृति और नियति है, वह न हो पाए और हमें अन्यथा होने को मजबूर होना पड़े, तो संताप पैदा होता है। तो जीवन में विषाद घिरता है।

और इतने जो अनंत-अनंत लोग तुम्हें विवादग्रस्त दिखायी पड़ते है,संताप में डूबे हुए, नर्क में जी रहे, उसका कारण इतना ही है कि उनमें से प्रत्येक बीज लेकर आया है परमात्मा होने का और न-मालूम क्या छोटी-मोटी चीज होकर समाप्त हो गया है। कोई डाक्टर हो गया, कोई इंजीनियर हो गया, कोई दूकानदार हो गया। परमात्मा होने जो आया है, वह दूकानदार हो जाए तो कैसे संतुष्टि मिले? पीड़ा बनी ही रहेगी। जरा सोचो तो, सम्राट होने जो आया था, वह रास्तों पर भीख मांगता फिरे... तुम उसकी पीड़ा का अनुमान तो लगाओ! प्रत्येक व्यक्ति उस यात्रा पर है जहा अंततः उसे परमात्मा हो जाना है। उससे कम में कोई तृप्ति नहीं है। उससे कम में कोई परितोष नहीं है। उससे कम में रुका भी नहीं जा सकता--फिर-फिर आना होगा, जनम-जनम, बार-बार आना होगा जब तक कि तुम परमात्मा होने को अनुभव न कर लो।

और बार-बार आने में संताप है।

जैसे कोई विद्यार्थी बार-बार असफल हो जाए, फिर-फिर उसी पाठशाला में भेजा जाए। तुम उसकी पीड़ा समझो। हर बार नया वर्ष शुरू होता है, फिर उसी स्कूल में! ऐसे ही हर बार वही जिंदगी शुरू होती है, फिर वही पाठ, फिर वही भटकाव, फिर वही चिंताओं का जाल, फिर वही व्यवसाय, फिर भवसागर।

ये दिन बहार के अब के भी रास आ न सके
कि गुंचे खिल तो सके, खिल के मुस्करा न सके

ये आदमी है वो परवाना शमए-दानिश का
जो रौशनी में रहे रौशनी को पा न सके

न जाने आह कि उन आंसुओं पे क्या गुज़री
जो दिल से आंख तक आए, मिज़ह तक आ न सके

करेंगे मर के बक़ा-ए-दवाम क्या हासिल
जो ज़िंदा रह के मुक़ामे-हयात पा न सके

ज़हे खुलूसे-मोहब्बत कि हादिसाते-जहां
तुझे तो क्या, मिरे नक़्शे-क़दम मिटा न सके

उन्हें सआदते-मंज़िल-रसी नसीब हो क्या
वो पांव, राहे-तलब में जो डगमगा न सके

घटे अगर तो बस इक मुश्ते-ख़ाक है इन्सां
बढ़े तो वुसअ़ते-कौनैन में समा न सके

आदमी जैसा है वैसा ही रह जाए तो बस 'मुश्ते-ख़ाक है इन्सां,' एक मुट्ठी भर मिट्टी।

घटे अगर तो बस इस मुश्ते-ख़ाक है इन्सां
बढ़े तो वुसअ़ते-कौनैन में समा न सके

और अगर फैल सके, तो यह सारा आकाश छोटा पड़ जाए। यही पीड़ा है। होने को तो आकाश और रह गये हैं छोटे-छोटे आंगन--इरछे-तिरछे, संकीर्ण। पंख तो मिले थे कि चांद-तारों से दोस्ती करें, और पड़े रह गये हैं कारागृहों में। और मजा ऐसा--बड़ा व्यंग्य है, विडंबना है--कि कारागृहों में जो लोग पड़े हैं उनके कारागृहों में लगे तालों की चाभियां तो किन्हीं और के हाथ में होती हैं, तुम जिस कारागृह में पड़े हो, तुम्हीं कारागृह में पड़े हो, तुम्हीं ताले हो, तुम्हीं ताला डालनेवाले हो, तुम्हीं चाभी हो--तुम्हारे अतिरिक्त वहां कोई भी नहीं, सारा खेल तुम्हारा है। तुम जिस क्षण चाहो, बाहर निकल आओ कोई रोकनेवाला नहीं; कोई पहरे पर नहीं खड़ा है। तुम जो नाटक रच रहे हो, यह एकालाप है।

तुमने कभी नाटक देखा है--'मोनोलॉग'? एक ही आदमी सारे अभिनय करता है। बस यह तुम्हारा नाटक वैसा ही है--एकालाप, 'मोनोलॉग'। एक ही आदमी सारे काम करता है।

कुछ दिनों पहले एक कलाकार मेरे पास आया था। वह एकालाप में कुशल था। उसने एक छोटा-सा दृश्य मुझे बताया। वह मुंह से आवाज करता है, जैसे तांगा चलता हो। खट्-खट्, खट्-खट्, तांगे की आवाज, घोड़े की टापों की आवाज... बिलकुल दृश्य पैदा कर देता है कि तांगा चल रहा है। कोड़े की फटकारने की आवाज, घोड़े की हिनहिनाने की आवाज, तांगा चलानेवाले की आवाज, तांगे में बैठे हुए आदमी

की आवाज——यह सब वह अकेला ही करता है। तांगे में बैठा आदमी उससे कुछ कहता है, तो अलग ढंग से बोलता है। तांगेवाले की तरह बोलता है तो अलग ढंग से बोलता है। राह में चलते हुए लोगों को चिल्लाता है तो एक ढंग से, और राह में चलता हुआ कोई आदमी कहता है कि भाई, क्या मार ही डालोगे, तो अलग ढंग से। वहां कोई भी नहीं है, बस अकेला है वह। सारे काम अकेला ही कर रहा है।

जब उसने मुझे यह खेल दिखाया, उससे मैंने कहा कि तू इससे कुछ समझा? उसने कहा कि क्या? मैंने कहा : यही तेरी जिंदगी है, यही सब की जिंदगी है। यहां तुम्हीं हो नाटक लिखनेवाले, तुम्हीं नाटक के पात्र; तुम्हीं दर्शक, दिग्दर्शक। सब तुम्हीं हो।

घटे अगर तो बस इक मुश्ते-ख़ाक है इन्सां
बढ़े तो वुसअ़ते-कौनैन में समा न सके

थोड़ा सोचो, जो आकाश होने को पैदा हुआ है, वह एक छोटा-सा आंगन होकर रह जाए——संताप न हो तो क्या हो?

ये दिन बहार के अब के भी रास आ न सके।
कि गुंचे खिल तो सके, खिल के मुस्करा न सके

यह जिंदगी फिर चली! ऐसे ही न-मालूम कितनी बार जिंदगी आयी और गयी। वसंत कितने आए और कितने गये। इस बार भी वसंत चला। फिर जिंदगी हाथ से जाने लगी। इसलिए बच्चों में तो संताप नहीं दिखायी पड़ता। बच्चे तो बड़े आशातुर होते हैं; सोचते हैं, इस बार बात हो लेगी। बड़ी कल्पनाओं से भरे होते हैं। बड़ी आकांक्षाओं से भरे होते हैं; बड़ी आकांक्षाओं, अभीप्साओं से। जैसे-जैसे जवान होते हैं वैसे-वैसे जिंदगी का यथार्थ प्रगट होने लगता है। तीस-पैंतीस साल के होते-होते समझ में आने लगती है बात कि यह मौसम भी गया, कुछ हो न सका, फिर चूक गये; तीर हाथ से निकल चुका है, अब लौटाया जा सकता नहीं, लक्ष्य का कुछ पता नहीं चलता है।

ये दिन बहार के अब के भी रास आ न सके
कि गुंचे खिल तो सके, खिल के मुस्करा न सके

फिर बिना मुस्कराए ही मर जाना होगा। सिर्फ बुद्धपुरुष ही मुस्कुराते हुए मरते हैं। नहीं तो कली खिल जाती है, मगर कली खिले और मुस्कराए न तो क्या खिली! क्या खाक खिली!! खिलखिलाहट फैल जाए आकाश में तो ही खिलना है।

ये आदमी है वो परवाना शमए-दानिश का
जो रौशनी में रहे, रौशनी को पा न सके

जरा सोचो, इस आदमी की हालत वैसी है, उस पतंगे जैसी कि दिया दूर नहीं,

रोशनी में जीता है, लेकिन दिये तक पहुंच नहीं पाता। हाथ के भीतर है परमात्मा और चूकते चले जाते हैं। शान्ति हमारा स्वत्व है, हमारा स्वरूपसिद्ध अधिकार है और चूकते चले जाते हैं। संगीत हमारे हृदय की वीणा में भरा पड़ा है और हम छेड़ ही नहीं पाते। इतने करीब और इतने दूर, इतने पास और इतने फासले पर।

ये आदमी है वो परवाना शमए-दानिश का
जो रौशनी में रहे, रौशनी को पा न सके

इसलिए संताप है, इसलिए पीड़ा है कि सब इतना पास लगता है कि अब पा लूं, अब पा लूं, अब पाया, अब पाया, और फिर भी चूक-चूक हो जाती है। कुछ मूल भूल होती रहती है। जो भीतर है, उसे हम बाहर तलाशते हैं। जो मिला है, उसे हम वहां तलाशते हैं जहां न कभी किसी को मिला है, न मिल सकता है। यही संताप है।

न जाने आह कि उन आंसुओं पे क्या गुज़री

थोड़ा सोचो उन आंसुओं के सम्बंध में——

न जाने आह कि उन आंसुओं पे क्या गुज़री
जो दिल से आंख तक आए, मिज़ह तक आ न सके

जो दिल से निकल गये किसी तरह, आंख तक भी आ गये, लेकिन पलकों तक न आ सके, अटक गये। ऐसी दशा है आदमी की। परमात्मा के करीब आते-आते अटका है। एक कदम और, बस एक कदम और और यात्रा पूरी हो जाए। मगर वह एक कदम नहीं उठ पाता। एक छलांग और और पतंगा ज्योति में मिले और ज्योति हो जाए, मगर वह एक छलांग नहीं लग पाती। हजार बाधाएं खड़ी हैं, हजार आकांक्षाएं खड़ी हैं, हजार वासनाएं खड़ी हैं, हजार विचार खड़े हैं, हिमालय की तरह बीच में खड़े हैं। फिर लोग सोचने लगते हैं कि ठीक है, जिंदगी में नहीं मिला परमात्मा, मर कर पा लेंगे। ऐसी सांत्वना देते अपने को।

इसलिए तुम्हारे शास्त्रों में यह सब लिखा होता है : यहां नहीं मिला, कोई बात नहीं, मृत्यु के बाद तो मिलेगा ही। मरते वक्त रामनाम ले लेंगे; गंगाजल पी लेंगे; काशी-करवट ले लेंगे; गीता-पाठ सुनते-सुनते मर जाएंगे; मरते वक्त दान-पुण्य कर देंगे; मरते-मरते कुछ इंतजाम कर लेंगे। मगर भ्रांति में मत रहना।

करेंगे मर के बक़ा-ए दवाम क्या हासिल
जो ज़िन्दा रह के मुक़ामे-हयात पा न सके

जिंदा रहकर भी तुम न पा सके, तो मर कर पा लोगे, इस पागलपन में पड़ते हो! पाना हो तो जिंदगी का उपयोग करो। पाना हो तो जिंदगी को समर्पित करो। पाना हो तो जिंदगी को दांव पर लगाओ। इतना सस्ता नहीं है कि मर कर पा लेंगे। और हमने खूब सस्ती तरकीबें खोजीं! तीर्थयात्रा कर आएंगे; हज हो आएंगे। क्या लेना-देना है हज से और काशी से और प्रयाग से। प्रयाग में जो लोग रहते

हैं सदा, तुम सोचते हो, परमात्मा को पा लिया ? और तुम दो दिन के लिए हो आओगे कुंभ के मेले में और तुम पा लोगे ? और जो हज में ही रहते हैं, जो काबा के पास ही बसे हैं, तुम सोचते हो वे सब स्वर्ग पहुंच जाएंगे ? अगर वे नहीं पहुंचते, जो वहीं पैदा होते, वहीं मरते, तो तुम एक चार दिन के लिए हो आओगे और तुम स्वर्ग पहुंच जाओगे ! तुम किसको धोखा दे रहे हो ? धर्म के नाम पर आदमी ने कितने धोखे दिये अपने को !

इस तरह नहीं चलेगा । ये होशियारी की बातें हैं, ये चालाकी की बातें हैं, ये गणित की बातें हैं । परमात्मा मिलता है उन्हें, जो मस्त होने की हिम्मत रखते हैं । ये मस्ती की बातें नहीं हैं, ये पियक्कड़ों की बातें नहीं हैं ।

उन्हें सआदते-मंज़िल-रसी नसीब हो क्या
वो पांव, राहे-तलब में जो डगमगा न सके

थोड़ा मस्त होओ, थोड़ा डगमगाओ, थोड़ा नाचो । थोड़ी मस्ती को उतरने दो ! वही है असली सार । थोड़ा डोलो आनंदमग्न होकर । जो मिला है उसके लिए धन्यवाद दो । और जो मिला है, काफी है; तुम्हारी पात्रता से बहुत ज्यादा है । तुम्हारा पात्र बड़ा छोटा है और सागर-का-सागर तुम पर बरस पड़ा है । नाचो, गुनगुनाओ—मैं तुम्हें एक उत्सव का धर्म देना चाहता हूं—तो तुम्हारा संताप मिट जाए ।

जो ज़ीस्त को न समझें, जो मौत को न जानें
जीना उन्हीं का जीना, मरना उन्हीं का मरना

ऐसे मस्त हो जाओ कि न पता चले जिंदगी का, न पता चले मौत का । ऐसे मस्त हो जाओ कि जिंदगी और मौत सब बराबर । ऐसे मस्त हो जाओ कि मौत आए तो नाचता हुआ पाए । ऐसे मस्त हो जाओ कि मौत भी उदास न कर सके । तुम्हारा गीत गूंजता ही रहे । अगर मौत के क्षण में भी तुम्हारा गीत गूंजता रहे तो तुम जीत गये । तुमने मौत को पराजित कर दिया ।

जो ज़ीस्त को न समझें, जो मौत को न जानें
जीना उन्हीं का जीना, मरना उन्हीं का मरना

दरिया की ज़िंदगी दर सदक़े हज़ार जानें
मुझको नहीं गवारा साहिल की मौत मरना

किनारों पर मत मर जाना जिंदगी के । तूफानों में मरो । जिंदगी की चुनौती स्वीकार करो । जिंदगी बहुत-सी चुनौतियां लाती है । जो चुनौती स्वीकार नहीं करते, वे उदास हो जाते हैं । जो चुनौती स्वीकार नहीं करते, वे हारे-थके, सर्वहारा हो जाते हैं । चुनौती स्वीकार करो, हर चुनौती तुम्हारे भीतर सोए को जगाती है ।

हर चुनौती तुम्हारे भीतर जो अप्रगट है, उसको प्रगट करती है ।

'दरिया की ज़िंदगी पर सदक़े हज़ार जानें ।' निछावर कर दो हजार जीवन, लेकिन तूफान पर । 'मुझको नहीं गवारा साहिल की मौत मरना ।' किनारे पर मत मर जाना । किनारा सुरक्षित है, माना, और किनारा बड़ा सुविधापूर्ण है, माना, लेकिन सुविधा और सुरक्षा कब्र के लक्षण हैं । जीवन तो असुरक्षित होता है । इसलिए मैं अपने संन्यासी को नहीं कहता कि भाग जाओ और हिमालय की गुफाओं में छिप जाओ । मैं अपने संन्यासियों को नहीं कहता कि भगोड़े बनो ।

मुझको नहीं गवारा साहिल की मौत मरना
दरिया की ज़िंदगी पर सदक़े हज़ार जानें

यह संसार तूफानपूर्ण है । अगर परमात्मा ने यह संसार दिया है तो इसके पीछे अर्थ है । अर्थ एक ही है कि जो इसकी चुनौती स्वीकार करेगा, उसकी नींद टूट जाएगी । जो इसकी चुनौती स्वीकार करेगा, वह अखंड हो जाएगा । जो इसकी चुनौती स्वीकार करेगा, फौलाद हो जाएगा । उसके भीतर आत्मा का जन्म होगा। आत्मा ऐसे ही जन्मती है । यह आत्मा को जन्माने का महत प्रयोग है संसार ।

कुछ आ चली है आहट उस पाए-नाज़ की सी
तुझ पर खुदा की रहमत, ऐ दिल ज़रा ठहरना

और अगर तुम तूफानों में जीने के आदी हो जाओ, और अगर तुम जिंदगी और मौत को खेल समझने लगो, ज्यादा देर न लगेगी, उसके चरण तुम्हारे निकट आने लगेंगे, उसकी आहट तुम्हें सुनायी पड़ने लगेगी ।

संताप एक ही है : सिकुड़े-सिकुड़े मर जाना । और सुख एक ही है—महासुख —फैलना और फैलते जाना ।

ब्रह्म शब्द का अर्थ होता है : विस्तार । जो फैलता ही चला जाए, वही ब्रह्म । और जो फैलने की कला जानता है, वही ब्राह्मण है । तुम्हारे तथाकथित ब्राह्मण तो बहुत सिकुड़े हुए लोग हैं । उनसे ज्यादा सिकुड़े हुए लोग पाना मुश्किल है । वे तो बड़े सम्हल-सम्हल कर, सिकुड़-सिकुड़ कर जी रहे हैं । कहीं कोई छू न जाए । कहीं अछूत की छाया न पड़ जाए । यह भी कोई जिंदगी है ! फैलो, विस्तीर्ण होओ ।

इतने विस्तीर्ण कि सब उसमें समा जाए । उस विस्तार का ही नाम ब्रह्म है। और उस विस्तार की कला का ही नाम धर्म है ।

संताप है एक : कि बीज बीज रह जाए और समाधिः कि बीज फूल हो जाए—खिल जाए स्वर्ण-कमल तुम्हारे भीतर । खिल सकता है । मगर भगोड़ों के जीवन में नहीं खिलता । जीवन की चुनौती परम आनंद से स्वीकार करनी है । जीवन में खो नहीं जाना है । जीवन में रहना है और साक्षी बने रहना है । जीवन रहे, खेल से ज्यादा न हो । फिर मौत भी खेल से ज्यादा नहीं है ।

नजर मिलते ही दिल को वक़्फ़े-तस्लीमो-रज़ा कर दे
जहां से इब्तिदा की है वहीं पर इन्तिहा कर दे

जहां से प्रारंभ है, वहीं अंत है। जहां से आए हैं, वहीं पहुचना है। इसी विस्तार से आए हैं, इसी विस्तार में लीन हो जाना है। ये बीच के सपने हैं जिनमें तुम खो गये हो।

वफ़ा पर दिल की सदक़े, जान को नज़्रे-जफ़ा कर दे
मोहब्बत में ये लाज़िम है कि जो कुछ हो फ़ना कर दे

'मोहब्बत में ये लाज़िम है कि जो कुछ हो फ़ना कर दे।' जो हो तुम्हारे पास, जो तुम होओ--अच्छे-बुरे, गरीब-अमीर--सर्मापित कर दो इस विराट को। तोड़ दो आंगन की दीवालें। फैल जाओ।

चमन दूर आशियां बर्बाद, ये टूट हुए बाज़ू
मिरा क्या हाल हो, सय्याद गर मुझको रिहा कर दे

लेकिन तुम्हारी हालत बड़ी बुरी है। तुम्हारी हालत ऐसी है : 'चमन दूर... बहुत दूर है चमन, 'आशियां बर्बाद...घर उजड़ा हुआ है, खंडहर है, 'ये टूटे हुए बाज़ू...और तुमने अपने पंख अपने ही हाथों से तोड़ लिये हैं। कोई हिन्दू हो गया है, कोई मुसलमान--पंख तोड़ लिये। कोई ब्राह्मण हो गया है, कोई शूद्र--पंख तोड़ लिये। तुमने अपने को न-मालूम कितनी सीमाओं और सीमाओं में बांध लिया है। जितनी सीमाएं, उतने ही पंख टूट गये हैं।

चमन दूर, आशियां बर्बाद, ये टूटे हुए बाज़ू
मिरा क्या हाल हो, सय्याद गर मुझको रिहा कर दे

और तब डर लगता है कि अगर आज शिकारी मुझे मुक्त भी कर दे इस पिंजड़े से, तो भी मेरा हाल क्या होगा? मैं उड़ूंगा कैसे? पंख तो टूटे हुए हैं! इसलिए लोग मुक्त होने से डरते हैं। स्वतंत्रता शब्द घबड़ाता है। भले ही लोग बात करते हैं कि स्वतंत्र होना है, मोक्ष पाना है, लेकिन उन्हें शायद ठीक-ठीक पता नहीं वे क्या कह रहे हैं! बात तो मोक्ष की करते हैं, पकड़ते जंजीरों को। अगर मोक्ष पाना है, तो कुछ सबूत तो दो! अगर स्वतंत्रता पाना है, तो जंजीरों से मोह छोड़ने के कुछ तो प्रमाण दो! लेकिन जंजीरों को इतने जोर से पकड़े हो और चिल्लाए चले जाते हो कि मोक्ष पाना है। मुक्त होने की धीरे-धीरे प्रक्रिया में उतरो। छोड़ो जंजीरें हिंदू की, मुसलमान की, ईसाई की। छोड़ो जंजीरें ब्राह्मण की, शूद्र की, क्षत्रिय-वैश्य की। छोड़ो जंजीरें हिन्दुस्तानी की, पाकिस्तानी की। छोड़ो जंजीरें। तोड़ दो सीमाएं। जितने असीम हो सको, उतना शुभ है।

लेकिन बहुत अजीब लोग हैं! दुनिया बड़ी अजीब है!...

अभी कुछ दिन पहले सरकारी आदेश मिला है इस आश्रम को कि इस आश्रम को धार्मिक स्थान नहीं माना जा सकता। क्यों? कारण दिया है : क्योंकि धार्मिक तो कोई तभी माना जा सकता है जब वह किसी संप्रदाय को मानता हो। हिन्दू हो तो धार्मिक, मुसलमान हो तो धार्मिक, ईसाई हो तो धार्मिक। इस आश्रम को सरकार धार्मिक संस्था मानने को राजी नहीं है, क्योंकि यहां हिन्दू भी हैं, मुसलमान भी हैं, ईसाई भी हैं, बौद्ध भी हैं, पारसी भी हैं, यहूदी भी हैं--यह कैसा धर्म?

मजा देखते हो!

संकीर्ण संप्रदाय को धर्म मानने को सरकार राजी है, विस्तीर्णता को धर्म मानने को राजी नहीं है। अगर हिन्दू धार्मिक है और मुसलमान धार्मिक है और ईसाई धार्मिक है, तो तीनों जहां मिल गये हैं वहां तीन गुना धर्म होगा कि कम धर्म होगा! कम कैसे हो जाएगा? अगर मस्जिद में परमात्मा है, मंदिर में परमात्मा है, गिरजे में परमात्मा है, गुरुद्वारा में परमात्मा है, और अगर हम एक ऐसा मंदिर बनाएं जिसका एक द्वार गुरुद्वारा हो और एक द्वार मस्जिद हो और एक द्वार मंदिर हो और एक द्वार गिरजा हो, तो वहां परमात्मा नहीं होगा--यह तुम्हारी सरकार का तर्क है। वहां कैसा परमात्मा! और मैं तुमसे कहता हूं कि वहीं परमात्मा है, जहां सारे मंदिर मिल गये हैं। और वहीं परमात्मा है, जहां सारे संप्रदाय खो गये हैं और क्षीण हो गये हैं।

इस आश्रम को अगर धार्मिक नहीं माना जा सकता, तो फिर किस स्थान को धार्मिक मानोगे? और यहां कोई आयोजन भी नहीं किया जा रहा है मिलाने का, यह मिलन सहज हो रहा है। यहां बैठकर हम रोज दोहराते भी नहीं कि 'अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान।' इस तरह की बकवास यहां हम करते भी नहीं। यहां जो आता है, भूल ही जाता है; समझ ही जाता है कि बात एक ही है। यहां कोई किसी को समझा नहीं रहा है कि भाई, तुम हिन्दू, तुम मुसलमान, दोनों एक हो जाओ। जहां एक करने की बात चल रही है, वहां दो तो मान ही लिया। हम तो दो मानते ही नहीं। यहां कोई फिक्र ही नहीं करता। यहां कोई चिन्ता ही नहीं किसी को एक करने की। यहां तो जो आता है, इस हवा में जल्दी ही उसे बोध हो जाता है कि यहां अपने को भिन्न मानना, पृथक मानना मूढ़ता का लक्षण है, अज्ञान का लक्षण है। यहां कोई पूछता नहीं, कौन हिन्दू है, कौन मुसलमान है, कौन ईसाई है। यह स्थान सरकार को धार्मिक गहीं मालूम होता। इसलिए जो सुविधाएं सरकार धार्मिक स्थानों को देती है, इस आश्रम को देने को राजी नहीं है।

यह बेईमानी देखते हो!

और यह उनकी बेईमानी जो 'अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम, सब को सन्मति दे भगवान' का पाठ करते हैं राजघाट पर बैठ कर! गांधी की मरण-तिथि पर राजघाट पर बैठकर चरखा चलाते हैं। कुरान पढ़ी जाती वहां, वेद पढ़े जाते वहां, गीता

दोहराई जाती वहां, यह उनका वक्तव्य है कि यह स्थान धार्मिक नहीं है। इस दुनिया में इस तरह के पाखंड चल रहे हैं। और इस तरह के धूर्त पदों पर बैठ गये हैं, जिनका कुल काम धोखाधड़ी है। गांधी का नाम लेते हैं, क्योंकि गांधी के नाम से 'वोट' मिलती है। नहीं तो उन्हें कोई मतलब गांधी से नहीं है।

और गांधी का खुद का भी कोई प्रयोजन हिंदू को और मुसलमान को एक करने से कभी नहीं था। वह भी राजनीतिक चालबाजी थी। चली नहीं चालबाजी, क्योंकि जिन्ना भी उतना ही कुशल और होशियार आदमी था--उतना ही राजनीतिज्ञ! महात्मा गांधी को गोली लगी--तो जिंदगी भर कहा था कि 'अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम'--लेकिन जब नाम निकला गोली लगने पर तो राम का निकला, अल्लाह का नहीं निकला। जब गोली लगी तो गांधी के मुंह से निकला : 'हे राम!' अल्लाह याद नहीं आया। क्यों? राम क्यों याद आया? भीतर तो सब हिंदू-भाव भरा बैठा है। गीता को कहा है माता, कुरान को पिता नहीं कहा। कुरान को पिता कहते तो हिन्दू भी नाराज हो जाते कि हद हो गयी, गीता को माता और कुरान को पिता! झगड़ा हो जाता। तो गीता को तो गांधी जी माता कहते हैं, कुरान को पिता नहीं कहते। और कुरान में उन-उन वचनों की ही प्रशंसा करते हैं, जिन वचनों का गीता से मेल है, बस। उन वचनों को बिलकुल छोड़ देते हैं जो गीता के विपरीत पड़ते हैं।

यह सब राजनीति है।

जिन्हें धार्मिक होना है सच में, उन्हें इन राजनीतिक चालबाजियों से ऊपर उठना होगा। मैं तुम से कहना चाहता हूं : धर्म विस्तार की कला है। ऐसे विस्तार की कला कि सारा आकाश भी छोटा पड़ जाए, तुम सबको अपने में समा लो।

संताप यही है कि तुम सीमित हो गये हो, संकीर्ण हो गये हो; आनंद यही होगा कि तुम विस्तीर्ण हो जाओ। तोड़ो सीमाएं, तोड़ो संकीर्णताएं। धर्म का कोई विशेषण नहीं है--न हिन्दू, न मुसलमान, न ईसाई। धर्म तो वह है जिससे सारा जगत सधा है। अगर धर्म हिन्दू हो, तो मुसलमान को कौन साधे? अगर धर्म ईसाई हो, तो हिन्दू को कौन साधे? और धर्म अगर आदमी का ही हो, तो वृक्षों की कौन चिंता करे? और धर्म अगर वृक्षों का ही हो, तो जानवरों की कौन फिक्र करे! सारा अस्तित्व जिससे सधा है, उस जीवन के मौलिक आधार का नाम धर्म है। हम उस मौलिक आधार को यहां जीने की कोशिश कर रहे हैं। और सरकार कहती है कि इस स्थान को धार्मिक स्वीकार नहीं किया जा सकता!

आखिरी प्रश्न : एक शिविर में मैंने पांच ध्यान किये। मुझे ज्ञात नहीं किस क्षण क्या घटित हुआ? वहां से लौटने पर मैं चार माह तक अपने भीतर एक अजीब से आनंद का अनुभव अनवरत करता रहा और मेरा शरीर पेंडुलम की भांति डोलता

रहा। मुख से अनायास ही 'ओम् आनन्द' का उच्चारण होता रहा और मैं एक मदहोशी का अनुभव करता रहा, जिसे अब भी अनुभव करता हूं। तथा भजन, कीर्तन या प्रवचन अथवा ध्यान के समय दूसरों को ध्यान करते देखने मात्र से मेरा शरीर डोलने लगता है। साथ ही आवेश या थोड़े परिश्रम के उपरांत भी शरीर डोलने लगता है। कृपया अनुग्रहपूर्वक उक्त स्थिति का विश्लेषण कर भावी साधना हेतु मार्ग दर्शन कर तथा संभावना पर प्रकाश डाल कृतार्थ करें।

भगवानदास! ध्यान एक शराब घोल देता है हृदय में। शुभ लक्षण हुआ। तुम डोलने लगे, तुम मस्त होने लगे। इसे अंगीकार करो। लगता है, तुम्हारे मन में अभी थोड़ी इसे अंगीकार करने में झिझक है। तुम थोड़े डरे-डरे हो। तुम थोड़े भयभीत हो। तुम संदिग्ध हो--जो हुआ ठीक हुआ कि नहीं हुआ? कहीं मैं विक्षिप्त तो नहीं हुआ जा रहा हूं?

ध्यान की पहली घटना जब घटती है तो ऐसा ही लगता है कि पागल हुए।

> न जाने दिल में वो क्या सोचते रहे पैहम
> मिरे जनाज़े पे ता-देर सर झुकाए हुए
>
> उन्हीं में राज़े-मोहब्बत किसी का पिन्हां था
> जो खुश्क हो गये आंसू, मिजा तक आए हुए
>
> हुदूदे-कूचा-ए-महबूब है वहीं से शुरू
> जहां से पड़ने लगें पांव डगमगाए हुए

प्यारे की सीमा वहीं से शुरू होती है, जहां से पैर डगमगाने लगते हैं।

> हुदूदे-कूचा-ए-महबूब है वहीं से शुरू
> जहां से पड़ने लगें पांव डगमगाए हुए

तुम्हारे पैर डगमगा गये। यह अच्छा हुआ। इससे बेचैनी भी होगी। क्योंकि तुम अब सामान्य ढंग से न जी सकोगे। मगर यह केवल एक संक्रमण काल की बात है। डरो मत, ध्यान में डूबो! शुरूआत में पैर डगमगाते हैं। फिर धीरे-धीरे-धीरे धीरे पैर फिर थिर हो जाते हैं। ध्यान का प्राथमिक चरण मस्ती है, ध्यान का अंतिम चरण परम शान्ति है। अगर आगे बढ़ते चले गये तो धीरे-धीरे यह डोलना अपने-आप विलीन हो जाएगा।

ऐसा ही समझो कि नया-नया किसी आदमी को शराब पिला दो। तो डोलता है, नाचता है, कूदता-फांदता है, सड़कों पर गिर जाता है। ये कोई पुराने पियक्कड़ों के लक्षण तो नहीं। पुराना पियक्कड़ तो तुम्हें पता ही न चले कि पिए है।

मैं एक पियक्कड को जानता हूं। उनकी पत्नी ने मुझे कहा कि आप मेरे पति को समझाएं--वह आपके पास आते हैं--शराब पीना बंद करें। मैंने कहा, तू इतनी

बार आयी, तूने कभी मुझे कहा नहीं। उसने कहा, मुझे पता ही नहीं था। दो साल हो गये हैं शादी हुए। मगर एक दिन वह बिना पिए घर आए, तब पता चला ! नहीं तो मैं तो समझती थी, यह उनका स्वाभाविक ढंग है। बिना पिए आ गये तब समझ में आया।

पीने में जब कोई आदी हो जाता है, तो फिर पैर नहीं लड़खड़ाते। यह तो सिक्खड़ गिर पड़ते हैं रास्तों पर। ये नये-नये सीखनेवाले, जिन्हें अभी स्वाद लगा है।

अच्छा है, शुरुआत हो गयी ! मगर शुरुआत को...दो बातें ख्याल रखना। एक, डरना मत। नहीं तो रुक जाओगे, घबड़ा जाओगे। और अगर डर गये और रुक गये, तो एक बहुमूल्य अवसर आते-आते हाथ में चूक गया। दूसरी बात ख्याल रखना, कि यही ध्यान का अंत नहीं है कि बस अब डोलते ही रहे जिंदगी भर ! नहीं तो फिर भटक गये। फिर सम्हलना है !

ध्यान जारी रखो, जैसे एक दिन डोलना आया, ऐसे ही एक दिन अचानक पाओगे, सन्नाटा उतरा, सब सम्हल गया, सब संतुलित हो गया। और जब ध्यान संतुलित हो जाता है, जब पिए भी बैठे हैं लेकिन किसी को कानोंकान खबर भी नहीं होती कि यह आदमी पिए बैठा है, तभी जानना कि ठीक अवस्था आ गयी। मीरा का नृत्य ध्यान की शुरुआत है, बुद्ध का वृक्ष के नीचे शांत पत्थर की मूर्ति की भांति बैठा होना ध्यान की पूर्णाहुति। पर जारी रखो, यात्रा जारी रहे।

तुमने यह भी पूछा है कि 'चिंता की परिस्थितियों में भी रुचि और तीव्रता से सांसारिक कार्यों में प्रवृत्त नहीं हो पाता हूं। शारीरिक और मानसिक शिथिलता अब तक बनी हुई है। तेजी से पहले की भांति चल भी नहीं पाता और न ऊंची आवाज में बात कर पाता हूं। कभी हठात् शारीरिक श्रम का कार्य कर लेने से शरीर डोलने लगता है। उक्त परिस्थिति के चलते बहुधा मन विषयों की ओर चला जाता है। इससे मन में गहरा विषाद भी छा जाता है। किन्तु मदहोशी का अनुभव तब भी होता रहता है।' सब शुभ लक्षण हैं। जब ध्यान की ऊर्जा पहली बार पकड़ेगी तो तुम्हारी बहुत-सी शक्ति उस ऊर्जा में लीन होगी। इसलिए शरीर थोड़ा कमजोर मालूम होने लगेगा। जैसे-जैसे ध्यान ठहरने लगेगा, ध्यान की ज्योति अकंप होने लगेगी, शरीर पुनः शक्तिशाली हो जाएगा। और पहले से भी ज्यादा शक्तिशाली हो जाएगा।

ये बीच के संक्रमण हैं। जैसे कोई आदमी नया-नया व्यायाम शुरू करे तो शरीर थक जाता है। दिन भर थका-थका रहता है। क्योंकि व्यायाम ही शक्ति ले लेता है। अभी देने के बजाय लेता है। लेकिन अगर व्यायाम जारी रखे, तो धीरे-धीरे लेने के बजाय देने लगता है। ध्यान अन्तस् का व्यायाम है। तो अभी शक्ति ध्यान में लग जाती होगी—तुम डोलते होओगे, नाचते होओगे, उतनी शक्ति व्यय

हो जाएगी; उतनी शक्ति कम पड़ जाएगी। तो तुम पाओगे, सामान्य जीवन में थोड़ी कमजोरी आ गयी। जोर से बोल नहीं सकते। कोई काम बहुत मेहनत का करना पड़े, थक जाते हो। मगर ये प्राथमिक लक्षण हैं। अगर चलते रहे, जल्दी ही तुम पाओगे, सब पुनः व्यवस्थित हो गया।

और फिर जोर से बोलने की जरूरत भी क्या है? अच्छा ही है। जितनी व्यर्थ की चीजें कट जाएं उतना अच्छा ही है। गाली-गलौज न दे पाओगे। क्रोध न कर पाओगे। द्वेष-ईर्ष्या थकानेवाले मालूम पड़ेंगे। यह अच्छा है।

पहला आघात तुम पर हुआ है। और पहला आघात ऐसा ही होता है जैसे बिजली गिर जाए। सब अस्तव्यस्त हो जाता है। और मैं समझ पा रहा हूं तुम्हारी अड़चन को।

धीरज रखो ! ध्यान जारी रखो, बंद मत करना। क्योंकि जो ध्यान से हुआ है, वह ध्यान से ही शांत होगा।

और दूसरी बात, एक सक्रिय ध्यान करो और एक निष्क्रिय ध्यान करो। सुबह सक्रिय ध्यान कर लो, सांझ निष्क्रिय ध्यान—विपस्सना, या नादब्रह्म। और धीरे-धीरे जैसे-जैसे चित्त शांत होने लगे, वैसे-वैसे सक्रिय ध्यान को कम करते जाना, निष्क्रिय ध्यान को बढ़ाते जाना। एक छह-नौ महीने की प्रक्रिया में सक्रिय ध्यान धीरे-धीरे छोड़ देना और निष्क्रिय ध्यान को ही पकड़ लेना। सारी शक्ति वापिस लौट आएगी ! सारा संतुलन वापिस आ जाएगा ! और नये प्रकाश को लेकर, नये आनंद, नयी मस्ती को लेकर।

चित्त में अभी वासनाएं उठ रही हैं, उठती रहेंगी। जल्दी नहीं जातीं—जन्मों जन्मों की हैं। मगर ध्यान की किरण अगर आनी शुरू हुई, तो ज्यादा देर यह अंधेरा टिकेगा नहीं। ये वासनाएं भी चली जाएंगी। तुम ध्यान पर शक्ति लगाओ। और वासनाओं के प्रति सिर्फ तटस्थ-भाव रखना। लड़ना मत। झगड़ना मत। हटाने की कोशिश मत करना। क्योंकि अगर हटाने में लगे, तो बहुत देर लग जाएगी। उपेक्षा करना। ख्याल कर लेना कि ठीक है, यह कामवासना उठी, यह लोभ उठा, यह ईर्ष्या उठी, ध्यान दे दिया, बस पर्याप्त है। न तो इसमें जाना, न इससे लड़ना। न इसके पीछे चलना, न इससे भागना। स्वीकार कर लेना कि ठीक है। बस ! और अपने काम में ध्यान के लगे रहो।

जीवन की साधारण प्रक्रिया को चलने दो। उसको रोकना मत, नहीं तो खतरा होगा। यह सोचकर कि अभी कमजोरी है तो बाकी सब काम रोक दें, सिर्फ़ ध्यान करें, तो फिर तुम पंगु हो जाओगे। फिर आठ महीने-दस महीने के बाद मुश्किल हो जाएगा काम में लौटना। इसलिए काम तो जारी ही रखना। अड़चन भी हो तो भी जारी रखना। काम तो जारी ही रखना है। संसार से भागना तो है ही नहीं।

भागने का मन बहुत बार होगा। क्योंकि भागने में सुविधा मालूम पड़ती है–– मिटी सब, छूटी सब झंझट, सब उत्तरदायित्व गया। मैं तुम्हें उत्तरदायित्व से भगाना नहीं चाहता। सारा उत्तरदायित्व स्वीकार रखो, सारा काम जारी रखो, एक सक्रिय ध्यान सुबह, एक निक्रिय ध्यान सांझ। धीरे-धीरे सक्रिय को छोड़ते जाना, निष्क्रिय को गहन करते जाना। अन्ततः नौ महीने बाद मुझे कहना जब निष्क्रिय ही बच जाए और जब सब शान्त हो जाए।

सब शान्त निश्चित हो जाएगा। ऐसी घटना यहां प्रत्येक को घटती है। कुछ नया नहीं है।

आज इतना ही।
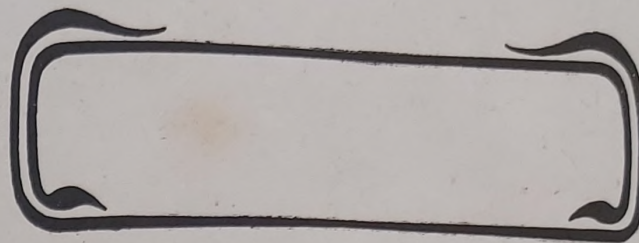
गगन-मंदिल दृढ डोरि लगावहु

पांचवां प्रवचन; १५ सितम्बर १९७८; श्री रजनीश आश्रम, पूना

अरी, मैं तो नाम के रंग छकी ।।
जब तें चाख्या बिमल प्रेमरस, तब तें कछु न सोहाई ।
रैनि दिना धुनि लागि रहीं, कोउ केतौ कहै समुझाई ।।
नाम पियाला घोंटिकै, कछु और न मोहिं चही ।
जब डोरी लागी नाम की तब केहिकै कानि रही ।।
जो यहि रंग में मस्त रहत है, तेहि कैं सुधि हरना ।
गगन-मंदिल दृढ़ डोरि लगावहु, जाहि रहौ सरना ।
निर्भय ह्वैकै बैठि रहौं अब, मांगौं यह बर सोई ।।
जगजीवन विनती यह मोरी, फिरि आवन नहिं होई ।।

मैं तोहिं चीन्हा, अब तौ सीस चरन तर दीन्हा ।।
तनिक झलक छवि दरस देखाय । तब तें तन मन कछु न सोहाय ।।
कहा कहौं कछु कहि नहिं जाय । अब मोहि कां सुधि समुझि न आय ।।
होइ जोगिन अंग भस्म चढ़ाय । भंवर-गुफा तुम रहेउ छिपाय ।।
जगजीवन छवि बरनि न जाय । नैनन मूरति रही समाय ।।

रहिउं मैं निरमल दृष्टि निहारी ।
ए सखि मोहिं ते कहिय न आवै, कस-कस करहुं पुकारी ।।
रूप अनूप कहां लगि बरनौं, डारौं सब कुछु वारी ।
रवि ससि गन तेहिं छबि सम नाहीं, जिन केहु कहा बिचारी ।।
जगजीवन गहि सतगुरु चरना, दीजै सबै बिसारी ।।

ये मैकशी है तो फिर शाने-मैकशी क्या है
बहक न जाए जो पीकर, वो रिंद ही क्या है

बस एक सम्त उड़ा जा रहा हूं वहशत में
खबर नहीं कि खुदी क्या है, बेखुदी क्या है

मैं जहरेमर्ग गवारा करूं कि तल्खी-ए-जीस्त
मिरी खुशी तो है सब कुछ, तिरी खुशी क्या है

ये दर्स मैंने लिया मक्तबे-मोहब्बत से
किसी तरह जो कट जाए जिंदगी क्या है

और जिंदगी अधिक लोगों की बस किसी तरह ही कट जाती है। जन्म तो होता है, जीवन नहीं मिल पाता। जीवन मिल सकता है। लेकिन जीवन जन्म का पर्यायवाची नहीं है। जन्म अवसर है, जीवन खोजोगे तो मिल जाएगा। जन्म बीज है, बसंत की तलाश करोगे, भूमि खोजोगे, बीज को भूमि में डालने की सामर्थ जुटाओगे, मरने की तैयारी रखोगे--मिटने की कूबत--और जोखम उठाओगे, तो फूल खिलेंगे--जीवन के फूल। नहीं तो जन्म और मृत्यु के बीच में लोग यूं ही जी लेते हैं, झूठा ही जी लेते हैं। जीने का नाम ही रहता है, जीवन का कोई स्वाद नहीं मिल पाता। जिसे जीवन का स्वाद मिल जाता है, उसकी फिर मृत्यु नहीं है। क्योंकि जीवन की कैसी मृत्यु? जीवन शाश्वत है। जीवन अमृत है।

जब तक तुम्हें मृत्यु का भय हो, जाने रखना, अभी जीवन का पता नहीं चला है। जब तक मृत्यु सार्थक मालूम पड़ती हो, जब तक मृत्यु यथार्थ मालूम पड़ती हो बत तक भूल मत जाना, अभी जीवन की तलाश करनी है।

जीवन के मिलते ही मृत्यु एक झूठ है। मृत्यु से बड़ा फिर कोई झूठ नहीं है। अभी तो मृत्यु से बड़ा कोई सच नहीं है। अभी तो इस तथाकथित जीवन में जन्म के बाद अगर कोई चीज निश्चित है तो सिर्फ मृत्यु निश्चित है। बाकी कुछ भी निश्चित नहीं है। और कुछ होगा या न होगा, लेकिन मृत्यु जरूर होगी। जो जन्मा है, वह मरेगा। जैसे जन्म एक पहलू है उसी सिक्के का जिसका दूसरा पहलू मृत्यु है।

जन्म और मृत्यु के बीच में जीवन नहीं है। जीवन जन्म के पूर्व भी है और मृत्यु के पार भी है। जन्म और मृत्यु के बीच जीवन नहीं घटता, जीवन में जन्म और मृत्यु की घटनाएं घटती हैं। और ऐसी बहुत घटनाएं घट चुकी हैं। बहुत बार जन्मे हो, बहुत बार मरे हो, मगर जीवन से अभी पहचान नहीं हुई। बार-बार चूक गये हो।

ये दर्स मैंने लिया मक्तबे-मोहब्बत से
प्रेम की पाठशाला में मैंने यह पाठ सीखा।

ये दर्स मैंने लिया मक्तबे-मोहब्बत से
किसी तरह जो कट जाए जिंदगी क्या है

ऐसे बोझ की तरह जो कटे, घसिटते-घसिटते जो कटे, उसे जिंदगी मत समझना। जीवन तो एक नृत्य है, एक गीत है, एक महोत्सव है; जीवन तो खूब सतरंगा है; बोझ कहां? जीवन तो निर्झर है। जीवन के पास तो ऐसे पंख हैं कि सारा आकाश तुम्हारा हो जाए। जीवन यह कारागृह नहीं है जिसको तुमने जीवन समझा है। यह क्षुद्र, छोटी-छोटी घटनाओं में टूटनेवाला, बिखरनेवाला जीवन, इसे जीवन समझ लिया जिसने, वह चूक गया। उस व्यक्ति को ही मैं अधार्मिक कहता हूं, जो इस क्षुद्र जीवन को जीवन समझ लेता है। और इस क्षुद्र से इतना भर जाता है कि विराट को देखने की न तो अभीप्सा पैदा होती, न अवकाश मिलता। जो इस कूड़े-कचरे से, धन-पद-प्रतिष्ठा-अहंकार, इससे ही इतना भर जाता है कि जिसके भीतर जगह ही नहीं होती कि परमात्मा अगर अतिथि होना चाहे तो हो सके। और ऐसा नहीं है कि परमात्मा तुम्हारे द्वार पर दस्तक न देता हो। मगर दीवाने ही सुन पाते हैं दस्तक को। प्रेमी ही समझ पाते हैं उस संकेत को।

धर्म मस्त होने की कला है। अलमस्त होने की कला है। धर्म का उदासी से कोई भी संबंध नहीं है। इसलिए तुम्हारे मंदिरों-मस्जिदों में, तुम्हारे आश्रमों में अगर उदास लोग बैठे हों तो समझ लेना कि वहां अभी धर्म की कोई किरण नहीं उतरी। ये तुम्हारे उदास आश्रम मरघट हैं। यहां जीवन का कोई नृत्य नहीं हो रहा है। परमात्मा को पहचानना हो तो फूलों में खोजो, वहां नृत्य है; चांद-तारों में खोजो, वहां उत्सव है। वसंत में तलाशना; आकाश में मेघ घिर जाएं, वहां खोजना। पशु-

पक्षियों की आवाज में, गीत में शायद मिल जाए; लेकिन तुम्हारे संत-महात्माओं के उदास चेहरों में नहीं मिलेगा। वे तो मौत से घबड़ा कर बैठ गये हैं वहां। उन्हें जिन्दगी की कुछ भी खबर नहीं है।

इस भेद को ख्याल में ले लो।

मौत से घबड़ा कर जो धार्मिक होता है, वह धार्मिक नहीं है, धर्म का धोखा है। वैसा ही जैसा हम खेत में नकली आदमी खड़ा कर देते हैं। घास-फूस का। फिर चाहे तुम उसे चूड़ीदार पाजामा पहना दो, अचकन पहना दो, जवाहर बंडी लगा दो, गांधी टोपी लगा दो, इससे क्या होता है! चूड़ीदार पाजामे के भीतर सिर्फ घास-फूस है। और सिर कहां है वहां? हन्डी लगा देते हैं। हन्डी पर पर गांधी टोपी रख दी। लेकिन पशु-पक्षियों को डराने के काम आ जाता है। यह खेत का झूठा आदमी भी कुछ काम आ जाता है। बस ऐसे ही तुम भी कुछ काम आ रहे हो। और मौत से घबड़ा जाओगे। और मौत से घबड़ाना ही होगा, क्योंकि मौत आ रही है। झूठा धार्मिक आदमी घास-फूस का होता है—मौत से घबड़ा कर ही जाता है—उसके धर्म का आधार भय होता है, भीरुता।

दुनिया की सभी भाषाओं में ऐसे शब्द हैं। धार्मिक आदमी को कहते है: धर्म-भीरु। या ईश्वर-भीरु। 'गॉड फियरिंग'। धार्मिक व्यक्ति और ईश्वर-भीरु! भीरु! ईश्वर से डरेगा धार्मिक आदमी! तो फिर ईश्वर के गले कौन लगेगा? धार्मिक आदमी और ईश्वर से डरेगा? तो फिर ईश्वर से प्रेम कौन करेगा? और जहां प्रेम है, वहां भय कैसा? और जहां भय है, वहां प्रेम कैसे हो सकेगा?

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं: धार्मिक आदमी ईश्वर से भयभीत नहीं होता। सिर्फ धार्मिक आदमी ही ईश्वर से भयभीत नहीं होता। अधार्मिक होते होंगे भयभीत। अधार्मिक को भयभीत होने का कारण है। क्योंकि अधार्मिक का ईश्वर भय से ही निर्मित है। तुम्हारे मंदिरों और मस्जिदों में जिसकी पूजा हो रही है, वह तुम्हारे भय का ही सूत्र है। तुम्हारे भय से ही जन्मा है। तुम जो घुटने टेक कर प्रार्थना कर रहे हो, थरथरा रहे हो, कंप रहे हो, उसमें भय है। उसमें नर्क का भय है। मौत का भय है—मौत आ रही है। और न-मालूम कितने पाप हो रहे हैं। पता नहीं क्या होगा मृत्यु के बाद, समझा लो परमात्मा को, फुसला लो परमात्मा को, खुशामद कर लो उसकी। तुम्हारी प्रार्थनाएं, तुम्हारी स्तुतियां तुम्हारी रिश्वत से ज्यादा नहीं हैं। इसलिए जितने दुनिया में तथाकथित धार्मिक देश हैं, वहां खूब रिश्वत चलती है। उनके प्राणों में रिश्वत बसी है!

भारत से लोग रिश्वत हटाना चाहते हैं, हटेगी नहीं—जब तक भारत की धार्मिक मनोदशा नहीं बदलती। यह देश हजारों साल से परमात्मा को रिश्वत देता रहा है। एक नारियल चढ़ा आया—सड़ा नारियल! क्योंकि परमात्मा को कोई ठीक-

ठीक नारियल नहीं चढ़ाता। परमात्मा को चढ़ाने के लिए अलग ही नारियल बाजार में बिकते हैं। बिलकुल सड़े हुए। अक्सर तो परमात्मा के मंदिर के सामने ही नारियल की दुकान होती है। वे ही नारियल बार-बार चढ़ते रहे हैं--हजारों बार चढ़ चुके हैं। तुम चढ़ा आते हो, पुजारी फिर रात बेच देता है, सुबह फिर चढ़ने शुरू हो जाते हैं। तुम नारियल चढ़ाकर परमात्मा को कुछ मांगने जाते हो। तुम कहते हो, बेटे की नौकरी लगवा देना। कि पत्नी बीमार है, यह रहा नारियल !

यह देश रिश्वत देता रहा है परमात्मा को, रिश्वत इसके प्राणों में भर गयी है। रिश्वत बड़ी धार्मिक प्रक्रिया है ! बड़ी प्राचीन परम्परा है ! इसलिए इस देश को रिश्वत से छुड़ाना बहुत मुश्किल है। जब परमात्मा तक नारियल से मान जाता है, तो आदमी की क्या बिसात ! फिर ले कर पुलिसवाले से और प्रधानमंत्री तक, सब नारियल से मान जाते हैं। छोटे नारियल, बड़े नारियल, तरह-तरह के नारियल। लेकिन जब परमात्मा तक मान जाता है तो फिर और किसकी क्या बिसात है !

फिर डालियां सजा कर भेजो ! और अगर सीधा कोई उपाय न हो, तो पीछे का कोई दरवाजा खोजो। अगर नेता सीधा रिश्वत न लेता हो, तो पत्नी के चरण दबाओ, बेटों की स्तुति करो--कोई उपाय खोजो ! उपाय मिल जाएंगे। यहां लेनेवाले के मन में भी रिश्वत की प्रतिष्ठा है और देनेवाले के मन में भी रिश्वत की प्रतिष्ठा है। रिश्वत बड़ी धार्मिक प्रक्रिया है !

तुम क्या करते हो ? तुम कहते हो कि प्रभु का नाम ले लेते हैं रोज सुबह। यह क्या है ? प्रभु के नाम लेने से क्या होगा ? क्यों ले रहे हो नाम ? ईश्वर को जानते हो ? पहचानते हो ? उससे कुछ मुलाकात हुई ? अभी तो अपने से भी मुलाकात नहीं हुई, उससे क्या मुलाकात होगी ! अभी तो तुम्हें यह भी पता नहीं है कि मैं कौन हूं। अभी तो मिलनेवाले का भी पता नहीं है, तो तुम तलाश पर क्या निकलोगे --अभी तो खोजी भी अंधेरे में डूबा है, अभी खोज कैसे होगी ? लेकिन इस अंधेरे में भयभीत कंप रहे हो, डर रहे हो। इसी डर से प्रार्थना भी करते हो, पूजा भी करते हो, मंदिर के पुजारी को भी रिश्वत देते हो। प्रार्थना, यज्ञ-हवन, अर्चना, आराधना, इन सब के भीतर तुम्हारा भय छिपा है।

ख्याल रखना, भय से की गयी प्रार्थना परमात्मा तक नहीं पहुंचती। और जो भय से प्रार्थना कर रहा है, वह प्रार्थना कर ही नहीं रहा है। जो आदमी कह रहा है कि मेरी पत्नी बीमार है, उसे ठीक कर दो, इसको परमात्मा से क्या लेना-देना है? इसकी पत्नी ठीक होनी चाहिए। इसका प्रयोजन साफ है। यह परमात्मा का भक्त है, तुम समझते हो ? यह परमात्मा का भी शोषण करने गया है। यह परमात्मा से सेवा लेना चाहता है। यह परमात्मा का सेवक नहीं है, यह कहता है--जरा मेरी सेवा करो ! मेरी पत्नी बीमार है, उसको ठीक करो ! और ध्यान रखना, अगर

मेरी पत्नी ठीक न हुई तो सब श्रद्धा उखड़ जाएगी। फिर मैं भरोसा न कर सकूंगा। एक मौका और देता हूं !

मेरे पास लोग आकर कहते हैं कि अगर हम जो मांगें वह प्रार्थना में मिल जाए, तो प्रमाण मिल जाए कि ईश्वर है। और अगर हमारी प्रार्थना पूरी न हो, तो उसके होने का प्रमाण क्या है ? न तुम्हें पता है अपना, न उसका ! हां, एक बात तुम्हें मालूम है कि यह जिंदगी जो तुमने बनायी है, रेत पर बनाया घर है; यह खिसक रही है। इसकी नीवें कंप रही हैं। मौत का झंझावात रोज करीब आ रहा है। ये बाल सफेद होने लगे, ये पैर कंपने लगे, ये हाथ डोलने लगे, ये बुढ़ापा करीब आने लगा--मौत करीब आ रही है ! कुछ इन्तजाम कर लें ! कुछ और सहारा दिखायी नहीं पड़ता--धन साथ जाएगा नहीं, पद साथ जाएगा नहीं, संगी-साथी साथ जाएंगे नहीं, शास्त्र कहते हैं कि नाम-स्मरण साथ जाएगा, तो चलो राम-राम जप लें ! तो बैठे हो तुम माला फेर रहे हो। मगर भय से भरा हुआ हृदय आयोजन कर रहा है मृत्यु से बचने का।

परमात्मा की तलाश, परमात्मा की खोज ऐसी नहीं होती। प्रेम से होती है परमात्मा की खोज। प्रेम ही उसका द्वार है। प्रेम की मस्ती चाहिए, तो उसके घूंघट खुल जाएं।

ये मैकशी है तो फिर शाने-मैकशी क्या है

अगर यह धर्मभीरुता, अगर यह ईश्वर से भय धर्म है, तो फिर अधर्म क्या होगा ? और ये उदास, मुर्दों की तरह बैठे हुए लोग, जिनको तुम साधु-संत कहते हो, अगर ये धार्मिक हैं, तो फिर अधार्मिक कौन है ?

ये मैकशी है तो फिर शाने-मैकशी क्या है

अगर यह मस्ती है, अगर यह धर्म का रस है, ये धर्म पीने वालों के ढंग हैं, तो फिर उसके रस पीने का न तो कोई गौरव रहा, न कोई गरिमा रही।

ये मैकशी है तो फिर शाने-मैकशी क्या है
बहक न जाए जो पीकर वो रिंद ही क्या है

और जो उसके प्रेम में बहक न जाए, नाच न उठे, भूल न जाए लोकलाज, मान-मर्यादा, बेखुद न हो जाए, वह न तो पियक्कड़ है और न प्रार्थना करनेवाला।

प्रार्थना शराब है।

मेरे देखे, जिसने जीवन में प्रार्थना नहीं जाना, उसने जीवन की असली शराब नहीं जानी। वह ऐसा ही प्यासा आया और प्यासा गया। और जिसने प्रार्थना की शराब नहीं पी, वही और तरह की शराबें पीता है। परिपूरक। सोचता है, शायद

इस तरह अपने को भुला लूं। हां, अंगूर से भी शराब बनती है, मगर घड़ी-दो घड़ी को भुला पाती है। एक आत्मा की भी शराब है, जो डूबा सो डूबा, फिर लौटता नहीं। और यह भी घड़ी-दो घड़ी के लिए डूबने का क्या प्रयोजन है। क्योंकि घड़ी-दो घड़ी के बाद फिर चिन्ताएं वहीं-की-वहीं खड़ी हैं—और बदतर होकर खड़ी हैं। यह घड़ी-दो घड़ी की मूर्छा कुछ साथ देनेवाली नहीं है।

लेकिन एक बात तो साफ है, मनोवैज्ञानिक इस संबंध में राजी हैं, कि आदमी ने शराब खोजी ध्यान की ही खोज में। ध्यान नहीं खोज पाए जो, वे शराबों में उलझ गये। शराब में उलझ जाने के पीछे आकांक्षा तो एक ही है कि किसी तरह बेखुद हो जाऊं।

उस आकांक्षा को समझना——

शराबी में भी आकांक्षा तो परमात्मा की ही खोज की चल रही है। और कभी-कभी तो ऐसा होता है कि धनलोलुप में नहीं होती उतनी परमात्मा की खोज जितनी शराबी में होती है। पदलोलुप में नहीं होती, पदपिपासु में नहीं होती उतनी परमात्मा की खोज जितनी शराबी में होती है। शराबी क्या खोज रहा है? शराबी अपने से परेशान है। अपने को भूलना चाहता है; कोई उपाय चाहता है जहां अपने को भुला दे। कुछ उपाय चाहता है जहां थोड़ी देर के लिए यह अहंकार विस्मृत हो जाए, यह अहंकार भारी है, छिद रहा है भाले की तरह, घाव बन गया है, इसके साथ जीना मुश्किल होता जा रहा है। इसी मुश्किल को हल करने के लिए आदमी ने शराबें खोजीं।

अब तो और नये-नये वैज्ञानिक उपाय खोजे हैं——एल.एस.डी. है, मेरीजुआॅना है; और नयी-नयी तरकीबें खोजी जा रही हैं। मगर ये सारी तरकीबें किसी काम की नहीं हैं। ये झूठी हैं। ये थोथी हैं। ये रासायनिक हैं। इनसे थोड़ी देर के लिए भ्रांति पैदा हो जाती है——बस भ्रांति——फिर लौट आना पड़ता है असलियत के जगत में। वही चिंता, वही बेचैनी, वही उपद्रव, वही बाजार, वही शोरगुल। यह तो नींद जैसी बात है; थोड़ी देर के लिए नींद लग गयी, राहत मिल गयी, फिर वापिस।

और, राहत महंगी है। क्योंकि शरीर को नुकसान पहुंचा है। मन को नुकसान पहुंचा है। आत्मा को नुकसान पहुंचा है। एक गलत आदत निर्मित होनी शुरू हुई, जिससे छूटना मुश्किल हो जाएगा। रोज-रोज मुश्किल हो जाएगा। यह तो जहर पीकर अमृत का धोखा देना है। लेकिन आकांक्षा तो ठीक है। आकांक्षा तो यही है कि मैं बेखुद कैसे हो जाऊं?

आदमी का एक ही कष्ट है: उसकी खुदी। उसका मैं-भाव। तुम भी जरा निरीक्षण करना। जितना मैं-भाव होता है, उतना जीवन में दुख होता है —— उसी मात्रा में दुख होता है। जितना मैं-भाव कम होता है, उतना ही जीवन में कम दुख

होता है। और जहां मैं-भाव बिल्कुल नहीं होता, वहां आनंद के फूल खिल जाते हैं। आ गया बसंत! गीत गूंजने लगते हैं। जीवन एक नयी पुलक और उमंग से भर जाता है। एक नया उत्साह। पैरों में घूंघर बंध जाते हैं। ओठ पर बांसुरी आ जाती है।

धार्मिक व्यक्ति का लक्षण यही है कि वह उत्सवपूर्ण हो।

ये मैकशी है तो फिर शाने-मैकशी क्या है
बहक न जाए जो पीकर वो रिंद ही क्या है

बस इक सम्त उड़ा जा रहा हूं वहशत में
खबर नहीं कि खुदी क्या है, बेखुदी क्या है

ऐसी घड़ी आ जाए, न पता चले 'मैं', न पता चले 'तू'; जहां 'मैं' भी गया, 'तू' भी गया; जहां खुदी तो गयी ही गयी, यह भी ख्याल पैदा नहीं होता कि बेखुदी आ गयी; अहंकार तो गया ही गया, निर-अहंकारिता का अहंकार भी जहां नहीं है, जहां कुछ भी शेष नहीं रहा, जहां मस्ती परिपूर्ण हो गयी है, जहां नाच ही नाच है——नर्तक डूब गया नृत्य में, गायक खो गया गीत में—वैसी घड़ी में जीवन का अनुभव होता है। जीवन से पहली पहली बार संबंध जुड़ता है।

मैं जह्रेमर्ग गवारा करूं कि तल्खी-ए-जीस्त

और फिर आदमी राजी हो जाता है, फिर चाहे मृत्यु का विष पीना पड़े, या जीवन की तिक्त कटुता पीनी पड़े।

मैं जह्रेमर्ग गवारा करूं कि तल्खी-ए-जीस्त
मिरी खुशी तो है सब कुछ, तिरी खुशी क्या है

फिर आदमी कहता है, मेरी खुशी की क्या फिकिर, तेरी खुशी क्या है? फिर उसकी मर्जी होनी शुरू होती है।

जिस दिन व्यक्ति के भीतर से परमात्मा जीता है, उस दिन जीवन मिला। जिस दिन क्षुद्र के भीतर से विराट बहता है, उस दिन जीवन मिला। जिस दिन बूंद से सागर झांकने लगता है, उस दिन जीवन मिला। फिर कोई मृत्यु नहीं है।

ये दर्स मैंने लिया मक्तबे-मोहब्बत से
किसी तरह जो बहल जाए जिंदगी क्या है

सावधान होओ! ऐसे ही जिंदगी को मत गंवा देना। जरा पर्दा उठाओ, पर्दे के पीछे मालिक छिपा है। जरा आंखें खोलो, आंख खुलते ही अपूर्व सम्पदा के दर्शन होते हैं। जरा जागो! जरा मस्त होओ! जरा बहको! जरा नाचो! जरा गाओ! जरा रोओ! जरा भावाविष्ट होओ! भावाविष्ट हो जाना ही भक्ति है। ये सब

भाव की तरंगें हैं।

जगजीवन के आज के सूत्र बड़े प्यारे हैं। समझना--

'अरी, मैं तो नाम के रंग छकी।'

जिन्होंने जाना है, उन्होंने ऐसा कहा है। जिन्होंने नहीं जाना, वे तो धर्म के नाम पर बड़े उदास हो जाते हैं। जीते-जी मुर्दा हो जाते हैं। इन्हीं मुर्दों से इस देश के आश्रम भरे पड़े हैं। इन्हीं मुर्दों के कारण यह पूरा देश भी मुर्दा हो गया है। इन मुर्दों ने देश को जीना नहीं सिखाया, आत्महत्या सिखायी है।

इस देश के पास सब है, सिर्फ इस देश की आत्मा खो गयी है। कभी इस देश ने बड़ी ऊंचाइयां देखीं, बड़े शिखर देखे, कृष्ण की बांसुरी सुनी...अब तुम सोचते हो कृष्ण कुछ उदास ढंग के आदमी रहे होंगे? उदासी और बांसुरी का कुछ मेल बैठेगा? कृष्ण का नृत्य देखा इस देश ने। कृष्ण का रास देखा। उदास आदमी नाचते हैं? मोर-मुकुट बांधते हैं? ये स्वस्थ दिन थे। धर्म अपनी गहनता में, अपनी गहराई में प्रगट हुआ था।

फिर बड़े रुग्ण दिन आए। रुग्णचित्त लोग हावी हो गये। उन्होंने सारे देश के मन को उदासी से भर दिया; विस्तार चला गया, लोग सिकुड़ने लगे। हर चीज से भयभीत हो गये। ऐसा न करें, वैसा न करें। धर्म न करने की ही एक प्रक्रिया हो गयी : क्या-क्या न करें। धर्म का करने से कोई संबंध न रहा। फैलाव का विज्ञान न रहा धर्म, सिकुड़ाव बन गया। सिकुड़े-सिकुड़े आदमी जीने लगे। और तभी न केवल देश की आत्मा मरी, देश का शरीर भी दीन-हीन हो गया।

हजारों साल से यह देश गरीब है और इस गरीबी के पीछे तुम्हारे तथाकथित झूठे धर्म की ही शिलाएं हैं। जो भीतर से समृद्ध होता है, उसे बाहर से दरिद्र होने का कोई भी कारण नहीं है। क्योंकि जो भीतर से समृद्ध होता है, उसकी समृद्धि बाहर भी फैलने लगती है। फैलनी ही चाहिए। वही सबूत है। जब भीतर गीत उठा हो, तो बांसुरी बजेगी, और स्वर बाहर फैल जाएंगे।

इस देश को कभी सोने की चिड़िया होने का सौभाग्य था। वे दिन थे, जब इस देश ने धर्म जाना था। तब वेद सहज जन्मे थे। तब उपनिषद ऐसे पैदा हुए थे जैसे गीत कोई गाता है, या पक्षी सुबह गुनगुनाते हैं। इतनी सरलता से सब हुआ था। लेकिन वे सिकुड़ाव के दिन नहीं थे; बड़े फैलाव के दिन थे। आश्रम उदास, मुर्दा लोगों के स्थान नहीं थे, वहां जीवन की धारा बहती थी। वहां हम भेजते थे अपने बच्चों को जीवन की कला सीखने। अब तो आश्रमों में केवल बूढ़े, वृद्ध इत्यादि जाते हैं। अब तो मरने के करीब जो होते हैं वे आश्रमों में जाते हैं। अब तुम अपने बच्चों को आश्रम में भेजते हो? कब से तुमने बच्चे आश्रम भेजने बंद कर दिये; पूछो तो क्यों बंद कर दिये?

मेरे पास लोग आकर पूछते हैं कि आपके आश्रम में जवान लोग दिखायी पड़ते हैं! उनको हैरानी होती है। हैरानी स्वाभाविक है, क्योंकि वे भूल ही गये हैं कि जहां जिंदगी होगी वहां जवानी भी होगी। वहां बच्चे भी होंगे। मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि आप छोटे-से बच्चे को भी संन्यास दे देते हैं! उनका ख्याल है कि सिर्फ बूढ़ों को ही संन्यास दिया जाना चाहिए। उनका सच में तो ख्याल यह है कि जब एक पैर कब्र में उतर जाए और एक बाहर रह जाए, तब जल्दी से संन्यास लेकर कब्र में गिर गये! संन्यास लेने का उनका मतलब ही यह है कि जब मर ही गये! अब ले लो संन्यास! जब तक जीते हो, तब तक जीवन से संबंध मत जोड़ो! तब तक क्षुद्र को इकट्ठा करो और बटोरो।

तुम्हें याद है न, इस देश में हम अपने बच्चों को गुरुकुल भेजते थे? वे गुरुकुल आश्रम थे। और जहां छोटे-छोटे बच्चे इकट्ठे होते होंगे, वहां किलकारियां न होती होंगी! वहां नाच न होता होगा! वहां गीत न गाये जाते होंगे! निश्चित यह सब होता होगा। वे हिम्मत के दिन थे। धर्म एक उभार पर था।

फिर एक सिकुड़ाव आता है। हर चीज में आ जाता है। क्योंकि हर चीज में एक लयबद्धता होती है। लहर उठती है, फिर गिरती है। हजारों साल से लहर गिरती रही है। अब उसने अपना आखिरी तल छू लिया है। मैं लहर को फिर उठाने की कोशिश कर रहा हूं। कि फिर बच्चे धार्मिक हों। कि फिर जवान धार्मिक हों। और निश्चित ही जवान जब धार्मिक होंगे तो धर्म का रंग-ढंग अलग होगा। होगा ही। क्योंकि सारी जवानी संयुक्त होगी। जवानी अपना रंग लेकर आएगी। और जब मंदिरों में जवान नाचेंगे तो रौनक होगी, तो उत्सव होगा, तो प्रेम जन्मेगा, तो मस्ती होगी।

धर्म को मैं यह जो नया रूप देने की चेष्टा कर रहा हूं, उससे पंडित, पुरोहित, पुजारी, राजनेता बड़े परेशान हैं। उनकी परेशानी यह है कि वे धर्म के एक मुर्दा रूप के आदी हो गये हैं। यह वे भूल ही गये हैं कि धर्म में भी सांस होनी चाहिए, हृदय धड़कना चाहिए। उनका धर्म का जो अर्थ हो गया है, वह लाश, मरघट, कब्र।

कल ही मैं तुमसे कह रहा था कि सरकार यह मानने को राजी नहीं है कि यह आश्रम धार्मिक है। इसलिए मानने को राजी नहीं है--कारण उन्होंने दिया है--क्योंकि यह न तो हिन्दू है, न मुसलमान है, न ईसाई है; न जैन है, न यहूदी है; यह कैसे धार्मिक हो सकती है जगह? मैं पूछना चाहता हूं कि जब बुद्ध ने धर्म को जन्म दिया, जब बुद्ध ज़िन्दा थे, और बुद्ध चलते थे, उठते थे और बोलते थे, और जीवंत बुद्ध इस पृथ्वी पर था, तब तुम बुद्ध को धार्मिक मानते या नहीं? क्योंकि तब तक बुद्ध-धर्म पैदा नहीं हुआ था। बुद्ध हिन्दू तो नहीं थे। हिन्दू-धर्म को तो छोड़

चुके थे, उस मुर्दा घेरे से तो बाहर निकल गये थे। और अभी बुद्ध-धर्म का जन्म नहीं हुआ था। वह तो अच्छा हुआ कि मोरारजीभाई न हुए! नहीं तो बुद्ध को धार्मिक नहीं मान सकते थे, क्योंकि वह पूछते कि तुम कौन हो? हिन्दू हो? जैन हो? ये दो धर्म थे उस वक्त। तुम दोनों नहीं हो। तो फिर तुम धार्मिक कैसे? लेकिन फिर बुद्ध के मरने के बाद बुद्ध-धर्म बना। और अब हम बुद्ध-धर्म को बुद्ध-धर्म मानते हैं। अब वह मुझसे पूछते हैं कि आप बौद्ध हैं?

जब जीसस थे, तो जीसस थे लेकिन ईसाइयत कहां थी? यहूदी तो वह नहीं थे। नहीं तो यहूदी उनको सूली न देते। उस मुर्दापन को तो उन्होंने छोड़ दिया था। और अभी ईसाइयत तो भविष्य के गर्भ में छिपी थी। तो ईसा को तुम धार्मिक मानोगे या नहीं? यह तो बड़े मजे की बात हो जाएगी कि ईसा तो धार्मिक नहीं हैं, ईसाइयत धार्मिक है; बुद्ध धार्मिक नहीं हैं, बुद्ध-धर्म धार्मिक है। यह तो बड़े मजे की बात हो जाएगी। कि कृष्ण तो धार्मिक नहीं हैं, कृष्णमार्गी धार्मिक हैं; मोहम्मद तो धार्मिक नहीं हैं, मुसलमान धार्मिक हैं। यह तो बड़े मजे की बात हो जाएगी कि गंगोत्री पर गंगा गंगा नहीं है और जब सब नगरों और गांवों की गंदगी और कूड़ा-करकट और सब मल-मूत्र उसमें मिल जाएगा, तो प्रयाग में आकर गंगा हो जाएगी। गंगोत्री पर गंगा नहीं है। यह तर्क।

यहां जो हो रहा है, न हिन्दू है, न मुसलमान है, न ईसाई है, न जैन है, न बौद्ध है, न सिक्ख है। लेकिन जो भी नानक का प्राणों का स्वर था, जो बुद्ध के हृदय की आवाज थी, जो कृष्ण का गहनतम अनुभव था और जो जीसस की आकांक्षा थी और जो मुहम्मद की अभीप्सा थी, उस सबका प्रतिफलन है। वह सारी सुवास संयुक्त है। मुझे वे धार्मिक मानने को राजी नहीं हैं। जब तक कि सौ-दो सौ साल बाद कोई सम्प्रदाय खड़ा न हो जाए।

और मजा यह है कि जब सम्प्रदाय खड़ा होता है तो धर्म मर जाता है। धर्म मरता है तभी सम्प्रदाय बनता है। बुद्ध जब तक हैं तभी तक धर्म है। लेकिन तब तक सरकारें मानने को राजी नहीं होतीं। मूढ़ताएं तो बहुत होती हैं, लेकिन सरकारी मूढ़ता का कोई मुकाबला नहीं। सरकारी मूढ़ता तो ऐसी है जैसे करेला नीम चढ़ा। ऐसे ही करेला, फिर नीम पे चढ़ गया।

मैं तुम्हें मस्ती का एक स्वर दे रहा हूं। मैं चाहता हूं, तुम डोलो। मैं तुम्हें रंगना चाहता हूं इसी रंग में जिसकी जगजीवन बात कर रहे हैं: 'अरी मैं तो नाम के रंग छकी'। और छक सकते हो तभी। इस जिंदगी में कोई और चीज तुम्हें छका न सकेगी। तुम्हारा पात्र खाली-का-खाली रहेगा। कितना ही धन डालो इसमें, खो जाएगा। कितना ही पद डालो इसमें, खो जाएगा। पात्र खाली-का-खाली रहेगा। तुम भरोगे नहीं। भरता तो आदमी केवल परमात्मा से है। क्योंकि अनंत है हमारा

पात्र और अनंत है परमात्मा—अनंत को अनंत ही भर सकेगा। हमारे भीतर शून्य का पात्र है। इस शून्य के पात्र को परमात्मा की पूर्णता के अतिरिक्त और कोई चीज नहीं भर सकती।

मैं तुम्हें सूफी कहानी याद दिलाऊं, मुझे प्रीतिकर है, बहुत बार मैंने कही है—

एक फकीर ने एक सम्राट के द्वार पर दस्तक दी। सुबह का वक्त था और सम्राट बगीचे में घूमने निकला था। संयोग की बात, सामने ही सम्राट मिल गया। फकीर ने अपना पात्र उसके सामने कर दिया। सम्राट ने कहा, क्या चाहते हो? फकीर ने कहा, कुछ भी दे दें, शर्त एक है, मेरा पात्र पूरा भर जाए। कुछ भी दे दें। लेकिन शर्त एक है, मेरा पात्र पूरा भर जाए। मैं थक गया हूं, यह पात्र भरता नहीं। सम्राट हंसने लगा और उसने कहा: तुम पागल मालूम होते हो। पागल न होते तो फकीर ही क्यों होते! यह छोटा-सा पात्र, यह भरता नहीं? अपने वजीर को कहा कि लाओ, स्वर्ण अशर्फियों से भर दो! इस फकीर का मुंह बंद कर दो सदा के लिए! फकीर ने कहा, मैं फिर याद दिला दूं कि भरने की कोशिश अगर आप करते हैं तो यह शर्त है कि जब तक भरेगा नहीं पात्र, हटूंगा नहीं। सम्राट ने कहा तू घबड़ा मत पागल, भर देंगे। सोने से भर देंगे, हीरे-जवाहरात से कहे तो हीरे-जवाहरात से भर देंगे।

लेकिन जल्दी ही सम्राट को अपनी भूल समझ में आ गयी। सोने की अशर्फियां डाली गयीं और खो गयीं। हीरे डाले गये और खो गये। लेकिन सम्राट भी जिद्दी था। और फिर फकीर से हार माने, यह भी तो जंचता न था। सारी राजधानी में खबर पहुंच गयी। हजारों लोग इकट्ठे हो गये। और सम्राट अपना खजाना उलीचता गया। और उसने कहा, आज दांव पर लग जाना है। सब डुबा दूंगा मगर उसका पात्र भरूंगा। सांझ सूरज ढलने लगा, सम्राट के कभी खाली न होनेवाले खजाने खाली हो गये। पात्र नहीं भरा सो नहीं भरा।

सोचते हो उस सम्राट की दयनीय दशा! मरते वक्त सभी सम्राटों की वही हो जाती है। गिर पड़ा फकीर के चरणों में और कहा, मुझे माफ कर दो! मेरी अकड़ मिटा दी, अच्छा किया। मैं तो सोचता था अक्षत खजाना है। यह तेरे छोटे-से पात्र को भी न भर पाया! बस अब एक ही प्रार्थना है—मैं तो हार गया, मुझे क्षमा कर दो, मैंने व्यर्थ ही तुझे आश्वासन दिया था भरने का—मगर जाने के पहले एक छोटी-सी बात मुझे बता जाओ, दिन भर यही प्रश्न मेरे मन में उठता रहा है, यह पात्र क्या है? किस जादू से बना है? फकीर हंसने लगा, उसने कहा, किसी जादू से नहीं, इसे आदमी के हृदय से बनाया है। न आदमी का हृदय भरता है, न यह पात्र भरता है।

कहानी तो यहां खत्म हो जाती है। मगर यह कहानी आधी है। मैं तुमसे कहता

हूं : यह पात्र भरता है। फकीर कहीं तुम्हें मिल जाए तो मेरे पास ले आना; यह पात्र भरता है। मगर धन से नहीं भरता, सम्राटों से नहीं भरता, बुद्धों से भर सकता है। यह पात्र परमात्मा से भरता है। अरी, मैं तो नाम के रंग छकी ! न केवल भर जाता है, ऊपर से बहने लगता है। इतना भर जाता है कि बाढ़ आ जाती है। बांध तोड़कर बहने लगता है। वही तो करुणा है, जो हमने बुद्धों में देखी। इतना भर जाता है भीतर आनंद कि बहने लगता है बाहर, दूसरों तक पहुंचने लगता है। यही तो सत्संग है। जहां किसी का पात्र भर गया हो और बह रहा हो, उसके पात्र के पास बैठ जाना सत्संग है। क्योंकि कुछ बूंदें तुम पर भी पड़ जाएं। एक बूंद भी पड़ जाए तो तुम रंग जाओ। एक बूंद का भी स्वाद आ जाए तो तुम कुछ के कुछ हो जाओ। और के और हो जाओ।

दिल में तुम हो, नज़्अ का हंगाम है
कुछ सहर का वक़्त है कुछ शाम है

इश्क़ ही खुद इश्क़ का इन्आम है
वाह क्या आग़ाज़, क्या अंजाम है

पीनेवाले एक ही दो हों तो हों
मुफ़्त सारा मैकदा बदनाम है

दर्दो-ग़म दिल की तबीअत बन चुके
अब यहां आराम ही आराम है

भरता है पात्र, लेकिन पीनेवालों का भरता है।

पीनेवाले एक ही दो हों तो हों
मुफ़्त सारा मैकदा बदनाम है

ये जो तुम्हें हजारों साधु-संत दिखायी पड़ते हैं, इनका नहीं भरा है।

पीनेवाले एक ही दो हों तो हों
मुफ़्त सारा मैकदा बदनाम है

ये मधुशालाओं में, मंदिरों में, मस्जिदों में जितने लोग तुम्हें बैठे दिखायी पड़ रहे हैं, ये सब पियक्कड़ नहीं हैं। एक ही दो हों तो हों, बाकी तो व्यर्थ ढोंग कर रहे हैं। ढोंग से बचो, तो एक दिन तुम्हारे जीवन में भी यह सौभाग्य की घड़ी आए—

अरी, मैं तो नाम के रंग छकी।।
जब तें चाख्या बिमल प्रेमरस, तब तें कछु न सोहाई।

और एक बूंद पड़ जाए उसके प्रेम के रस की, फिर कुछ और नहीं सुहाता—

कैसे सुहा सकता है ? जिस हंस ने मानसरोवर का जल पिया, वह तुम्हारे गांव की गंदी नालियों और डबरों का जल पीने को राजी हो सकेगा ? जिसने आकाश की मुक्ति जानी, वह तुम्हारे कारागृहों में, तुम्हारी जंजीरों में आबद्ध होने को राजी होगा ? जिसने परमात्मा का जरा-सा स्वाद लिया, इस जगत के सारे स्वाद व्यर्थ हो जाते हैं।

मैं तुमसे यही कहता हूं : त्यागना नहीं है संसार, परमात्मा का रस ले लो, सब छूट जाता है, छोड़ना नहीं पड़ता है। जिसे छोड़ना पड़ता है, वह व्यर्थ ही छोड़ रहा है, उसे अभी रस नहीं मिला। जो कहता हो कि मैंने त्याग किया, समझना कि उसे अभी कुछ मिला नहीं। जिसे मिल गया है, वह त्याग करता नहीं, त्याग हो जाता है। जैसे हाथ में कंकड़-पत्थर भरे हों और अचानक हीरों की खदान मिल जाए, तो क्या तुम कंकड़-पत्थरों का त्याग करोगे ? याद ही न आएगा कब हाथ से गिर गये कंकड़-पत्थर ! कौन हिसाब रखेगा ? क्या तुम गिनती करोगे कि कितने पत्थर मैंने छोड़े ? भर लोगे मुट्ठी हीरे-जवाहरातों से !

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं : त्याग की प्रक्रिया नकारात्मक है। और उसी के कारण धर्म मुर्दा हो गया है। मैं तुम्हें परमात्मा का भोग सिखाता हूं, संसार का त्याग नहीं। और परमात्मा का भोग आ जाए तो संसार का त्याग अपने से घटता है। जिसको श्रेष्ठ मिलने लगे, निकृष्ट अपने-आप छूट जाता है : निकृष्ट को छोड़ने से श्रेष्ठ नहीं मिलता—याद रखना; बार-बार दोहराता हूं, याद रखना—निकृष्ट को छोड़ने से श्रेष्ठ नहीं मिलता। तुम अपने हाथ के कंकड़-पत्थर छोड़ दोगे, इससे हीरे नहीं मिल जाएंगे। ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है। लेकिन श्रेष्ठ के मिलने से निश्चित ही निकृष्ट छूटता है। दीया जल जाए तो अंधेरा अपने-आप समाप्त हो जाता है। ऐसे ही परमात्मा का भोग है। मैं तुम्हें भोग सिखाता हूं। मैं तुमसे कहता हूं : अभी तुमने जिसे भोग समझा है, वह भोग नहीं है, भ्रांति है।

'जबतें चाख्या बिमल प्रेमरस, तब तें कछु न सोहाई।
रनि दिना धुनि लागि रहीं, कोउ केतौ कहै समुझाई।।'

फिर कोई कितना ही समझाए, फिर कोई लाख प्रलोभन दे, फिर कुछ रस इस संसार में पड़ नहीं सकता। फिर धन के अम्बार लगे रहें, फिर पद के लिए कितने ही प्रलोभन आते रहें, फिर संसार कितने ही पुरस्कार दे, कुछ अंतर नहीं पड़ता। उसके रस की एक छोटी-सी बूंद ऐसा भर जाती है कि फिर जगह ही नहीं बचती, और भरने का कोई सवाल ही नहीं होता।

पहले शराब ज़ीस्त थी अब ज़ीस्त है शराब
कोई पिला रहा है पिए जा रहा हूं मैं

पहले तो शराब ही जिंदगी थी। अलग-अलग ढंग की शराबें हैं। इसीलिए तो हमने पद को भी शराब कहा है, पद-मद। राजनीति एक शराब है। भयंकर शराब है। धन को भी कहा है : धन-मद। धन भी एक शराब है। जिसको पकड़ लेती है, छोड़ती नहीं। दौड़ता ही रहता है आदमी जिंदगी भर : और, और, अंत नहीं आता है। तरह-तरह की शराबें हैं।

पहले शराब ज़ीस्त थी अब ज़ीस्त है शराब

एक बार उसकी बूंद उतर जाए तो रूपान्तरण होता है। पहले शराब ही जिंदगी थी, अब जिंदगी ही शराब हो जाती है।

कोई पिला रहा है पिए जा रहा हूं मैं

और उसके अज्ञात हाथ ढाले चले जाते हैं। इसलिए तो सूफी फकीर उसको साक़ी कहते हैं। अस्तित्व को मधुशाला कहते हैं। उसके रस को शराब कहते हैं। उमर खैयाम का वही अर्थ नहीं है जो तुम उमर खैयाम की किताब पढ़कर समझ लेते हो। उमर खैयाम एक सूफी बुद्ध है। उमर खैयाम कोई साधारण कवि नहीं है। अपमानजनक है यह बात कि शराबखानों के नाम लोगों ने रख लिये हैं : 'उमर खैयाम,' या 'रुबाइयात'। शराब प्रतीक है। उमर खैयाम एक पहुंचा हुआ फकीर है। उसके प्रतीक गलत समझ लिये गये हैं।

'रैनि दिना धुनि लागि रहीं,'... फिर सोते, उठते, जागते, बैठते एक ही बात लगी रहती है : उसकी ही याद, उसकी ही याद बनी रहती है। उसकी याद का दीया भीतर जगमगाता रहता है। ... 'कोई केतौ कहै समुझाई ॥'

'नाम पियाला घोंटि कै, कछु और न मोंहि चही।'

अब कुछ और चाहना नहीं है। उसे पी लिया जिसने, श्रेष्ठतम को जिसने चख लिया, फिर और सब चाह चली जाती है।

जैसा वो चाहते हैं, जो कुछ वो चाहते हैं
आती हैं, मेरे दिल से अब तक वही दुआएं

अब तो वह जो चाहते हैं, जैसा चाहते हैं, वैसा हो रहा है। भक्त स्वयं नहीं जीता, परमात्मा को स्वयं के भीतर से जीने देता है।

इसलिए कृष्ण ने अर्जुन से कहा है : छोड़-छाड़ और सब; आ मेरी शरण! 'सर्वधर्मान् परित्यज्य...' छोड़-छाड़ सब धर्म; आ मेरी शरण... 'मामेकं शरणं व्रज', मुझ एक की शरण आ जा। किस एक की बात कर रहे हैं कृष्ण? उस एक की बात कर रहे हैं जिसको उपनिषदों ने कहा है : वह तो एक है लेकिन ज्ञानी अनेक नामों से उसे पुकारते हैं। कृष्ण यह नहीं कह रहे हैं कि 'मुझ कृष्ण' की शरण आ।

कृष्ण यह कह रहे हैं : 'मुझ एक' की शरण आ। वह 'एक' तो एक ही है। मेरे भीतर भी वही है, तेरे भीतर भी वही है। उस 'एक' की शरण आ। और छोड़-छाड़ सब धर्म! बड़ी अधार्मिक बात समझा रहे हैं, 'सर्वधर्मान् परित्यज्य'। छोड़ सब धर्म इत्यादि। डुबकी मार ले, झुक जा, झुक जा यानी अहंकार छोड़ दे, फिर सब हो जाएगा। फिर सब चाहत मिट जाती है।

जैसा वो चाहते हैं, जो कुछ वो चाहते हैं
आती हैं मेरे दिल से अब तक वही दुआएं

अब तो मैं प्रार्थना करता हूं, यह भी कहना ठीक नहीं। वही जो प्रार्थना करवा लेते हैं, मुझसे आती है, मेरे ओठों तक आती है।

इक जामे-आखिरी तो पीना है और साक़ी
अब दस्ते-शौक़ कांपे या पांव लड़खड़ाएं

अब जो भी हो, अब तो पीना है! अब दस्ते-शौक़ कांपे या पांव लड़खड़ाएं। फिर भक्त चिंता नहीं करता कि क्या परिणाम हो रहा है? लोग हंसते हैं कि लोग पागल समझते हैं? मीरा को लोगों ने पागल समझा। चतन्य को लोगों ने पागल समझा। मेरे पास तुम आए हो, तुम्हें लोग पागल समझेंगे।

इक जामे-आखिरी तो पीना है और साक़ी
अब दस्ते-शौक़ कांपे या पांव लड़खड़ाएं

'जब डोरी लागी नाम की तब केहिकै कानि रही ॥'

और जिसकी भी डोर उससे जुड़ गयी, उसकी लोकलाज कब रही? उसकी मर्यादा कहां रही? उसे तो पागल सदा ही समझा गया है। उसे तो बावला समझा गया है। 'तब केहिकै कानि रही।' फिर कोई प्रतिष्ठा नहीं रह जाती इस तथाकथित दुनिया में।

ध्यान रखना, इस दुनिया ने सदा वास्तविक धार्मिक आदमी की निंदा की ही। सूली दी है उसे, पत्थर मारे हैं उसे, अपमान किया है उसका। और इस दुनिया ने झूठे धार्मिक आदमी की बड़ी पूजा की है। यह बड़ी उल्टी बात है। लेकिन उल्टी, अगर समझो न। अन्यथा बिलकुल ठीक है, गणित साफ है। यह दुनिया धर्म से बचना चाहती है। हां, धर्म के धोखे से इसे कोई डर नहीं है। पंडित-पुरोहित चलेगा; यज्ञ-हवन करवानेवाले चलेंगे; साधु-संत जो इसी को सहारा दे रहे हों, वे भी चलेंगे; जो इसी दुनिया के व्यवस्था के अंग हैं, इसी दुनिया के न्यस्त स्वार्थों को सहयोग दे रहे हैं, वे भी चलेंगे। लेकिन जैसे ही कोई धार्मिक व्यक्ति पैदा होगा, कोई जिसके भीतर से परमात्मा बोले, वैसे ही अड़चन शुरू हो जाएगी। क्योंकि वह न्यस्त स्वार्थों

का साथ नहीं देगा। समाज की मान्यताओं के अनुकूल नहीं होगा। वह तो सत्य कहेगा। और सत्य तुम्हारे झूठों को कंपा देते हैं। वह तो सत्य जिएगा और सत्य तुम्हारे पाखंडों को तोड़ देते हैं। और तब अड़चन शुरू हो जाती है।

जीसस को तुमने सूली दी। सूली दे कर तुमने जाहिर किया कि जीसस ने कुछ बात कही थी जिससे तुम्हारा भवन थरथरा गया था। तुमने सुकरात को जहर पिलाया, जाहिर किया कि सुकरात जरूर कुछ खबर ले आया था दूर की, गहरी, नहीं तो तुम जहर पिलाने की झंझट न करते। तुमने मंसूर को मारा, तुमने खबर दी कि मंसूर के ओंठों से परमात्मा बोल गया था, तुम बरदाश्त न कर सके।

तुमने परमात्मा को कभी बरदाश्त नहीं किया। क्यों? क्योंकि तुम्हारी जिंदगी ऐसी है कि अगर परमात्मा को तुम सुनो और समझो और बरदाश्त करो, तो तुम्हें अपनी जिंदगी बदलनी पड़े। और जिंदगी तुम बदलना नहीं चाहते। तुम साधु-संतों के पास सांत्वना के लिए जाते हो, संक्रांति के लिए नहीं। तुम जाते हो मलहम-पट्टी के लिए, क्रांति के लिए नहीं। तुम जाते हो कि तुम्हारे घावों पर वे गुलाब का फूल रख दें। कि घाव दिखना बंद हो जाए।

मेरे एक मित्र थे। बड़े राजनेता थे। उनके बेटे की मृत्यु हो गयी, वह बड़े परेशान थे, मेरे पास आए। रोने लगे। मैंने उनसे कहा: व्यर्थ रो रहे हैं, बेटा मर गया, तुम भी मरोगे। वह तो एकदम नाराज हो गये! पचहत्तर साल के बूढ़े आदमी थे। कहा, आप इस तरह की बात बोलते हैं? मैं आचार्य तुलसी के पास गया, तो आचार्य तुलसी ने कहा, आप चिंता न करें, आपका बेटा मरकर देवलोक में देवता हुआ है। और आचार्य तुलसी ने आंखें बंद कीं और देवलोक गये और खबर दी कि बेटा देवलोक में देवता हो गया है।

उनका बेटा मंत्री था। मैंने कहा, हद्द हो गयी, मंत्री और देवलोक! कुछ गल्ती हो गयी, आचार्य तुलसी किसी दूसरी जगह पहुंच गये। मैं एक फकीर को जानता हूं, आप उसके पास जाएं, उसकी बड़ी गति है स्वर्ग-नर्क वगैरह में जाने की।

वह फकीर वहीं मेरे पास ही रहते थे। कभी-कभी मेरे पास आते थे। उनको मैंने बता दिया कि ये आएं सज्जन तो तुम बता देना, इस-इस तरह बता देना।

वह गये। उस फकीर ने भी आंखें बंद कीं, बड़ा दूर निकल गया, और उसने कहा कि आपका एक बगीचा है फलां-फलां गांव में। उन्होंने कहा, हां, है! उसमें एक पीपल का झाड़ है? हां, है! उसी पीपल के झाड़ पर आपका बेटा भूत होकर बैठा है। उन्हें तो भरोसा ही नहीं आया कि यह फकीर को पता कैसे चला!! क्योंकि इसको तो कुछ मालूम ही नहीं है, मेरे गांव का, मेरे झाड़ का। और झाड़ है झंझटी! उसके बाबत कहानियां भी थीं। मैं तो उनके बगीचे को जानता था, आता-जाता था, तो मैंने फकीर को सब समझा दिया था कि झाड़ का वर्णन भी कर

देना, स्थान भी बता देना कि ऐसा-ऐसा है, ऐसे स्थान पर है।

वह मेरे पास भागे आए, उन्होंने कहा कि यह भी किसके पास भेज दिया! आचार्य तुलसी ही ठीक कहते हैं। यह आदमी गलत है। मगर फिर भी उनको चिन्ता तो थी, फिर भी कहने लगे, एक बात जरूर है कि इसको पता कैसे चला कि मेरा बगीचा, उसमें पीपल का झाड़, इस-इस दिशा में उस झाड़ के पास कुआं, उस झाड़ को इस तरह की शाखाएं--इसको यह कैसे पता चला? मैंने कहा, इसकी भी बड़ी गति है। यह आंख बंद करके कहीं भी चला जाता है। मगर उन्होंने कहा, बात मुझे तुलसी जी की ही जमती है।

बात हमें वही जमती है जो हम चाहते हैं होनी चाहिए। मेरी बात उन्हें अच्छी नहीं लगी; मैंने कहा, तुम भी मरोगे; इसलिए बेटा मर गया इसमें अब व्यर्थ रोने-धोने में समय मत गंवाओ, याद करो कि तुम्हारी मौत भी आती होगी। जब बेटा भी गया तो बाप कैसे रुकेगा? पर उन्होंने कहा कि मैं ऐसी आशा नहीं करता था। मैं सांत्वना के लिए आया था। मैंने कहा कि मैं तुम्हें सत्य दे रहा हूं। मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि जब बेटा मरा है तो इस मौके को चूको मत। इस याद को गहरा बैठ जाने दो, तीर की तरह चुभ जाने दो। अब तुम भी जल्दी तैयारी करो; अब पार्लियामेंट जाने की और चिंता न करो दुबारा...चालीस साल से मेम्बर थे वह पार्लियामेंट के। अंग्रेजों के जमाने से वह पार्लियामेंट के मेम्बर होते रहे थे। अंग्रेज चले गये, तब भी वह मेम्बर होते रहे। वह पार्लियामेंट के सबसे पुराने मेम्बर थे। उनको पार्लियामेंट का पिता कहा जाता था। और वह फिर भी तैयारी कर रहे थे। और वह नहीं माने! बेटा मर गया मगर उन्होंने चुनाव फिर लड़ा। वह पार्लियामेंट के मेम्बर रहते ही रहते मरे। मेरी बात उन्हें जंची नहीं, उस दिन के बाद मेरे पास नहीं आए, क्योंकि उन्हें चोट लग गयी गहुत। कि वह तो आए थे कि मैं कहूंगा कि बेटा स्वर्ग गया, देवता हो गया, इत्यादि-इत्यादि; और मैंने कह दिया: तुम भी मरोगे!

तुम ख्याल रखना, तुम उन साधु-संतों की पूजा करते हो जो तुम्हारे चित्त को सुलाते रहते हैं--लोरी गा-गा के सुनाते रहते हैं, जो तुम्हें सुलाते रहते हैं। जो तुम्हें जगाएगा, उसे तुम फांसी दोगे। जिसने तुम्हें जगाया, उसके साथ तुमने दुर्व्यवहार किया। तुम जगना नहीं चाहते हो। तुम अपने सपनों में खूब मस्त हो। तुम अपने सपनों में बड़ा रस ले रहे हो। हालांकि सपने सब झूठे हैं। इसलिए जो जानता है, वह तुम्हें जगाएगा ही। वह कहेगा, कितना ही सुन्दर सपना तुम देख रहे हो, मगर सपना सपना है। उठो!

'जब डोरी लागी नाम की, तब केहि कै कानि रही।।'

और जिसकी भी डोरी लग गयी परमात्मा से, उसकी ही झंझट होने लगती

है संसार में। फिर उसकी मर्यादा नहीं रह जाती। लोग तो सम्मान झूठ का करते हैं। लोग पूजा भी झूठ की करते हैं। लोग पूजा भी प्रपंच और पाखंड की करते हैं। नग्न सत्य तिलमिलाता है। लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है भक्त को!

वाह रे शौके-शहादत कूए-कातिल की तरफ
गुनगुनाता, रक्स करता, झूमता जाता हूं मैं

'वाह रे शौके-शहादत'... भक्त तो मिटना चाहता है परमात्मा में, भक्त ने थोड़ा-सा अनुभव किया है, जरा क्षणभर को मिटकर जाना है, अब वह पूरा मिटना चाहता है...

वाह रे शौके-शहादत कूए-कातिल की तरफ
गुनगुनाता, रक्स करता, झूमता जाता हूं मैं

'जो यहि रंग में मस्त रहत है, तेहि कैं सुधि हरना।'

उनको तो सुध ही नहीं रह जाती संसार की। न अपनी सुधि रह जाती। उनकी तो सब सुधि जाती है। जो उसके रंग में मस्त हो जाते हैं, उनको तो बस उसकी ही सुधि रहती है और कुछ सुधि नहीं रह जाती। फिर कौन अपमान करता, कौन सम्मान करता, भेद नहीं पड़ता।

मंसूर को जब मारा गया, उसके हाथ-पैर काटे गये, तब भी वह आकाश की तरफ देखकर खिलखिला कर हंसा। भीड़ में से किसीने पूछा कि मंसूर, हंसने का कारण? तो उसने कहा कि परमात्मा को देख रहा हूं, यह थोड़ी-सी बाधा थी शरीर की, यह भी तुम छीने ले रहे हो। यह थोड़ा-सा पर्दा था, यह भी गिरा, इसलिए हंस रहा हूं खिलखिला कर हंस रहा हूं। तुम सोच रहे हो कि तुम मेरी दुश्मनी कर रहे हो, तुम मुझे नुकसान पहुंचा रहे हो? तुम नासमझ हो। तुम आखिरी पर्दा छीने ले रहे हो। तुम्हारी बड़ी कृपा, तुम्हारा धन्यवाद!

'गगन-मंदिल दृढ़ डोरि लगावहु, जाहि रहौ सरना।।'

और जिसको यह जरा-सा स्वाद मिलना शुरू होता है, वह फिर अपने शून्य के अन्दर विराजमान हो जाता है। शून्य होना भक्त की साधना है। सारी साधनाओं का सार है: शून्य। मिट जाना, न हो जाना। मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, मैं नहीं हूं, इस भाव से परिपूर्ण रूप से भर जाना: बस उसी क्षण—जिस क्षण यह बात वास्तविक हो जाएगी, सिर्फ वचन नहीं होगा, शब्द नहीं होंगे, वाणी ही नहीं होगी; जिस दिन तुम्हारे हृदय में यह गूंज बैठ जाएगी कि मैं नहीं हूं—अनुभवगत, अस्तित्वगत—उसी क्षण परमात्मा उतर आता है। उसी क्षण पूर्ण उतर आता है। शून्य हो जाओ और पूर्ण को पा लो। पूर्ण को पाने की बस एक ही शर्त है: शून्य हो जाना।

'निर्भय ह्वैकै बैठि रहौं अब,...'

और तुम शून्य हो गये और पूर्ण का विराजमान होना हो गया, फिर निर्भय ह्वैकै बैठि रहो, फिर कोई भय नहीं। न मौत है, न कोई भय है, न कुछ छीना जा सकता है, न कुछ चुराया जा सकता है। तुम्हारी शाश्वत सम्पदा है फिर। तुम सम्राट हो। तुम अमृत हो।

'निर्भय ह्वैकै बैठि रहौं अब, मांगौं यह बर सोई।।
जगजीवन विनती यह मोरी, फिरि आवन नहिं होई।।'

फिर बैठ जाओ निर्भय होकर। एक ही विनती उठती रहती है कि अब दुबारा इस झंझट में पड़ना न हो। इस भ्रांति में, इस स्वप्न में दुबारा उतरना न हो।

मेरा जो हाल हो सो हो बर्क़े-नज़र गिराए जा
मैं यूंही नालाकश रहूं तू यूंही मुस्कराए जा

लहज़ा-ब-लहज़ा, दम-ब-दम, जल्वा-ब-जल्वा आए जा
तिश्ना-ए-हुस्ने-ज़ात हूं तिश्नालबी बढ़ाए जा

जितनी भी आज पी सकूं उज्ऱ न कर पिलाए जा
मस्त नज़र का वास्ता, मस्ते-नज़र बनाए जा

लुत्फ़ से हो कि क़हर से होगा कभी तो रूबरू
उसका जहां पता चले शोर वहीं मचाए जा

पुकारो। जहां पता चले। गुलाब के फूल में पता चले, पुकारो वहीं, मंदिर-वंदिर जाने की जरूरत नहीं है। चांद-तारों में दिखायी पड़े, पुकारो उसे। किन्हीं की आंखों में दिखायी पड़े, पुकारो उसे। झुक जाओ वहीं, जहां उसके सौंदर्य की झलक मिले। झुक जाओ वहीं, जहां जीवन की धारा हो। एक वृक्ष के पास झुक जाओ, वहां परमात्मा हरा है। एक नदी के तट पर झुक जाओ, वहां परमात्मा गतिमान है। सूरज, ऊगते सूरज के सामने झुक जाओ, वहां परमात्मा फिर एक नयी सुबह बनकर प्रगट हो रहा है।

लुत्फ़ से हो कि क़हर से होगा कभी तो रूबरू

और फिक्र मत करो, खुश होकर होगा सामने, या तुम शोर मचाते रहे तो नाखुश होकर सामने हो जाएगा—कोई फिक्र नहीं—उसका जहां पता चले शोर वहीं मचाए जा।

जितनी भी आज पी सकूं उज्ऱ न कर पिलाए जा
मस्त नज़र का वास्ता, मस्ते-नज़र बनाए जा

लहज़ा-ब-लहज़ा, दम-ब-दम, जल्वा-ब-जल्वा आए जा

तिश्ना-ए-हुस्ने-ज़ात हूं तिश्नालबी बढ़ाए जा

भक्त तो कहता है, बस मेरी प्यास को गहन करते जाओ। भक्त और कुछ नहीं मांगता। भक्त मांगता है : मेरी प्यास को गहरा करो। भक्त कहता है : मेरी प्यास को ऐसा परिपूर्ण कर दो कि मैं प्यास-ही-प्यास रह जाऊं, पुकार-ही-पुकार रह जाऊं, प्रार्थना-ही-प्रार्थना रह जाऊं। यह जरूरी नहीं है कि शब्दों में ही कही जाए बात। कभी भक्त शब्दों में कहता है, कभी चुप भी कहता है। जैसा जब घट जाता है।

अर्जे-नियजे-गम को, लब-आशना न करना
ये भी इक इल्तिजा है, कुछ इल्तिजा न करना

कुछ न कहना भी कहने का एक ढंग है। शायद कहने का सबसे गहन ढंग है : चुप रहना। तो भक्त कभी बोलता, परमात्मा से निवेदन करता, कभी चुप रह जाता, बिलकुल चुप रह जाता है। सन्नाटे में बैठ जाता है।

उसे सैयाद ने कुछ, गुल ने कुछ, बुलबुल ने कुछ समझा
चमन में कितनी मानीख़ेज़ थी इक खामुशी मेरी

वह चुप हो जाता है, फिर कोई कुछ समझे !

उसे सैयाद ने कुछ गुल ने कुछ, बुलबुल ने कुछ समझा
चमन में कितनी मानीख़ेज़ थी इक ख़ामुशी मेरी

मौन में जितना अर्थ है, उतना किसी शब्द में नहीं है। तो कभी भक्त गाता, कभी खामोश। कभी नाचता, कभी बैठ रहता। लेकिन जीता है स्वस्फूर्ति से। स्वस्फूर्ति शब्द को याद रखना। उपचार से नहीं, व्यवस्था से नहीं, अनुशासन से नहीं, स्वस्फूर्ति से। ऐसा करना चाहिए, इसलिए नहीं करता है कुछ, जैसा जब सहज होता है वैसा करता है। साधो सहज समाधि भली।

'मैं तोहिं चीन्हा, अब तौ सीस चरन तर दीन्हा।।'

मैं तुझे पहचान गया। अब यह सिर तेरे चरन रख देता हूं। अब इसके बोझ को न ढोऊंगा।

'तनिक झलक छबि दरस देखाय।'

जरा-सी तूने झलक क्या दिखायी, रूपांतर हो गया, क्रांति हो गयी।

'तब तें तन-मन कछु न सोहाय।।'

अब यह मेरा तन भी ले ले, यह मेरा मन भी लेले। अब मेरे भीतर तू ही तू हो, मैं कहीं भी न बचूं।

'कहा कहौं कछु कहि नहिं जाय। अब मोहि कां सुधि समुझि न आय।।'

अब मुझे कुछ समझ नहीं पड़ता। सुकरात ने कहा है : ज्ञानी वही है, जो जानता है कि मैं कुछ भी नहीं जानता। भक्त कुछ जानता नहीं। भक्त तो जो जानता था, वह भी बह गया। वह भी आयी बाढ़ उसके प्रेम की और सब बहा ले गयी कूड़ा-करकट। भक्त तो बिलकुल निर्दोष हो जाता है। 'कहा कहौं कछु कहि नहिं जाय। अब मोहि कां सुधि समुझि न आय।।'

'होइ जोगिन अंग भस्म चढ़ाय। भंवर-गुफा तुम रहेउ छिपाय।।'

अब तो मैं दीवानी हो गयी हूं, अब तो मैं पागल हो गयी हूं, अब तो तुम्हारी धुन बजती रहती है, मेरे हृदय के इकतारे पर बस तुम्हारी धुन बजती रहती है। तुम्हारी जो हलकी-सी झलक मिली है, वह सब कह गयी। जो होना था, हो गया है। अब पूरा-पूरा मुझे ले लो। अब जरा भी मुझे छोड़ो मत। अब रंचमात्र भी मेरा जीवन ऐसा न हो जो तुमसे रिक्त हो। और मैं जानता हूं कि तुम कहां छिपे हो। अब मैं पहचान गया हूं। 'मैं तोहिं चीन्हा,' अब तो पहचान हो गयी। 'भंवर-गुफा तुम रहेउ छिपाय,' मेरे ही हृदय की गुफा में छिपे बैठे थे और मैं तुम्हें कहां-कहां खोजता फिरा। मैंने कहां-कहां नहीं तुम्हारे लिए तलाश की ! काबा में और काशी में और कैलाश में और गिरनार में, मैंने कहां-कहां नहीं तुम्हें खोजा, और तुम मेरे भीतर छिपे बैठे थे ! मेरी खोज इसीलिए व्यर्थ होती रही; क्योंकि तुम खोजनेवाले में ही छिपे थे। तुम मेरे स्वरूप हो। 'मैं तोहिं चीन्हा'। 'भंवर-गुफा तुम रहेउ छिपाय'।

खुद अपने ही सोज़े-बातिनी से निकाल इक शम्ए-ग़ैरफ़ानी
चिराग़े-दैरो-हरम तो ऐ दिल, जला करेंगे बुझा करेंगे

ये मंदिरों-मस्जिदों में जो चिराग जल रहे हैं, ये तो जलते हैं, बुझते हैं, एक ऐसा भी चिराग है जो अपने भीतर छिपा है, जो न जलता, न बुझता; जो सदा है, शाश्वत है। अगर कुछ करना ही हो ज्योति पैदा, तो अपने हृदय में ही करो।

खुद अपने ही सोज़े-बातिनी से निकाल कर इक शम्ए-ग़ैरफ़ानी

एक न मिटने वाली लपट तुम्हारे भीतर है। पुकारो ! जगाओ !

चिरागे-दैरो-हरम तो ऐ दिल, जला करेंगे बुझा करेंगे

मंदिर-मस्जिदों के चिराग तो जलते हैं और बुझ जाते हैं, एक ऐसा भी चिराग है जो तुम हो—बिन बाती बिन तेल—वहां न तेल की जरूरत है, न बाती की जरूरत है, वहां रोशनी जलती है अकारण। और जो अकारण है, वही शाश्वत है। कारण होगा तो कभी-न-कभी चुक जाएगा कारण। तेल चुकेगा तो फिर बाती भी चुक जाएगी, फिर दीया बुझेगा। मंदिर-मस्जिदों में आदमी के बनाए हुए दीये जल रहे

हैं, उनमें मत भटक जाना। तुम्हारे हृदय की गुफा में ही परमात्मा का जलाया हुआ दीया जल रहा है।

'जगजीवन छवि बरनि न जाय।'

और जब तुम उस ज्योति में विराजमान हो जाओगे, अपने ही हृदय में बैठोगे, 'जगजीवन छवि बरनि न जाय,' तब जिस सौंदर्य का तुम पर आविर्भाव होगा, जो सौंदर्य बरस जाएगा तुम पर, उसकी भाषा में कोई अभिव्यक्ति न हुई है, न हो सकती है। 'जगजीवन छवि बरनि न जाय।' उसका वर्णन नहीं होता। अनिर्वचनीय है वह।

'नैनन मूरति रही समाय॥'

दिखायी पड़ते हो, पहचान आते हो, कहे नहीं जाते। गूंगे का गुड़।

भक्त कुछ और मांगता भी नहीं। बस, 'नैनन मूरति रही समाय।'

वहां भी आहें भरा करेंगे, वहां भी नाले किया करेंगे
जिन्हें है तुझसे ही सिर्फ़ निस्बत, वो तेरी जन्नत को क्या करेंगे

उन्हें स्वर्ग से कोई प्रयोजन भी नहीं है। वे किसी और सुख की आकांक्षा भी नहीं करते। उनकी तो आकांक्षा एक ही है कि जो है, वह आंखों में समा जाए; जो है, उससे पहचान हो जाए।

'रहिउं मैं निरमल दृष्टि निहारी।'

और उसको देखते ही बस अवाक, ठिठक कर रह जाता है भक्त। 'रहिउं मैं निरमल दृष्टि निहारी।' और उसको देखते ही सब मल कट जाते हैं, दृष्टि निर्मल हो जाती है, निर्दोष हो जाती है, पारदर्शी हो जाती है।

'ए सखि मोहिं ते कहिय न आवै, कस-कस करहुं पुकारी॥'

कहना चाहती हूं, कह नहीं पाती। पुकार-पुकार कर कहना है। ए सखि मोहिं ते कहिय न आवै, कस-कस करहुं पुकारी।

तुम्हें पता नहीं है, जिन्होंने जाना है, उन्हें एक बड़ी दुविधा का सामना करना पड़ता है। जान लेते हैं, मगर जना नहीं पाते। स्वाद तो मिल गया, लेकिन कैसे कहें औरों से? और कहने की एक अनिवार्यता मालूम पड़ती है।

बुद्ध ने कहा है: ध्यान की अनिवार्य परिणति है प्रज्ञा, और प्रज्ञा की अनिवार्य परिणति है करुणा। जिसने ध्यान किया, उसने जाना। और जिसने जाना, उसके भीतर एक अभीप्सा पैदा होती है कि औरों को भी जना दूं, क्योंकि कितने हैं अनंत-अनंत लोग जो अंधेरे रास्तों पर भटक रहे हैं। पुकारूं, उनको भी कह दूं कि मत भटको, तुम्हारे हृदय में बैठा है, कहां जा रहे हो? काबा? काशी? और वह

तुम्हारे भीतर बैठा है। मैं भी खूब भटका हूं, मत भटको, मैंने उसे अपने भीतर पा लिया है, तुम भी पा लो--जरा नजर भीतर मोड़ो।

तो पुकार-पुकार कर, चिल्ला-चिल्ला कर भक्त कहता है। हालांकि जानता है हर बार कि जो कहा, वह वही नहीं है जो जाना। शब्द बड़े छोटे हैं, अनुभव बड़ा विराट है।

जीसस ने कहा है अपने शिष्यों को कि जाओ, चढ़ जाओ मकानों की मुंडेरों पर और चिल्ला-चिल्ला कर कहो। शायद कोई सुन ले। फिर भी ख्याल रखना, कहा है, शायद कोई सुन ले! जिनके पास आंखें हैं, वे देख लेंगे और जिनके पास कान हैं, वे सुन लेंगे। लेकिन मुश्किल से किसी के पास आंख है, मुश्किल से किसी के पास कान है। आंखें दिखायी पड़ती हैं, मगर हैं कहां? बाहर देखनेवाली आंख कोई आंख तो नहीं। जो भीतर ही नहीं देख सकती, वह भी कोई आंख है! बाहर की आवाज सुन लेने वाले कान कोई कान तो नहीं। जो अपने ही भीतर की आवाज नहीं सुन पाए, वे भी कोई कान हैं। लोग आंख के होते हुए अंधे हैं, कान के होते हुए बहरे हैं।

लेकिन भक्त को एक अनुभव होता है, गूंज उठती है कि पुकार दूं, सबको जगा दूं, सबको कह दूं... कहता भी है, इसी पीड़ा से तो ये गीत जन्मे हैं: अरी, मैं तो नाम के रंग छकी!

'रहिउं मैं निरमल दृष्टि निहारी।
ए सखि मोहिं ते कहिय न आवै, कस-कस करहुं पुकारी॥
रूप अनूप कहां लगि बरनौं, डारौं सब कुछु वारी।'

सब निछावर करने को तैयार हूं, अगर कह पाऊं। मगर वह रूप अनूप है। कैसे उसका वर्णन हो? कहां से लाऊं शब्द, कहां से जुटाऊं रंग, कैसे बनाऊं उसकी मूरति? किस भांति कह दूं कि जिन्हें पता नहीं, उन्हें पता चल जाए? ताकि वे व्यर्थ ही जन्मों-जन्मों तक भटकते न रहें।

बुद्ध को ज्ञान हुआ, सात दिन तक वे चुप रहे। कहानी बड़ी प्रीतिकर है। आकाश के देवता बहुत घबड़ा गये। बुद्ध और चुप रह जाएंगे! तो न-मालूम कितनों का उद्धार अवरुद्ध हो जाएगा। देवता आए और उनके चरणों में झुके।

समझ लेना, कहानी प्रतीक है। कोई ऐतिहासिक बात नहीं कह रहा हूं, सांकेतिक है, काव्य है, इतिहास नहीं। मगर बड़ा अद्भुत है अर्थ। चरणों में झुके और बुद्ध को कहा: आप बोलें; आप बोलें, आप चुप क्यों हैं, सात दिन हो गये! और बुद्ध ने कहा: क्या होगा बोलने से? कौन समझेगा? पहली तो अड़चन यह, कौन समझेगा? दूसरी अड़चन यह है कि कैसे कहूंगा? कहने के लिए शब्द नहीं हैं।

बुद्ध जैसे व्यक्ति के पास शब्द नहीं हैं, तो बिचारे जगजीवन की तो क्या बिसात! कबीर की तो क्या बिसात! कबीर तो गरीब जुलाहा। शब्दों की सम्पदा भी बड़ी सीमित है कबीर की। जुलाहे जितने शब्द जानते हैं वही शब्द कबीर के हैं। इसीलिए तो--'झीनी झीनी बीनी रे चदरिया', ऐसे शब्दों का उपयोग किया है। मगर बुद्ध तो राजपुत्र थे। और इस देश के चरम शिखर पर जब संस्कृति थी तब पैदा हुए थे, इस देश में जो श्रेष्ठतम ज्ञान था, उन्हें उपलब्ध था। उन्होंने भी कहा कि कहूंगा कैसे? रूप अनूप कहांलगि बरनौं। नहीं कहा जा सकेगा। इसलिए झंझट में क्या पड़ना! और फिर मैं कहने की कोशिश करूं, इतनी परेशानी उठाऊं, समझेगा कौन? इसलिए व्यर्थ की झंझट में मैं पड़ना नहीं चाहता। जो समझ सकते हैं, वे मेरे बिना भी समझ लेंगे। और जो नहीं समझ सकते, मेरे कहे-कहे भी न समझेंगे।

देवता इकट्ठे हुए, उन्होंने कहा, अब क्या करें? तर्क तो ठीक ही है। लेकिन कोई तरकीब निकालें। और तरकीब तो सब जगह निकल आती है। तर्क सभी जगह रास्ते खोज लेता है। देवताओं ने खूब विचार-विमर्श किया, फिर बुद्ध के पास आए और कहा कि सुनें, आप ठीक कहते हैं कि कहना मुश्किल है, पूरा नही कहा जा सकता, लेकिन कुछ-कुछ झलक तो कही जा सकती है। कुछ-कुछ झलक तो कही जा सकती है! हो सकता है अंधे को हम प्रकाश के संबंध में कुछ न कह सकें, लेकिन अंधे को भी धूप में खड़ा तो किया जा सकता है। धूप का उत्ताप, शरीर पर पड़ती हुई ऊष्मा, इसका तो उसे अनुभव हो सकता है। नहीं रोशनी के संबंध में हम कुछ कह पाएंगे, लेकिन रोशनी का उत्ताप! यह तो ख्याल में लाया जा सकता है। कुछ तो इशारे हो सकते हैं। पूरा नहीं होगा प्रगट, कुछ-कुछ ही सही--ना-कुछ से तो कुछ भी अच्छा, बेहतर। ना-कुछ से तो कुछ भी हुआ तो ठीक। न सागर समाएगा, बूंद ही आएगी, मगर जो प्यासे हैं उनके लिए बूंद भी सागर है। फिर बूंद के अनुभव से सागर की तलाश शुरू होगी। आप कहें।

और आप कहते हैं कि जो समझ सकते हैं वे मेरे बिना भी समझ लेंगे। यह सच है। और आप कहते हैं, जो नहीं समझेंगे वे मेरे कहे-कहे भी नहीं समझेंगे। यह भी सच है। लेकिन दोनों के मध्य में भी कुछ लोग हैं। आप कह देंगे तो समझ लेंगे, आप न कहेंगे तो पता नहीं कितनी देर में समझ पाएंगे! उन लोगों का भी ध्यान करें जो किनारे पर खड़े हैं, जरा-सा धक्का लग जाएगा और छलांग हो जाएगी।

बुद्ध इसका उत्तर न दे सके। यह बात तो समझ में बुद्ध को भी आयी। स्वीकार किया। बयालीस वर्ष तक बोलते रहे सतत, सुबह-सांझ-दोपहर, समझाते रहे। और देवताओं ने ठीक ही कहा था, और बुद्ध ने भी गलत नहीं कहा था। हजारों को कहा, एकाध-दो समझे। बुद्ध ने भी ठीक ही कहा था: कौन समझेगा? देवताओं ने भी ठीक ही कहा था कि हजारों को कहेंगे, एकाध भी समझा तो भी कोई तो समझा!

फिर दीये से दीया जलता रहेगा। और बुद्ध की धारा जीवित रही है। अब भी दीये से दीये जलते रहे हैं। कोई-न-कोई समझता रहा है।

रूप अनूप कहांलगि बरनौं डारौं सब कुछु वारी।

जगजीवन कहते हैं, सब निछावर करने को तैयार हूं, काश, कह पाता! उस अवर्णनीय का थोड़ा-सा वर्णन कर पाता! जिन्होंने जाना है, वे गूंगे हो गये हैं। और जिन्होंने नहीं जाना है, वे बड़े मुखर हैं। पंडित-पुरोहित-मुल्ला-मौलवी बहुत मुखर हैं।

इस बात को ख्याल में रखना। पंडित बोले चले जाते हैं। शास्त्रों पर शास्त्र, टीकाओं पर टीकाएं लिखे चले जाते हैं। बिना झिझके। कोई अड़चन ही नहीं है। विवाद किये जाते हैं। न केवल खुद को सही, दूसरे को गलत भी कहे जाते हैं। और पता कुछ भी नहीं है। और जिनको पता है, वे ऐसी बिबूचन में पड़ गये हैं, ऐसी अड़चन में पड़ गये हैं!

आपस में उलझते हैं अब शैखो-बिरहमन
काबा न किसी का है न बुतखाना किसी का

पंडित और मौलवी हैं कि लड़ रहे हैं! मंदिर न किसी का है और न मस्जिद किसी की है, मगर लड़ाई-झगड़े चल रहे हैं। मंदिर-मस्जिद को लड़ाया जा रहा है। और जो लड़ाने वाले हैं, इनको कुछ भी पता नहीं है। जिसको पता हो गया, वह तो बड़ा झिझकता है।

महावीर का स्मरण दिलाना उचित होगा। महावीर तो कोई भी वचन बोलते थे तो उसमें स्यात् लगा कर बोलते थे। सिर्फ इसीलिए, क्योंकि उसे कहा नहीं जा सकता। कुछ-कुछ कहा जा सकता है। थोड़ा-थोड़ा कहा जा सकता है। पूछो महावीर से, ईश्वर है? महावीर कहते: स्यात्। है भी, नहीं भी है। जो कहते हैं, है, वह भी ठीक कहते हैं। वे भी उसका आधा वर्णन करते हैं। और जो कहते हैं, नहीं है, वे भी ठीक कहते हैं। वे भी उसका आधा वर्णन करते हैं। परमात्मा की उपस्थिति कुछ ऐसी है जैसे शून्य की। तो उसे कोई कहना चाहे, नहीं है—वह भी ठीक ही कहता है।

यह महावीर की अद्भुत बात सुनी?

नास्तिक भी आधी बात कहता है, आस्तिक भी आधी बात कहता है। क्योंकि परमात्मा एक अर्थ में है, उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। और एक अर्थ में नहीं है; क्योंकि तुम उसे कहीं भी पकड़ न पाओगे। तुम कहीं भी इशारा न कर पाओगे कि यह रहा परमात्मा। उसका न कोई पता है, न ठिकाना है। नहीं जसा है। बेबूझ है। इसलिए 'स्यात्'।

'रवि ससि गन तेहिं छवि सम नाहीं,'...

सूर्य भी फीका है––जिसने उसका प्रकाश देखा, उसके समक्ष। चांद में भी वह शीतलता कहां? वह सौन्दर्य कहां?––जिसने उसका सौन्दर्य देखा, उसके समक्ष।

. . . 'जिन केहु कहा विचारी'।। जिन्होंने भी विचार कर कहा है, बहुत विचार कर कहा है, वे भी नहीं कह पाए।

'जगजीवन गहि सतगुरु चरना, दीजै सबै बिसारी'।।

बस एक ही रास्ता बता सकता हूं, जगजीवन कहते हैं, कहीं कोई सतगुरु मिल जाए तो उसके चरण पकड़ लेना और चरण पर सब छोड़ देना––बस इतना ही कह सकता हूं। फिर मिलना हो जाएगा। सतगुरु यानी कोई ऐसा व्यक्ति जो मिट गया है। जो अब नहीं है। जो एक झरोखा है। जिस झरोखे में से दूर का आकाश दिखायी पड़ता है। तुम उस झरोखे पर सर्मपित हो जाना। जगजीवन कहते हैं, और तुमसे कुछ नहीं कह सकता, इतना ही कह सकता हूं––सतगुरु मिले तो चूकना मत!

दिल है क़दमों पर किसी के सर झुका हो या न हो
बन्दगी तो अपनी फ़ितरत है खुदा हो या न हो

ये जुनूं भी क्या जुनूं, ये हाल भी क्या हाल है
हम कहे जाते हैं, कोई सुन रहा हो या न हो

ज्ञानियों को अक्सर लगा है: हम कहे जाते हैं, कोई सुन रहा हो या न हो। मगर कभी-कभी कोई सुन लेना है। लाख में एक सुन ले, तो भी काम पूरा हो गया! हजारों को पुकारो और एक आ जाए तो भी पुकार सार्थक हो गयी। जगजीवन का सारसूत्र यही है: 'जगजीवन गहि सतगुरु चरना,' इतना ही कह सकता हूं जगजीवन कहते हैं कि सतगुरु के चरण पकड़ लेना। शास्त्रों की शरण जाने से कुछ भी न होगा, क्योंकि शास्त्र तो निर्जीव हैं। उनमें से तुम वही अर्थ कर लोगे जो तुम करना चाहते हो। फिर शास्त्र तुम्हारी बुद्धि में ही समा कर रह जाएंगे, तुम्हारे हृदय को न मथ पाएंगे। शास्त्र से तुम ज्ञानी हो जाओगे और अज्ञान तुम्हारा मिटेगा नहीं। शास्त्र से अंधा आदमी प्रकाश की बातें करना सीख जाएगा लेकिन आंखें न खुलेंगी। यह चमत्कार तो सत्संग में ही घटता है। और सत्संग यानी जहां सत्य जीवंत हुआ हो किसी व्यक्ति में।

कैसे पहचानोगे कि कोई सतगुरु है? क्या कसौटी है सतगुरु की? कोई बाहरी कसौटी काम नहीं आती। हिम्मतवर आदमी चाहिए। और बुद्धि को एक तरफ रख कर, हृदय को सामने करके बैठ जाने का साहस चाहिए, बस। हृदय गवाही दे देता है कि आ गया मुकाम। हृदय एकदम बोल देता है कि आ गया मुकाम!

अल्लाह-अल्लाह ये तिरी तर्को-तलब की वुसअ़तें

रफ़्ता-रफ़्ता सामने हुस्ने-तमाम आ ही गया

अव्वल-अव्वल हर क़दम पर थीं हजा़रों मंजि़लें
आखि़र-आखि़र इक मुक़ामे-बेमुक़ाम आ ही गया

सुहबते-रिन्दां से वाइज़ कुछ न हासिल कर सका
बहका-बहका सा मगर तर्ज़े-कलाम आ ही गया

अगर पीने वाले के पास बैठोगे, ज्यादा कुछ न भी सीख पाए तो थोड़ी-थोड़ी बहकी-बहकी बातें आ ही जाएंगी।

सुहबते-रिन्दां से वाइज़ कुछ न हासिल कर सका

पियक्कड़ों के पास बैठकर कुछ न मिला, तो भी कुछ बहकी-बहकी बातें आ जाएंगी।

बहका-बहका सा मगर तर्ज़े-कलाम आ ही गया

अल्लाह-अल्लाह ये तिरी तर्को-तलब की वुसअ़तें
रफ़्ता-रफ़्ता सामने हुस्ने तमाम आ ही गया

मगर बुद्धि से नहीं होगा यह काम। यह हुस्ने-तमाम, यह पूर्ण सौन्दर्य, यह परमात्मा की अभिव्यक्ति, यह प्यारे का मिलन बुद्धि से नहीं होगा। बुद्धि के तर्क-जाल को रख दो अलग; जहां जूते उतर आते हो, वहीं उसे छोड़ आना चाहिए। इतनी जोखिम जो उठा सकता है, उसी को पता चलता है कौन सतगुरु है, कौन नहीं।

हृदय झूठ बोलता ही नहीं। जैसे हम सोने को कसते हैं न कसौटी के पत्थर पर, ऐसे ही सत्य को कसने की जो कसौटी है, जो पत्थर है, वह हृदय है, बुद्धि नहीं। बुद्धि से कसोगे, उलझन में पड़ोगे।

समझो।

अगर तुम जैन-घर में पैदा हुए हो तो तुम्हारे पास बचपन से बुद्धि में दी गयी धारणाएं हैं कि सद्गुरु कैसा होना चाहिए। तुम्हें सिर्फ जैन-मुनि ही सद्गुरु मालूम पड़ेगा। अगर तुम्हारा कृष्ण से मिलना हो जाए, तुम रास्ता बचा कर निकल जाओगे कि यह कहां का आदमी आ रहा है! यह कैसा आदमी आ रहा है! अगर तुम्हारा जीसस से मिलना हो जाए, तुम्हें पता ही न चलेगा; तुम पास से निकल जाओगे और तुम्हें जीसस के होने का पता न चलेगा। अगर बुद्ध तुम्हारे पास आ जाएं तो भी तुम्हें पता नहीं चलेगा। तुम्हारी बुद्धि में एक धारणा बैठी है कि कैसा होना चाहिए मुनि। नग्न होना चाहिए। और बुद्ध तो नग्न नहीं हैं। और मुनि तो सर्व-त्यागी होना चाहिए। और कृष्ण तो मोर-मुकुट बांधे हैं। तुम चूक जाओगे। तुमने

जो भी धारणाएं बुद्धि से बना रखी हैं, उनकी कसौटी से तुम अक्सर सिर्फ परम्परा-गत गुरुओं को पकड़ पाओगे। और परम्परागत गुरु सतगुरु नहीं होते। सतगुरु किसी परम्परा का हिस्सा नहीं होता।

इसे तुम याद रखो, सतगुरु सदा ही परम्परा के बाहर होता है। अक्सर तो परम्परा के विपरीत होता है। क्योंकि सतगुरु जीवंत क्रांति है, अंगारा है। कोई परम्परा उसे नहीं सम्हाल सकती। परम्परा तो राख से बनती है। जब अंगारे बुझ जाते हैं और राख पड़ी रह जाती है, तब पूजा शुरू हो जाती है। उसी पूजा से पर-म्परा बनती है। सद्गुरु तो आग है। जो आग पीने को तैयार है, वही सद्गुरु के पास बैठ सकता है।

बुद्धि कसौटी नहीं है। बुद्धि को एक तरफ रख देना। जैन की बुद्धि, बौद्ध की बुद्धि, मुसलमान की, हिन्दू की, एक तरफ रख देना। तुम्हारे पास एक हृदय है जो परमात्मा का दिया है। बुद्धि तो समाज की दी हुई है। वह तो संयोग की बात है। तुम जैन-घर में बड़े हुए, तो जैन-बुद्धि मिल गयी। अगर बचपन में ही तुम्हें उठाकर मुसलमान के घर में रख दिया होता, तो तुम्हें कभी पता भी न चलता कि तुम जैन हो। कोई खून-हड्डी-मांस-मज्जा जैन थोड़े ही होते हैं। तुम अपने को मुसलमान मानते। और मुसलमान फकीर ही तुम्हें ज्ञानी मालूम पड़ता। और कुरान तुम्हें एकमात्र किताब मालूम पड़ती। और मस्जिद में ही तुम्हें परमात्मा दिखता, और कहीं न दिखता। यह तो संस्कार है, बुद्धि तो केवल संस्कार है--आदमी के द्वारा निर्मित; समाज के द्वारा आयोजित। हृदय परमात्मा का दिया हुआ है। जन्म के पहले से तुम उसे लेकर आए हो। वह तुम्हारी जो भाव की शुद्ध दशा है, वही पहचान सकती है वही कसौटी है।

अल्लाह-अल्लाह ये तिरी तर्को-तलब की वुसअ़तें
रफ़्ता-रफ़्ता सामने हुस्ने-तमाम आ ही गया

अव्वल-अव्वल हर क़दम पर थीं हज़ारों मंज़िलें
आख़िर-आख़िर इक मुक़ामे-बेमुक़ाम आ ही गया

सुहबते-रिन्दां से वाइज़ कुछ न हासिल कर सका
बहका-बहका सा मगर तर्ज़े-कलाम आ ही गया

थोड़ा हृदय तुम्हारा बहकने लगे, थोड़ा हृदय तुम्हारा नाचने लगे, थोड़ा हृदय तुम्हारा आंदोलित होने लगे, वहीं से पहचान है। उसी पहचान के धागे से धीरे-धीरे हुस्ने-तमाम, परिपूर्ण सौन्दर्य का अनुभव हो जाएगा।

'जगजीवन गहि सतगुरु चरना, दीजै सबै बिसारी ।।'

और अगर सतगुरु मिल जाए, तो फिर कुछ बचाना मत, सब उसके चरणों में निछावर कर देना।

जो इस तरह सब छोड़ देता है सदगुरु के चरणों में, वही शिष्य है। इस प्रक्रिया को ही मैं संन्यास कहता हूं।

आज इतना ही।
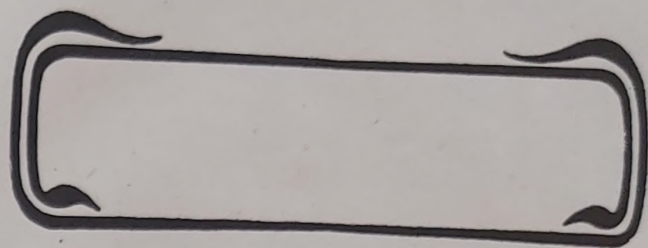
अंतर्यात्रा है परमात्मा

छठवां प्रवचन; १६ सितम्बर १९७८; श्री. रजनीश आश्रम, पूना.

प्रभु की पुकार कैसे सुनायी दे ?

सत्यबोध और आत्मानुभूति हेतु साधना से कार्य-कारण-संबंध नहीं बनता, फिर पद्धतिबद्ध साधन-ध्यान करने की क्या आवश्यकता है ?

प्रवचन से पहले जगजीवन के पदों का पाठ किया गया तो अकस्मात मेरा दिल भर आया और सारे समय आंसू बहते रहे । पदों का पाठ रुका तो मेरे आंसू बंद हुए । इन पदों का मतलब मैं आपके प्रवचन के बाद समझा। भगवान, ऐसा क्यों हुआ ?

उठूं ऊपर या मनुहार करूं
पता नहीं पाता हूं
जितना मुट्ठी को कसता हूं
दूर चला जाता हूं
क्या करूं प्रभु ? मार्ग दीजिए !

आप राजनेताओं का सदा मजाक क्यों उड़ाते हैं ? और राजनेता चूड़ीदार पाजामा ही क्यों पहनते हैं ?

पहला प्रश्नः प्रभु की पुकार कैसे सुनायी दे ?

यह प्रश्न शुभ है । प्रभु को पुकारें कैसे, यह तो बहुत लोग पूछते हैं, प्रभु की पुकार कैसे सुनायी दे, यह कभी-कभी कोई पूछता है । इसलिए प्रश्न महत्त्वपूर्ण है, विरल है, थोड़ा बेजोड़ है । और सत्य के ज्यादा करीब है।

असली सवाल प्रभु को पुकारने का नहीं है। हमारे पास जबान कहां जिससे हम प्रभु को पुकारें ! और हमारी वाणी की सामर्थ्य कितनी ? जाएगी थोड़ी दूर और खो जाएगी शून्य में। कितनी यात्रा करेगी हमारी वाणी ? और हम जो भी कहेंगे, उसमें कहीं-न-कहीं हमारी वासना की छाप होगी। हमारी प्रार्थनाएं हमारी वासनाएं ही हैं। और वासनाएं उस तक कैसे पहुंचेंगी ?

प्रार्थना में वासना छिपी हो तो जैसे पक्षी के कंठ में किसी ने पत्थर बांध दिया। अब उड़ान संभव न हो सकेगी। और हमारी सारी प्रार्थनाएं वासनाओं से भरी होती हैं। प्रार्थना शब्द का अर्थ ही मांगना हो गया। प्रार्थी का अर्थ हो गया मांगने वाला, क्योंकि प्रार्थना के नाम से हम सदा ही मांगते रहे हैं।

इसलिए हम कैसे प्रार्थना करें, इससे झूठा धर्म पैदा होता है। यह सवाल ज्यादा गहरा है : प्रभु की कैसे पुकार सुनायी दे ? प्रभु पुकार ही रहा है, सिर्फ हमारे मस्तिष्क इतने शोरगुल से भरे हैं कि उसकी धीमी-सी पुकार, उसकी सूक्ष्म पुकार, उसकी अति सूक्ष्म पुकार हमें सुनायी नहीं पड़ती । नक्कारखाने में उसकी वीणा के स्वर खो जाते हैं। वह वीणावादक है। उसके स्वर बारीक हैं, नाजुक हैं। उसके स्वरों को सुनने के लिए शून्य चित्त चाहिए। जितना शान्त चित्त होगा, जितना निर्विचार चित्त होगा, उतनी ही संभावना बढ़ जाएगी, उसके स्वर सुनायी पड़ने लगेंगे।

निर्विचार चित्त में परमात्मा तत्क्षण उतर आता है। जैसे द्वार पर ही खड़ा

था, प्रतीक्षा करता था कि कब हम निर्विचार हो जाएं और कब भीतर आ जाए। निर्विचार होते ही हमारा घूंघट उठा देता है; आमना-सामना हो जाता है, दरस-परस हो जाता है। चित्त को निर्विचार करो तो उसकी आवाज सुनायी पड़ेगी। और तब ऐसा नहीं है कि उसकी आवाज कृष्ण की आवाज में ही सुनायी पड़ेगी और राम की आवाज में, बुद्ध की आवाज में ही सुनायी पड़ेगी, इन कौओं की कांव-कांव में भी उसकी ही आवाज है। एक बार उसकी आवाज सुन ली, तो तुम सब जगह उसे पहचान सकोगे। एक बार उसकी छबि आंख में आ गयी, तो फिर तुम कहीं भी चूक न सकोगे। फिर कोयल में ही नहीं, कौए की कांव-कांव में भी, सुंदर फूल में ही नहीं, कांटे में भी उसकी ही छबि है। जीवन में ही नहीं, मृत्यु में भी उसका ही नृत्य है। और सुख में ही नहीं, दुख में भी उसकी ही छाया है, उसका ही साथ है। मन चाहिए शान्त, शून्य। उसकी आवाज सुननी है तो ध्यान की अवस्था साधनी होगी।

ध्यान का इतना ही अर्थ होता है : अपने को खाली करना। ध्यान प्रार्थना की तैयारी है। ध्यान पूजा का आयोजन है। ध्यान का अर्थ है: निर्मल चित्त। ध्यान का अर्थ है : शांत, सद्यःस्नात, अभी-अभी नहाया हुआ, ताजा जैसे सुबह की ओस; एक स्वर नहीं, एक तरंग नहीं, अपना एक भी शब्द नहीं––निःशब्द––तत्क्षण उसकी आवाज सुनायी पड़ने लगेगी।

फूल हुए पात हुए गंध हुए हम
ऋतुओं के पहले
संबंध हुए हम.
एक वृक्ष चींहा-सा
याद बना
पाकर
हम आए दूर बहुत
एक देह
गाकर,
अधरों के छुए अनुबंध हुए हम
ऋतुओं के पहले
संबंध हुए हम.
टेर-टेर बांसुरी
बजायी रे
उस पारे
गांव घर मुंडेर जगे

मुंह धोए
भिनसारे,
नींदों के लिए प्रतिबंध हुए हम
ऋतुओं के पहले
संबंध हुए हम.
चोंच मांजती चिड़िया
मन में
बिजली-अषाढ़
तिनके-सा अपनापन
अपनी यह
नदी बाढ़,
मेंह के लिखे नये निबंध हुए हम
ऋतुओं के पहले
संबंध हुए हम.

परमात्मा से हमारा संबंध तो प्रथम से है। अभी भी है, अंत तक होगा। परमात्मा से हम विच्छिन्न नहीं हुए हैं। सिर्फ विस्मृत हुआ है परमात्मा हमें। और हम परमात्मा को विस्मृत नहीं हुए हैं। यही तो आशा है, यही तो आश्वासन है। हम भूल गये हों उसे, वह हमें नहीं भूला है।

फूल हुए पात हुए गंध हुए हम
हम बहुत रूप ले लिये हैं।
फूल हुए पात हुए गंध हुए हम
ऋतुओं के पहले
संबंध हुए हम.

लेकिन सबसे पहले, प्रथम में हम उससे ही जुड़े थे––सारी ऋतुओं के पहले। और अभी भी हम उससे ही जुड़े हैं। फूल हो गये हों, पात हो गये हों, लेकिन जड़ें तो हमारी अभी-भी भूमि में उसकी ही गड़ी हैं। जीवन तो हम उसी से पाते हैं। कितना ही बड़ा वृक्ष हो जाए, भूमि का ही अंग है, भूमि का ही विस्तार है। और कितने ही हम कहीं भी चले जाएं, हम उसके ही हाथ हैं। जिस दिन जागेंगे, उस दिन चकित होकर पाएंगे कि न तो संबंध कभी टूटा था, न टूट सकता था, बीच में विस्मृत हुआ था। जैसे नींद आ गयी था और एक सपना देखा था। और सपने के कारण जो था, विस्मृत हो गया था। जो नहीं था, अपना मालूम होने लगा था। इसलिए ज्ञानियों ने जगत को माया कहा––एक सपना––जिसमें जो अपना नहीं है अपना

मालूम होने लगता है और जो अपना है, उसकी विस्मृति हो जाती है, उसकी याद खो जाती है ।

इस देह से हमने अपने को जोड़ लिया है । इस देह के नाते-रिश्तों से हमने अपने को जोड़ लिया है ।

तन मंदिर-सा मन मृगछाला
वरन हुई मैं बिन वरमाला
आंख खुली देखा सब भटके
क्षुद्र देह के अंधकार में
राग नहीं जाग्रत हो पाया
कंठ फंस गया रत्नहार में
बंधन की इस महारात्रि में
ढूंढ़ रही हूं मुक्त उजाला
ताल-भंग स्वर-सी निर्वासित
हुई कला की दूकानों से
कीर्ति शिखर पर होती कैसे
दूर रही मैं पहचानों से
सहम गयी जब देखा मैंने
कैसे किसने, किसे उछाला
सुख-दुख की छीना झपटी में
आधी सोयी, आधी जागी
मलिन हुआ जब भी यात्रापथ
अश्रु-कणों में आग लगा दी
मोह-भंग तो हुआ उसी दिन
जिस दिन पांव महावर डाला.
तन मंदिर-सा मन मृगछाला
वरन हुई मैं बिन वरमाला
आंख खुली देखा सब भटके
क्षुद्र देह के अंधकार में
राग नहीं जाग्रत हो पाया
कंठ फंस गया रत्नहार में
बंधन की इस महारात्रि में
ढूंढ़ रही हूं मुक्त उजाला

एक नींद है, एक नींद का अंधेरा है । अंधेरा और कहीं भी नहीं है, सारा अस्तित्व रोशनी से भरा है, सिर्फ अंधेरा है तो हमारी आंख बंद है, नींद है, उसके कारण है । तुम्हारे कान बहुत शोरगुल से भरे हैं बाजार के, व्यर्थ के । दूसरों के शब्दों ने तुम्हारे कानों को अवरुद्ध कर दिया है । इसलिए भीतर जो वीणा बज रही है––अहर्निश बज रही है––सुनायी नहीं पड़ती है । चुप होओ, मौन बैठो; कुछ और करना नहीं है, घड़ी-दो घड़ी को ऐसे हो जाना है जैसे नहीं हो; संसार के लिए मृतवत, अपने में डूबे ।

शुरू-शुरू अड़चन होगी, आदत पुरानी हो गयी है विचार की, विचारों का तांता लग जाएगा––आंख बंद करोगे, और भी बाजार के विस्तार खड़े हो जाएंगे, मौन बैठना चाहोगे, विचारों की भीड़ आक्रमण कर देगी; लड़ना मत, झगड़ना मत; देखते रहना, साक्षी बनना । आएं विचार, आने देना । आएंगे, चले भी जाएंगे । दूर खड़े रहना––अलिप्त । जैसे कोई राह के किनारे खड़े होकर राह पर चलते हुए लोगों को देखता है । न कुछ लेना है, न कुछ देना है; न कोई अपना, न कोई पराया । सुंदर निकले तो ठीक, असुन्दर निकले तो ठीक; साधु, तो ठीक, असाधु, तो ठीक । अच्छा-बुरा विचार कुछ भी निकले, निर्णय मत करना । अच्छा भी मत कहना, बुरा भी मत कहना । निर्णायक मत बनना । निर्णायक बने कि उलझे, कि राग बना, कि आसक्ति बनी । कि एक विचार को पकड़ा और दूसरे को हटाया । बुरे को हटाने में लग गये तो उलझ गये । अच्छे को पकड़ने में लग गये तो उलझ गये । न तो कुछ रुकता है, न कुछ हटाया जा सकता है । तुम सिर्फ जागकर बैठे रहना, जैसे दर्पण हो । जो दिखायी पड़ता है दर्पण को, देख लेता है । जिसकी छाया पड़ती है, पड़ जाती है; फिर छाया मिट जाती है, दर्पण खाली का खाली । ऐसे ही तुम भीतर बैठे रहना, बैठे रहना. . . । अगर थोड़ा भी धैर्य है तो ध्यान फल जाएगा । धैर्य से फलता है ध्यान, कोई और प्रक्रिया नहीं है वस्तुतः ।

एक महीना, दो महीना, तीन महीना, छह महीना, अगर तुम सिर्फ बैठते ही रहो, इतना-सा धीरज हो कि एक घंटा बैठते ही रहेंगे, आएंगे विचार तो आने देंगे, नहीं लड़ेंगे, बैठे रहेंगे; और जल्दी भी न करेंगे कि तीन दिन बैठते हो गये, अब तक कुछ नहीं हुआ, अब क्या सार है, अब बैठना बंद करें । अगर तुम एक वर्ष भी हिम्मत रख लो, तो किसी-न-किसी दिन उसकी पुकार सुनायी पड़ जाएगी । आज सुनायी पड़ सकती है, कल सुनायी पड़ सकती है, परसों––कहा नहीं जा सकता कब ? क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की अनंत-अनंत जीवन की, अनंत-अनंत यात्रापथों की, अलग-अलग संस्कार की देह बनी है । भिन्न भी हो, एक-दूसरे से अलग-अलग हो । किसी को आज हो सकता है, किसी को कल, किसी को परसों । लेकिन मेरे अनुभव में ऐसा है कि नौ महीने और बारह महीने, अधिक-से-अधिक, अगर कोई धैर्य से बैठता

रहे, जल्दबाजी न करे, फल की आकांक्षा और आतुरता न करे, तो एक दिन घटना घट जाती है। और जिस दिन घटती है, उस दिन तुम चकित होओगे। सबसे बड़ा चकित होना तो यही है कि जिसे हम खोजते थे, उसे कभी खोया नहीं था। जिसे हम पाने चले थे, वह हमारे भीतर विराजमान था। जिस वीणा को हम सुनना चाहते थे, बज ही रही थी। जिस दिये को हम जलाना चाहते थे, जल ही रहा था।

दूसरा प्रश्न : सत्यबोध और आत्मानुभूति हेतु साधना से कार्य-कारण-सम्बन्ध नहीं बनता, फिर पद्धतिबद्ध साधन-ध्यान करने की क्या आवश्यकता है?

हम परमात्मा में ही हैं, ऐसा एक बार मानकर बस जो भाये किया जाए और जैसा भी हो जीवन वैसा जी लिया जाए, तो ध्यान-साधन क्यों आवश्यक है? कृपया विश्लेषण कर अनुगृहीत करें।

सीताराम! मानकर नहीं होगा, जानकर होगा! मानोगे तो झूठ ही रहेगी बात। मानने का मतलब ही झूठ होता है। मैंने कहा, तुमने मान लिया; मैंने कहा, तुम परमात्मा ही हो और तुमने मान लिया; तुम्हारे लिए तो यह झूठ ही है। यह तो बुनियाद से ही तुमने झूठ रख दिया। मैंने कहा, इसलिए मान लिया। या किसी और ने कहा, इसलिए मान लिया। कि वेद में लिखा है; कि कुरान कहता है, इसलिए मान लिया; लेकिन मानना तो उधार होगा। उधार यानी झूठ। सत्य की यात्रा उधार पूंजी से नहीं की जा ससती। जानने से करनी होगी।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन फ्रांस की यात्रा पर गया। फ्रांसीसी भाषा उसे आती नहीं है। किसी फ्रांसीसी मित्र ने उसे अपने घर आमंत्रित किया है, कुछ और मित्रों को भी बुलाया। भोजन के बाद गपशप हुई। एक सज्जन ने एक फ्रांसीसी चुटकुला कहा। सारे फ्रांसीसी सुनकर जोर से हंसने लगे। मुल्ला भी खिलखिलाकर हंसा; ऐसा कि सब को मात कर दिया। एकदम लोटने ही पोटने लगा। उसकी हंसी, उसका लोटना-पोटना देखकर उन सब की हंसी तो खो ही गयी। वे एकदम सकते में आ गये! उन्होंने पूछा कि क्या आप हमारी भाषा समझते हैं? मुल्ला ने कहा, भाषा नहीं समझता, लेकिन आप में मुझे विश्वास है। बात जरूर कुछ हंसी की ही रही होगी। मैं आप पर भरोसा करता हूं। मैं आस्तिक आदमी हूं। मैं सदा दूसरों पर भरोसा करता रहा हूं। जब आप सब हंस रहे हैं, तो बात हंसी की रही ही होगी। अब उसमें और मुझे जानने की जरूरत क्या है?

पर भेद तुम्हें समझ में आता है? एक बात को समझकर तुम हंसे हो और एक बात को मानकर कि होगी ही हंसने की, इसलिए हंसे, इसमें भेद तुम्हें समझ में आता है? जमीन-आसमान का अंतर हो गया! यह तो हंसी झूठी रही, चाहे कितना ही लोटो-पोटो। चाहे कितने ही जोर से खिलखिलाओ, लेकिन तुम्हारे हृदय

से यह नहीं उठी। नहीं उठ रही है, नहीं उठ सकती है।

तुम कहते हो; 'हम परमात्मा में ही हैं, ऐसा एक बार मानकर'। मगर यह मानना तो झूठ होगा। और तुम्हें बार-बार याद आती रहेगी कि पता नहीं, तुम जो बात मानकर चल पड़े हो वह ठीक भी है? कौन जाने? तुम्हारे पैर डगमगाते रहेंगे।

जान लो, फिर जीवन का मजा और है! फिर ठीक कह रहे हो तुम, फिर ऐसा ही होता है। एक बार जान लिया कि परमात्मा भीतर विराजमान है, फिर कुछ करने को बचा क्या? फिर तो जिओ। फिर तुम नहीं जीते, वही जीता है। फिर न कुछ बुरा है, न कुछ भला है। फिर बुरा-भला कैसे हो सकता है? क्योंकि परमात्मा जो जिए, वही ठीक है, वही शुभ है।

यही साधु और संत शब्द का भेद है।

साधु का अर्थ होता है : जो सोच-सोच कर, विचार कर-कर के, क्या ठीक है, उसको जिए। और संत का अर्थ होता है, जिसने सब परमात्मा पर छोड़ दिया, अब परमात्मा जैसा जीता है, वही ठीक है। साधु जो ठीक है, वैसा सोचकर जीवन-आचरण करता है। उसका एक चरित्र होता है। चरित्र का एक अनुशासन होता है। उसकी एक मर्यादा होती है। संत? सोचकर जीता ही नहीं कि क्या ठीक है, क्या गलत है। उसने तो सब छोड़ ही दिया। संत तो बचा ही नहीं। अब तो परमात्मा ही उससे जीता है; इसलिए जो भी जीता होगा, ठीक ही जीता है। अब बुरे होने का कोई उपाय ही नहीं रहा।

संत का कोई आचरण नहीं होता। साधु का आचरण होता है। और इसीलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि साधु को तो पूजा मिल जाती है, संत से तुम चूक जाते हो क्योंकि आचरण तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता है। आचरण तुम्हें समझ में आता है सरलता से। तुम्हारे गणित में और साधु के गणित में भेद नहीं है। तुम भी जानते हो सोच-सोचकर कि क्या ठीक है, और वही साधु जी रहा है। तुम सहज ही साधु के चरणों में झुक जाते हो। संत अड़चन डाल देता है। संत तुम्हारी मर्यादा के बाहर होता है, अमर्याद होता है।

जीसस को जिन लोगों ने सूली दी, वे कोई बुरे लोग नहीं थे, साधु लोग थे। साधुओं ने सदा संतो को सूली दे दी है—यह याद रखना! क्योंकि जिन्होंने सूली दी, तुम यह मत सोचना कि बुरे लोग थे, हत्यारे थे, पापी थे। नहीं, भले लोग थे, अच्छे लोग थे। जिनका तुम भी आदर करते, वैसे लोग थे; आचरणवान थे, मर्यादा-बद्ध थे। और जीसस मर्यादामुक्त थे। यही अड़चन थी। जीसस की कोई मर्यादा न थी। कोई सीमा न थी। जीसस कहते थे : मैं और परमात्मा एक। इसलिए जो वह करवाए, वही ठीक। जैसा करवाए, वैसा ही ठीक। मैं कौन हूं निर्णायक? मैं हूं ही नहीं बीच में कोई। मैं तो बांस की पोली पोंगरी, जो गाए, उसका। अच्छा, तो उसका, बुरा, तो उसका। मैं उससे ऊपर अपने को कैसे रखूं?

यही भेद राम और कृष्ण में हैं।

राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। वे साधुता की पराकाष्ठा हैं। कृष्ण संतत्व की पराकाष्ठा हैं। वे अमर्याद हैं, असीम हैं। इसलिए हमने राम को आंशिक अवतार कहा, कृष्ण को पूर्णावतार कहा। संत में परमात्मा पूरा उतरता है। साधु में बस झलक मात्र है, अंश मात्र। साधु में एक चेष्टा है; नियम, व्यवस्था, विधि-विधान है। साधु को सदा सम्मान मिल जाता है। राम कहीं भी हों तो सम्मान मिल जाएगा, कृष्ण को कहीं भी अड़चन होगी। कृष्ण को होने ही वाली है अड़चन, क्योंकि कृष्ण का जीवन बेबूझ मालूम पड़ेगा।

कृष्ण ने अर्जुन को भी यही कहा है कि तू भी सब फल उसपर ही छोड़ दे और जो वह करवाए, सो कर। तू फल की आकांक्षा न कर।

साधु तो फलाकांक्षी होता है। वह तो पूरे वक्त फल का ही विचार करता है कि ऐसा करूंगा तो ऐसा होगा, ऐसा करूंगा तो ऐसा होगा। ऐसा किया तो स्वर्ग और ऐसा किया तो नर्क। ऐसा किया तो पुण्य और ऐसा किया तो पाप। साधु तो चिंता ही करता रहता है इसी की। कृष्ण तो जो शिक्षा दे रहे हैं वह साधुता की नहीं है। साधु को तो लगेगा असाधुता की है।

इसलिए जैनियों ने, जो कि साधुता की पराकाष्ठा हैं, कृष्ण को नरक में डाल दिया है। उनके शास्त्रों में कृष्ण नरक में पड़े हैं। छोटे-मोटे नरक में नहीं, सातवें नरक में पड़े हैं। वह साधु का वक्तव्य है संत के प्रति। क्यों नरक में पड़े हैं? क्योंकि कृष्ण का जीवन चरित्रहीन मालूम होता है। कोई नियम नहीं है। सब तरफ से नियम-मुक्त है, स्वच्छन्द है, अराजक है।

तुम खयाल रखना, साधु और संत के बीच बड़ी खाई है; उससे भी बड़ी जितनी असाधु और साधु के बीच है। असाधु-साधु के बीच बड़ी खाई नहीं है, उनकी तर्क-सरणी एक है। उनके सोचने का गणित एक है। असाधु बुरा-बुरा सोचकर कर रहा है कि यह-यह बुरा है, यह-यह करना है। और साधु सोच-सोचकर अच्छा-अच्छा कर रहा है। मगर दोनों सोचकर जी रहे हैं। दोनों व्यवस्था बांधकर जी रहे हैं। दोनों अपने चारों तरफ एक सीमा बांध लिये हैं, अपनी परिभाषा बना लिये हैं। संत दोनों से मुक्त है, न साधु है, न असाधु है; द्वंद्वातीत है। न पाप है, न पुण्य है वहां। न अच्छा है, न बुरा है वहां। वहां कोई लक्ष्य ही न रहा। वहां परमात्मा को पूरी छूट है, परमात्मा को बहने की पूरी व्यवस्था है। साधु नहर जैसा होता है, संत नदी जैसा।

नहर और नदी में फर्क ख्याल रख लेना।

नहर सीमित होती है; जब चाहो तब चलाओ, जैसा चाहो वैसा चलाओ; जितना पानी लाना हो, लाओ, न लाना हो, न लाओ। नहरों में बाढ़ें नहीं आतीं। और नहरों का रास्ता बंधा हुआ होता है। जैसे रेलगाड़ियां पटरियों पर डोलती हैं लोहे की, ऐसा साधु भी पटरियों पर दौड़ता है आचरण की। लेकिन संत मुक्त सरित-प्रवाह है। लेकिन वह मुक्त सरित-प्रवाह श्रद्धा पर खड़ा नहीं हो सकता, मानने पर खड़ा नहीं हो सकता, जानने पर ही खड़ा हो सकता है। उतनी ज़ोखिम सिर्फ मानकर कौन लेगा?

तो सीताराम, तुम्हारा प्रश्न अर्थपूर्ण है। तुम कहते हो, 'हम परमात्मा में ही हैं, ऐसा एक बार मानकर बस जो भाए किया जाए।' मानकर करोगे तो कभी तृप्ति नहीं होगी, बीच-बीच संदेह उठते रहेंगे कि जो मैं यह कर रहा हूं, ठीक कर रहा हूं? यह जो मैं कर रहा हूं, परमात्मा की मर्जी है? यह जो मैं कर रहा हूं, सच में परमात्मा ऐसा चाहेगा? यह तो मैं अपनी ही मर्जी कर रहा हूं परमात्मा के नाम से। यह मैं किसको धोखा दे रहा हूं! यह तो मैंने बड़ी तरकीब निकाल ली, करता हूं अपने मन की, कहता हूं कि परमात्मा करवा रहा है। माननेवाला आदमी मुक्त नहीं हो सकता जीवन में, बंधा रहेगा।

और तुम्हारी दूसरी बात भी सोचनीय है। तुमने कहा, 'सत्यबोध और आत्मानुभूति हेतु साधना से कार्य-कारण-संबंध नहीं बनता, फिर पद्धतिबद्ध साधन-ध्यान करने की क्या आवश्यकता है?' निश्चित ही कोई कार्य-कारण-संबंध नहीं है तुम्हारी साधना में और सत्य के अनुभव में। लेकिन, तुम्हारे जीवन को मान्यता से मुक्त करने में पद्धतिबद्ध ध्यान और साधन का बड़ा उपयोग है। सत्य को तुम्हारे पास लाने में कोई उपयोग नहीं है, लेकिन असत्य को तुमसे दूर करने में उपयोग है।

तुम ऐसा ही समझो, जैसे औषधि ... आयुर्वेद का बुनियादी सिद्धांत है कि औषधि के द्वारा हम किसी को स्वास्थ्य नहीं दे सकते। औषधि में और स्वास्थ्य में कोई कार्य-कारण का संबंध नहीं है। लेकिन औषधि से हम बीमारी दूर कर सकते हैं। और बीमारी दूर हो जाए तो स्वास्थ्य के जन्मने में सुविधा होती है। स्वास्थ्य तो परमात्मा देता है, कोई वैद्य नहीं दे सकता; नहीं तो आदमी मरे ही नहीं। वैद्य तो सिर्फ बीमारी दूर कर सकता है। ऐसा ही समझो कि एक झरना है, उसके रास्ते में एक चट्टान पड़ी है। हम चट्टान अलग कर सकते हैं। चट्टान अलग करने से झरना पैदा नहीं होता, कोई कार्य-कारण का संबंध नहीं है कि चट्टान अलग की तो झरना पैदा हो गया। चट्टान अलग करने से झरने के पैदा होने का क्या लेना-देना? कोई संबंध नहीं है। लेकिन चट्टान के अलग करने से झरना बह उठता है। चट्टान रहती अड़ी बीच में तो झरना रहता भी मगर बहता नहीं। पता ही न चलता किसी को।

तुम जब कुआं खोदते हो तो क्या तुम सोचते हो तुम्हारे खोदने से जमीन में पानी आ जाता है? पानी तो है ही। तुम्हारे खोदने से पानी के पैदा होने का कोई कार्य-कारण-संबंध नहीं है, लेकिन तुम्हारे खोदने से बीच का अवरोध हट जाता है,

मिट्टी-पत्थर, कूड़ा-करकट बीच से हट जाता है, पानी उपलब्ध हो जाता है। तुम्हारे और पानी के बीच में जो बाधा थी, वह हट जाती है। औषधि बीमारी को हटा देती है। और बीमारी के हटते ही स्वास्थ्य स्वभावतः खिल उठता है। स्वास्थ्य का अर्थ ही यही होता है।

हमारा शब्द बड़ा अद्भुत है।

स्वास्थ्य का अर्थ होता है : जो स्वयं से पैदा हो। जो स्व से जन्मे। कोई बाहर से ला नहीं सकता, स्वयं की ऊर्जा है, स्व-स्फूर्त है। स्वास्थ्य तो तुम्हारा स्वभाव है, बीमारी परभाव है। बीमारी बाहर से आती है, इसलिए बाहर की दवाई उसे दूर भी कर सकती है। जो बाहर से आती है, वह बाहर से ही दूर की जाएगी। और स्वास्थ्य तो भीतर से उठता है, बाहर से डाला नहीं जा सकता। स्वास्थ्य के इंजेक्शन कहीं मिलते हैं? कि गये डाक्टर के पास कि जरा लगा दो स्वास्थ्य का एक इंजेक्शन! हां. बीमारी को दूर करने के इंजेक्शन होते हैं, बीमारी को काटने के इंजेक्शन होते हैं। चिकित्साशास्त्र स्वास्थ्य नहीं देता है, केवल बीमारी को छीन लेता है। बीमारी के हटते ही तुम्हारी जो जीवनऊर्जा है, अवरुद्ध नहीं रह जाती, प्रवाहित हो उठती है।

ऐसा ही ध्यान है। ध्यान से सत्य नहीं मिलता। सत्य तो मिला ही हुआ है। इसलिए ध्यान से कोई कार्य-कारण का संबंध नहीं है। ध्यान बीज नहीं है सत्य का। कि ध्यान का बीज बोओगे तो सत्य की फसल काटोगे। ध्यान तो सिर्फ तुम्हारे भीतर जो विचारों का व्यर्थ ऊहापोह है, कूड़ा-करकट है, उसको काट जाएगा। ध्यान सिर्फ औषधि है। और इसीलिए, जब ध्यान परिपूर्ण हो जाता है, तो ध्यान भी छोड़ देना पड़ता है। क्योंकि जब स्वास्थ्य आ गया, फिर औषधि लेना खतरनाक है। फिर यह मत सोचना कि इस औषधि से इतना लाभ हुआ, अब इसको कैसे छोड़ें? हो गये स्वस्थ, वह ठीक, लेकिन हुए तो इसी औषधि के द्वारा, तो औषधि को तो लेना जारी रखेंगे! तो औषधि फिर बीमारी बन जाएगी। वही औषधि जो बीमार के लिए सहयोगी है, स्वस्थ के लिए घातक हो जाएगी।

इसलिए परम अवस्था जब आती, जब बीमारी कट गयी, विचार कट गये, ध्यान का काम पूरा हो गया। फिर ध्यान भी छूट जाता है। जैसे एक कांटा गड़ा है, दूसरे कांटे से निकाल लेते हैं, फिर दोनों कांटों को फेंक देते हैं। विचार का कांटा गड़ा है, ध्यान के कांटे से निकाल लिया, फिर दोनों कांटे फेंक दिये।

तुम यह मत सोचना कि बुद्ध जब ज्ञान को उपलब्ध हो गये, तब भी ध्यान करते हैं। फिर क्यों ध्यान करेंगे? फिर किसलिए ध्यान करेंगे? इसलिए बुद्ध ने कहा है : धर्म नाव जैसा है। उस पार पहुंच गये, फिर नाव छोड़ देना; फिर सिर पर ढोए हुए मत चलना, नहीं तो लोग मूढ़ कहेंगे। इसलिए जो धर्म को उपलब्ध

हो जाता है, उससे धर्म छूट जाता है।

ये बातें तुम्हें चौंकानेवाली मालूम पड़ेंगी।

धर्म को उपलब्ध होते ही धर्म छूट जाता है। फिर कोई जरूरत न रह गयी। नियमबद्ध, पद्धतिबद्ध साधन की प्रक्रियाएं--ध्यान की, योग की--मूल्यवान हैं। मूल्यवान हैं, क्योंकि तुम विचार से ग्रस्त हो। तुम्हारे विचार को काट देंगी। विचार के कटते ही तुम्हारे भीतर का सत्य आविर्भूत हो जाएगा।

लेकिन यह बात मानकर नहीं चलनी है।

तुम सोचते हो, ध्यान की क्या जरूरत? तुमने मेरी बात सुनी, तुम्हारा चित्त प्रसन्न हुआ होगा कि चलो झंझट मिटी! तो ध्यान में और सत्य में कोई कार्य-कारण का सम्बंध नहीं है। चलो, यह एक झंझट तो कटी, ध्यान करने से बचे! सीताराम इतनी आसानी से न बचोगे। अब तुमने सोचा, इतनी-सी ही बात मान लें कि हम परमात्मा ही हैं, फिर सब ठीक है। कुछ भी ठीक न होगा, सीताराम! बस जैसे तुम सीताराम हो, ऐसे ही सीताराम रहोगे! न राम मिलेंगे, न सीता मिलेंगी, कुछ न मिलेगा। मान लोगे। मानने के लिए तो यह नाम तुम्हें दे दिया है—सीताराम। इसका मतलब कि परमात्मा ही हो तुम।

पुराने दिनों में सारे नाम ही परमात्मा के दिये जाते थे। सभी नाम परमात्मा के थे। हर आदमी को हम परमात्मा का नाम देते थे--संकेत के रूप में। किसी को राम, किसी को कृष्ण, किसीको हरि, किसी को हरिहर, किसी को कुछ. . . हिन्दुओं, के, मुसलमानों के, सारे नाम परमात्मा के हैं। रहीम, रहमान--सब नाम परमात्मा के हैं।

पुराने दिनों में यह प्रक्रिया जानकर अख्तियार की गयी थी। ये मां-बाप यह कह रहे थे कि तुम्हें याद दिला रहे हैं कि तुम भी परमात्मा हो। मगर इससे होता क्या है? सभी के नाम परमात्मा के हैं; कोई बिष्णु है, कोई राम है, कोई कृष्ण है, मगर इससे होता क्या है? नाम ही रह जाता है, मान्यता ही रह गयी, रहते तो तुम वही हो जो तुम हो। तुम्हारी सारी बीमारियां वहीं-की-वहीं, कुछ अंतर नहीं पड़ता। ज्यादा-से-ज्यादा रामलीला के राम बन गये, और क्या होगा! रामलीला के राम से कुछ नहीं हल होता। धोखे के राम हो गये, झूठे राम हो गये—अभिनेता हो गये। लेकिन भीतर तो तुम जानते ही रहोगे कि तुम नहीं हो, यह तुम नहीं हो।

मानने से नहीं होगा। मानना तो अनुमान है। अनुमान से सत्य उपलब्ध नहीं होता।

मैंने सुना है, एक नामी शिकारी के पोते ने दीवाल पर उलटे टंगे हुए एक सांभर के सिर की ओर इशारा कर के अपने नन्हे सहपाठियों को बताया, दादा जी

ने इसे तब मारा था, जब यह शीर्षासन कर रहा था। अनुमान लगाया बेटे ने कि जरूर, जब शीर्षासन कर रहा होगा सांभर तब मारा होगा। तभी तो सिर उलटा लटका है।

तुम्हारे सारे अनुमान ऐसे ही हैं। तुम्हारे ईश्वर के संबंध में लगाये गये अनुमानों का कोई मूल्य नहीं है। अनुमान नहीं, बोध चाहिए, साक्षात्कार चाहिए—स्वयं का-निज का। उस निज के बोध के लिए मार्ग में जितनी बाधाएं हैं, हटानी पड़ेंगी।

और फिर दोहरा दूं, तुम्हारे करने से और उसके मिलने का कोई कार्य, कारण-सम्बंध नहीं है।

तीसरा प्रश्न : भगवान प्रवचन से पहले जब जगजीवन के पदों का पाठ किया गया तो मेरा दिल अकस्मात भर आया, आंखें डबडबा आयीं और पदों का पाठ चलता रहा तब तक मेरे आंसू आप ही आप बहते रहे। पाठ की समाप्ति हुई तो आंसू बंद हुए। मैं इन पदों का मतलब 'भगवान श्री' के प्रवचन के बाद समझा।

ऐसा क्यों हुआ ?

डॉ. सुमेर सिंह, एक समझ बुद्धि की है, एक समझ हृदय की। हृदय बुद्धि के बहुत पहले समझ लेता है। हृदय शब्दों को नहीं समझता, भावों को समझ लेता है। हृदय भाषा को नहीं समझता, लेकिन भाषा से भी कुछ गहरा होता है तो पकड़ लेता है। और ऐसे ही ये पद हैं। यही तो भेद है साधारण कवियों और ऋषियों का। साधारण कवियों की कविता में सिर्फ शब्द ही होते हैं, शब्दों का ही जमाव होता है—सुंदर जमाव, प्यारा जमाव ! मात्रा, छंद, व्याकरण, सब दृष्टियों से पूर्ण होता है। बस एक बात की कमी होती है—प्राण नहीं होते। ऋषि का अर्थ होता है, जिसकी वाणी में आत्मानुभव भी उंडेला हुआ है। फिर यह भी हो सकता है, शायद मात्रा और छंद पूरे न हों, व्याकरण भी ठीक न हो—कबीर को कोई बहुत व्याकरण आती भी नहीं; कहा ही है कि 'मसि कागद छूयौ नहीं,' कभी कागज और स्याही तो छुई नहीं—तो इसलिए कुछ भाषा का तो जमाव नहीं होगा। और अगर भाषा में कोई जमाव है, तो वह भाषा का नहीं है, भाव के जमाव की ही छाया है। भाव जम गये हैं।

तो जब कभी किसी ऋषि की वाणी गूंजी तुम्हारे पास और तुम अगर उस समय ग्राहक चित्त की दशा में होओ, तो आंखें डबडबा आएंगी, आंसू झरने लगेंगे। और तुम चौंकोगे भी। चौंकोगे अर्थात् तुम्हारा सिर चौंकेगा। चौंकोगे अर्थात् तुम्हारी बुद्धि चौंकेगी कि यह क्या हो रहा है, क्यों हो रहा है, क्यों मैं रो रहा हूं ? तुम थोड़ा लगेगा कि कुछ विक्षिप्त हुए जा रहे हो ! यह कैसी दीवानगी !

इसलिए सत्संग की बड़ी महिमा है। सत्संग का इतना ही अर्थ है : जहां ऐसे

लोग बैठे हों कि तुम रोओ अगर तो कोई यह न समझे कि तुम पागल हो गये हो। जहां तुम रोओ तो लोग तुम्हारे रोने को सम्मान दें। जहां तुम्हारी आंखों से आंसू गिरने लगें तो पास बैठे लोगों को ईर्ष्या हो, आदर हो; तुम्हारे आंसुओं का मूल्य हो, निंदा न हो। सत्संग का अर्थ होता है : जहां सभी पियक्कड़ इकट्ठे हों। जहां भाव की भाषा समझी जाती हो। भाषा के ही भाव नहीं, भाव की भाषा समझी जाती हो। और जहां भाव को समादर दिया जाता हो।

तुम खुले मन से बैठे थे . . . । जो भी यहां मेरे पास आए हैं, अगर सच में मेरे पास आना चाहते हैं तो एक ही उपाय है कि खुले मन से बैठें। तुम खुले मन से बैठे थे। तुम्हारे हृदय के द्वार खुले थे। तुमने कोई सुरक्षा न की थी। तुमने दरवाजे-ताले न लगाए थे, तुमने पहरेदार न बिठा रखे थे। तुमने तर्क को हटा दिया था एक तरफ। तुम निर्मल चित्त सत्संग के लिए आतुर थे। पकड़ गयी तरंग तुम्हें। बुद्धि समझे, इसके पहले हृदय समझ गया। बुद्धि समझे, इसके पहले हृदय भींग गया। और हृदय का भींगना ही असली है।

फिर बाद में जब मैंने तुम्हें अर्थ समझाए, तब तुम्हें अर्थ समझ में आए। सच तो यह है, अगर तुम्हारा हृदय न भींगा होता तो मैंने जो अर्थ समझाए, वे भी तुम्हें समझ में न आ सकते थे। तुम्हारा हृदय भींगा था, इसलिए बुद्धि ने अनुसरण किया।

इस बात को खूब समझ लो।

अगर बुद्धि मालिक हो, तो जीवन नरक हो जाता है। अगर हृदय मालिक हो और बुद्धि उसकी अनुचर, तो जीवन स्वर्ग हो जाता है। बुद्धि बड़ी उपयोगी है, मालिक की तरह नहीं, सेवक की तरह। बस इतना ही फर्क है। कुछ लोगों में बुद्धि मालिक हो गयी है और हृदय सेवक हो गया है। ये उनके दुर्दिन हैं। यह दुर्घटना हो गयी। यह तुम नाव पर सवार न रहे, नाव तुम पर सवार हो गयी। यह तुम घोड़े पर सवार न रहे, घोड़ा तुम पर सवार हो गया !

मैंने सुना है, एक छोटे बच्चे को उसका पिता रोज बगीचे में घुमाने ले जाता था और वहां सिकंदर महान की मूर्ति थी—घोड़े पर बैठा हुआ सिकंदर। बच्चा रोज उस मूर्ति के पास जाकर निश्चित खड़ा हो जाता था और बड़ा आनंदित होता था। बाप भी प्रसन्न था कि चलो अच्छा है, सिकंदर महान के प्रति इसके मन में इतना आदर है, कुछ बन कर रहेगा, कुछ होकर रहेगा ! पूत के लक्षण पालने में ! फिर गांव छोड़ना पड़ा, बदली हो गयी बाप की। तो बेटे ने कहा कि एक बार चलकर सिकंदर महान के दर्शन और कर आएं। बाप तो बहुत आनंदित हुआ। उसे लेकर फिर बगीचे गया। बेटे की आंखों से आंसू गिरने लगे—विदाई का क्षण। बाप ने पूछा : तू रोता है ? तेरा इतना प्रेम है सिकंदर महान से ? उसने कहा, हां, मुझे बहुत प्रेम है। सिर्फ एक सवाल मुझे पूछना है कि सिकंदर महान पर चढ़ा हुआ

कौन बैठा है ?

उसको तो घोड़े से लगाव था !

क्योंकि मैंने कभी आपसे पूछा नहीं, मगर अब जाने का दिन आ गया तो मैं यह पूछना चाहता हूं, सिकंदर महान तो गजब का है, मगर इसके ऊपर चढ़ा कौन बैठा है ? इसको कोई उतारता क्यों नहीं ? आखिर सिकंदर महान भी थक जाता होगा !

बच्चे की अलग दुनिया है। उसके लिए सिकंदर महान में दो कौड़ी का मूल्य है, घोड़े में जान है। बच्चे की नजर घोड़े पर है। बाप को तो घोड़ा कभी शायद दिखायी भी न पड़ा हो। वह सिकंदर महान को जो देख रहा है, उसको घोड़ा कहां दिखायी पड़े ?

जीवन में दुर्घटना हो गयी तुम्हारे, अगर तुम्हारी बुद्धि तुम पर सवार हो गयी। यही पंडित का दुर्भाग्य है। पापी भी पहुंच जाते हैं परमात्मा तक, पंडित पहुंचते हैं ऐसा कभी सुना नहीं। हृदय सवार हो तो बुद्धि बड़ी सुंदर, बड़ी उपयोगी, बड़ी बहुमूल्य है।

ऐसा ही हुआ, डॉ. सुमेर सिंह ! भाव पहले नाच उठा। तरंग पहले तुम्हारे हृदय में चली गयी। गीत तुम्हारे प्राणों में गूंज गया। तुम गीले हो गये; तुम भीग गये, नहा गये। और तभी तुम मैंने जो अर्थ समझाया, वह समझ पाए। क्योंकि भाव अब तैयार था, अब अर्थ बड़े अभिव्यंजक हो जाएंगे।

इसलिए यहां जो मुझे सुननेवाले लोग हैं, दो तरह के लोग हैं। वे, जो पहले भाव को भिंगाते हैं। वही शिष्यत्व का अर्थ है। भाव भींग जाए तो तुम शिष्य हो गये। अगर भाव न भींगे, सिर्फ बुद्धि से समझो तो तुम विद्यार्थी हो, शिष्य नहीं। मुझसे लोग आकर पूछते हैं, पत्र लिखते हैं, कि हम नये-नये आए हैं, हमें आगे बैठने दिया जाए। जो लोग सदा आगे बैठते हैं, वे अगर पीछे बैठें तो कुछ हर्जा है ? हम नये आए हैं, हम बड़े दूर से आए हैं ! हम तो थोड़े दिन के लिए आए हैं, जो अन्तेवासी हैं आश्रम के, वे तो सदा ही सामने बैठते हैं, हमें क्यों न सामने बैठने दिया जाए ? तुम अभी विद्यार्थी हो। तुम्हें पीछे भी बैठने दिया जाता है तो तुम अनुग्रह मानो ! सामने तो मैं उन्हीं को बिठालता हूं जिनके भाव भींगते हैं।

इसलिए तुम्हें यह भी चमत्कार दिखायी पड़ेगा कि बहुत लोग, जैसे मैं अभी हिंदी में बोल रहा हूं, बहुत-से लोग आगे बैठे हैं जो हिंदी जानते ही नहीं। मगर उसकी कोई चिंता नहीं है, उनके भाव भींगे हैं ! हिन्दी न जानते हों, मुझे जानते हैं। और वह जानना ज्यादा मूल्यवान है। भाषा में क्या रखा है ? थोड़ी देर शब्द मन में गूंजते रहेंगे और विलीन हो जाएंगे। मगर अगर हृदय आंदोलित हुआ, अगर हृदय पर छाप पड़ी ! क्या मैंने कहा है, इसका सवाल नहीं है बड़ा, कहां से कहा है, इसका

सवाल है बड़ा। इसलिए जो संन्यासी की तरह यहां सुनता है, उसकी उपलब्धि बहुत हैं, अनंत गुना है। और जो ऐसे ही जिज्ञासु की तरह सुनता है, उसकी उपलब्धि उतनी नहीं है। तुम्हें आगे नहीं बिठाया जा सकता।

कभी-कभी ऐसा हो जाता है, कोई एकाध आदमी भी आगे ऐसा बैठ जाता है जिसका भाव नहीं भींगता, तो उसके कारण व्यवधान पड़ता है। उसके कारण एक खाली जगह रह जाती है, एक रिक्त स्थान रह जाता है। और रिक्त स्थान रहता तो भी बेहतर था, उसकी मौजूदगी, उसकी तरंग उसके आसपास भी विघ्न और बाधा खड़ी करते हैं।

सुमेर सिंह, तुम सौभाग्यशाली हो कि तुम्हारा भाव भींगा, पीछे तुम्हें अर्थ समझ में आया। पहले डूबो, फिर समझ। पहले रंग जाओ, फिर समझ। पहले हृदय में उतर जाने दो बातों को, फिर बुद्धि अपने-आप हिसाब-किताब लगा लेगी। जो लोग कहते हैं, पहले हम बुद्धि से हिसाब-किताब लगाएंगे, और फिर हृदय को डुबाएंगे, उनका हृदय कभी नहीं डूबता है, क्योंकि बुद्धि का हिसाब-किताब कभी पूरा नहीं होता। कभी पूरा नहीं होता ! बुद्धि कभी निष्कर्ष तक आती ही नहीं, बुद्धि के पास निष्कर्ष होते ही नहीं। बुद्धि निष्कर्ष लेना जानती ही नहीं। बुद्धि निष्कर्ष ले ही नहीं सकती, क्योंकि बुद्धि का स्वभाव संदेह है। हृदय का स्वभाव श्रद्धा है। बुद्धि संदेह कर सकती है, विचार कर सकती है, निष्कर्ष नहीं ले सकती। हृदय विचार नहीं कर सकता, संदेह नहीं कर सकता, छलांग लेता है—और निष्कर्ष आ जाता है। ये दोनों प्रक्रियाएं बड़ी भिन्न हैं। इसलिए बुद्धिमान का और भावुक का वार्तालाप भी नहीं हो सकता। वार्तालाप में ही दुविधा हो जाती है, विवाद हो जाता है। उपाय ही नहीं है।

अच्छा हुआ ! जब भाव से इतनी मस्ती आयी, तो मुझे समझ भी सके। और अब भाव और समझ, दोनों के मिलन से समृद्धि खूब बढ़ेगी !

> न ताबे-मस्ती न होशे-हस्ती कि शुक्रे-ने'मत अदा करेंगे
> ख़िज़ां में जब है ये अपना आलम, बहार आयी तो क्या करेंगे

'न ताबे-मस्ती न होशे-हस्ती', . . . होश भी नहीं है अपना, . . . 'कि शुक्रे-ने'मत अदा करेंगे', कि तेरे अनंत-अनंत प्रसादों का धन्यवाद भी दे सकें परमात्मा। कोई उपाय नहीं है, होश ही नहीं है। और जब पतझड़ में यह हालत है. . .'ख़िज़ां में जब है ये अपना आलम, बहार आयी तो क्या करेंगे'? जब भाव से ही इतना हो गया, आंसू बहे, तो जब समझ भी आ जाएगी, समझ और भाव दोनों मिलेंगे, जब हृदय और बुद्धि का मेल होता है, तो तुम सम्राट हो जाते हो। उसी मेल का नाम सम्राट हो जाना है। फिर तुम्हारे पास कुछ भी न हो, कोई फिक्र नहीं, लेकिन तुम सम्राट हो।

बुद्धि और हृदय जिसका मेल खा जाता है, समन्वय हो जाता है, जीवन का

सबसे बड़ा द्वंद्व समाप्त हुआ। आ गयी बहार, वसंत आ गया ! अब फूल-ही-फूल हैं, अब गीत-ही-गीत हैं।

यह जो घटा है आज, यह रोज-रोज घटता रहे, इसकी प्रार्थना करना। यह जो घटा है, इसके लिए धन्यवाद देना प्रभु को। अनायास घटा है आज, ऐसा न हो कि तुम आगे चूको ! जो आज अनायास घटा है, इसे धीरे-धीरे राह देना, ताकि जोर से घटे, और-और घटे। धीरे-धीरे यह तुम्हारा स्वभाव बन जाए।

और डरना मत। रोने से बड़ा डर लगता है, क्योंकि सदियों से हमें सिखाया गया है : रोना मत। आंखों को हमारे पत्थर बनाने की कोशिश की गयी है। और आंखें पत्थर हो गयी हैं अनंत-अनंत लोगों की। आंसू आते ही नहीं। आंखें सूख गयी हैं, वह हृदय के सूख जाने का सबूत है। और जब आंखों में आंसू नहीं आते, तो जीवन भी सूख जाएगा; रसधार न बहेगी। और परमात्मा तो रस है, प्रेम-रस, कहा जगजीवन ने। रसो वै सः। वह तो रसरूप है। तुम्हारे भीतर रस बहे तो ही उस परम रस से संबंध हो सके।

चखो इस रस को, डूबो इसमें--सब लोकलाज छोड़। कहा जगजीवन ने · सब लोकलाज मिट जाती है, सब मान-मर्यादा मिट जाती है। पागल होने की हिम्मत चाहिए, तो ही कोई परमात्मा को पाने में सफल हो पाता है।

चौथा प्रश्न : उठूं ऊपर या मनुहार करूं
पता नहीं पाता हूं
जितना मुट्ठी को कसता हूं
दूर चला जाता हूं।
क्या करूं प्रभु ? मार्ग दीजिए।

विशेष ! मुट्ठी को जितना ही बांधोगे, उतना ही चूकोगे। आकाश को मुट्ठी में नहीं बांधा जा सकता। आकाश को पाना हो तो मुट्ठी खुली रखनी पड़ती है। खुले हाथ में तो आकाश होता है, बंद हाथ में समाप्त हो जाता है।

संसार और परमात्मा के नियम विपरीत हैं। गणित अलग-अलग है। संसार में मुट्ठी खोलो कि गयी संपदा। संसार में मुट्ठी बांधकर रखनी पड़ती है, तो ही संपदा बच सकती है। क्योंकि यहां संपदा है : छीना--झपटी। यहां संपदा तुम्हारी नहीं है किसी की नहीं है। यहां संपदा छीना-झपटी है, शोषण है। यहां तो मुट्ठी बांध कर रखनी होगी, जोर से बांधकर रखनी होगी। और तुम मुट्ठी भी बांधे रहो तब भी दूसरे तुम्हारी मुट्ठी खोलने की कोशिश में लगे रहते हैं। तुम कुर्सी पर बैठ गये, दूसरे तुम्हें कुर्सी से धक्का देने में लगे रहते हैं। उनको भी वहीं बैठना है, उनको कुर्सी पर बैठना है। संसार की संपदा सीमित है; इसलिए बड़ा संघर्ष है। तुम्हारे

पास है तो मेरे पास नहीं हो सकती, मेरे पास है तो तुम्हारे पास नहीं हो सकती। न्यून है संसार की संपदा। इसलिए वहां तो प्रतियोगिता रहेगी, गलाघोंट प्रतियोगिता रहेगी।

लेकिन परमात्मा तो असीम है। मुझे परमात्मा मिल जाए, इससे तुम्हारे मिलने में कोई बाधा नहीं पड़ती। कि तुम्हें अब कैसे मिलेगा, क्योंकि मुझे मिल गया है। कि तुम्हें मिल गया है तो अब तुम्हारे पड़ोसी को कैसे मिलेगा ? परमात्मा असीम है। सच तो यह है, मुझे मिल गया इसलिए तुम्हें आसानी से मिल सकेगा। अगर तुम्हारे पड़ोसी को भी मिल गया, तो तुम्हें और भी आसानी से मिल सकेगा। जितने ज्यादा लोगों को मिल जाए, उतनी सुविधा तुम्हारे भी मिलने की हो जाएगी। बुद्ध को मिला, इसलिए तुम्हारा छिना नहीं, बुद्ध को मिला, इसलिए तुम्हें याद है कि हमें भी खोजना है। अगर बुद्ध को मिल सका तो हमें भी मिल सकता है, यह आश्वासन पैदा होता है।

तो परमात्मा कोई न्यून संपत्ति नहीं है। इसलिए अर्थशास्त्र का जो नियम जगत में लागू होता है, वह परमात्मा में लागू नहीं होता। उससे उल्टी दशा है वहां। वहां मुट्ठी बांधने की जरूरत नहीं है। क्योंकि परमात्मा ऐसा धन है जो तुम्हारा है ही, मुट्ठी बांधने की कोई जरूरत नहीं। न उसे कोई चुरा सकता है, न कोई छीन सकता है। कृष्ण ने कहा है : न उसे शस्त्र छेद सकते हैं, न आग उसे जला सकती है। मृत्यु भी उस संपदा का बाल बांका न कर सकेगी। मुट्ठी क्यों बांधनी है ? मुट्ठी बांधने में सांसारिक भ्रांति काम कर रही है। परमात्मा को तिजोड़ी में बंद करके थोड़े ही रखना, संसार में किसी चीज को बांटो तो कम हो जाती है, परमात्मा के जगत में किसी चीज को रोको तो कम हो जाती है, बांटो तो बढ़ती है। जैसे प्रेम जितना बांटो उतना बढ़ता है। इसलिए प्रेम परमात्मा का सूत्र है। परमात्मा जिसे मिल जाता है उसे बांटना ही होता है। वह जितना बांटता है, उतना ज्यादा पाता है।

फिर मुट्ठी बांधने की आकांक्षा अहंकार की आकांक्षा है। मेरा हो ! मुट्ठी किसकी है ? मुट्ठी यानी अहंकार--मेरा हो ! परमात्मा किसी का नहीं हो सकता। जब मैं-भाव मिटता है, तब परमात्मा प्रगट होता है।

तो विशेष, तुम ठीक कहते हो :
'उठूं ऊपर या मनुहार करूं
पता नहीं पाता हूं'

न तो ऊपर उठने से मिलेगा, क्योंकि ऊपर उठने की आकांक्षा भी अहंकार की आकांक्षा है। ख्याल करना, अहंकार ऊपर उठना चाहता है, श्रेष्ठ होना चाहता है। अहंकार महत्त्वाकांक्षी है, बड़े-से-बड़े पद पर होना चाहता है--और ऊपर, और ऊपर... । ऊपर उठने से परमात्मा नहीं मिलेगा। और जो लोग आकाश की तरफ

देखते हैं परमात्मा को ख्याल करके, ख्याल रखना, वे अहंकार की ही भाषा बोल रहे हैं—ऊपर। परमात्मा भीतर है, ऊपर नहीं। ऊपर उठने से नहीं मिलेगा। चले जाओ उठते आकाश में, नहीं मिलेगा।

लोग सोचते थे पहले कि कैलाश पर्वत पर है। फिर आदमी कैलाश पर्वत पर पहुंच गया, वहां नहीं पाया। फिर सोचने लगे चांद पर है; अब आदमी चांद पर पहुंच गया, वहां भी नहीं पाया। तुम्हें मालूम है रूस में उन्होंने अंतरिक्ष-यात्राओं से आए हुए पत्थरों इत्यादि का संग्रहालय बनाया है। उस पर जो वचन खोदा है संग्रहालय पर, वह यही है कि 'चांद पर भी खोज लिया गया, ईश्वर वहां भी नहीं है।'

यूरी गागारिन ने लिखा है, जब वह अपने गांव पहुंचा, तो एक बूढ़ी स्त्री, होगी कोई अस्सी-पच्चासी साल की, उसने उसे पकड़ लिया और कहा : गागारिन, सच में तू चांद पर होकर आया है? परमात्मा के दर्शन हुए? गागारिन ने कहा कि नहीं, कोई परमात्मा नहीं है। वह बूढ़ी हंसने लगी, उसने कहा : तू मुझे धोखा मत दे! या तो तू चांद पर नहीं गया, और या फिर मजाक कर रहा है। बूढ़े आदमियों से मजाक नहीं करना चाहिए। सच-सच बता! यूरी गागारिन ने लिखा है कि दो ही विकल्प थे। या तो मैं गया ही नहीं हूं चांद पर; और अगर गया हूं तो झूठ बोल रहा हूं। क्योंकि परमात्मा चांद पर है। अब चांद पर आदमी पहुंच गया, परमात्मा को वहां से भी हटना पड़ेगा। हट ही गया। अब रखो कहीं भी उसको, वहां भी आदमी पहुंच जाएगा। तुम ऊपर-से-ऊपर रखते हो और परमात्मा तुम्हारे भीतर है। भीतर-से-भीतर।

ऊपर की खोज, ऊपर उठने की खोज अहंकार की खोज है।

'उठूं ऊपर या मनुहार करूं'

और मनुहार भी, स्तुति भी अहंकार का ही उपाय है। चलो झुका जाता हूं, तुम्हारे चरणों में सिर रखे देता हूं। देखो मेरा त्याग, देखो मेरी विनम्रता! मेरा झुकना देखो, मेरा समर्पण देखो! यह भी अहंकार की ही प्रक्रिया है।

अहंकार के दो ढंग हैं। पहले झुकाने की कोशिश करता है दूसरे को। सारे संसार में यह कोशिश चलती है कि झुका लो दूसरे को, किसी तरह झुका लो दूसरे को। झुकाना अहंकार की भाषा है। फिर अहंकार सोचता है, परमात्मा को तो झुकाया नहीं जा सकता, इसलिए हम झुक जाएं। मगर भाषा वही-की-वही है। शीर्षासन कर रही है वही भाषा, लेकिन वही-की-वही है—हम झुक जाएं। न तो परमात्मा झुकाने से मिलता है, न झुकने का सवाल है। क्योंकि झुकने में भी अहंकार मौजूद है। मिटने से मिलता है, झुकने से नहीं। मिटने से! बाल भी नहीं बचना चाहिए तुम्हारा, अहंकार का भाव भी नहीं बचना चाहिए। यह भी अहंकार का नया परिवेश है कि

देखो, मैं झुक गया! देखो, मैं ना-कुछ हूं! यह भी दावा अहंकार का है। यह बड़ा शुभ दावा मालूम होता है। यह साधु का दावा है कि देखो, मैं बिलकुल ना-कुछ, तुम्हारे पैर की धूल।

तुमने कभी देखा, कोई आदमी कहे कि मैं ना-कुछ, मैं आपके पैर की धूल और तुम कह दो कि भई, हमें तो पहले ही से मालूम। हम तो पहले ही से कहते थे कि तुम हो ही पैर की धूल, कुछ भी नहीं! वह आदमी तुम्हें कभी क्षमा नहीं करेगा। कभी क्षमा नहीं करेगा! उसका मतलब यह थोड़े ही था कि तुम मान ही लो कि मैं तुम्हारे पैर की धूल हूं। वह तो यह कह रहा था कि देखो मुझे, दुनिया अहंकार से भरी है, एक मैं हूं—निर-अहंकारी! जरा देखो मुझे कि तुम्हारे जैसे दो कौड़ी के आदमी के पैर की धूल बता रहा हूं अपने को! जरा मेरी गारिमा समझो। और तुमने कह दिया कि भई, तुम नाहक मेहनत कर रहे हो, हमें तो पता ही है, तुम हो ही पैर की धूल।

मैंने सुना है, एक राजनेता एक मनोवैज्ञानिक के पास गया और कहा कि मैं हीनता की ग्रंथि से पीड़ित हूं, 'इन्फीरिआरिटी कांप्लेक्स' से पीड़ित हूं। मनोवैज्ञानिक ने विश्लेषण किया, महीने-दो महीने चिकित्सा की, सोच-विचार किया। फिर एक दिन उसने कहा कि तुम बिलकुल निश्चिंत हो जाओ, तुम्हें चिंता का कारण नहीं है। राजनेता बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने कहा कि क्या छुटकारा हो गया मेरा झंझट से? मनोवैज्ञानिक ने कहा, मुझे गलत मत समझो, सच बात यह है कि सारी खोजबीन से यह पता चला कि तुम हीनता की ग्रंथि से पीड़ित नहीं हो, तुम हीन हो ही। यह कोई बीमारी नहीं है। इसका कोई इलाज भी नहीं है। क्योंकि तुम यह हो ही। तुम शुद्ध, साकार हीनता हो, और कुछ भी नहीं।

अब यह राजनेता क्षमा नहीं करेगा इस मनोवैज्ञानिक को। हीनता की ग्रंथि से लोग पीड़ित होते हैं। वे यह कह रहे हैं कि हम हीन तो नहीं हैं, मगर यह हीनता की ग्रंथि हम पर सवार है। इससे हमें छुटकारा दिला दो। हैं तो हम बड़े श्रेष्ठ, मगर हमें यह भ्रांति सवार हो गयी है कि हम श्रेष्ठ नहीं हैं। यह बीमारी छीन लो, हमें हमारी श्रेष्ठता वापिस कर दो।

नहीं, ऊपर उठना, मनुहार करना, इनसे कुछ भी न होगा, पता तुम्हें मिलेगा नहीं। और परमात्मा का कोई पता थोड़े ही है! और जितने पते दिये गये हैं, कोई काम न आएंगे। जाननेवालों ने कोई पता नहीं दिया है। जाननेवालों ने कहा : लापता है; बेमुकाम है; उसकी कोई जगह नहीं है। हां, न जाननेवालों ने पता पूछनेवालों का खूब शोषण कर लिया है। तो उन्होंने बना दिया काबा कि यहां है, खड़ी कर दी काशी की यहां है। यह रहा मंदिर, चढ़ाओ अपनी पूजा और अर्चना यहां।

वहां सिर्फ पंडित और पुजारी बसे हैं।

नानक काबा गये। रात सोए तो बड़ी सनसनी फैल गयी, क्योंकि वह काबा के पत्थर की तरफ पैर करके सो गये। संत ही ऐसा कर सकता है। यह कोई साधु की हिम्मत नहीं है। साधु तो चूमते हैं काबा के पत्थर को। अब देखते हो मूढ़ता! मुहम्मद ने कहा कि उसकी कोई प्रतिमा मत बनाना। और काबा का पत्थर जितना चूमा गया है, दुनिया का कोई पत्थर नहीं चूमा गया! यह प्रतिमा बन गयी। और क्या प्रतिमा का अर्थ होता है?

लेकिन नानक पैर करके सो गये। पुजारी आए और वे नानक से बहुत नाराज हुए, और कहा: हमने तो सुना था कि तुम एक फकीर हो, एक पहुंचे हुए संत हो, यह क्या मामला है—यह क्या व्यवहार?! तुम्हें इतनी भी तमीज नहीं? यह बदतमीजी है कि तुम पवित्र पत्थर की ओर पैर कर के सो रहे हो। परमात्मा का यह अपमान है। तो नानक ने कहा: मेरे पैर उस ओर कर दो जहां परमात्मा न हो। मैं खुद मुश्किल में हूं कि पैर करूं तो करूं कहां? सोऊं तो न! पैर कहां करूं? तुम पैर कर दो मेरे जहां परमात्मा न हो।

बात तो इतनी ही है, लेकिन कहानी लिखनेवालों ने थोड़ी और खींची है। वह खींचना भी सार्थक है, व्यर्थ नहीं है।

पुजारियों ने, कहते हैं, नानक के पैर दूसरी दिशा में करने की कोशिश की, लेकिन जिस दिशा में पैर किये, वहीं काबा का पत्थर हट गया। ऐसा हुआ हो, ऐसा मैं नहीं मानता। ऐसा हो सकता है, ऐसा भी नहीं मैं मानता। लेकिन बात सार्थक है। बात इतनी ही है कि कहीं भी पैर करो, परमात्मा तो वहीं है। काबा का पत्थर हटे कि न हटे, सब तरफ वही विराजमान है। उसका पता कैसे हो सकता है? पता उनका हो सकता है जिनकी सीमा है। हां, तुम्हारा पता हो सकता है। उसका पता कैसे हो सकता है?

मैंने सुना, एक अजनबी बहुत देर से किसी का घर ढूंढ रहा था। मुल्ला नसरुद्दीन उसे एक झाड़ के नीचे बैठा मिल गया। तो उसने मुल्ला से पूछा कि बड़े मियां, ये मेनकाबाई कहां रहती हैं? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, वे क्या करती हैं? अजनबी ने कहा: 'डान्सर' हैं, नर्तकी हैं। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा; उनकी बड़ी-बड़ी आंखें हैं? अजनबी ने उत्साह से कहा, हां-हां वही! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा खूबसूरत हैं और नाभि के नीचे साड़ी बांधती हैं? अजनबी ने खुशी से कहा कि बिल्कुल ठीक, वही, वही! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, लहराकर चलती हैं! लंबे-लंबे बाल हैं और . . . अजनबी ने बेचैनी से कहा, अरे बड़े मियां, बिलकुल ठीक! जल्दी बताओ न कहां रहती हैं? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, मुझे क्या पता?

अजनबी बहुत झुंझलाया, उसने कहा कि इतना कुछ तुम्हें मालूम है और य

पता नहीं कि कहां रहती हैं? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, जी नहीं, सभी 'डान्सर' ऐसी ही होती हैं।

परमात्मा का क्या पता हो सकता है? परमात्मा कोई 'डान्सर' तो नहीं। परमात्मा का कोई चेहरा तो नहीं, कोई रंग-रूप तो नहीं। परमात्मा की कोई दिशा तो नहीं, कोई स्थान तो नहीं। तो तुम कितने ही ऊपर उड़ो और कितनी ही मनुहार करो, तुम पता नहीं पाओगे। अक्सर ऐसा हो जाता है कि जब बहुत खोज से पता नहीं मिलता तो आदमी सोच लेता है—परमात्मा होगा ही नहीं। यह सबसे बड़ा खतरा है खोज का। क्योंकि खोजी जब थक जाता है, हताश हो जाता है... कब तक खींचता रहे खोज को?

यह दुनिया में जो इतने नास्तिक हुए हैं, इन पर तुम नाराज मत होना। ये भी खोजी हैं। ये भी पता खोजने निकले थे और पता नहीं मिला। आखिर एक सीमा होती है धैर्य की! कब तक माने चले जाएं उसको जिसका कोई पता नहीं मिलता? एक घड़ी तो आदमी को तय करना पड़ता है कि भाई, होगा ही नहीं। इतना खोजा और नहीं मिलता, तो अब हम कब तक अपना जीवन गंवाते रहें? कुछ और भी तो करना है।

लेकिन कठिनाई यह नहीं है कि परमात्मा नहीं है। परमात्मा तो है, तुम्हारी खोज की दिशा भ्रांत है। वह बाहर नहीं है, वह ऊपर नहीं, कल्पना की उड़ानों से नहीं मिलेगा। और न ही तुम्हारी तथाकथित स्तुतियों और मनुहार से मिलेगा। जरा सोचो तो कि तुम प्रशंसा कर के क्या उसको समझा पाओगे? प्रशंसा तुम उनकी करते हो जिन्हें अहंकार में रस है। वे प्रसन्न हो जाते हैं। किसी राजनेता की तुम प्रशंसा करो, वह खुश हो जाता है। तो लाइसेंस इत्यादि दिलवा देगा। लड़के को नौकरी लगवा देगा। वह खुश हो जाता है, क्योंकि चाहता है कि कोई मेरे अहंकार को बढ़ाए, चार फूल लगा दे, मेरे अहंकार में चार-चांद लगा दे।

लेकिन परमात्मा के तो सारे चांद लगे ही हुए हैं, तुम क्या लगाओगे? सारे चांद उसके हैं, सारे तारे उसके हैं। सारे फूल उसके लिए चढ़े ही हैं और सारे गीत उसी की प्रार्थना में उठ रहे हैं। सागर में उठती हुई लहरें उसी के चरणों में समर्पित हैं। आकाश में घूमते तारे उसी का परिभ्रमण कर रहे हैं, उसी की परिक्रमा लगा रहे हैं। हिमालय के उत्तुंग शिखर उसकी ही स्तुति में खड़े हैं, उसी का ध्यान कर रहे हैं। नदियों का कलकल नाद आराधना नहीं तो और क्या है! यह सारा अस्तित्व ध्यान में लीन है। छोटे-से घास के तिनके से लेकर महासूर्यों तक उसकी ही तो पूजा चल रही है, अहर्निश। तुम इसमें क्या जोड़ोगे विशेष? तुम क्या विशेष इसमें जोड़ सकोगे? तुम्हारे शब्द तुतलाते से ही होंगे। बड़े-बड़े ज्ञानियों के भी शब्द तुतलाहट से ज्यादा नहीं हैं। हम क्या कहेंगे? हम कैसे उसका मनुहार करें, कैसे

हम उसे राजी करें? हमारा सब कहा छोटा पड़ेगा। हमारा सब कहा व्यर्थ होगा।

चुप हो जाओ! कहना छोड़ो, कल्पना में उड़ना छोड़ो। ऊपर मत खोजो उसे, बाहर मत खोजो उसे। इससे तो उसे कुछ लाभ नहीं होगा। वह कोई सम्राट तो नहीं है कि स्तुतियों से प्रसन्न हो! और न ही तुम्हारे इनकार से अप्रसन्न होता है। वह कोई व्यक्ति तो नहीं है कि तुम उसे चोट कर सको। या, उसके पैर दबा सको और उसे प्रसन्न कर सको।

'जितना मुट्ठी को कसता हूं
दूर चला जाता हूं'

समझो इससे! कि अब मुट्ठी नहीं कसनी है। उसे पाने का ढंग मुट्ठी खोलना है। उसे खोजने का ढंग खोजना नहीं है, सारी खोज छोड़ देना है। आंख बंद कर के भीतर बैठ रहना है। दौड़ कर नहीं पाया जाता है वह, बैठकर पाया जाता है। संसार में सब चीजें दौड़कर पायी जाती हैं, परमात्मा दौड़ छोड़कर पाया जाता है। संसार में सब चीजें विचार कर के पायी जाती हैं, परमात्मा निर्विचार से पाया जाता है।

संसार को पाने का ढंग और उसको पाने का ढंग बिलकुल विपरीत है। अगर तुम इन्हीं ढंगों का उपयोग करते गये तो एक-न-एक दिन नास्तिक हो जाओगे। इसी तरह दुनिया में लोग नास्तिक हैं। और अगर नास्तिक न हुए तो और भी बड़ा खतरा है, झूठे आस्तिक हो जाओगे। मान ही लोगे कि चलो छोड़ो, होगा। अपनी तो सामर्थ्य नहीं है, अपने को तो मिलता नहीं है, लेकिन जो कहते हैं, ठीक ही कहते होंगे—होगा ही। मान लो, झंझट मिटाओ।

अधिकतर लोग परमात्मा को माने बैठे हैं, क्योंकि झंझट में नहीं पड़ना चाहते है। कौन झंझट करे? और कौन इस व्यर्थ के विवाद में उलझे? यह अंतहीन विवाद है, कौन पार पाया है, चलो मान ही लो। टालने के लिए लोग मान लेते हैं। अक्सर सज्जनतावश लोग मान लेते हैं कि हां-हां, ईश्वर है; जरूर है। इसका मतलब है कि बस, अब बातचीत बंद करो। अब ईश्वर के संबंध में और क्या कहने की जरूरत है, जब हम मान ही लिये तो अब तो कुछ विवाद करना नहीं है। है भाई, है--वह यह कह रहे हैं। जरूर है। अब कुछ और बात करो! अब कुछ काम की बात करो!

अच्छे, सुसंस्कृत लोग ईश्वर की चर्चा नहीं करते। मान ही लेते हैं। रविवार को हो भी आते हैं चर्च में, कभी जरूरत पड़ती है सत्यनारायण की कथा भी करवा लेते हैं—खुद नहीं सुनते, मुहल्लेवालों को लाउडस्पीकर लगवाकर सुनवा देते हैं—कभी यज्ञ-हवन भी करवा देते हैं, कि झंझट खत्म करो! हो तो ठीक है, न हो तो ठीक, न हो तो क्या बिगड़ गया? हो तो कहने को रह जाएगा, कभी आमना-

सामना हो जाएगा तो कह देंगे: हवन करवाया था।

ऐसे एक सज्जन मरे। मानते तो नहीं थे कि परमात्मा है, लेकिन होशियार थे, चालबाज थे। तो एक बार हवन करवा लिया था। जब देखा, स्वर्ग में और परमात्मा से साक्षात्कार हुआ तो बहुत घबड़ाए। सोचने लगे कि दो-चार दफे और करवा लिया होता तो अच्छा था। सत्यनारायण की कथा भी करवा ली होती तो अच्छा था। यह तो बड़ी झंझट हो गयी। कभी चोटी भी नहीं रखी, जनेऊ भी नहीं पहना, अब झंझट मे पड़े! अब यह मुसीबत आयी! जिंदगी यूं ही गंवा दी! लेकिन फिर भी इतना भरोसा था कि एक दफा करवाया है कम-से-कम, उसका तो कुछ फल मिलने ही वाला है। परमात्मा ने आंख उठायी और पूछा कि कहो, कसे आए? कभी कोई धर्म किया? डरते-डरते कहा: हां किया तो; ज्यादा तो नहीं कर पाया, क्षमा करना आप, एक दफा हवन करवाया था। कितना खर्च हुआ था? तीन रुपये खर्च हुए थे। सस्ता हवन! ऐसे ही मुहल्ले-पड़ोस के सस्ते पंडित-पुरोहित ने करवा दिया होगा! ज्यादा तो भरोसा था भी नहीं, इससे ज्यादा खर्च कर भी नहीं सकते थे। कामचलाऊ हवन।

ईश्वर थोड़ा चिंतित हो गया, आंख बंद करके सोचने लगा कि क्या करें? अपने सहयोगी से पूछा कि भाई, क्या करें, इन सज्जन का क्या करें? सहयोगी ने कहा कि तीन रुपये इनको वापिस दें और नरक भेजें! और क्या करेंगे? इनको तीन रुपये लौटा दें, ब्याज चाहिए हो तो ब्याज दे दें, और नरक भेजें।

आदमी या तो नास्तिक हो जाता है, जोकि ज्यादा ईमानदारी की बात है। और मैं पसंद करूंगा कि अगर परमात्मा न मिलता हो तो बेहतर है नास्तिक होना। कम-से-कम ईमान तो होगा, सच्चाई तो होगी, कि मुझे नहीं मिला, मैं कैसे मानूं? और जिसको इतनी ईमानदारी हो कि मुझे नहीं मिला, कैसे मानूं, उसकी खोज बंद नहीं होगी। वह खोजता ही रहेगा, इधर से, उधर से, आज नहीं कल, कल नहीं परसों, उसकी खोज जारी रहेगी।

दुनिया में सबसे बड़ा खतरा होता है झूठे आस्तिक को। वह मान ही लेता है, इसलिए खोज तो बिलकुल ही बंद हो गयी, अब तो कोई उपाय ही न रहा, वह कहता है: परमात्मा है ही, अब खोजना क्या है? मंदिर हो आते, यज्ञ कर लेते, हवन कर लेते, रामायण पढ़ लेते, और क्या चाहिए?

दुनिया में सबसे बड़ा दुर्भाग्य झूठा आस्तिक है। झूठे आस्तिक से सच्चा नास्तिक बेहतर है। कम-से-कम सच्चा तो है। और सच्ची नास्तिकता एक दिन सच्ची आस्तिकता में ले जाती है। क्योंकि मनुष्य का स्वभाव ऐसा है कि 'नहीं' पर नहीं टिक सकता।

इसको तुम समझ लेना।

मनुष्य 'नहीं' में नहीं जी सकता। 'नहीं' में अड़चन बनी रहती है। 'हां'

में ही जीवन खिलता है। 'नहीं' में सिकुड़ जाता है। जो आदमी 'नहीं' पर जीना चाहेगा, वह पाएगा हर जगह पत्थर अड़ गया, द्वार अवरुद्ध हो गया। 'हां' में फैलाव है। 'नहीं' में सिकुड़ जाता है आदमी। तुम जरा कहो, जब भी तुम 'नहीं' कहते हो, ख्याल करना तुम्हारे भीतर चेतना सिकुड़ जाती है। एक भिखमंगे ने तुमसे दो रोटी मांगी और तुमने कहा, 'नहीं,' तुम जरा ख्याल करना, तुम एकदम छोटे हो गये। तुम्हें भी लगता है कि तुम छोटे हो गये। इसलिए भिखमंगे भी होशियारी करते हैं। चार आदमियों के सामने मांगते हैं। क्योंकि चार आदमियों के सामने तुम्हें भी जरा लज्जा आएगी, इतना छोटे न हो सकोगे। अकेले में हो जाओ भला।

बीच बाजार में पकड़ लेते हैं भिखमंगे; कहते हैं: दो रोटी मिल जाएं; दाता! पहले से ही 'दाता' कह देते हैं। यह तुम्हारा अहंकार फुला रहे हैं। वह कह रहे हैं, देखो, कह दिया दाता, दो रोटी! बड़ा बना दिया, अब सिकुड़ मत जाना। और चार आदमियों की भीड़ है, बाजार चल रहा है, दुकानें खुली हैं, अब तुम सोचते हो दो रोटी के पीछे 'दाता' होना छोड़ना, और दो रोटी के पीछे छोटा होना बीच बाजार में, लोग क्या कहेंगे? तुम भिखमंगे को थोड़े ही दो रोटी देते हो, तुम दो रोटी दे देते हो ताकि छोटे होने का यह जो उपद्रव खड़ा कर दिया है इसने, इससे बच जाएं। तुम सिर्फ छुटकारा चाहते हो भिखमंगे से, कि ले भाई, विदा हो। छोड़ मुझे, मेरा पिंड छोड़! भिखमंगा भी अकेले में तुमसे नहीं मिलता, रास्ते पर अकेले मिल जाओ तो वह निकल जाता है चुपचाप। वह जानता है कि अकेले में हो सकता है कि रोटी तो न मिले और गर्दन दबा दे यह आदमी। अकेले में कौन जाने और जो अपनी थाली में दो-चार पैसे पड़े हैं, छीन ले! अकेले का क्या भरोसा? उपदेश देने लगे कि मस्त-तड़ंग जमाने भर के और भीख मांगने चले हो, शरम नहीं आती? कुछ ज्ञान की बातें बताए!

तुम जब 'नहीं' कहते हो, सिकुड़ जाते हो; जब भी तुम 'हां' कहते हो, फैल जाते हो। तुम जिंदगी में जरा इसको परखो। यह जीवन की रासायनिक प्रक्रिया है। आस्तिकता सबसे बड़ा फैलाव है। क्योंकि परमात्मा को 'हां' कहने का अर्थ अस्तित्व को 'हां' कहना है। हमने बिना किसी तर्क के अस्तित्व को स्वीकृति दे दी। हम इसके साथ हो लिये। यही आस्तिकता का अर्थ है। हमने अपने द्वार खोल दिये निःसंकोच।

मुट्ठी खोलो, मुट्ठी बांधने से नहीं मिलेगा। मुट्ठी खोलो और भीतर चलो मुट्ठी खोलने का अर्थ है, विश्राम। मुट्ठीं खोलने का अर्थ है, स्वभाव। ख्याल किया तुमने, मुट्ठी को अगर तुम सदा बांधकर रखना चाहो, कितनी देर तक बांधकर रख सकते हो? लेकिन खुली तुम रखना चाहो तो जिंदगी भर रख सकते हो। क्योंकि मुट्ठी जब खुली होती है, स्वाभाविक होती है, जब बंद होती है, अस्वाभाविक होती है।

बंद मुट्ठी में शक्ति खर्च हो रही है, खुली मुट्ठी में शक्ति खर्च नहीं होती। इसलिए मुट्ठी बांधनी पड़ती है, खोलनी नहीं पड़ती। तुम मुट्ठी बांध लो, बांधे रहो, तो तुम्हें ताकत लगानी पड़ रही है। तुम्हारी शक्ति व्यय हो रही है। मुट्ठी खोलने में क्या करना पड़ता है? सिर्फ इतना करना होता है कि मुट्ठी बांधना बंद करना होता है, बस! नहीं बांधते, मुट्ठी खुल जाती है। मुट्ठी का खुलना स्वाभाविक है।

स्वाभाविक हो जाओ, सरल हो जाओ, और भीतर खोजो। ऊपर नहीं उड़ना है, न मनुहार करनी है किसी की, क्योंकि परमात्मा तुमसे भिन्न नहीं है। किसकी मनुहार करते हो? यह ऐसा ही है जैसे दर्पण के सामने खड़े होकर कोई अपनी ही तस्वीर के पैरों में झुकता हो। परमात्मा तुमसे भिन्न नहीं है, तुम किसकी प्रशंसा कर रहे हो? परमात्मा तुम्हारा चैतन्य है। यह परमात्मा के चरणों में सिर झुकाया, यह अपने ही चरणों में सिर झुकाया, ऐसा है। इसका कोई मूल्य नहीं है।

रुको, ठहरो, बैठो, थोड़ा विश्राम का क्षण, विराम आने दो जीवन की आपाधापी में; आंख बद करो, भीतर डूबते जाओ, भीतर शान्त होते जाओ, और एक दिन वह अपूर्व प्रकाश होता है। निश्चित परमात्मा जाना जाता है, जाना जा सकता है। लेकिन सम्यक दिशा। अंतर्यात्रा है परमात्मा।

परमात्मा न मिले तो भी हम अपने लिए तर्क खोज-खोज कर समझा लेते हैं कि इसलिए न मिला होगा। कोई मान लेता है, ईश्वर नहीं है, इसलिए नहीं मिला। कोई मान लेता है कि हमारे पाप बहुत हैं, इसलिए ईश्वर नहीं मिला। कोई मान लेता है, कर्मों का जाल, इसलिए ईश्वर नहीं मिला। कोई मान लेता है, हमारे भाग्य में नहीं है, विधि में नहीं है, इसलिए ईश्वर नहीं मिला। ये सब हमारे उपाय हैं अपने को समझा लेने के।

मैंने सुना है, शहर में जन्मे और शहर में ही पले हुए एक हास्य कवि गांव गये। वह अपने मेज़बान की बेटी को दूध दुहते देख रहे थे कि उन्हें एक लंबा-चौड़ा सांड़ सिर झुकाए उन्हीं की ओर सरपट भागकर आता हुआ दिखायी दिया। लपककर वे घर में घुस गये। वहां से उन्होंने खिड़की में से झांककर देखा कि मेज़बान की लड़की निश्चित बैठी दूध दुहती रही और सांड़ गाय के पास तक आया, फिर एकाएक चौंककर वापस मुड़ा और सीधे वापस भाग गया। जब सांड़ आंखों से पूरी तरह ओझल हो चुका, तब हास्य कवि जी बाहर निकले और दरयाफ़्त करने लगे कि वह सांड़ गाय के नजदीक तक आकर चौंका क्यों और वापिस क्यों भागा? कृषक-कन्या ने उत्तर दिया: यह गाय उसकी सास जो है!

मूढ़तापूर्ण प्रश्न पूछोगे, मूढ़तापूर्ण उत्तर या तो कोई दूसरा तुम्हें दे देगा, अगर कोई दूसरा न देगा तो तुम खुद ही अपने निर्मित कर लोगे।

ईश्वर क्यों नहीं मिलता? या तो कोई दूसरा तुम्हें उत्तर देनेवाला मिल

जाएगा--उत्तर देनेवालों की कमी नहीं है। एक खोजो हजार मिलते हैं। उत्तर देने वाले तैयार ही बैठे हैं कि आओ, पूछो! उत्तर देनेवाले कोशिश में ही लगे हैं कि पूछते क्यों नहीं? उत्तर देनेवाले गर्दन पकड़ने को तैयार बैठे हैं कि कोई पूछ ले और वह उसकी गर्दन पकड़ लें। उत्तर तैयार किये बैठे हैं। तोतों की तरह रटे बैठे हैं। नहीं पूछ रहे हो, इससे उनका चित्त बड़ा बेचैन हो रहा है। तो या तो कोई तुम्हें दूसर उत्तर दे देगा कि पिछले जन्मों के पापों के कारण, कि भाग्य के कारण, कि कर्म के कारण, कि इस कारण, कि उस कारण। अगर नास्तिक से मिल गये तो वह कहेगा, है ही नहीं, मिले कैसे? होता तो कभी का मिला जाता। किसी को कभी नहीं मिला है। और बहुत संभावना है कि इन में से कोई-न-कोई उत्तर तुम्हारे मन के अनुकूल जो आ जाए, उससे तुम राजी हो जाओगे और खोज समाप्त हो जाएगी।

मैं तुमसे कहना चाहता हूं, ये सब उत्तर गलत हैं। ये सब उत्तर गलत हैं। न तो पाप तुम्हें रोक रहे हैं। क्योंकि तुमने जो पाप किये, वे सब सपने में किये, वे क्या खाक रोकेंगे! जैसे रात नींद में किसी ने चोरी की सपने में। सुबह जब आंख खुलती है, तो क्या तुम सोचते हो कोई पाप किया? कि रात नींद में किसी की हत्या कर दी। सुबह जब आंख खुलती है तो क्या तुम सोचते हो कि अब क्या करें, कैसे पश्चात्ताप करें? तुमने जो भी किया है अब तक, नींद में किया है, मूर्छा में किया है। तुम्हारा किया हुआ कुछ भी पाप नहीं है। ये पाप इत्यादि सिर्फ बहाना है अपने को समझाने का कि क्या करें, इतना पुण्य हमारा नहीं कि परमात्मा मिले! मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हें परमात्मा इसी क्षण मिल सकता है, एक ही चीज करने जैसी जरूरी है: जिस दिशा में परमात्मा है, उस दिशा में खोजो। कोई चीज और अड़चन नहीं है। आंख बंद करो और भीतर झांको, अपने स्वभाव में झांको। स्वभाव परमात्मा है और जब तुम उसे भीतर देख लोगे, तो वह तुम्हें सब तरफ बाहर भी दिखायी पड़ेगा। जिसने अपने को पहचाना, उसने सब को पहचाना।

आखिरी प्रश्न: आप राजनेताओं का सदा मजाक क्यों उड़ाते हैं? और यह भी जानना चाहता हूं कि राजनेता चूड़ीदार पाजामा ही क्यों पहनते हैं?

यह जरा कठिन सवाल है।

राजनेताओं का मैं मजाक नहीं उड़ाता, 'राजनेता' एक तरह की गाली है। किसी को भूलकर 'राजनेता' मत कहना।

मैंने सुना है, मार्क ट्वेन ने लिखा है, सत्रह फरवरी को जार्ज. ए. रोड्रिक ने न्यूयार्क में धारासभा के भवन के सामने डॉ. आर विलसन से झगड़ा शुरू कर दिया। बहुत देर तक तो विलसन गालियां सुनते रहे और अपना गुस्सा रोके रहे। रोड्रिक ने उन्हें चोर कहा, झूठबोला कहा, ठग कहा, उसे भी विलसन ने शांति से सुन लिया। रोड्रिक एक के बाद एक कलुषित विशेषण विलसन पर लादता चला गया। और अंत में उसने उन्हें उल्लू के पट्ठे, हरामखोर, और-और शब्द कहे, लेकिन विलसन फिर भी शांति से सुनता रहा। फिर तो ऐसी गालियां दीं जो न लिखी जा सकती हैं, न कही जा सकती हैं। मगर विलसन भी अद्भुत था, बिलकुल बुद्ध की तरह खड़ा रहा और सुनता रहा! और तब अंत में उसने कहा: नेताजी के बच्चे! अरे, संसद के सदस्य! ऐसा सुनना था कि विलसन उछलकर खड़ा हो गया और रोड्रिक से बोला कि यह अपमान मैं किसी भी तरह सहन नहीं करूंगा, और गोली मारकर उसे ठंडा कर दिया। अदालत ने डॉ. विलसन को यह कहकर बरी कर दिया कि उनके उत्तेजित हो जाने का कारण उचित था।

मुझे पता नहीं है यह कहानी कहां तक सच है। मगर सच होनी चाहिए।

'नेताजी' एक तरह की गाली है। राजनीति में उत्सुक ही लोग छुद्र वृत्ति के होते हैं। सबसे ओछे लोग राजनीति में उत्सुक होते हैं। समाज का निम्नतम तल राजनीति में उत्सुक होता है। जो कुछ और नहीं हो सकते, वे राजनेता हो जाते हैं। जो संगीतज्ञ हो सकता है, वह राजनेता होना चाहेगा! वीणा छोड़कर! जो चित्रकार हो सकता है, वह राजनीतिज्ञ होना चाहेगा! तूलिका छोड़कर! जिसके कंठों से गीत उठ सकते हैं, जिसके गीत लोगों को मस्त कर सकते हैं, राजनेता होना चाहेगा। जो कुछ भी हो सकता है, वह राजनेता नहीं होना चाहेगा। जिसके जीवन में कोई भी सृजन की क्षमता है, वह राजनेता नहीं होना चाहेगा। राजनेता होते ही वे लोग हैं जो कुछ और नहीं हो सकते। न जिनसे गीत बन सकते, न चित्र, न मूर्तियां; जिनसे कोई सृजन नहीं हो सकता, सृजन की क्षमता से बिलकुल शून्य लोग राजनेता हो जाते हैं। और फिर स्वभावतः वे जो करते हैं, वह सभी के सामने प्रगट है।

मैंने सुना, एक राजनीतिक पार्टी की कार्यकारिणी की बैठक हो रही थी कि एक सदस्य की जेब कट गयी। कार्यकारिणी की बैठक में! वे तुरंत ही कुर्सी पर खड़े भी हो गये और चिल्लाकर बोले: प्रिय सज्जनो, किसी ने मेरी जेब से छः सौ रुपये निकाल लिये हैं। जो व्यक्ति मुझे इसका पता लगाकर देगा, उसे मैं पचास रुपये दूंगा। एक कोने से आवाज आयी, में पचहत्तर दूंगा। दूसरे कोने से आवाज आयी, मैं सौ दूंगा। जैसे कि कोई नीलामी हो रही हो!

रेलगाड़ी में सफर करते हुए एक नेताजी ने अपने पास बैठे मुसाफिर से कहा: आप मेहरबानी कर के मुझे अपनी ऐनक थोड़ी देर के लिए देंगे? उसने ऐनक उतारकर दे दी। ऐनक लेकर नेताजी बोले, चूंकि आप ऐनक के बगैर पढ़ नहीं सकते, इसलिए अब अपना अखबार भी मेरी तरफ कर दीजिए।

इन नेताओं के संबंध में मजाक करने की कोई जरूरत ही नहीं है।

नेता
इस हाथ लेता
उस हाथ भी लेता.

नेता की मुस्कान
चौबीस घंटे--
ज्यों खुली कोई दुकान.

नेता का लिबास
आम आदमियों को
कर देता खास.

नेता के नारे
घोड़ों को--
ज्यों कोचवान पुचकारे.

नेता का वादा
हर बार--
पिटा हुआ प्यादा.

और तुमने जो सवाल पूछा है, वह और भी कठिन है कि राजनेता चूड़ीदार पाजामा ही क्यों पहनते हैं ? चूड़ीदार पाजामा की एक खूबी है ! कि अगर तुम किसी का उतारना चाहो तो जल्दी उतार नहीं सकते । और राजनेता एक दूसरे का पाजामा उतारने की कोशिश करते रहते हैं । कौन किसका नाफा पहले खोल दे ! तो चूड़ीदार पाजामे का बड़ा मूल्य है । उसमें बड़ी सुरक्षा है । पहन तो खुद लो, उतार कोई नहीं सकता । बड़ी खींचतान हो, तब कहीं उतर पाता है । राजनेता बड़े सोच-समझकर चूड़ीदार पाजामा चुने हैं ।

अभी तुम देख रहे हो, दिल्ली में एक-दूसरे का नाफा खोलने में लगे हैं । सब एक-दूसरे के नाफे को पकड़े हैं । कौन किसका पहले खोल लेगा, कौन अपना बचा लेगा !

राजनीति गंदे-से-गंदा खेल है ।

कभी-कभी जो मैं राजनीति की मजाक उड़ाता हूं, वह सिर्फ इसलिए कि तुम सावधान रहो । सब के मन में राजनीति छिपी है । उसे दग्ध कर देना है, उसे जला देना है । महत्त्वाकांक्षा का, राजनीति का जरा-सा बीज तुम्हारे भीतर रह जाए तो

वही तुम्हें भटकाएगा ।

राजनीति से जो मुक्त है, वही निर्मल है । और जो निर्मल है, वही परमात्मा का पात्र है ।

आज इतना ही ।
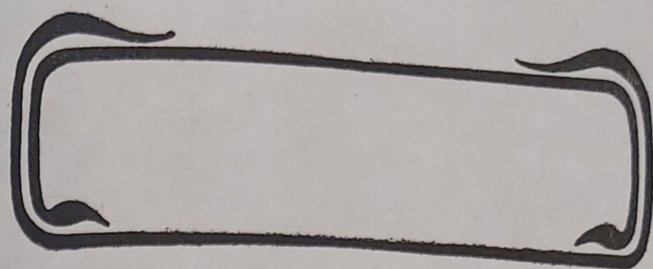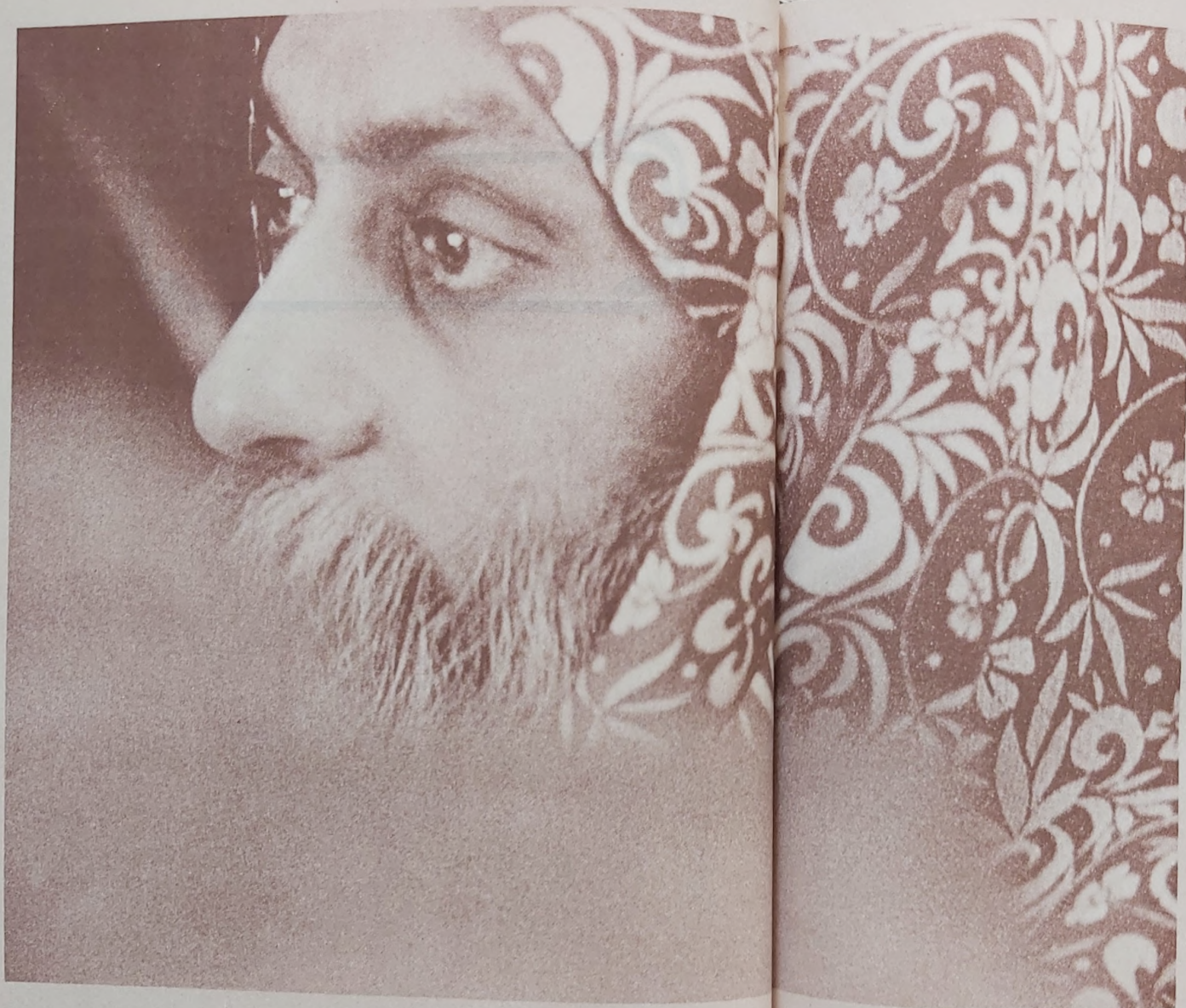
साध तें बड़ा न कोई

सातवां प्रवचन; १७ सितम्बर १९७८; श्री रजनीश आश्रम, पूना.

गऊ निकसि बन जाहीं । बाछा उनका घर ही माहीं ।।
तृन चरहिं चित्त सुत पासा । गहि जुक्ति साध जग-बासा ।।
साध तें बड़ा न कोई । कहि राम सुनावत सोई ।।
राम कही, हम साधा । रस एकमता औराधा ।।
हम साध, साध हम माहीं । कोउ दूसर जानै नाहीं ।।
जन दूसर करि जाना । तेहिं होइहिं नरक निदाना ।।
जगजीवन चरन चित लावै । सो कहिके राम समुझावै ।।

साध कै गति को गावै । जो अंतर ध्यान लगावै ।।
चरन रहे लपटाई । काहू गति नाहीं पाई ।।
अंतर राखै ध्याना । कोई विरला करै पहिचाना ।।
जगत किहो एहि बासा । पै रहैं चरन के पासा ।।
जगत कहै हम माहीं । वै लिप्त काहू मां नाहीं ।।
जस गृह तस उदयाना । वै सदा अहैं निरबाना ।।
ज्यों जल कमल कै बासा । वै वैसे रहत निरासा ।।
जैसे कुरम जल माहीं । वाकी सुति अंडन माहीं ।।
भवसागर यह संसारा । वै रहैं जुक्ति तें न्यारा ।।
जगजीवन ऐसें ठहराना । सौ साध भया निरबाना ।।

खुद अपने अक्स को अपने मुकाबिल देखने वाले
जरा आंखें तो खोल ओ नक्शे-बातिल देखने वाले

हकीकत को हकीकत के मुकाबिल देखने वाले
मुझे भी देख मेरी हस्ती-ए-दिल देखने वाले

नकूशे-पर्तवे-रंगीनी-ए-दिल देखने वाले
कभी खुद को भी देख ओ खुद से गाफिल देखने वाले

मेरी हस्ती का हर ज़र्रा उड़ा जाता है मंजिल से
मेरा मुंह देखते हैं जज़्बे-मंजिल देखने वाले

उन्हें तह की खबर क्या ? गौहरे-मकसद को क्या जानें
ये सब हैं रक्स मौजो-सुक्रो-साहिल देखने वाले

इधर आ हर कदम पर हुस्ने-मंजिल तुझको दिखला दूं
फलक को यास से मंजिल-ब-मंजिल देखने वाले

बुद्धों का एक ही आवाहन है :

इधर आ हर कदम पर हुस्ने-मंजिल तुझको दिखला दूं

उस परम प्यारे का सौन्दर्य, सत्य का सौन्दर्य दिखलाने के लिए बुद्धपुरुष आतुर हैं। और उस सत्य का सौंदर्य ऐसा भी नहीं है कि तुमसे कुछ भिन्न हो, तुमसे अभिन्न है।

कभी खुद को भी देख ओ खुद से गाफिल देखने वाले

तुम्हारे जीवन की पीड़ा एक ही है कि तुम स्वयं से अपरिचित हो। एक सन्ताप है : आत्म-अज्ञान।

आज के सूत्र महत्त्वपूर्ण हैं। और विशेषकर संन्यास की मेरी धारणा के बड़े अनुकूल हैं। संन्यासी के लिए आधार बन सकते हैं। एक-एक शब्द एक-एक कुंजी है।

'गऊ निकसि बन जाहीं'।

देखा है तुमने गाय को जंगल जाते? 'बाछा उनका घर ही माहीं'॥ लेकिन उसका बछड़ा तो घर ही होता है। उसका प्यारा तो घर ही होता है। तो ऐसे गाय जाती तो है जंगल, जाना तो पड़ता है—जरूरत है भोजन की, घास की—लेकिन हृदय घर ही रह जाता है।

'गऊ निकसि बन जाहीं। बाछा उनका घर ही माहीं॥
तृन चरहिं चित्त सुत पासा।...'

चरती है, जंगल में भोजन करती है, लेकिन चित्त की लौ घर की तरफ लगी रहती है। बछड़े की तरफ सुरति जगी रहती है।

'...गहि जुक्ति साध जग बासा'॥

ऐसा ही जो सच्चा साधु है, वह जगत में रहता है, लेकिन याद उसकी परमात्मा में लगी रहती है। छोटी-सी बात। संतों की बातें छोटी, सीधी, साफ, सरल। गाय को जंगल जाते तुमने भी देखा है; लौट-लौट कर घर की तरफ देखते देखा या नहीं? जंगल में चरती भी है तो भी कभी-कभी रंभा उठती है। घर की याद पकड़ लेती है। तुम तो ऐसे भटक गये हो संसार में कि तुम्हें घर की याद ही नहीं आती। घास-पात ही चर रहे हो—और संसार में कुछ है भी नहीं, इससे ज्यादा मूल्यवान कुछ भी नहीं है—लेकिन घास-पात में ही भटक गये हो। कूड़ा-करकट में भटक गये हो। घर की याद ही विस्मृत हो गयी। उस घर की याद पुनः आ जाए तो तुम्हारे जीवन में क्रांति का सूत्रपात हो।

जगजीवन कहते हैं: 'गहि जुक्ति साध जग-बासा'॥ यही उपाय है। यही साधु के जीवन का ढंग है, यही साधु की शैली है। जैसे गाय जंगल में घास-पात चरती, पर देह ही जैसे जंगल में, प्राण तो घर अटके हैं। हृदय तो घर बसा है, हृदय तो घर ही छोड़ आई है। ऐसा ही साधु बाजार में भी उठता है, बैठता है, काम भी करता है, धाम भी करता है, लेकिन प्रतिपल, अहर्निश, सोते-जागते, उठते-बैठते उसकी श्वासों का तार घर से जुड़ा रहता है। परम प्यारे की याद बनी रहती है। उस प्रीतम की याद उसके भीतर एक सतत ज्योति की तरह जलती रहती है। यही युक्ति है; यही योग है। इतना ही योग है। इतना ही कर लिया तो सब कर लिया; और कुछ करने को नहीं है।

जंगल भाग कर जाने की जरूरत नहीं है। क्योंकि अगर तुम्हें यहां परमात्मा की याद नहीं आती, तो जंगल में जाकर ही कैसे आ जाएगी? जंगल में ही तो हो। मरघट पर चले जाओगे, इससे साधना नहीं हो जाएगी। बाजार भी तो मरघट है, जरा आंख खोलकर देखो! वहां सभी मरने के लिए तैयार बैठे हैं। और मरघट क्या होगा? जिस घाट पर सब मरते हैं, उसी को तो मरघट कहते हैं न! यहां सभी तो मरने को तैयार बैठे हैं, पंक्तिबद्ध, अपने-अपने समय की प्रतीक्षा करते। कब किसकी गाड़ी आ जाएगी, कब किसका बुलावा आ जाएगा, वह चला जाएगा। और रोज तुम लोगों को विदा करते हो। और कहां जाना है? मरघट पर जाने से क्या होगा? अगर तुम्हें बाजार में मरघट नहीं दिखायी पड़ा तो मरघट में भी तुम बाजार बसा लोगे।

बाजार कहां है? संसार कहां है?

क्षुद्र को छोड़ने की जरूरत नहीं है, विराट के प्रति जागने की जरूरत है। यह युक्ति। यह असली साधना का आधार। व्यर्थ को छोड़ना नहीं है, सार्थक को स्मरण करना है। अंधेरे को छोड़ना भी चाहे तो कैसे छोड़ेगा? कभी कोई अंधेरे को छोड़ सका है? रोशनी जलानी पड़ती है, अंधेरा अपने-आप छूट जाता है। लेकिन कुछ हैं, जो अंधेरे को छाती से लगाए बैठे हैं। और उनकी छाती से कुछ भी लग नहीं सकता, क्योंकि अंधेरे का कोई अस्तित्व नहीं है। कुछ हैं, जो अंधेरे पर मुट्ठी बांध कर बैठे हैं। उनकी मुट्ठियां खाली हैं। क्योंकि अंधेरा कुछ हो तो मुट्ठी बंधे! कुछ हैं जिन्होंने तिजोरियों में अंधेरा भर रखा है। बैंकों में अंधेरा जमा कर रखा है। भ्रांति दे रहे हैं अपने को। अंधेरा है ही नहीं, अंधेरा अभाव है। तुम अंधेरे की सम्पदा नहीं बना सकते हो। अभाव की कोई सम्पदा नहीं बनती।

फिर जब आदमी थक जाता है, अंधेरे पर मुट्ठी बांध-बांध कर, हार-हार जाता है, तो एक दिन भागने लगता है अंधेरे को छोड़कर। भाग कर कहां जाओगे? आंखें तुम्हारी अंधी हैं तो तुम जहां जाओगे वहीं अंधेरा होगा। तुम्हारे अंधेपन में अंधेरे का वास है। तुम्हारे पास ही बुद्धपुरुष बैठे हों तो वे रोशनी में हैं, तुम अंधेरे में हो। स्थान का सवाल नहीं है, स्थिति का सवाल है। तुम स्थान बदलते हो। तुम कहते हो, बाजार में बहुत उलझन है, घर-गृहस्थी में बहुत झंझट है, आश्रम जाएं; आश्रम में बैठेंगे। झंझट तुम्हारे भीतर है। झंझट का सूत्र तुम्हारे भीतर है।

मैंने सुना, एक आदमी बड़ा क्रोधी था। मगर सोचता था, पत्नी क्रोध दिला देती है। ग्राहक क्रोध दिला देते हैं। बच्चे क्रोध दिला देते हैं, पड़ोसी क्रोध दिला देते हैं। छोड़ दिया संसार—जो सामान्य साधु की प्रक्रिया है; सच्चे साधु की नहीं—छोड़ दिया संसार, चला गया जंगल में, बैठ गया वृक्ष के नीचे, सोचा अब कोई झंझट नहीं उठेगी। एक कौवा आया और उसने बीट कर दी! उठा लिया पत्थर

उसने, दौड़ने लगा कौवे के पीछे कि तूने समझा क्या है ? बकने लगा गालियां । क्रोध से लाल हो गया चेहरा उसका । और तब उसे याद आया, यह मैं क्या कर रहा हूं ?

क्रोध का सूत्र भीतर है । कोई भी निमित्त बन जाएगा । कोई भी कारण बन जाएगा ।

लोग मुर्दा चीजों तक पर क्रोध करते हैं । तुमने भी कभी देखा, फाउन्टेन पेन लिखते-लिखते स्याही नहीं चलती, पटक दिया ! जरा अकल है कुछ ? क्या कर रहे हो कभी सोचा ? नाराज हो गये । फाउन्टेन पेन कुछ जानकर तुम्हें सता नहीं रहा था । तुम्हारा ही फाउन्टेन पेन है ! लेकिन क्रोधी आदमी तो किसी भी चीज पर कोध कर लेता है । दरवाजा ऐसे लगाता है जैसे दरवाजे में कोई प्राण हैं ! जूता ऐसा फेंक देता है जैसे जूते में कुछ प्राण हों । चीजों से भी क्रोध हो जाता है। छोटे-छोटे बच्चे ही नहीं, बड़े-बड़े बूढ़े भी । छोटे बच्चे को चलने में टेबल लग गयी जोर से, नाराज हो जाता है, एक घूंसा मारता है टेबल को । यह छोटे बच्चे पर हंसते हो, लेकिन तुम बड़े हो पाए हो ? तुम में प्रौढ़ता आयी है । भाग कर क्य करोगे, जागो ! युक्ति सीखो ! यह रही युक्ति——

'गऊ निकसि बन जाहीं । बाछा उनका घर ही माहीं ॥
तृन चरहिं चित्त सुत पासा । गहि जुक्ति साध जग-बासा ॥'

ऐसा इस छोटी-सी घटना से जो समझदार हैं समझ लेते हैं, जगत में ही रह जाते हैं । जगत ही तो है । जंगल में भी जगत है । हिमालय पर भी जगत है । जगत ही है, जहां भी हो जगत है । लेकिन इसमें इस ढंग से रहा जा सकता है कि देह ही यहां हो, प्राण परमात्मा में हों । प्रा णों का परमात्मा में होने का नाम प्रार्थना है ।

देह तो संसार की है और संसार में ही होगी । तुम बाजार में मरोगे तो भी मिट्टी में गिरेगी देह और मिट्टी में मिलेगी, और तुम हिमालय पर मरोगे तो भी मिट्टी में गिरेगी देह और मिट्टी में मिलेगी । देह तो मिट्टी है, सो कहीं भी गिरेगी और मिट्टी में मिलेगी । सवाल तुम्हारे भीतर उसको पहचान लेने का है जो मिट्टी नहीं है, और उसका उससे संबंध जोड़ लेने का है जो अमृत है । तुम्हारे भीतर अमृत की बूंद है । परमात्मा अमृत का सागर है, यह बूंद सागर की याद से भर जाए, बस क्रांति घट गयी ! फिर तुम्हारे जीवन में दुख नहीं । फिर तुम्हारे जीवन में संताप नहीं, चिंता नहीं, क्योंकि फिर तुम रहे ही नहीं अलग ।

दुख, चिंता, संताप अलग होने की उप-उत्पत्तियां हैं । तुमने अपने को अलग समझा है परमात्मा से, इसलिए चिंता है, इसलिए परेशानी है, इसलिए उलझन है । जैसे ही तुमने जाना मैं उससे जुड़ा हूं, सब चिंता गयी ! फिर चिंता क्या है ? परमात्मा से जुड़े हो तो परमात्मा चिंता कर रहा है, तुम्हें चिंता की क्या जरूरत है ? जैसे

छोटे बच्चे ने अपना हाथ अपने बाप के हाथ में दे दिया । अब छोटे बच्चे को कोई चिंता नहीं है । हो सकता है कि बाप-बेटे दोनों जंगल में भटक गये हो, सिंह दहाड़ रहा हो, मगर छोटा बच्चा अब जरा भी चिंतित नहीं है, बाप के हाथ में हाथ है ! बाप चाहे चिंतित हो, परेशान हो कि अब क्या करना, जान खतरे में है ! छोटा बच्चा मस्त है । उड़ती तितलियों को पकड़ने की कोशिश कर रहा है, राह के किनारे फूलों को तोड़ रहा है, रंगीन पत्थरों को बीन रहा है——उसे कोई चिंता नहीं है । हां, जरा पिता छूट जाए, खो जाए, देखेगा चारों तरफ, पिता को नहीं पाएगा——अभी कोई दुख नहीं टूट पड़ा है उस पर——लेकिन पिता को न पाते ही भयंकर चिंता और भय पकड़ लेगा । ऐसी ही तुम्हारी दशा है ।

तुमने हाथ छोड़ दिया है उसका; जिसके हाथ में हाथ हो तो कोई चिंता नहीं होती, मनुष्य निर्भार जीता है । उस निर्भारता का नाम ही साधुता है । गहि जुक्ति साध जग-बासा ॥

'साध ते बड़ा न कोई ।'

साधु से फिर कोई बड़ा नहीं, सच्चे साधु से फिर कोई बड़ा नही । क्यों ? क्योंकि बड़े से उसका जोड़ हो गया । सच्चे साधु से कोई बड़ा नहीं, क्योंकि सच्चा साधु तो अपनी तरफ से मिट ही गया । उसके भीतर से तो परमात्मा झांकने लगा । अब व्यक्ति नहीं है, अब तो समष्टि उस के भीतर से बोलती और डोलती है । अब बूंद नहीं है, अब सागर है । इस जगत में सबसे बड़े वे ही हैं, जो मिट गये हैं । इस जगत में सबसे छोटे वे ही हैं, जो बहुत घनीभूत होकर हैं ।

अहंकार इस जगत में सबसे छोटी बात है । और निर-अहंकारिता इस जगत में सबसे बड़ी बात है । मगर निर-अहंकार तुम अपने-आप न हो सकोगे । अपने-आप निर-अहंकार होने का कोई उपाय ही नहीं है । अपने-आप अगर तुम निर-अहंकार होना चाहोगे तो निर-अहंकारिता का भी अहकार आ जाएगा । तुमने अपना चरित्र सम्हाल लिया; व्रत किये, उपवास किये; झूठ नहीं बोले, पाप नहीं किये, चोरी नहीं की, बेईमानी नहीं की, शराब नहीं पी, मांस नहीं खाया, सब तरफ़ से तुमने अपने को सम्हाल लिया, साध लिया, चरित्र बना लिया, मगर इस चरित्र के भीतर अहंकार मजबूत होता रहेगा । मैंने किया ! मेरा चरित्र ! मेरा उज्ज्वल चरित्र ! मेरी विनम्रता ! देखो मेरी मर्यादा, मेरा शील ! 'मैं' मजबूत होता रहेगा । इस 'मैं' से तुम बाहर न हो सकोगे ।

इस 'मैं' से तो सिर्फ वही बाहर होता है जो परमात्मा के चरणों में अपने को छोड़ देता है । जो कहता है, मैं क्या करूं ! मेरे किये सब गलत हो जाता है । मेरे किये सब अनकिया हो जाता है । मेरे करने में ही भ्रांति है ।

इस भेद को ख्याल करो ।

तुम्हें सदा से कहा गया है--नैतिकता की शिक्षा यही है--अच्छे बनो ! बुराई छोड़ो ! सदाचरण ग्रहण करो ! शिक्षा बुरी नहीं है, ठीक मालूम होती है : चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, झूठ मत बोलो, हिंसा मत करो ! मगर शिक्षा धर्म नहीं है, यह शिक्षा धर्म नहीं है । नैतिक तो है । यह सज्जन को पैदा कर देगी। लेकिन संत को नहीं ।

सज्जन दुर्जन के विपरीत है । दुर्जन खतरनाक है । समाज के लिए अड़चन देता है, दुविधा पैदा करता है । सज्जन समाज के लिए सुविधापूर्ण है । समाज चाहती है सभी लोग सज्जन हों । तो काम-धाम व्यवस्था से चलता है ।

लेकिन संतत्व कुछ और ही बात है । संतत्व का अर्थ सज्जनता नहीं है । सज्जन होने के लिए ईश्वर को मानने की कोई भी जरूरत नहीं है । नास्तिक भी सज्जन होते हैं । अक्सर तो ज्यादा सज्जन होते हैं आस्तिक से । आखिर रूस और चीन में लाखों-करोड़ों नास्तिक हैं । सज्जन हैं । ईश्वर को न मानने से कोई असज्जन नहीं हो जाता । अक्सर तो ऐसा हो जाता है कि ईश्वर को मानने वाले को सुविधा मिलती है असज्जन होने की । क्योंकि वह सोचता है : चले जाएंगे एक दफा गंगा नहा आएंगे, धुल जाएंगे सब पाप । कर लो, अभी तो बहती गंगा हाथ धोलो, फिर देखेंगे । फिर यज्ञ-हवन करवा देंगे । फिर मरते वक्त राम-राम जप लेंगे । और उसकी तो करुणा है ही ! वह तो महाकरुणावान है । उसने तो अपात्रों को पार कर दिया, लंगड़ों को पहाड़ चढ़ा दिया, बहरों को सुनवा दिया, अंधों को दिखवा दिया, तो देख लेंगे, उसीका पकड़ लेंगे सहारा अखीर में, उसी का नाम पुकार लेंगे !

आस्तिक को एक सुविधा है कि पाप भी कर लो और पाप से बचने का उपाय भी । नास्तिक को सुविधा नहीं है । नास्तिक तो जानता है : जो मैंने किया, मैंने किया । अच्छा, तो मैंने, बुरा, तो मैंने ! लेकिन नास्तिक कभी अहंकार से मुक्त नहीं हो सकता यह बात समझना ।

नास्तिक दुश्चरित्रता से मुक्त हो सकता है, लेकिन अहंकार से मुक्त नहीं हो सकता । अहंकार से मुक्त होना तो केवल परम आस्तिकता में ही सम्भव है । झूठा आस्तिक भी अहंकार से मुक्त नहीं होता । झूठा आस्तिक ज्यादा-से-ज्यादा चरित्रवान हो सकता है । लेकिन उसका चरित्र सब ऊपर-ऊपर होता है और भीतर अहंकार जलता है, प्रज्वलित जलता है । इसलिए अक्सर मंदिर जाने वाले लोग तुम्हें ज्यादा अहंकारी मालूम पड़ेंगे । जिन्होंने एकाध दिन उपवास कर लिया, वे समझते हैं जिन्होंने उपवास नहीं किया, वे सब नर्क जाने वाले हैं । जिसने एकाध बार मंत्र पढ़ लिया दिन में, वह सोचता है, बस, मेरा स्वर्ग निश्चित ! और सब पर उसको दया आती है कि बेचारे दीन-हीन, भटकेंगे, जलेंगे नर्कों में !

तुम्हारे एक बार मंत्र, तोता रटंत की तरह मंत्र पढ़ लेने से सिर्फ तुम्हारा अहंकार

भर रहा है और कुछ भी नहीं हो रहा है । असली आस्तिक कुछ बात और है । असली आस्तिकता का आधारभूत नियम है : मेरे किये कुछ भी न होगा । मैं तो अच्छा भी करता हूं तो बुरा हो जाता है । नेकी भी करता हूं तो बदी हो जाती है । मेरे हाथ में ही भूल है । मेरा तुझसे पृथक होना ही मेरी सारी भूलों का स्रोत है । इसलिए जब तक मैं तुझसे पृथक हूं तब तक मैं तीर्थ भी करूंगा, पुण्य भी करूंगा, चरित्र भी सम्भालूंगा, तो भी कुछ सम्भलेगा नहीं । अंततः मेरा अहंकार ही मजबूत होगा और अहंकार ही तो नर्क है ।

फिर क्या करूं ? तू कर ! मैं छोड़ता हूं । मैं हटता हूं रास्ते से । मैं तेरे और मेरे बीच न आऊंगा । मैं सब तुझ पर समर्पित करता हूं । मैं तेरी याद रखूंगा । मैं तेरी पूरी तरह याद रखूंगा, एक क्षण तुझे विस्मरण न करूंगा । जागते ही नहीं, सोते भी तेरी अहर्निश याद मेरे हृदय में गूंजती रहेगी । बस शेष तू कर ! और शेष सब अपने से हो जाता है । क्योंकि जैसे ही अहंकार मिटा, वैसे ही पाप का आधार मिट गया । और जैसे ही अहंकार मिटा, पुण्यात्मा का भाव भी मिट गया । यह जो परम शून्य की दशा है, इसी में पूर्ण का अवतरण होता है । फिर व्यक्ति तो बांस की पोंगरी । फिर परमात्मा जो गीत गाता है, गाता है ।

'साध तें बड़ा न कोई', इसलिए साधु से कोई बड़ा नहीं । क्योंकि साधु मिट गया । ख्याल रखना, शर्त क्या है ? साधु से कोई बड़ा नहीं है, इसका यह मतलब नहीं है कि साधु बड़ा है । साधु से कोई बड़ा नहीं है, इसका अर्थ है कि साधु है ही नहीं । इसलिए अब कौन उससे बड़ा हो सकता है !

जीसस ने कहा है : धन्यभागी हैं वे जो अंतिम हैं, क्योंकि वे ही मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम होंगे । अंतिम कौन है ? जो शून्यवत है । जिसका कोई दावा नहीं है। जिसकी 'मैं' की कोई घोषणा नहीं है । 'साध तें बड़ा न कोई,' क्योंकि साधु है ही नहीं, उसके भीतर परमात्मा ही बोल रहा है ।

जब कृष्ण ने अर्जुन से कहा : 'मामेकं शरणं व्रज', मुझ एक की शरण आ, तो क्या तुम सोचते हो कृष्ण कृष्ण की शरण आने को कह रहे हैं अर्जुन को ? तो तुम गलती कर जाओगे । तो तुम बड़ी भूल कर जाओगे । और यही कृष्ण-भक्तों ने समझा हुआ है, कि कृष्ण यह कह रहे हैं अर्जुन से कि तू मेरी शरण आ । यह सिर्फ भाषा के कारण भ्रांति हो रही है । मजबूरी है । कृष्ण को भी 'मैं' शब्द का उपयोग करना पड़ता है । क्योंकि बिना 'मैं' शब्द का उपयोग किये हमारी भाषा ही खड़ी नहीं होती । हमारी भाषा ही 'मैं' शब्द पर खड़ी है । हमारी भाषा अहंकार का विस्तार है । हमारी भाषा में बोलना है तो हमारी भाषा ही बोलनी होगी । अर्जुन को समझाना है तो अर्जुन की ही भाषा बोलनी पड़ेगी । उस भाषा में 'मैं'-'तू' अनिवार्य है । इसलिए कृष्ण कह रहे हैं : 'मामेकं शरणं व्रज'; आ, तू मेरी

शरण आ !

लेकिन वस्तुतः अर्थ क्या है? कृष्ण तो हैं ही नहीं, वहां तो परमात्मा पूर्ण विराजमान हुआ है। कृष्ण तो मिट गये हैं। मिट कर ही तो भगवत्ता हुई है। अंधेरा तो हट गया है। अर्जुन को नहीं दिखलायी पड़ रहा है प्रकाश अभी, क्योंकि वह आंखें बंद किये खड़ा है। मगर सामने प्रकाश है। अर्जुन को अंधेरा दिखायी पड़ रहा है। प्रकाश कह रहा है : 'मामेकं शरणं व्रज'; प्रकाश कह रहा है : मेरी शरण आ। अर्जुन तो यही समझेगा कि अंधेरा कह रहा है : मेरी शरण आ। क्योंकि अर्जुन आंख बंद किये है, उसे तो प्रकाश दिखता नहीं, उसे तो लगता है अंधेरे में से आवाज आ रही है : मेरी शरण आ। अर्जुन थोड़ा झिझका होगा, चिन्तित हुआ होगा, हैरान भी हुआ होगा कि कृष्ण मेरे सखा हैं, बचपन के मेरे मित्र हैं, मेरे सारथी हैं युद्ध में और मुझसे कह रहे हैं : मेरी शरण आ?

इसलिए उसने कहा कि पहले अपना विराट रूप दिखलाओ। ये तुम क्या बातें करने लगे? ये तुम कैसी बातें कर रहे हो? पहले अपना विराट रूप दिखलाओ। उसे नहीं दिखायी पड़ रहा है। कृष्ण तो विराट रूप में ही हैं, मगर उसके पास आंख नहीं है। इसलिए कहानी बड़ी प्यारी है कि कृष्ण उसे दिव्य-चक्षु देते हैं, उसे एक नयी आंख देते हैं, देखने का एक नया ढंग देते हैं, एक और देखने की व्यवस्था देते हैं। यही शिष्यत्व है। देखने की एक नयी आंख, एक नयी व्यवस्था, एक नया ढंग। सोचने की एक नयी प्रक्रिया, तर्क की एक नयी सरणी।

और जब जरा-सी अर्जुन की आंख खुली तो बहुत घबड़ा गया है, भयभीत हो उठा है। क्योंकि विराट दिखायी पड़ा! अनंत दिखायी पड़ा! असीम दिखायी पड़ा! सीमा में सुरक्षा मालूम होती। असीम? अतल में जैसे कोई गिरने लगे। घबड़ा गया है! रोआं-रोआं कंप गया है! पुकारने लगा कि बस, बस, वापिस लौट आओ! तुम अपने पुराने रूप में वापिस लौट आओ! मेरे सखा, तुम अपने पुराने रूप में वापिस लौट आओ! तुम अपनी सीमा में आ जाओ। तुम वैसे ही दिखायी पड़ो जैसे तुम सदा मुझे दिखायी पड़े हो। वही तुम्हारा सौम्य रूप--मित्र का; देह में आबद्ध--सीमा में।

शिष्य जब आंख खोलता है तो गुरु में सदा उसे असीम दिखायी पड़ता है। और शिष्य सदा डरता है। अर्जुन और कृष्ण के बीच जो घटा, वह बार-बार हर गुरु और हर शिष्य के बीच घटता है। और जब भी विराट दिखायी पड़ता है, तभी भयभीत। तब हर शिष्य कहता है कि लौट आओ अपने सौम्य रूप में। वही प्रीतिकर था।

कृष्ण कह रहे हैं : 'मामेकं शरणं व्रज', मुझ एक की शरण तू आ। और कितनी हिम्मत का उद्घोष है! 'सर्व धर्मान् परित्यज्य', छोड़छाड़ सारे धर्म, आ मुझ एक की शरण। किन धर्मों में उलझा है? किन सिद्धांतों-शास्त्रों में उलझा है, मैं

तेरे सामने खड़ा हूं! शास्ता सामने खड़ा है, तू शास्त्रों में उलझा है! स्वयं धर्म तेरे सामने मौजूद है और तू मुर्दा धर्मों में उलझा है! छोड़-छाड़ सारे धर्म, आ मेरी शरण! मगर ख्याल रखना, कृष्ण जब कह रहे हैं मेरी शरण आ, तो कृष्ण की शरण आ, ऐसा नहीं कह रहे हैं। कृष्ण तो हैं ही नहीं। कृष्ण तो जा चुके हैं। अब तो बांस की पोंगरी हैं कृष्ण। हालांकि तुम्हें तो बांस की पोंगरी ही दिखायी पड़ेगी, जिन ओंठों पर रखी है बास की पोंगरी, वे ओंठ तुम्हें दिखायी नहीं पड़ते। नहीं दिखायी पड़ सकते। वे विराट के ओंठ हैं, वे तो तभी दिखायी पड़ेंगे जब तुम भी बांस की पोंगरी हो जाओगे। उसके पहले नहीं दिखायी पड़ेंगे। जब तक तुम न मिटोगे, तब तक तुम गुरु के शून्य को न देख सकोगे।

'साध तें बड़ा न कोई'। साधु से कोई बड़ा नहीं है। क्योंकि साधु है ही नहीं। यही उसका बड़प्पन है। यही उसकी विशालता है, विराटता है। क्योंकि वह शून्य हुआ। शून्य ही सबसे बड़ी संख्या है। शून्य ही प्रथम है और शून्य ही अंतिम है। सब संख्याएं बीच में हैं। न तो शून्य से छोटा कुछ है, न शून्य से बड़ा कुछ है। शून्य इसीलिए बड़ा है कि शून्य सबसे छोटा है।

इस गणित को ठीक से समझ लेना, क्योंकि इस गणित को जो चूका, वह अध्यात्म को नहीं समझ पाएगा।

इसलिए जीसस कहते हैं : जो अंतिम हैं, वही प्रथम हैं। शून्य ही अंतिम है, शून्य ही प्रथम है। मिटो ताकि हो सको। खो जाओ ताकि हो जाओ। बूंद जब सागर में खो जाती है तो सागर हो जाती है। और बीज जब मिट जाता है भूमि में तो वृक्ष बन जाता है। मिटने की कला सीखो। धर्म मृत्यु की कला है। और मृत्यु की कला से ही अमृत मिलता है।

'साध तें बड़ा न कोई। कहि राम सुनावत सोई॥'

राम जो कहते हैं, साधु वही दोहराता है। साधु अपनी तरफ से बोलता नहीं, साधु के भीतर बोलने वाला कोई बचा नहीं। साधु वही कहता है जो राम उसके कान में फूंक देते हैं। राम जो बोलना चाहते हैं, उससे बोल देते हैं। साधु के पास अब स्वयं का कहने को, निवेदन करने को कुछ भी नहीं है। साधु तो मौन है। इसलिए साधु का दुसरा नाम मुनि है। साधु तो चुप है। साधु तो अब बोलता ही नहीं। जब परमात्मा बोलते हैं तो बोल फूट जाते हैं, जब परमात्मा नहीं बोलते तो मौन रह जाता है।

साधु से बड़ा कोई भी नहीं है। उसके वचन अमृत हैं। क्योंकि उसके वचन उससे ही नहीं आते। इसलिए हमने कहा है कि वेद अपौरुषेय हैं। पुरुष के द्वारा रचे हुए नहीं। इसका यह मतलब मत समझ लेना कि कोई परमात्मा पार्कर फांउन्टेन पेन में भरकर स्याही और लिखता है। यह मत समझ लेना कि परमात्मा उतरता है

और रचता है तुम्हारे वेद । नहीं, इसका अर्थ है । इसका अर्थ है कि ऋषि मिट गये पुरुष की भांति । उनकी अपनी कोई सत्ता न रही । उन्होंने द्वार खोल दिया । परमात्मा बहे, तो वे राजी हैं उसको बहाने को; न बहे, तो राजी हैं । उनका कोई आग्रह न रहा । ऐसी अनाग्रहपूर्ण अवस्था में परमात्मा बहता है । उसकी धारा धीरे-धीरे बहनी शुरू हो जाती है । तब जो वचन जगे, वे वचन जिनसे आए थे उनके नहीं हैं, इसलिए हम कहते हैं : अपौरुषेय । जैसे परमात्मा ने ही कहे ।

इसलिए कुरान को कहा जाता है : इल्हाम । उद्घोषणा । मुहम्मद तो सिर्फ बहाना हैं । संदेशवाहक । पैगम्बर का अर्थ इतना ही होता है, संदेशवाहक, चिट्ठीरसा । चिट्ठी परमात्मा की है, उसने ही लिखी है, अपने प्यारों के नाम लिखी है; और जो बिल्कुल मिट गया है, उसके हाथ भेजी है । क्योंकि कोरे कागज पर ही लिख कर भेजी जा सकती है । जब तक तुम्हारे चित्त में अपनी लिखावट बनी है, तब तक तुम भरे हुए कागज हो, तुम पर लिखा ही हुआ है बहुत कुछ, इसमें कुछ लिखा नहीं जा सकता । लिखे-लिखाए कागज पर कोई लिखेगा कैसे ? जब तुम चिट्ठी लिखते हो तो स्वच्छ, निर्मल, सूने, कोरे कागज पर लिखते हो । जिनके हृदय कोरे हो गये हैं, जिनमें अहंकार की सब लिखावट, सब तिरछापन मिट गया है, जो अहंकार की वर्णमाला ही भूल गये हैं, उनसे परमात्मा प्रगट होता है । कभी गीता बनकर, कभी कुरान बनकर । अनेक-अनेक ढंगों से प्रगट होता है ।

गीता-कुरान में फिर फर्क क्यों है, लोग पूछते हैं ? अगर परमात्मा ही गीता से बोला और परमात्मा ही कुरान से बोला, तो गीता-कुरान में फर्क क्यों है ?

फर्क परमात्मा के कारण नहीं है । फर्क जिससे बोला है परमात्मा उसके कारण है । मुहम्मद अर्जुन से नहीं बोल रहे हैं । इसलिए फर्क है । चिकित्सक तो दवा देता है न मरीज को देखकर । एक ही हाथ से 'प्रिस्क्रिप्शन' लिखता है । टी. बी. के मरीज को और, सर्दी-जुकाम के मरीज को और । हजार मरीज होते हैं, तो हजार 'प्रिस्क्रिप्शन' लिखता है । कुरान एक 'प्रिस्क्रिप्शन' है, जैसे गीता एक 'प्रिस्क्रिप्शन' है । चिकित्सक तो एक है, लिखने वाला मालिक एक है, लेकिन मरीज अनेक हैं । जो भेद पड़ा है, वह बोलने वाले के कारण नहीं है । यह मत सोचना कि कृष्ण से कोई और परमात्मा बोला । और मुहम्मद से कोई और परमात्मा बोला । परमात्मा एक है, बोलनेवाला एक है, लेकिन जिससे बोला है उसकी बीमारी अलग-अलग है ।

अर्जुन की बीमारी और है । अर्जुन अभिजात है, कुलीन है, सुसंस्कृत है । उस देश में, उस समय में जो श्रेष्ठतम संस्कृति हो सकती थी, श्रेष्ठतम चरित्र हो सकता था, वैसा व्यक्ति है । इससे बोलना और ढंग से होगा । मुहम्मद जिनसे बोले, बेपढ़े-लिखे लोग, ख़ानाबदोश, संस्कृति का जिन्हें कोई पता नहीं, मरना-मारना जिनका

कुल धंधा है, चोरी-चपाटी, लूट-खसोट जिनका काम है, इनसे अगर गीता की भाषा में बोलोगे, तो सिर्फ तुम्हारी मूढ़ता सिद्ध होगी । इनसे इनकी ही भाषा में बोलना होगा । इनकी जरूरत के अनुकूल बोलना होगा ।

परमात्मा सदा तुम्हारी जरूरत के अनकूल रूप लेता है । तुम्हारी जरूरत होती है, वैसी औषधि बन जाता है । परमात्मा अनंत है, इसलिए सभी रूप ले सकता है । समय बदल जाता है, रूप बदल जाते हैं । आज परमात्मा मुहम्मद की तरह नहीं बोल सकता है । दुनिया बहुत और हो गयी । आज अगर परमात्मा मुहम्मद की तरह बोले, कौन सुनेगा ? कोई सुनेगा नहीं । परमात्मा मुहम्मद की तरह बोले तो बड़ा तिथि-बाह्य, 'आउट ऑफ डेट' मालूम पड़ेगा । जैसे कोई पुराना अखबार पढ़ रहे हों, हजार साल पुराना, ऐसा मालूम पड़ेगा । उसकी आज से कोई संगति न रह जाएगी । प्रतिदिन परमात्मा को नयी अभिव्यंजना लेनी पड़ती है, नये संदेश भेजने पड़ते हैं--भूलों के लिए, भटकों के लिए ।

लेकिन परमात्मा सदा पुकारता रहा है । लेकिन पुकार उसकी उन्हीं के द्वार आती है जो कोरे हो गये हैं ।

'साध तें बड़ा न कोई । कहि राम सुनावत सोई ।।'

साधु की सबसे बड़ी खूबी क्या है ? कि वह वही बोलता है जो राम बोलते हैं । उसमें हेर-फेर नहीं करता । उसमें मात्रा भी नहीं बदलता । उसमें रत्ती भर अंतर नहीं करता । उसमें सुधार नहीं करता, संशोधन नहीं करता । जैसा और जो प्रगट होना चाहता है, उसे ठीक वैसा-का-वैसा अभिव्यक्त हो जाने देता है ।

इसलिए परमात्मा की वाणी को जगत में लाने वाला व्यक्त हमेशा कठिनाई में पड़ जाता है । क्योंकि वह राजनैतिक चालबाजी नहीं करता । कुछ बचा ले, कुछ बदल दे, कुछ थोड़ा ढंग से कह दे; कुछ ऐसा कर ले, कुछ वैसा कर ले; चार शब्द और जोड़ दे, चार शब्द और घटा ले; तो झंझट बच जाए ।

जीसस झंझट से बच सकते थे । सूली न लगती, यह हो सकता था । जरा थोड़े-से फर्क करने जरूरी थे । जरा-से फर्क, ज़्यादा फ़र्क करने की जरूरत न थी । परमात्मा जीसस के भीतर से बोल रहा था जिस ढंग से, जीसस उसी ढंग से बोले । रत्ती भर फर्क न किया । मित्रों ने समझाया भी, प्रेमियों ने सलाह भी दी, जरा से फर्क कर लो, यह दो-चार बातें मत कहो, कोई अड़चन न आएगी । मगर जीसस ने कोई फर्क न किये । जीसस फर्क कर नहीं सकते, क्योंकि जीसस हैं ही नहीं । यह होशियारी नहीं हो सकती अब । होशियारी करने वाला अहंकार जा चुका । सूली पर लटक गये । सूली स्वीकार थी, सुधार स्वीकार नहीं था ।

महावीर में परमात्मा नग्न रहना चाहता था तो महावीर नग्न रहे । समझाया होगा, बुझाया होगा लोगों ने । गांव-गांव से खदेड़ा महावीर को । क्या बिगड़ता था

एक चादर ओढ़ लेते ! कोई पाप न हो जाता। कोई नर्क न चले जाते। मगर परमात्मा नग्न रहना चाहता था। परमात्मा यही संदेश देना चाहता था। उस घड़ी में, उस पल में यही सार्थक बात उसे कहनी थी। यही निर्दोष स्वर उसे गुंजाना था। तो महावीर ने फिर हेर-फेर न किया।

राजनीतिज्ञ सोच-सोचकर बोलता है । सुननेवाले को क्या प्रीतिकर लगेगा वही बोलता है। इसकी बहुत चिन्ता नहीं करता कि जो मैं बोल रहा हूं, वह सच है या झूठ। उसकी सारी चिंता यही होती है: सुननेवाले को प्रीतिकर क्या है? झूठ प्रीतिकर है, तो झूठ बोलो। इसलिए तुम्हें आश्वासन देता है। तुम सोचते हो कि आश्वासन पूरे क्यों नहीं करता? वह तो देते वक्त भी कभी पूरा करने का सवाल नहीं था। वह तो दे ही इसलिए रहा था कि आश्वासन तुम्हें प्रीतिकर लगते हैं। वह तुम्हारी पीठ थपथपा रहा था। उसे तुम्हारा समर्थन चाहिए। तुम्हें सत्य मिले, इसकी उसे चिंता कहां है? समर्थन चाहिए उसे तुम्हारा। तुम अगर झूठ से राजी हो तो वह झूठ से राजी है।

इसलिए राजनीतिज्ञ मंदिर भी चला जाता है, मस्जिद भी चला जाता है; फकीर-पीर-औलिया की कब्र पर भी चला जाता है, मज़ार पर भी चला जाता है, गणेश-उत्सव में भी सम्मिलित हो जाता है; जैन बुलाएं तो वहां व्याख्यान दे आता है, हिन्दू बुलाएं तो वहां व्याख्यान दे आता है, गीता की प्रशंसा करवाओ तो गीता की कर देता है; तुम जो कहो, तुम्हारी जो मर्जी! उसकी चिंता इतनी ही है कि तुम उससे राजी रहो। वह तुम्हें नाराज नहीं करना चाहता। उसकी जिंदगी तुम पर निर्भर है। तुम नाराज हुए कि वह गया।

संत इसलिए हमेशा मुश्किल में पड़ जाते हैं, क्योंकि वे वही कहते हैं जो परमात्मा की मर्जी है।

भेद को समझ लेना।

तुम्हारी मर्जी का कोई सवाल ही नहीं है। तुम सुनो तो, न सुनो तो; राजी होओ तो, नाराज हो जाओ तो; पत्थर मारो, सूली लगाओ तो; सब चलेगा; लेकिन उसकी मर्जी तो परमात्मा की मर्जी है। परमात्मा जो बोलना चाहता है, वही। और परमात्मा जो बोलना चाहता है, वह अक्सर तुम्हारे अतीत के विपरीत जाएगा। तुमने जो एक जिंदगी बना ली है, एक ढंग बना लिया है, सोचने-समझने का, उसके विपरीत जाएगा। क्योंकि परमात्मा तुम्हारे विकास के लिए बोल रहा है।

विकास का मतलब होता है, पुरानी सीढ़ी छोड़नी पड़ेगी, नयी सीढ़ी पर कदम रखने होंगे। विकास का मतलब होता है, पुराने आवरण तोड़ने पड़ेंगे, पुराने भवन गिराने होंगे, नये मंदिर बनाने होंगे। विकास का अर्थ होता है, नये का स्वागत। परमात्मा सदा नितनवीन है, नितनूतन है। और तुम पुराने से जकड़े होते हो। और

तुम पुराने से इतने जकड़े होते कि तुम्हारा सारा न्यस्त स्वार्थ पुराने से बंधा होता है। और परमात्मा सदा नयी खबर लेकर आ जाता है। सदा नयी सुबह लेकर आ जाता है। सदा नयी कलियों को खिलाता हुआ, नये सूरजों को उठाता हुआ। और तुम पुराने में इतने लिप्त हो कि तुम कहते हो कि नहीं-नहीं, पुराना ही ठीक था, हम पुराने से बामुश्किल तो राजी हो पाए थे!

लेकिन परमात्मा एक पल भी पुराने के साथ नहीं है। यह बात तुम समझ लेना। परमात्मा सूख गयी पत्ती के साथ नहीं है। नहीं तो पत्ती गिरती नहीं। पत्ती गिर गयी है सूख कर, परमात्मा ने उसका साथ छोड़ दिया है, इसीलिए गिर गयी है। परमात्मा तो नयी कोंपल के साथ है, वह जो अभी-अभी ऊग रही है, जो अभी-अभी फूट रही है; कोमल है, नाजुक है, नयी है, उसके साथ है। तुम पुरानी पत्तियां सम्हाल कर रख लेते हो। तुम्हारी पुरानी पत्तियों में कोई प्राण नहीं रह गये हैं। तुम कब्रों की पूजा करते हो। परमात्मा जीवन है। तुम मुर्दों की पूजा करते हो। परमात्मा अमृत है। तुम मृत्यु के आराधक हो।

तुम्हें पता है मनोवैज्ञानिक क्या कहते हैं कि आदमी मुर्दों की पूजा क्यों करता है? और तुम्हें पता है, जब कोई मर जाता है तो बुरे-से-बुरे आदमी के संबंध में भी फिर हम बुराई नहीं करते। हम कहते हैं, भाई मर गया, अब उसकी प्रशंसा करो! मरे हुए आदमी की प्रशंसा की जाती है। बुरे-से-बुरे आदमी की भी। लोग दो शब्द प्रशंसा में कहते हैं।

मैंने सुना है, एक आदमी मरा। गांव भर उसको जिंदगी भर गाली दिया था। गांव भर उससे परेशान था। लेकिन फिर भी सारा गांव उसे मरघट पहुंचाने गया। फूलमालाएं लोगों ने पहनायीं। उसकी आत्मा भी उड़ती-उड़ती ऊपर अपनी अर्थी के साथ गयी; बड़ा हैरान था! सोचा नहीं था उसने कभी कि गांव के लोग इस तरह आंसू बहाएंगे! इस तरह फूल चढ़ाएंगे! वह तो कहने लगा अगर मुझे पता होता, अपने ही मन में कहने लगा अगर मुझे पता होता, तो मैं पहले ही मर जाता। अगर यह होता था तो!

अमरीका का एक बहुत अद्भुत आदमी था—अकेला आदमी इतिहास का जिसने अपनी मौत की खबर पढ़ी। मरने के पहले उसने अपने सेक्रेटरी को बुला कर कहा कि खबर करदो कि मैं मर गया। सेक्रेटरी ने कहा, आप होश में तो हैं? . . . डॉक्टरों ने कह दिया है कि बस चौबीस घंटे से ज्यादा नहीं जी सकता है, बस आखिरी घड़ी करीब है। . . . पर उसने कहा, तुम फिकर मत करो, मैं बिलकुल होश में हूं। मैं अपने मरने की खबर पढ़ना चाहता हूं कि लोग मेरे बाबत क्या कहते हैं? जिंदगी में तो मेरे संबंध में लोगों ने कुछ अच्छा कभी कहा नहीं, चित्त मेरा खिन्न है, मैं जरा देखना चाहता हूं कि मरने के बाद लोग क्या कहते हैं?

खैर, खबर कर दी गयी, अखबारों में खबरें छप गयीं, सम्पादकीय लेख लिखे गये--वह आदमी करोड़पति था । इसीलिए तो लोग गाली देते थे, जिंदगी भर से उसके खिलाफ थे । बड़ी प्रशंसा के गीत लिखे गये कि महादाता था, दानी था; ऐसा, वैसा । पहले लोग कहते थे : चोर, शोषक, बेईमान, धोखेबाज, पाखंडी ।

मरने के पहले उसने जब अखबारों में सम्पादकीय देखे और अपनी तस्वीरें देखीं, उसे खुद ही भरोसा न आया--क्या यह मेरे ही संबंध में ये बातें कही जा रही हैं ? हालांकि लोग मुझे गालियां देते थे, मुझे अच्छा न लगता था, लेकिन मैं जानता हूं वे ठीक कहते थे । अब यह बिल्कुल सरासर झूठ है । हालांकि मुझे अच्छा लग रहा, उसने कहा, बहुत अच्छा लग रहा है, बहुत गुदगुदी मालूम होती है और मर रहा हूं निश्चित होकर ।

और उसने अपने सेक्रेटरी को कहा कि बुला लो फोटोग्राफरों को और अपनी ही अखबार में मरने की खबर पढ़ते हुए मेरे चित्र निकलवा लो । फिर मेरे मरने के बाद फिर खबर छपे कि मैं दुनिया के, मनुष्यजाति के इतिहास का पहला और आखिरी आदमी हूं जिसने अपनी मौत की खबर खुद पढ़ी ।

मर जाने के बाद हम क्यों प्रशंसा करते हैं ? मनोवैज्ञानिक कहते हैं, डर के कारण । आदमी सदा से भयभीत रहा है मुर्दों से, भूत-प्रेतों से । अब जैसे कोई नेताजी मर गये ! जिंदगी भर तो उन्होंने सताया ही, अब तुम्हें और डर लगता है कि अब मारे गये ! अब यह देह से भी मुक्त हो गये, अब यह दीवाल पार कर जाएं । रात छाती पर चढ़ जाएं ! कि महाराज ऐसा मत करना !

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हम मुर्दों की प्रशंसा करते हैं भय के कारण । पुराना भय है कि मरा हुआ आदमी, पता नहीं अब क्या करे ! पत्नी ने जिंदगी भर सताया या पति ने जिंदगी भर सताया, अब मर गये, अब रो लेती है पत्नी, छाती पीटती है—भीतर-भीतर खुश भी होती है कि भले गये; जिंदगी भर यही चाहती थी कि राम जी कब उठा लें; अब राम जी ने उठा लिया तो रोती है--मगर डरती भी है, घबड़ाती भी है, कंपती भी है । क्योंकि वैसे ही यह दुष्ट था आदमी और अब यह मर भी गया, अब यह दिखायी भी नहीं पड़ेगा । अब यह घुस आए रात अंधेरे में और... ...

मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी पत्नी से कहा कि मेरी बड़ी इच्छा है यह बात जानने की कि मरने के बाद लोग बचते हैं या नहीं बचते ? तो हम में से जो भी पहले मर जाए, वह वायदा करे कि तीसरे दिन, लाख अड़चनें हों मगर चेष्टा करेगा संपर्क साधने की । तीसरे दिन आ जाए, दरवाजे पर दस्तक दे, बस इतना कम-से-कम कह जाए कि हां मैं हूं । तो भरोसा तो आ जाए । मुल्ला और मुल्ला की पत्नी ने, दोनों ने तय कर लिया कि ठीक है, जो भी पहले मरे वह तीसरे दिन आकर दरवाजे पर दस्तक दे

और अंदर आकर इतना कहे दे कि मैं जिंदा हूं और आदमी मरने से ही मरता नहीं ।

फिर मुल्ला कुछ सोच में पड़ गया, फिर उसने कहा, एक बात ख्याल रख, अगर तू पहले मर जाए तो दिन में ही आना, रात में नहीं । ऐसे भी मैं रात घर में रहूंगा नहीं । तेरी वजह से ही घर आना पड़ता है रात । मजबूरी में घर आना पड़ता है रात । वैसे भी मैं घर रहूंगा नहीं, तू पक्का रख ! और रात अगर रहूं भी, तो रात तू आना मत । क्योंकि रात मुझे डर लगता है । और अंधेरे में घर में अकेला और तू आकर दस्तक देने लगे ! भरे उजाले में आना, अच्छा तो दफ्तर में आना । तो मुझे भी प्रमाण मिल जाएगा, बाकी लोगों को भी प्रमाण मिल जाएगा ।

जिसको तुम जिंदा छाती से लगाते थे, वह मुर्दा होकर, मरकर तुम्हारा हाथ हाथ में ले ले, तुम्हारे प्राण छूट जाएंगे एकदम ।

इसलिए मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी मृत्यु के भय के कारण मुर्दा की प्रशंसा करता है । पूजा के फूल चढ़ाता है ।

ये तुम जो पितृ-पक्ष इत्यादि मनाते हो, इसका मतलब तुम्हें चाहे पता हो या न हो ! इसका मतलब है कि हे पिता जी, अब आप उसी तरफ रहना ! यहां सब ठीक चल रहा है । श्राद्ध किये दे रहे हैं । जिंदगी भर जिनकी श्रद्धा में दो फूल नहीं चढ़ाए थे, मरने पर लोग उनका श्राद्ध करते हैं ! गया जाते हैं, श्राद्ध करने ! अगर पिता जिंदा होते और कहते, बेटा, मुझे गया ले चलो, तो कोई ले जाने को राजी नहीं था--जिंदा पिता को कोई गया ले जाने को राजी नहीं था, कि काहे के लिए, क्या जरूरत है ? फिजूलखर्ची करवाना है ! शांति से घर में बैठो । तुम्हें बुढ़ापे में और न-मालूम कहां-कहां के ख्याल आते हैं ! मगर पिता जी चल बसे, फिर बेटा जी गया जाते हैं ! डर, कि अब किसी तरह छुटकारा करो इनका; जो कुछ लेना-देना है, निपटारा करो; कहीं आ-वा न जाएं !

मनुष्य डरता है, इसलिए मुर्दे की पूजा करता है । जिंदा का सम्मान नहीं है, जीवन का सम्मान नहीं है, मृत्यु का भय है ।

तुम परमात्मा को दो ढंग से खोज सकते हो । एक तो मृत्यु का भय । उससे तुम परमात्मा को खोजने चलो तो तुम्हारी खोज प्रथम से ही गलत हो गयी । और एक जीवन का प्रेम । उससे तुम परमात्मा को खोजने चलो तो तुम्हारे कदम ठीक रास्ते पर पड़ने लगे ।

मैं तुम्हें जीवन का प्रेम सिखाना चाहता हूं । मैं तुम्हें चाहता हूं तुम फूलों से संबंध जोड़ो, तुम इस जगत के सौन्दर्य से संबंध जोड़ो, तुम्हारे जीवन में प्रेम उमगे । और इस जगत में जो सर्वाधिक प्रेम करने योग्य स्थल है, वह है किसी ऐसे संत को खोज लेना जो मिट गया हो । वहां सर्मपित हो जाना ।

'साध तें बड़ा न कोई । कहि राम सुनावत सोई ।।'

'राम कही, हम साधा।' . . .

जगजीवन कहते हैं, राम ने कहा और हमने साधा। उन्होंने जो कहा, वैसा साधा। हमने कुछ उसमें हेर-फेर न किया।

'राम कही हम साधा। रस एकमता औराधा।'

और इसी तरह फिर एकरस हुए, आराधना जमी, प्रार्थना पकी। 'रस एकमता औराधा'। फिर हम धीरे-धीरे एक ही हो गये। राम ने जो कहा, वही हमने किया। जो करवाया, वही किया। जो बुलाया, वही बोला। जैसा नचाया, वैसे नाचे। फिर धीरे-धीरे एक ही हो गये——क्योंकि भेद ही क्या रहा? जब हम राम के हाथ में ऐसे हो गये जैसे कोई कठपुतली! नचानेवाला नचाए तो नाचे, रुकाए तो रुके। जब कोई ऐसे अनन्य भाव से एक हो जाता है, तो रस सधता है; तब तारतम्य बैठता है; तब तुम्हारी वीणा उसकी वीणा के साथ बजती है। उसकी वीणा के साथ बजने का नाम ही आनंद है।

अलग-अलग दुख है, साथ-साथ सुख है। उससे अलग नर्क है, उससे जुड़कर स्वर्ग है। जो उसके साथ एकरस हुआ, वही स्वर्ग में हुआ। और जो उसके साथ दूर-दूर रहा, अपनी होशियारी बनाता रहा, अपनी चलाने की कोशिश करता रहा——और ध्यान रखना, तुम प्रार्थना भी करते हो तो अपनी चलाने की कोशिश। तुम जाकर मंदिर में परमात्मा से यही कहते हो कि मेरी पत्नी की तबियत खराब है, ठीक करो! तुम क्या कह रहे हो? तुम यह कह रहे हो कि तुझे होश है, कुछ समझ है, कुछ अकल है, मेरी पत्नी को और बीमार किया——और मेरी पत्नी को! और बीमार ही करना हो तो इतनी पत्नियां दुनिया में हैं। ठीक करो! मेरी चलने दो! तुम्हारी प्रार्थना का अगर सार-निचोड़ खोजा जाए...मैंने हजारों लोगों की प्रार्थनाएं सुनी हैं, उनका सार-निचोड़ इतना है कि मेरी मर्जी पूरी हो। तू उसे पूरा कर। और यह प्रार्थना हुई कि मेरी मर्जी पूरी हो! यह तो परमात्मा से सेवा लेने की उत्सुकता हुई, सेवा करना न हुआ। यह तो परमात्मा को झुकाना हुआ अपने चरणों में, उसके चरणों में स्वयं झुकना न हुआ।

फिर प्रार्थना क्या है?

प्रार्थना का अर्थ है: तेरी मर्जी पूरी हो! जीसस के आखिरी वचन यही थे इस पृथ्वी पर। सूली पर लटके क्षण आखिरी बात जो उन्होंने कही थी, वह यही थी कि तेरी मर्जी पूरी हो। यह प्रार्थना। सूली पर लटके हुए भी यह कहा कि तेरी मर्जी पूरी हो। अगर तू सूली दे रहा है, तो यही सिंहासन है। अगर तू सूली दे रहा है, तो बस कांटा भी फूल है। जहर भी अमृत है। तेरे हाथ से जहर भी मिल जाए तो अमृत है। तेरी मर्जी पूरी हो। और ऐसी जब घड़ी आ जाती है कि तुम्हारी र्जी और परमात्मा की मर्जी में कोई भेद नहीं रह जाए; उसकी मर्जी ही तुम्हारी मर्जी,

ऐसी अनन्यता, तो जगजीवन का वचन बड़ा प्यारा है– 'रस एकमता औराधा। अनन्यभाव का आराधन हो गया। यह है प्रार्थना का स्वरूप। अनन्यभाव। नहीं अन्य हूं तुमसे। तुम्हारी ही किरण हूं, तुम हो सूरज। तुम्हारी ही बूंद हूं, तुम हो सागर। तुम्हारी ही एक छोटी-सी झलक हूं, तुम हो मालिक। पूरे प्राणों से जो कह सके: याऽऽमालिक! तेरी मर्जी पूरी हो! फिर तुम्हारी प्रार्थना में मांग नहीं रह जाती, धन्यवाद रह जाता है, केवल धन्यवाद। और जब प्रार्थना में केवल धन्यवाद रह जाए तब प्रार्थना का मजा और, रंग और, सौन्दर्य और, उत्सव और। फिर जीवन एक नये आयाम में गति करता है, उड़ता है——ऊपर और ऊपर, अतिक्रमण कर जाता है सारी सीमाओं का। लेकिन परमात्मा पर छोड़ो सब।

ठीक कहते हैं जगजीवन: 'राम कही, हम साधा'। कितने सीधे-साफ छोटे-छोटे वचन हैं। पर उपनिषदों को मात कर दें। वेद झेंपें। कुरान फीकी मालूम पड़ने लगे। 'राम कही, हम साधा'। इसको और सरलता से कैसे कहोगे? इसको और सरल नहीं किया जा सकता। एकमता, रस एकमता औराधा।

कई बिजलियां बे-गिरे गिर पड़ी हैं
इन आंखों को अब आ गया मुस्कराना

फिर तो बिजलियां भी गिरें तो भी फर्क नहीं पड़ता। आंखों को मुस्कराना आ गया हो।

कई बिजलियां बे-गिरे गिर पड़ी हैं
इन आंखों को अब आ गया मुस्कराना

अब कोई चिन्ता नहीं है।

एक बुलबुल है कि है महवे-तरन्नुम अब तक
इसके सीने में है नग्मों का तलातुम अब तक

और एक झलक मिल जाए तो फिर उसका नग्मा गूंजता ही रहता। एक झलक मिल जाए, ज्योति जल ही जाती है। एक बूंद उसके रस की तुम में उतर जाए, फिर तुम वही नहीं हो जो तुम थे। दुनिया समझेगी वही। क्योंकि दुनिया तो तुम्हें बाहर से देखती है। तुम्हारा नाक-नक्शा वही रहेगा, चाल-ढाल वही रहेगी, मगर भीतर सब बदल गया। तुम वही नहीं हो। तुम्हारे सीने में एक नया नग्मा आ गया। एक नयी तरन्नुम, एक नयी गीत की शैली आ गयी। तुम्हारे भीतर अनाहत का नाद होने लगा।

'हम साध, साध हम माहीं। कोउ दूसर जानै नाहीं॥'

जगजीवन कहते हैं, अब हमको पता चला कि उसमें और हममें रत्ती भर भे नहीं है। हम उसमें हैं, वह हममें हैं! 'कोउ दूसर जानै नाहीं'। दूसरा दिखायी ही नहीं पड़ता।

इसको कहने के दो ढंग हो सकते हैं । एक ढंग है कि तू ही है, मैं नहीं । यह भक्त का ढंग है । सूफी का । एक ढंग है, 'अहं ब्रह्मास्मि', मैं ही ब्रह्म हूं । यह ज्ञानी का ढंग है । मगर दोनों में बात एक ही है : अब दो नहीं हैं । अब तुम्हारी मर्जी, चाहे इस स्थिति को मैं कहो, जैसा कृष्ण ने कहा : मामेकं शरणं व्रज, या इस स्थिति को तू कहो, जैसा मुहम्मद ने कहा कि तू ही है; जैसा जलालुद्दीन रूमी ने कहा कि तू ही है ।

रूमी का गीत है--

एक प्रेमी अपनी प्रेयसी के द्वार पर दस्तक देता है और भीतर से पूछा जात है : कौन है ? और प्रेमी कहता है, क्या मुझे पहचाना नहीं ? मैं तेरा प्रेमी । और भीतर सन्नाटा हो जाता है । फिर दस्तक पर दस्तक देता है, और पीछे से आवाज आती है कि अब व्यर्थ दरवाजा मत तोड़ो; इस घर में दो के लिए जगह नहीं है । यह घर छोटा है । जैसे कबीर ने कहा न, 'प्रेम गली अति सांकरी तामें दो न समायं', ऐसे भीतर से आवाज आयी कि यह घर बहुत छोटा है, इसमें दो न समा सकेंगे, इसमें एक ही समा सकता है । अभी जाओ, अभी तैयार नहीं हुए, अभी और निखरो ! अभी और पको ! और प्रेमी चला गया ।

और फिर वर्ष आए और गये और फिर उसने बड़ी तपश्चर्या की, अपने को गलाया । फिर वर्षों बाद द्वार पर दस्तक दी । फिर वही प्रश्न : कौन है ? और अब उसने कहा कि तू ही है । और रूमी कहते हैं कि द्वार खुल गये ।

ये दो उपाय हैं । एक है ज्ञानी का उपाय : मैं ही हूं और कुछ भी नहीं । इसका एक खतरा है कि अहंकार जन्म जाए । बिना जाने ही कोई कहने लगे : अहं ब्रह्मास्मि, अनलहक, मैं ही हूं । इसका खतरा है । अहंकार के जग जाने की सम्भावना है । और ऐसा खतरा हुआ है । इस देश में बहुत-से अहंकारी पैदा हो गये । क्योंकि शास्त्र का सबूत है उनके लिए : अहं ब्रह्मास्मि । कोई भी दावा कर सकता है । इस खतरे से बचने के लिए इस्लाम ने बड़ी कोशिश की कि यह खतरा पैदा न हो पाए । इसलिए मंसूर को फांसी लगा दी । क्योंकि मंसूर ने कहा : 'अनलहक', मैं सत्य हूं, मैं परमात्मा हूं । सूली लगा दी; क्योंकि यह खतरा अहंकार पैदा न करवा दे ।

लेकिन दूसरी बात का भी खतरा है । जब तुम कहते हो, तू ही है, मैं नहीं हूं, तो आसक्ति पैदा हो सकती है; दीनता पैदा हो सकती है; हीनभाव पैदा हो सकता है । वह भी हो जाता है । और तू ही है, मैं नहीं हूं । इसके खतरे हैं ।

दोनों की सुविधाएं हैं, दोनों के खतरे हैं । जिसको खतरा ही उठाना है, वह किसी तरह से खतरा उठा लेगा । और जिसको सुविधा उठानी है, वह किसी तरह से भी सुविधा उठा लेगा । इसलिए मैं कहता हूं, दोनों ठीक हैं । सब तुम पर निर्भर

है । सब कुछ इस पर निर्भर करता है कि तुम अगर सच में बदलने को उत्सुक हुए हो, तो कोई खतरा नहीं--किसी बात में कोई खतरा नहीं । तुम बदलने को ही उत्सुक नहीं हो, तो फिर सभी बातों में खतरा है । फिर तुम किसी भी चीज से खतरा उठाओगे । तुम्हें अमृत भी मिल जाएगा तो तुम जहर बना लोगे । तुम्हारे पीने का सलीका ही गलत है ।

'हम साध, साध हम माहीं ।'

वह परमात्मा, जो परम साध्य है, उसमें हम हैं, वह हममें है । 'कोउ दूसर जानै नाहीं ।।' कोई दूसरा दिखायी नहीं पड़ता, दूसरा जानने में नहीं आता । एक अर्थ । और इस वचन का दूसरा भी अर्थ है कि यह घटना तो हमारे भीतर घट रही है, दूसरा कोई इसको नहीं जान पा रहा है । यह राज तो भीतर खुल रहा है, ये पर्दे तो भीतर उठ रहे हैं, ये घूंघट तो भीतर खुल रहा है; मूरत प्रगट होती जा रही है, रस बहने लगा है । मगर बड़ा मजा है, दुनिया में किसीको पता ही नहीं चल रहा है । पास ही जो बैठा है, उसको भी पता नहीं चल रहा है । पति को हो जाए, पत्नी को पता नहीं चलता । पत्नी को हो जाए, पति को पता नहीं चलता । गहरे-से-गहरे मित्र को हो जाए, तो भी पता नहीं चलता । इतना आन्तरिक है । वहां किसी दूसरे की गति नहीं है । यह भी अर्थ हो सकता है ।

'कोउ दूसर जानै नाहीं' । एक अर्थ कि वहां कोई दूसरा नहीं जाना जाता, फिर उसे मैं कहो, तू कहो, फर्क नहीं पड़ता । और दूसरा अर्थ, कि जिसको यह घटना घटती है, रस एकमता औराधा, जिसके भीतर यह एकरस जन्मता है, जिसके भीतर परमात्मा और आत्मा एक हो जाती है, जिसके भीतर मैं और तू अपनी सीमाएं छोड़ देते हैं, और आलिंगन में आबद्ध हो जाते हैं, सदा के लिए एक हो जाते हैं, जिसके भीतर यह मिलन घट जाता है, बाहर किसीको कानोंकान खबर नहीं होती ।

इसलिए कई बार यह हो सकता है कि तुम किसी बुद्धपुरुष के पास भी आ जाओ संयोग से और यूं ही गुजर जाओ, तुम्हें पता भी न चले । बहुत सजग होओ, बहुत सोच-सोच कर चलो, बहुत भावुक होओ, हृदय को खुला रखो, तो ही शायद थोड़ी-सी प्रतीति हो । वह प्रतीति भी बस एक झलक की भांति होगी । बड़ी दूर की झलक । जो बुद्धि से बहुत भरे हैं, उन्हें तो बिलकुल पता नहीं चलता । उन्हें तो पता ही नहीं चलता उनका तो सद्गुरु से मिलना ही नहीं होता । लेकिन भाव से, प्रेम से भरे लोग थोड़ी-थोड़ी प्रतीति करने लगते हैं । सद्गुरु के करीब उन्हें रोमांच हो आता है । उनकी आंखें गीली हो जाती हैं । उनके हृदय में धड़कन बढ़ जाती है । उनके भीतर ऊर्जा का प्रवाह उठने लगता है । जैसे कोई एक वीणा को बजाए और दूसरी वीणा ऐसे ही रखी हो कमरे में, कोई छुए भी न, तो पहली वीणा के बजते ही दूसरी वीणा के तार भी झनझनाने लगते हैं ।

यह तुमने देखा ? करके देखना ।

द्वार-दरवाजा बंद कर देना, एक कोने में एक वीणा रख देना, तुम उसी वीणा के थोड़ी दूर बैठकर दूसरी वीणा को छेड़ देना । जैसे ही झंकार कमरे में गूंजने लगेगी, अचानक तुम पाओगे, जिस वीणा को तुमने छेड़ा भी नहीं है, उसके तार भी कंपने लगे हैं । ऐसे ही तार कंप जाते हैं भाव के । अगर मेरी वीणा बज रही है और तुम मेरी बजती वीणा के पास अपने हृदय को छोड़ने को राजी हो जाओ--क्षणभर को भी, अपनी बुद्धि को हटा लो--क्षण भर को भी, तो कुछ तार कंप जाएंगे । उन तारों के कंपने से ही संकेत मिलता है । श्रद्धा का जन्म होता है ।

'जिन दूसर करि जाना । तेहि होईहिं नरक निदाना ।। '

जिन्होंने परमात्मा को दूसरा करके जाना है वे नर्क में हैं और नर्क में ही पड़े रहेंगे । देखते हो नर्क की यह परिभाषा ? यह प्यारी परिभाषा ! पाप के कारण नर्क नहीं है, कि तुमने बुरे काम किये हैं, इसलिए नर्क । और अच्छे काम किये हैं इसलिए स्वर्ग नहीं । स्वर्ग और नर्क का यहां अर्थ ही और है । 'जिन दूसर करि जाना', यही एक पाप है--महापाप कहो--कि जिसने अपने को परमात्मा से दूसरा करके जाना है । जिसने अपने को मैं बना रखा है । जो कहता है, मैं अलग हूं । मैं झुकूंगा नहीं, मैं लड़ूंगा, मैं अलग हूं, मैं जीतकर रहूंगा । मैं विजय-यात्रा पर निकला हूं । जिसके मन में ऐसी धारणा है, जो परमात्मा से संघर्षरत है, वही नर्क में जी रहा है और नर्क में पड़ेगा ।

' जिन दूसर करि जाना । तेहिं होईहिं नरक निदाना ।।
जगजीवन चरन चित लावै । सो कहिके राम समुझावै ।।'

राम की तरफ से एक ही खबर आ रही है : जगजीवन चरन चित लावै । झुको चरणों में । लीन हो जाओ चरणों में । विलीन हो जाओ चरणों में । समर्पित हो जाओ । राम की तरफ से एक ही खबर आ रही है--सो कहिके राम समुझावै--बस उसकी तरफ से एक ही पुकार है : मिटो, ताकि मैं तुम्हारे भीतर पूरा-पूरा प्रगट हो सकूं । हटो, राह दो, द्वार दो, ताकि मैं तुम्हारे हृदय में विराजमान हो जाऊं । तुम इतने अकड़कर बैठे हो भीतर, हटते ही नहीं ! पत्थर होकर बैठे हो भीतर, गलते ही नहीं । गलो, पिघलो । और जिन चीजों से भी गलना और पिघलना हो सके, उन-उन चीजों का उपयोग कर लो ।

सत्संग सबसे महत्त्वपूर्ण है जहां गलना हो जाता है । औरों को गलते देखकर तुमको भी गलने की आकांक्षा, अभीप्सा जग जाती है । औरों को पिघलते देखकर तुम भी पिघलने लगते हो । सत्संग ऐसा है जैसे सुबह सूरज ऊगे और बर्फ पिघलने लगे । सत्संग ऐसा है जहां कोई सूरज ऊगा है और तुम्हारे अहंकार की बर्फ पिघल सकती है । अंधेरे में रहोगे तो जमी रहेगी । कभी-कभी सूरजों से मुलाकात करो ।

कभी-कभी रोशनी के आमने-सामने हो जाओ । बचते न फिरो । लोग बचते फिर रहे हैं । लोग सत्संग से बहुत डरते हैं, बड़े भयभीत होते हैं । उनके भय का कारण भी है, क्योंकि सत्संग मे जाने का मतलब होता है कि फिर पता नहीं लौटना हो पाएगा कि नहीं । फिर पता नहीं, चित्त वहीं न रह जाए, हृदय वहीं न छूट जाए । और अगर सत्संग में गये तो यह होने ही वाला है । भय ठीक ही है ।

गऊ निकसि वन जाहीं । बाछा उनका घर ही माहीं ।।
तृन चरहिं चित्त सुत पासा । गहि जुक्ति साध जग-वासा ।।

जिसने सत्संग किया है, वह फिर संसार में कहीं भी रहे, उसका चित्त सत्संग में लगा रहता है, उसका चित्त वहीं दौड़ता रहता है । उसका मन गुरु के चरणों में ही लगा रहता है ।

और ध्यान रखना, गुरु का अर्थ ही वही होता है, जो अब नहीं है । जिसके होने में अब परमात्मा का ही होना है । इसलिए इस देश में हमने गुरु को भगवान कहा, भगवत्ता दी, परमात्मा कहा । ऐसे गुरुओं को भी हमने भगवान कहा जो भगवान को मानते भी नहीं । जैसे महावीर को भी भगवान कहा । इस देश की छाती बड़ी है--कम-से-कम बड़ी थी, अब चाहे न भी हो ।

अब तो बड़ी सिकुड़ गयी है । महावीर को भी भगवान कह सके हम ! उस व्यक्ति को, जिसने कहा भगवान है ही नहीं । बुद्ध को भी भगवान कह सके हम । उस व्यक्ति को, जिसने कहा भगवान भी नहीं है और भीतर कोई आत्मा भी नहीं है; सब शून्य है । इस शून्यवादी को भी हम भगवान कह सके । क्योंकि हमें पता है, शून्यवाद अगर पूरा हो जाए तो पूर्ण तो आ ही जाता है, उसको लाना नहीं पड़ता । बुद्ध के शून्यवाद से बहुतों के जीवन में पूर्ण उतरा । बुद्ध ने मिटने पर जोर दिया, निषेध पर जोर दिया, विधेय की बात ही नहीं की, क्योंकि विधेय तो हो ही जाएगा । बीमारी चली जाए, स्वास्थ्य तो अपने से आ जाता है । स्वास्थ्य की बात ही क्या करनी ! और स्वास्थ्य की बात भी करो तो क्या करोगे ? बात तो बीमारी की ही हो सकती है । स्वास्थ्य की चर्चा में है क्या ! अगर स्वस्थ हो, कोई पूछे, कहो भाई कैसे हो, तो इतना ही कह सकते हो कि ठीक हैं । इसमें कुछ खास चर्चा है नहीं । लेकिन अपेन्डिक्स का आपरेशन हुआ है, टान्सिल का आपरेशन हुआ है, कि गुर्दे की बीमारी है, तो फिर हजार बातें हैं !

एक महिला एक डॉक्टर के पास पहुंची और उसने कहा, मेरा आपरेशन कर दो । डॉक्टर ने कहा, लेकिन आपरेशन किस बात का और किसलिए ? उसने कहा, किसी भी चीज का कर दो । चूंकि और सब महिलाएं खूब-खूब चर्चा करती हैं, मेरे पास चर्चा करने को कुछ है ही नहीं । कोई कहती है, छः इंच का टांका लगा, अपेन्डिक्स निकलवा दी । कुछ भी निकाल दो ! नहीं तो मैं गूंगी बनी बैठी रहती हूं,

वार्तालाप के लिए कुछ है ही नहीं।

बीमारी हो तो चर्चा का उपाय है। स्वास्थ्य की क्या चर्चा! और बीमारियों के नाम होते हैं, स्वास्थ्य का कोई नाम भी नहीं होता। स्वास्थ्य तो विशेषणहीन है। तुमसे अगर कोई पूछे, कहो, स्वस्थ हो? तुम कहो, हां। वह पूछे, किस प्रकार का स्वास्थ्य? तो तुम क्या उत्तर दोगे? हां, बीमारी होती है तो किस प्रकार की, कौन-सी बीमारी, किस ढंग की? ढंग-ढंग की बीमारियां होती हैं। बीमारियां अनेक, स्वास्थ्य एक।

ऐसे ही अधर्म अनेक, धर्म एक। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन धर्म के नाम नहीं हो सकते। धर्म तो एक है--स्वास्थ्य--अधर्म अनेक हो सकते हैं।

तीन सौ धर्म हैं जमीन पर--और बहुत-से धर्म रहे और मिट भी गये, और बहुत-से आगे होते रहेंगे और बनते और मिटते रहेंगे...लेकिन धर्म कहीं बनता और मिटता है? धर्म तो स्वास्थ्य है। ये जो हिन्दू, जैन, बौद्ध हैं, ये औषधियां हैं। ये किसी बीमारी को मिटाने के उपाय हैं। इनका मूल्य है, औषधि की तरह। इनको धर्म मत कहो। ऐसे ही जैसे कोई आयुर्वेदिक औषधि, कोई एलोपैथिक औषधि, कोई होमियोपैथिक औषधि--जिसको जो रुचे। जिसको जो पचे। और जिसको जिससे लाभ हो जाए। और जिसकी जहां श्रद्धा हो।

अब जिसकी होमियोपैथी पर श्रद्धा है, उसे होमियोपैथी से लाभ हो जाता है। जिसकी श्रद्धा नहीं है, वह कहता है कि शक्कर की गोलियों से क्या होगा? वैज्ञानिकों ने प्रयोग किये हैं इस बात पर और बड़े हैरान हुए हैं: श्रद्धा हो तो शक्कर की गोली से भी लाभ हो जाता है; और श्रद्धा न हो, तो तुम कितनी ही बड़ी दवा दे दो, कोई लाभ न होगा।

अक्सर ऐसा हो जाता है कि डॉक्टर की जितनी ज्यादा फीस हो उतनी जल्दी तुम ठीक हो जाते हो। ज्यादा फीस पर श्रद्धा आती है कि जब इतनी फीस है और इतनी फीस दे कर लोग जाते हैं, तो कुछ राज है! अगर डॉक्टर मुफ्त इलाज करे, इलाज काम ही नहीं आता। लोग कहते हैं, वहां क्या होगा? मुक्त दवा करता है, फिर भी भीड़ नहीं है दवाखाने में! और वहां देखो जहां पचास रुपये फीस देनी पड़ती है, वहां 'क्यू' लगा है। चार-पांच दिन के बाद मौका मिलेगा डॉक्टर के पास जाने का।

जितनी फीस हो डॉक्टर की, उतनी ज्यादा जल्दी बीमारी ठीक होती है। फिर दवा पर जितना भरोसा हो!

कभी-कभी तो ऐसा हो जाता है...एक आदमी ने मुझे कहा--चिकित्सक हैं, बुजुर्ग हैं, बस्तर गये थे। आदिवासियों का इलाका। एक आदिवासी को दूर के जंगल से लोग ले आए थे। बिलकुल मर रहा था, टी. बी. था उसे--साफ जाहिर

टी. बी. था और आखिरी अवस्था में था। और वैद्य के पास कोई इलाज का सामान भी न था, वहां कोई दवा भी न थी। दवा तो दूर, कागज और कलम भी न थी। सो पास में पड़े एक खपड़े पर पत्थर सफेद उठा कर उन्होंने दवा का नाम लिखा और खपड़ा उसे दे दिया; और कहा कि यह दवा ले लेना, रोज सुबह-शाम एक-एक बार और फिर तीन महीने बाद मुझे मिल जाना आकर। वह तीन महीने बाद आदमी आया, बिल्कुल चंगा, हृष्ट-पुष्ट, उसने कहा, बिल्कुल ठीक हो गया, गजब की दवा काम की! फिर से दे दें दवा। तो उस वैद्य ने कहा, दवा मैंने तुम्हें दी नहीं थी, सिर्फ लिखकर दिया था। उसने कहा, क्या कह रहे हो? मैं तो उसी को घोंट-घोंट कर पीता रहा। गरीब आदमी, बेपढ़ा-लिखा आदमी! खपड़े को घोंट-घोंट कर रोज सुबह-सांझ पीता रहा! आप कहते क्या हैं? अमृत था अमृत! फिर तो वह वैद्य मुझसे बोले कि मैं चुप ही रहा, कि अब कुछ कहना ठीक नहीं है, सब गड़बड़ हो जाए, बना-बनाया गड़बड़ हो जाए! मैंने फिर खपड़े पर लिखकर वही दवा का नाम उसको दे दिया कि भई, इसको तू और छः महीने ले ले, अब आने की जरूरत ही नहीं है।

बुद्ध को भी हमने भगवान कहा। हालांकि उन्होंने भगवान को माना नहीं। मगर, जिन्होंने उनके शून्य को समझा, जो उनके शून्य में उतरे, उन्होंने भगवान को जाना।

सारे धर्म औषधियां हैं। इनको धर्म मत समझ लेना। धर्म तो तब होगा, जब इन औषधियों के द्वारा तुम्हारी बीमारी कट जाएगी और तुम्हारे भीतर स्फूर्त होगा स्वभाव। स्वभाव धर्म है। महावीर ने परिभाषा की है: 'वत्थू सहावो धम्म'। वस्तु का स्वभाव धर्म है। तुम्हारा स्वभाव धर्म है। जैसे आग का स्वभाव है: जलाना; यह उसका धर्म है; और पानी का स्वभाव है: नीचे की तरफ बहना; यह उसका धर्म है; ऐसे तुम्हारा स्वभाव है: परमात्मा होना; यह तुम्हारा धर्म है।

धर्म तो एक ही है। अनेक बीमारियां हैं, अनेक औषधियां हैं, औषधि के शास्त्र हैं।

'जगजीवन चरन चित लावै। सो कहिके राम समुझावै ।।'

जो राम ने कहा। इतना ही कहा है राम ने, उस तरफ से एक ही पुकार आती रही है--राम यानी उस तरफ का नाम है। राम से तुम दशरथ-पुत्र राम मत समझ लेना, राम तो सिर्फ नाम है उस तरफ से आती पुकार का। दूर की आती हुई ध्वनि, अनंत की ध्वनि--उसका एक ही इशारा है: झुक जाओ, मिट जाओ, शून्य हो जाओ!

'साध कै गति को गावै'। और एक बार तुम झुको तो तुम्हें पता चले। तब

तुम्हें पता चले कि जो साधुता को उपलब्ध हुआ है, जो वस्तुतः संतत्व को उपलब्ध हुआ है, उसकी गति को कोई और नहीं जान सकता, जब तक कि वह स्वयं भी वैसा न हो जाए।

'साध कै गति को गावै'। कोई बता नहीं सकता, कोई गुनगुना नहीं सकता, कोई गा नहीं सकता। जिसने जाना है, वह भी नहीं कह पाता, बता पाता। तो दूसरे जिन्होंने जाना नहीं, वे तो क्या बताएंगे? तुम साधु को देखकर न समझ पाओगे साधुता क्या है। हां, उसके आचरण से तुम अंदाज लगा लोगे, मगर खतरनाक है। उस अंदाज के कारण बहुत नुकसान हुआ है। लोग देखते हैं कि साधु कैसे उठता, कैसे बैठता, क्या खाता, क्या पीता, क्या पहनता, सब हिसाब-किताब लगा कर वह भी उसी तरह उठने लगते, बैठने लगते, वही खाने लगते, वही पीने लगते--बस चूक हो गयी। तुम्हारी जिंदगी में पाखंड हो जाएगा।

साधु का उठना-बैठना, खाना-पीना कोई बहुत आधारभूत बात नहीं है। अलग-अलग साधु अलग-अलग ढंग से उठते-बैठते, खाते-पीते। बुद्ध के पास जाओगे तो वह वस्त्र पहने हुए हैं, महावीर के पास जाओगे तो वह नग्न हैं। रामकृष्ण के पास जाओगे तो वह मस्ती में बेहोश हो जाते हैं। गिर पड़ते हैं। डॉक्टर तो कहते हैं कि हिस्टीरिया है, या मिर्गी की बीमारी है। बुद्ध के पास तो कभी किसी ने नहीं देखा कि वह गिरे हों, कि बेहोश हो गये हों। मीरा के पास जाओगे तो नाचता हुआ पाओगे, महावीर के पास जाओगे तो बिल्कुल निस्तरंग--कहां नृत्य, कैसा नृत्य? सब ठहरा हुआ, जैसे पत्थर की मूर्ति।

यह आकस्मिक नहीं है कि जैनों और बौद्धों के कारण ही पहली दफा पत्थर की मूर्तियां बनीं दुनिया में। क्योंकि महावीर और बुद्ध में कुछ थोड़ा-सा संगमरमर जैसा ठहरापन था। संगमरमर में उसकी झलक है। दोनों ठहर गये थे। जैसे निस्तरंग जल हो। संगमरमर में थोड़ी झलक है। इसलिए जैनों और बौद्धों ने सबसे पहले मूर्तियां बनायीं। क्योंकि महावीर को जिन्होंने खड़े देखा, बिलकुल निस्तरंग, अकम्प, उनको पत्थर की याद आयी।

महावीर की मूर्ति बन सकती है, मीरा की कैसे बनाओगे? मीरा तो तरंग है, नाचती हुई, अभी यह, अभी वह। मीरा की मूर्ति अगर बनायी हो तो फव्वारे से बनानी पड़ेगी, पत्थर से नहीं बन सकती। उतनी तरंग लानी पड़ेगी। अब मीरा को देखकर तुम नाचने लगना, तुम्हारा नाच झूठ होगा। क्योंकि मीरा के भीतर परमात्मा उतरा है और परमात्मा नाच रहा है, इसलिए मीरा नाच रही है--मर्जी! तुम्हारा नाच, तुम्हारी मर्जी! वहीं झूठ होता है, वहीं पाखंड हो जाता है। महावीर के भीतर परमात्मा उतरा, उसने वस्त्र फेंक दिये। परमात्मा नग्न खड़ा होना चाहा है, परमात्मा नग्न खड़ा हो गया। वह परमात्मा की मर्जी। महावीर को भी

मन में उठा होगा कि कम-से-कम लंगोटी तो लगाए रखो, लेकिन परमात्मा की मर्जी नग्न होने की थी, तो वह नग्न हो गये। और कृष्ण में परमात्मा की मर्जी थी कि मोर-मुकुट बांधे, कि पीताम्बर पहने, कि शृंगार और सौन्दर्य... कृष्ण को भी लगा होगा कि यह जरा ठीक तो नहीं मालूम पड़ता, इससे तो ऐसा लगता है जैसे कोई रासलीला कर रहे हैं! इससे ऐसा लगता है जैसे कोई नाटक-मंडली! यह कुछ जंचता नहीं; मगर करो क्या? परमात्मा की मर्जी, जंचे कि न जंचे!

कृष्ण भी थोड़े उतने ही चौंके होंगे जितने महावीर चौंके होंगे कि यह माजरा क्या है, लंगोटी तो बचने दो! कृष्ण को भी लगा होगा--और यह कोई ज्यादा इनका फासला नहीं था, करीब-ही-करीब थे--कृष्ण को भी लगा होगा। कृष्ण के ही एक चचेरे भाई नेमिनाथ जैनियों के तीर्थंकर हैं। वह नग्न हो गये थे, नेमिनाथ नग्न हो गये थे। चचेरे भाई हैं कृष्ण के। कृष्ण उनके दर्शन को भी गये। बड़े भाई थे। एक तरफ नेमिनाथ हैं जो नग्न हो गये हैं, एक तरफ कृष्ण हैं जो मोर-मुकुट बांधे खड़े हैं। जैसी परमात्मा की मर्जी!

लेकिन तुमने अगर बाहर से आचरण देखकर थोपा, तो वह तुम्हारी मर्जी है, वही पाखंड हो गया, वहीं तुम आ गये। इसलिए आचरण देखकर अनुकरण मत करना अन्यथा तुम थोथे-के-थोथे रह जाओगे।

सत्संग करो। सद्गुरु के हृदय को तुम्हारे हृदय से मिलने दो, डोलने दो, नाचने दो, पिघलने दो। धीरे-धीर वहां से कुछ तुम्हारे भीतर पैदा होगा और तुम्हारे आचरण तक आएगा। तो, तो ही कुछ हुआ। अन्यथा सब पाखंड है, धोखा है।

'साध कै गति को गावै। जो अंतर ध्यान लगावै॥'

कौन समझेगा साधु की गति? जो अपने भीतर अंतर में उतरेगा। जो अंतर ध्यान लगावै, जो बाहर की सब भूल जाए और भीतर बस रहे।

जब गुरु के पास बैठो तो बाहर की सब भूल जाना--भूल ही जाना सारा संसार! बस रह जाना भीतर-भीतर! बस हृदय की धड़कन बन जाना! धड़कन से जरा भी ज्यादा नहीं! धड़कन में ही समा जाना! बस धड़कते ही रह जाना! न शब्द, न वाणी, न विचार, न संसार, न व्यवसाय, न व्यापार, कुछ भी नहीं, सब गया, सिर्फ रह गया धड़कता हुआ दिल। बस उस धड़कते दिल से मिलन हो जाएगा। धड़कता दिल इस परमात्मा के साथ, धड़कते दिल के साथ मिल जाएगा। एक क्षणभर को झरोखा खुल जाएगा। और वहां से उतरेगी किरण! जो अंतर ध्यान लगावै, उसको पता चलता है कि साधु के भीतर क्या हुआ है।

'चरन रहे लपटाई।'...

फिर तो वह एकदम गुरु के चरणों में लिपट जाता है। 'चरन रहे लपटाई'। शब्द देखना, छूता ही नहीं चरण--चरण-स्पर्श करने का मतलब हुआ: किया स्पर्श

और गये—'लपटाई', लिपट कर ही रह जाता है। फिर कहीं भी हो, उन्हीं चरणों में लिपटा रहता है।

'चरन रहे लपटाई। काहू गति नाहीं पाई।।'

किसी और ने गति पायी नहीं, जो चरणों में लिपट गया, उसे थोड़ी झलक मिली। गुरु के चरणों में लिपटे-लिपटे एक दिन पता चलता है: गुरु के चरण तो खो गये हैं। परमात्मा के चरण हाथ में आ गये हैं। शुरुआत होती है गुरु से, पहुंचना होता है परमात्मा पर।

'अंतर राखै ध्याना। कोई विरला करै पहिचाना।।'

और कोई विरला ही पहचान पाता है। सौभाग्यशाली पहचान पाता है। और वही पहचान पाएगा, 'अंतर राखै ध्याना,' जो ध्यान को भीतर डुबा दे।

मेरे पास तुम बैठते हो तो सोचो मत, विचारो मत, ध्याओ! सोचो मत, विचारो मत, धड़को! सन्नाटा हो जाए। खुद की सांस की आवाज सुनायी पड़ने लगे। सब चुप्पी हो जाए। सग निस्तब्ध हो जाए। जैसे बाहर का सब खो गया, तुम रह गये बस अस्तित्व मात्र। बस उसी जगह से संक्रमण है, उसी जगह से संवाद है।

एक था पागलखाना। पागलों में रोज विवाद छिड़ जाता था। पागलों में विवाद ही छिड़ सकता है, संवाद तो हो ही नहीं सकता। संवाद तो बड़े समझदारों में होता है।

अब जैसे तुम यहां बैठे हो, चुप और मौन, यह संवाद हो रहा है। यहां भी कोई पागल आ सकता है, वह बैठा-बैठा विवाद ही करता रहता है। उसकी खोपड़ी में विवाद चलता रहता है। वह सोचता है, यह ठीक, यह गलत; यह मुझसे मेल खाता है, यह मुझसे मेल नहीं खाता है; यह मेरी किताब में लिखा है, यह मेरी किताब के खिलाफ जा रहा है; यह बात नहीं मान सकता मैं कभी भी; वह इसी तरह के विवाद में पड़ जाता है।

तो पागलखाना था बड़ा, बहुत पागल थे, रोज विवाद छिड़ता था—पागल और करें भी क्या? दिन भर विवाद के सिवा कोई उपाय न था। एक दिन एक बड़ा अद्भुत विवाद छिड़ा। विवाद का विषय था: इस पागलखाने में सबसे बड़ा पागल कौन है? स्वभावतः पागलों को यही धुन रहती है कि सबसे बड़ा कौन? सबसे बड़े होने के पीछे ही तो लोग पागल हो जाते हैं। पागलपन ही क्या है दुनिया में? सबसे बड़ा कौन? तू कि मैं?

भारी विवाद छिड़ा, काफी हो-हल्ला मचा, मारपीट हुई, चीजें फेंकी गयीं, जूतों से स्वागत-सत्कार हुआ, कुर्सियां तोड़ डालीं, तस्वीरें दीवार पर लटकी गिरा दीं—बड़ा हो-हल्ला मचा। और फिर यह तय हुआ विवाद के बाद कि इस पागलखाने में सबसे बड़ा पागल डॉक्टर ही हो सकता है। क्यों—कुछ ने शंका व्यक्त की?

क्यों—कुछ पागल बोले? तो उन्होंने कहा, अरे अच्छा-भला पागलों के बीच रह रहा है, और क्या पागलपन हो सकता है! इस मूरख को तो देखो! अच्छा-भला पागलों के बीच रह रहा है।

विवाद विक्षिप्तता है। और विवादी को हमेशा बुद्धपुरुष पागल मालूम पड़े हैं। अच्छे-भले, पागलों के बीच रह रहे हैं। पागलों को अपना पागलपन नहीं दिखायी पड़ रहा है, जो पागल नहीं है वह सबसे बड़ा पागल मालूम होता है। यह तो संवाद का उपाय नहीं। संवाद तो तभी होता है जब सब विवाद चले जाते हैं, सब विक्षिप्तता चित्त की चली जाती है, चुप सन्नाटे में कोई सुनता है। जैसे संगीत को सुनते हो, ऐसा ही सद्‌गुरु को सुनो। संगीत सुनते वक्त तुम यह तो नहीं सोचते, क्या ठीक, क्या गलत? सिर्फ सुनते हो। रसमग्न। रस एकमता औराधा।

'अंतर राखै ध्याना। कोई विरला करै पहिचाना।।
जगत किहो एहि बासा। पै रहैं चरन के पासा।।'

जिसको सत्संग लग गया, वह फिर जगत में रहता है, लेकिन उन चरणों से दूर नहीं रहता। 'जगत किहो एहि बासा। पै रहैं चरन के पासा।।' चरणों के पास ही बना रहता है। चरण उसके हृदय के भीतर ही विराजमान हो गये, यह अर्थ है, चरन रहे लपटाई।

'जगत कहै हम माहीं।'...

जगत तो यही समझता है कि साधु, यह कैसा साधु? यह तो हमारे ही भीतर रह रहा है, हमारे ही जैसा रह रहा है! 'जगत कहै हम माहीं।' पागलों ने देखा न डाक्टर को कहा, सबसे बड़ा पागल। अगर यह पागल न होता तो हम पागलों के बीच क्यों रहता? पागल ही होना चाहिए और सबसे बड़ा पागल होना चाहिए। साधु जो संसार में रहेगा, उसे लोग कहेंगे, हमारे ही जैसा है, इसमें क्या रखा है!

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, आप लोगों को संन्यास दे देते हैं, फिर वे दुकान पर बैठे दुकान भी कर रहे हैं! उनकी पत्नी भी है, बच्चे भी हैं, घर-द्वार भी है, यह कैसा संन्यास। ये तो हमारे ही जैसे हैं। हां, तुम्हारे ही जैसे हैं बाहर-बाहर। क्योंकि क्रांति का जो दीया मैं जलाना चाहता हूं, वह बाहर का नहीं है, भीतर का है। अंतर राखै ध्याना।

जगत किहो एहि बासा। इस ढंग से जगत में रहे, इस जुगति से, इस विधि से जगत में रहे, रहैं चरन के पासा।

'जगत कहै हम माहीं। वै लिप्त काहु मां नाहीं।।'

लेकिन जगत कहे तो कहने दो, तुम रहना जगत में और लिप्त मत होना। भागना मत। भागने से कोई मुक्त नहीं होता। लिप्त न होने से मुक्त होता है।

'जस गृह तस उदयाना।'...

सच्चे साधु को तो घर और जंगल एक जैसा है ।

'जस गृह तस उदयाना । वै सदा अहैं निरबाना ।।'

वे तो सदा ही निर्वाण की दशा में हैं । निर्वाण की दशा बड़ा अर्थपूर्ण शब्द है। निर्वाण का अर्थ होता है, दीये का बुझ जाना । कहते हैं, दीये का निर्वाण हो गया--जब दीया बुझ जाता है । जिनका अहंकार बुझ गया है, वे निर्वाण की दशा में हैं । उनकी अहंकार की टिमटिमाती पीली-सी रोशनी बुझ गयी । अब परम प्रकाश ही उनका प्रकाश है । अपना अलग से कोई प्रकाश नहीं रखा है उन्होंने, अपनी मर्जी नहीं बचायी है । 'वै सदा अहैं निरबाना ।' वे चाहे घर में हों, चाहे जंगल में, सब जगह मिटे हैं, शून्य हैं ।

'ज्यों जल कमल कै बासा ।'. . . जैसे जल में कमल बास करता है ...'वे वैसे रहत निरासा ।।' वे वैसे ही अलिप्त हैं। उनकी संसार से कोई आशा नहीं है । संसार से कुछ पाने की आकांक्षा नहीं है । लेकिन परमात्मा ने संसार में भेजा है, तो जो अभिनय उसने दिया है, उसे पूरा कर देना है । उस अभिनय को बीच में छोड़कर भाग जाना परमात्मा के प्रति अवज्ञा होगी । यह उचित नहीं है । अभिनय है, ऐसा जानकर पूरा कर देना है ।

'जैसे कुरम जल माहीं ।'. . . जैसे कछुआ जल में जाता है . . . 'वाकी सुति अंडन माहीं ।।' लेकिन उसकी याद तो अपने अंडों में लगी रहती है जो किनारे पर रखे हैं ।

' भवसागर यह संसारा । वै रहैं जुक्ति तें न्यारा ।। '

ऐसे ही यह संसार सागर है, इसमें कछुवे की भांति तुम अगर आ भी गये हो, तो भी याद किनारे की रहे । वै रहैं जुक्ति तें न्यारा । रहो इसमें, कला यही है कि रहो भी और रहो भी नहीं । भगोड़े कलाकार नहीं हैं । भगोड़े बहुत स्थूल हैं। घर छोड़कर जो चले गये हैं जंगल में, उन्होंने बड़ी छोटी-सी क्रांति की है, बड़ी ओछी-सी क्रांति की है। इससे आत्मा नहीं बदल जाएगी । इससे क्या होगा ?

मैंने सुना है, एक कौवा जा रहा था उड़ा, पूरब की तरफ । एक कोयल ने पूछा : चाचा, कहां जा रहे हो ? उस कौवे ने कहा, मैं पूरब जा रहा हूं, पूरब के देशों के लोग अच्छे हैं और भले हैं । अब मुझे यहां पश्चिम में नहीं रहना है, क्योंकि किसी को भी मेरे मधुर गीत पसंद नहीं आते । कोयल ने कहा : चाचा, पूरब जाने से क्या होगा, जरा गीतों का ढंग बदलो ! जरा और गीत गाओ ! जरा और कंठ बनाओ ! ये गीत पूरब में भी पसंद न किये जाएंगे ।

यहां से वहां जाने से कुछ भी नहीं होने वाला है । बदलो । जहां हो वहीं बदलो । फिर चाहे घर हो कि जंगल, सभी जगह परमात्मा का वास है । वै रहैं जुक्ति तें न्यारा । और यही कला है । असली कला यही है । रहो बीच बाजार में और ऐसे जैसे जंगल में होओ । रहो घर में और ऐसे जैसे आश्रम में हो । रहो गृहस्थ और ऐसे जैसे संन्यस्त हो । इसी कला को मैं तुम्हें देना चाहता हूं-- मेरे संन्यासियों को । मैं तुम्हें सस्ता धर्म नहीं देना चाहता । धर्म महंगा है ।

बहुत हसीं सही सोहबतें गुलों की, मगर
वो जिंदगी है जो कांटों के दर्मियां गुज़रे

फूलों के पास रहना ठीक, लेकिन जिंदगी असली वही है जो कांटों के पास रहे और ऐसे रहे जैसे फूलों के पास है ।

वो जिन्दगी है जो कांटों के दर्मियां गुज़रे

' जगजीवन ऐसें ठहराना ।'...

ऐसे जगजीवन ठहर गया संसार में--और भीतर ठहर गया ...

' जगजीवन ऐसें ठहराना । सो साध भया निरबाना ।। '

और वहीं से साधुता जगी, और वहीं से निर्वाण पैदा हुआ, वहीं अहंकार मिटा और परमात्मा से मिलन हुआ ।

' जगजीवन ऐसें ठहराना ' । जगजीवन कहते हैं, मैं यह अनुभव की कहता हूं, ऐसे ही मैं ठहरा, ऐसे ही तुम भी ठहर जाओ । भागते कहां हो ? भागने से कोई कहीं ठहरा है ? ठहरने से कोई ठहरता है। जहां हो वहीं ठहर जाओ । वहीं भीतर ज्योति जगाओ । वहीं अंतरमुख हो जाओ। वहीं सतसंग करो। वहीं सद्गुरु के चरण गहो । वहीं याद को परमात्मा में लगाओ । और जो अभिनय भी उसने दिया है, उसे पूरा करो । पूरी तरह पूरा करो । यही तुम्हारी प्रार्थना होगी, यही तुम्हारी पूजा ।

और एक दिन तुम चकित हो जाओगे, बाहर सब वैसा-का-वैसा रहता है, भीतर सब बदल जाता है । और जब भीतर सब बदल जाता है, तो बाहर भी सब अपने-आप बदल जाता है, क्योंकि दृष्टि और हो जाती है । देखने का ढंग और हो जाता है। फिर वृक्ष नहीं दिखायी पड़ते, परमात्मा ही हरा होता दिखायी पड़ता है। फिर लोग नहीं दिखायी पड़ते, परमात्मा ही भिन्न-भिन्न रूपों में चलता हुआ दिखायी देता है । फिर चांद-तारे नहीं दिखायी पड़ते, परमात्मा ही अनेक-अनेक प्रकाशों में, अनेक-अनेक ढंगों से बरसता हुआ मालूम होता है । दृष्टि सृष्टि है। और जब दृष्टि बदल जाती है तो सृष्टि बदल जाती है । यह है कला ।भगोड़ेपन में कला नहीं है। जहां हो, वहीं ठहर जाओ। ' वै रहैं जुक्ति तें न्यारा;' जल में कमलवत, ऐसे न्यारे होने की कला सीखो।

और लोग तो नहीं समझेंगे, उनकी चिन्ता न करना । लोग कभी नहीं समझे हैं । उनकी बात ही मत फिक्र में लेना । हंसें तो हंसने देना, नाराज हों तो नाराज होने देना । विरोध करें तो विरोध करने देना । उनके प्रति मैत्री और करुणा का

भाव खंडित मत होने देना। यह उनकी मजबूरी है। उनकी समझ में नहीं आ रहा है। जो उनकी समझ में नहीं आता, वे उसे गलत मानते हैं। लेकिन तुम अपने भीतर के रस को इस कारण खंडित मत करना। तुम इन बातों में मत उलझना। तुम अलिप्त बने रहना। और जल्दी ही तुम पाओगे, वह अपूर्व घटना घटती है: रस एकमता औराधा।

दुनिया के सितम याद न अपनी ही वफ़ा याद
अब मुझको नहीं कुछ भी मोहब्बत के सिवा याद

फिर कुछ और नहीं बचता उसके प्रेम के सिवाय। न मैं, न तू।

तेरी याद की उफ ये सरमस्तियां
कोई जैसे पीकर शराब आ गया

और एक अपूर्व मस्ती, एक अपूर्व नशा छा जाता है; जो टूटता ही नहीं, जो अविच्छिन्न है, जो शाश्वत है।

आज इतना ही।
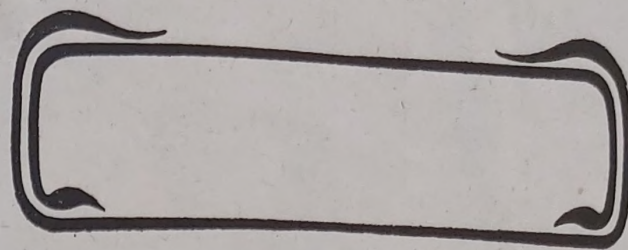
गुरु है शमा, शिष्य परवाना

आठवां प्रवचन; १८ सितम्बर १९७८; श्री रजनीश आश्रम, पूना

गुरु तो सदैव मुमुक्षु की आध्यात्मिक स्थिति जान सकते हैं, परंतु मुमुक्षु
कैसे जाने कि गुरु सत्य को उपलब्ध है अथवा नहीं ?
और क्या शिष्य दूसरे गुरु के पास जा सकता है ?

तेरे द्वार खड़ी भगवान,
रजनीश भर दे रे झोली !

कृष्ण का नाम ही सुना है, शिव को जाना भी नहीं, किंतु कुण्डलिनी
ध्यान में ऐसा क्यों लगा कि यहीं शिव का नृत्य हो रहा है और
यहीं की मधुर आवाज कृष्ण की बांसुरी की आवाज है ?

पहला प्रश्न : गुरु तो सदैव मुमुक्षु की आध्यात्मिक स्थिति जान सकते हैं, परंतु मुमुक्षु कैसे जाने कि गुरु सत्य को उपलब्ध है, अथवा नहीं ? और यदि शिष्य को कभी ऐसा महसूस होने लगे कि चुनाव में बाजी हार गया है, तो क्या वह दूसरे गुरु के पास जा सकता है ?

कृपया अपनी मान्यता स्पष्ट करें।

श्रीराम शर्मा ! गुरु चुना नहीं जाता। और जो चुनेगा, वह चुनने में ही चूक गया। तुम गुरु चुनोगे, तुम चुनोगे न ! तुम गलत हो, तुम्हारा चुनाव भी गलत होगा। तुम कहां से आंखें लाओगे देखनेवाली ? तुम्हारे पास कसौटी क्या है ? तुम्हारी बुद्धि जो भी सोच सकती है, विचार सकती है, वह तुमसे पार का नहीं होगा। तुमसे ऊंचा नहीं होगा। तुम्हारे हाथ तुम्हारे ही हाथ हैं। इसलिए तुम जो भी पकड़ोगे, जो भी चुनोगे, वह तुम्हारी बुद्धि की सीमा के भीतर होगा। और जो तुम्हारी बुद्धि की सीमा के भीतर है, उससे तुम बुद्धि के पार न जा सकोगे। तुम्हारे चुनाव में तुमने स्वयं को ही फिर चुन लिया। तुमने चुना, वहीं भूल हो गयी। तुम सोचते हो कि भूल बाद में पता चलेगी, भूल प्रथम ही हो जाती है। पहले कदम पर ही असली सवाल है। गुरु चुना नहीं जाता।

गुरु का चुनाव चुनाव नहीं है, प्रेम जैसी घटना है--हो जाता है। और अक्सर तो तुम्हारी बुद्धि के बावजूद होता है। तुम्हारी बुद्धि कहती रहती है : नहीं, नहीं; इनकार करती रहती है और तुम्हारा हृदय कदम बढ़ा लेता है और छलांग लगा लेता है। गुरु का संबंध हृदय का संबंध है, बुद्धि और विचार का नहीं। तर्क का नहीं, भाव का। तुम्हारा प्रश्न तो विचार का है।

तुम पूछते हो : गुरु तो सदैव मुमुक्षु की आध्यात्मिक स्थिति जान सकते हैं,

परंतु मुमुक्षु कैसे जाने कि गुरु सत्य को उपलब्ध हुआ है या नहीं? कोई उपाय ही नहीं है जानने का। न कभी था, न कभी होगा। अंधा कैसे जानेगा कि दूसरा आदमी जो सामने खड़ा है, उसके पास आंख हैं या नहीं? सोया आदमी कैसे जानेगा कि जो पास बैठा है, वह जागा है या नहीं? कोई उपाय नहीं है! लेकिन, बुद्धि के बावजूद कभी-कभी भाव की तरंग पकड़ लेती है और तुम्हें बहा ले जाती है। गुरु से सम्बंध एक तरह का पागल सम्बंध है। विचार का नहीं, हिसाब का नहीं, गणित का नहीं।

इसलिए जो गुरु को पकड़ लेते हैं, लोग उन्हें दीवाना ही समझते हैं, सदा से दीवाना समझते हैं। वे दीवाने हैं। यह वैसा ही सम्बंध है जैसा प्रेम का। एक स्त्री को तुमने देखा, या एक पुरुष को देखा और तुम्हें प्रेम हो गया। तुम कैसे जानोगे, क्या उपाय है बुद्धि के पास कि जिससे तुम्हारा प्रेम हुआ है, यही वास्तविक प्रेम का पात्र है? जिस स्त्री के तुम प्रेम में पड़ गये हो, यह तुम्हारी ठीक-ठीक पत्नी सिद्ध हो सकेगी? तुम्हारे बच्चों की ठीक-ठीक मां बन सकेगी? सम्यक गृहिणी हो सकेगी, तुम्हारा घर सम्हाल सकेगी? तुम्हें सुख-दुख में साथ दे सकेगी? क्या उपाय है जानने का? लेकिन प्रेम जानना ही नहीं चाहता। प्रेम कहता है: न हो सकेगी ठीक पत्नी तो भी ठीक, न हो सकेगी बच्चों की मां ठीक तो भी ठीक, न सम्हाल सकेगी घर-गृहस्थी तो भी ठीक। प्रेम अंधा है--बुद्धि के हिसाब से। क्योंकि जो आंखें बुद्धि की हैं, वे आंखें हृदय की नहीं; हृदय के पास और ही आंखें हैं। हृदय के पास अपने ढंग हैं। तर्कसरणी से हृदय नहीं चलता है। हृदय छलांग भरता है, गणित नहीं बिठाता है। एक अनुभूति होती है, एक स्फुरणा होती है।

ऐसा ही गुरु का सम्बंध है।

मुमुक्षु को स्फुरणा होती है। अचानक हृदय को कोई मथ जाता है। अचानक बुद्धि से गहराई में कहीं कोई किरण प्रविष्ट हो जाती है, रोमांच हो आता है! तुम चौंकते हो, तुम चुनते नहीं। जब गुरु चुना जाता है, तुम चुनते नहीं, चौंकते हो, यह क्या हो रहा है? तुम विवश हो जाते हो, अवश हो जाते हो। खिंचे चले जाते हो। रोकना चाहो तो रोक नहीं सकते। जाना चाहो तो जाना झूठ होगा। कोई अज्ञात शक्ति तुम्हें चारों तरफ से घेर लेती है।

अगर तुम ठीक से समझना चाहो, तो शिष्य गुरु को नहीं चुनता, गुरु शिष्य को चुनता है। गुरु पहले चुन लेता है, तभी तुम्हारे हृदय में तरंग उठती है, स्फुरणा होती है। गुरु तुम्हें घेर लेता है। तुम्हारे भागने के सब उपाय बंद कर देता है। तुम्हारे सारे सेतु जिनसे तुम होकर आए हो, तोड़ देता है। तुम्हारी सारी सीढ़ियां जिनसे तुम चढ़ कर आए हो, गिरा देता है। तुम्हारे सारे तर्कजाल छिन्न-भिन्न कर देता है। गुरु तुम्हारे भीतर एक शराब उंड़ेल देता है। उस शराब के नशे में तुम डूब

जाते हो।

गुरु को कोई कभी चुनता नहीं। कभी किसी ने चुना नहीं। और जिन्होंने चुना है, उनसे पहले ही चूक हो गयी। चुनने में तो सदा ही संदेह रहेगा। चुनाव कभी समग्र नहीं हो सकता। सोचोगे तुम, इसको चुनें, उसको चुनें? तुलना करोगे, यह ठीक कि वह ठीक? हिसाब लगाओगे, किसके पास ज्यादा लाभ? किसके पास कितनी हानि? किसके पास कितना दांव पर लगाना पड़ेगा? और किसके पास सस्ते में काम निपट जाएगा?

तुमने अध्यात्म को बाजार समझा है! जैसे कोई सामान खरीदना है कि क्या खरीदें, क्या छोड़ दें? तुलना करता है, विचार करता है, दाम के हिसाब लगाता है, मजबूती देखता है। आदमी तो दो पैसे का घड़ा भी खरीदता है तो ठोंक-पीट कर खरीदता है; बजा लेता है कि फूटा तो नहीं है, छिद्र तो नहीं है? और यहां जिंदगी दांव पर लगाने चले हो। तो गणित तो कहेगा, मन तो कहेगा कि ठोंक-पीट लो, ठीक से जांच-परख कर लो। मगर तुम्हारी जांच-परख तुम्हारी ही जांच-परख होगी न! यह तुमसे पार कैसे ले जाएगी? तुम्हें तुमसे ऊपर कैसे उठाएगी? तुम्हें तुमसे मुक्ति कैसे दिलाएगी? मुक्ति और क्या है? मुमुक्षु का अर्थ जानते हो? जो मुक्ति के लिए आकांक्षी है--मुमुक्षु--जो मोक्ष का आकांक्षी है, जो परम स्वतंत्रता चाहता है। लेकिन तुम्हारा चित्त ही तो तुम्हारा कारागृह है। तुम इसी चित्त से चुनने चले हो? इसी चित्त ने कारागृह बनाया है, इसी से तुम मुक्ति का आकाश खोलने चले हो--इन्हीं सींकचों से, इन्हीं दीवालों से? इन्हीं दीवालों ने तुम्हें घेरा है, बंधन में डाला है।

नहीं, तुम्हारे भीतर से कोई मार्ग नहीं है। मार्ग तुम्हें पकड़ ले तो कोई उपाय है। इसलिए मुमुक्षु इतना ही कर सकता है--खुला हो, ग्राहक हो, ग्रहणशील हो। अगर कोई पकड़े, कोई ऊर्जा आए, तो द्वार-दरवाजे बंद न कर ले, बस, इतना ही। इससे ज्यादा कुछ तुम्हारे हाथ में नहीं है। जैसे तुम यहां मेरे पास बैठे हो, चुनूंगा तो मैं, तुम मुझे नहीं चुन सकते। श्रीराम सोचते हों कि वे मुझे चुनें, तो गलती में हैं। और तुमने चुना तो चूक वहीं हो गयी। पहले ही चूक हो गयी। अब आगे चूक का विचार मत करो। भूल तो हो ही गयी। और मैं यह कह रहा हूं कि तुमने अगर ठीक गुरु को भी चुना तो भी गलती हो गयी।

मेरी बात को खूब ख्याल में ले लेना, मैं यह कह ही नहीं रहा हूं कि तुमने चुना तो गलत गुरु को चुन लिया, तुमने हो सकता है भूल-चूक से ठीक ही गुरु चुन लिया हो; तुम संयोगवशात कबीर, नानक, या बुद्ध, या महावीर के पास पहुंच गये होओ और तुमने ठीक गुरु चुन लिया हो; लेकिन गुरु के ठीक होने से कुछ भी नहीं होता, तुम ही गलत हो, तुम्हारे चुनाव में गलती हो रही है। तुमने अगर बुद्ध के

भी चरण पकड़े, तो तुम्हारे ही द्वारा पकड़े गये चरण बुद्ध के नहीं रह जाएंगे, तुम्हारी बुद्धि के ही रह जाएंगे। तुमने अपनी धारणा ही देख ली होगी बुद्ध में। तुम्हारी किसी धारणा को तृप्ति मिल गयी होगी। तुम्हारे किसी पक्षपात को सहारा मिल गया होगा। तुम सोच कर आए थे कि बुद्धपुरुष ऐसा होना चाहिए, और बुद्धपुरुष संयोगवशात वैसे थे, तो तुमने चुन लिया। तुमने चूना कुछ भी नहीं है, तुमने अपने को ही चुना है। तुमने अपनी ही छाया देखी है, उसको चुना है। क्योंकि तुम्हारी अपनी ही अपेक्षा की पूर्ति हुई। अगर बुद्धपुरुष जरा-भी भिन्न होते तुम्हारी अपेक्षा और धारणा से तो तुम नहीं चुन सकते थे––जरा-भी भिन्न होते! छुद्र-सी भिन्नता और तुम्हारा चुनाव असंभव हो जाता।

अगर तुमने मान रखा है कि परम प्रज्ञा की स्थिति में व्यक्ति नग्न होगा, और बुद्ध नग्न नहीं हैं, तो तुम नहीं चुन पाओगे। तुम चले जाओगे। तुम कहोगे, अभी थोड़ी देर है। अभी उपलब्धि पूरी नहीं हुई, वीतरागता पूरी नहीं हुई। अभी राग कुछ बाकी होगा। अभी वस्त्र अटके रह गये हैं। अभी महावीर जैसे नहीं हैं। तुम अगर जैन-धारणा के अनुसार बुद्ध के पास गये तो कठिनाई हो जाएगी।

अगर तुम बौद्ध-धारणा के अनुसार कृष्ण के पास गये, तो कठिनाई हो जाएगी। क्योंकि तुम देखोगे कृष्ण को तो लगेगा यह सब राग ही राग है, वीतरागता कहां? बुद्ध ने तो कहा है: भिक्षु स्त्री को देखे न! अगर देखना पड़ ही जाए तो छुए न। अगर छूना पड़ ही जाए तो होश को सम्हाल कर रखे, होश न चूक जाए। तो जिसने यह वचन सुना है, वह अगर कृष्ण को देखेगा, रास करते, गोपियों के साथ नाचते, राधा के हाथ में हाथ डाले, दया-भाव से भर जाएगा कृष्ण के प्रति कि बेचारा, यह तो खुद ही भटका है! यह क्यों मुक्त करेगा? यह कैसे मुक्त करेगा? यह किसको मुक्त करेगा? यह तो खुद ही भटका है। तुम्हें बड़ा दया-भाव पैदा होगा, तुम्हारे मन में बड़ी करुणा आएगी कि कोई रास्ता मिले तो मैं इसको समझाऊं कि भइया, जाग! होश सम्हाल! यह क्या कर रहा है?

जैन-शास्त्रों में कृष्ण को नर्क में डाल दिया है, सातवें नर्क में डाल दिया है। और अनंत काल के लिए डाल दिया है; जब यह सृष्टि समाप्त होगी और दूसरी सृष्टि का प्रारंभ होगा, तब वह छूटेंगे वहां से! ठीक ही है, अगर एक पत्नी नर्क ले जाती है, तो सोलह हजार पत्नियां कहां ले जाएंगी, थोड़ा सोचो तो! अगर एक पत्नी नरक का द्वार है, तो सोलह हजार! और उनमें सब कृष्ण की पत्नी थीं भी नहीं––कोई किसी और की पत्नी, कोई किसी और की पत्नी। बिलकुल गैरकानूनी! नाजायज! और एक संख्या होती है। सोलह हजार!

तुमने अगर एक धारणा बना ली है––और तुम्हारी सब की धारणाएं हैं। उन धारणाओं को लेकर ही तुम जाते हो। धारणा लेकर गये तो तुम जो चुनोगे, तुमने

चुना है यह भ्रांति है तुम्हारी; तुम्हारी धारणा तृप्त हो गयी है किसी कारण से। और अगर कल तुम्हारी धारणा टूट गयी, तो तुम चौंकोगे, पछताओगे, दुखी होओगे कि यह मैंने समय गंवाया व्यर्थ, इस आदमी के पीछे चला, इतने दिन अकारण खोए, गंवाए।

और फिर छोड़ने में भी अड़चन होगी। क्योंकि इतने दिन का लगाव बन गया। इतने आश्वासन दिये, श्रद्धा का इतना जोर मारा, और अब छोड़ना पड़े, तो पछतावा भी होगा कि कहीं छोड़ने में कोई भूल तो नहीं हो रही है? इसलिए तुम यह प्रश्न भी पूछ रहे हो कि 'और यदि शिष्य को कभी ऐसा महसूस होने लगे कि चुनाव में बाज़ी हार गया है, तो क्या वह दूसरे गुरु के पास जा सकता है?' तो फिर यह डर लगेगा कि यह कहीं विश्वासघात तो नहीं है? यह गद्दारी तो नहीं है?

कल मुझे एक पत्र देखने को मिला।

मेरे एक संन्यासी हैं, जर्मन संन्यासी: विमलकीर्ति। वे जर्मनी के सम्राट के नाती हैं। तुम तो उन्हें मिलोगे तो पहचान भी न सकोगे कि सम्राट का नाती, जर्मन सम्राट का नाती! क्योंकि वे 'वृन्दावन' में बर्तन मलते हैं। अत्यंत सरलचित्त व्यक्ति हैं। उनके काका ने पत्र लिखा है उन्हें। जर्मन सम्राट का चित्र भेजा है। चित्र के पीछे लिखा है: अरे गद्दार! शाही घर का होकर और भिखारियों की तरह जी रहा है! उन्हें गद्दारी दिखायी पड़ रही है। कि शाही परिवार का व्यक्ति, जर्मन सम्राट का नाती, और संन्यासी! धारणाएं हैं।

तुमने एक गुरु से सम्बंध बना लिया, तो अब एक चित्त में बड़ी ग्लानि पैदा होगी कि छोड़ें कैसे? गलती भी दिखायी पड़ गयी एक दिन। जरूरी नहीं है कि जिस दिन तुम्हें गलती दिखायी पड़े, उस दिन तुम्हें फिर ठीक-ठीक अनुभव हुआ है कि गुरु गलत है। जिस दिन तुमने ठीक समझा था, उस दिन तुम्हारी धारणा से मेल खा रहा था, जिस दिन तुमने गलत समझा, उस दिन तुम्हारी धारणा से मेल नहीं खा रह है, बस, इतना ही जानना! गुरु के ठीक और गलत होने का तुम्हें कैसे पता चलेगा? कभी पता नहीं चलेगा।

इसलिए मैं कहता हूं कि दूसरी बात में भूल समझने के बजाय पहली बात में ही भूल पकड़ लोगे तो ठीक है। चुनना मत। हां, कोई गुरु चुन ले तो चुने जाना। अगर कोई गुरु की ऊर्जा तुम्हें पकड़ ले और तुम्हारे चारों तरफ नाचने लगे और तुम्हारे हृदय में समा जाए और तुम आनंदमग्न हो उठो––किसी धारणा की सिद्धि के कारण नहीं और किसी अपेक्षा की पूर्ति के कारण नहीं––तुम्हारा हृदय गवाही दे दे, सारी धारणाओं के विपरीत गवाही दे दे कि अब बस चलो, सब धारणाएं छोड़नी पड़ें, सारा चित्त का जाल छोड़ना पड़े, तो भी यह दांव लगाना है, तब समझना कि तुम्हारे जीवन में गुरु का पदार्पण हुआ। और उस पदार्पण के बाद कभी लौटना नहीं

होता। असंभव है लौटना! हृदय से जो सम्बंध बनता है, वही पार ले जानेवाला है, वही मुक्तिदायी है।

लेकिन श्रीराम, तुम सोच-समझकर--ब्राह्मण आदमी हो, श्रीराम शर्मा! --गणित बिठा रहे हो, विचार कर रहे हो। शास्त्र तुम्हारे चित्त में बैठे होंगे। गुरु ऐसा होना चाहिए, गुरु वसा होना चाहिए। ये-ये लक्षण होने चाहिए। इतने लक्षण हों तो चुनना चाहिए।

जरा अहंकार की बात तो देखो! तुम चुनोगे? तुम हो कौन? अगर तुम्हें तनी भी समझ आ गयी है कि गुरु के लक्षण पहचान लो, तो तुम स्वयं ही गुरु हो जाओगे, अब और बचा क्या? अगर तुम्हें इतना होश आ गया है कि तुम होशवाले आदमी को पहचान लो, तो जाने की जरूरत ही क्या है, इसी होश को बढ़ाए चले जाओ। अगर तुम्हें इतना पता चल गया है कि कौन जागा हुआ है, तो तुम जाग ही गये! अब और जागना क्या है? अगर तुमने पहचान लिया कि हां, इस आदमी के पास आंखें हैं, यह अंधा नहीं है, तो तुम्हारे पास आंखों का सबूत मिल गया, अब और क्या चाहिए? अब किसी के पीछे क्या चलना, तुम्हारे पास खुद ही आंखें हैं। अब गुरु की कोई जरूरत नहीं।

मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि अगर तुम्हारे पास इतनी समझ हो कि तुम निर्णय कर सको कि कौन सद्गुरु है और कौन मिथ्या, तो तुम्हें गुरु की जरूरत ही नहीं है। अगर तुम्हें गुरु की जरूरत है, तो उसका अर्थ हुआ कि तुम्हारी बुद्धि से कोई उपाय नहीं है। तुम अपनी बुद्धि को सरका कर अलग कर दो। तुम तो गुरुओं के सत्संग में बैठो, मस्त होकर, खुलकर, सब द्वार-दरवाजे खुले छोड़कर, ताकि सूरज आए तो आ सके भीतर, और सुबह का मलय पवन आए तो आ सके भीतर, और वर्षा की बूंदाबांदी हो तो थोड़ी बूंदें तुम तक भी पहुंच सकें, कि कोयल गाए तो गीत तुम्हारे भीतर प्रवेश कर सकें, बस खुले होकर बैठ जाओ। और जहां पकड़ लिये जाओ, जहां से छूटना मुश्किल हो जाए, जहां चुम्बक की तरह खींच लिये जाओ--फिर क्या करोगे? चुनाव का सवाल ही नहीं है, फिर करोगे क्या? गुरु ने चुन लिया। और धन्यभागी हैं वे जो गुरु को चुनने देते हैं, खुद नहीं चुनते।

इधर मेरे पास भी दो ही तरह के लोग आते हैं। एक, जो चुनते हैं। जो चुनते हैं, उनसे मेरा सम्बंध पहले से ही नहीं बन पाता। वे काफी होशियार हैं। उनकी होशियारी बाधा है। दूसरे वे हैं, जो मुझे चुनने देते हैं। उनसे मेरा सम्बंध ऐसा बनता है जो कभी टूट नहीं सकता। जिसके टूटने की कभी संभावना ही नहीं है।

हृदय जुड़ता है तो टूटता नहीं। बुद्धि के जोड़ तो थोथे हैं। दिखायी पड़ते हैं, ऊपर-ऊपर हैं, कभी भी टूट सकते हैं। आज मैंने कुछ कहा, तुम्हारे शास्त्र से मेल खा गया, कल मैं कुछ कहूंगा और तुम्हारे शास्त्र से मेल नहीं खाएगा तो अड़चन हो

जाएगी।

मैं सिक्खों के 'जपु जी' पर बोलता था, तो बहुत सिख सुनने आने लगे। मगर वे मुझे सुनने नहीं आ रहे थे। मुझसे उनका क्या लेना-देना? वे तो 'जपु जी' पर बोल रहा हूं इसलिए आ रहे थे। जब तक 'जपु जी' पर बोल रहा हूं तब तक वे दिखायी पड़े। जब 'जपु जी' पर बोलना बंद हो गया, वे भी नदारद हो गये। इनसे मेरा क्या सम्बंध बनेगा, कैसे सम्बंध बनेगा?

कबीर पर बोलता हूं, कबीरपंथी आ जाते हैं। अभी एक मित्र ने कहा है कि आपकी वाणी में मुझे संत तारण तरण की ध्वनि सुनायी पड़ती है, बड़ा आनंद आता है। वह तारण तरण के माननेवाले हैं, तो उन्हें तारण तरण की ध्वनि सुनायी पड़ रही है। तुम में से तो बहुतों ने तारण तरण का नाम भी नहीं सुना होगा, तो ध्वनि कहां से सुनायी पड़ेगी तारण तरण की? ईसाई को लगता है कि मैं जो बोल रहा हूं, वह बाइबिल है। और मुसलमान को लगता है कि मैं जो बोल रहा हूं, वह कुरान है। और सिख को लगता है कि जो मैं बोल रहा हूं, वह गुरुग्रंथ है।

मगर ध्यान रखना, अगर तुम्हें इसलिए मजा आ रहा है कि तुम्हें तारण तरण की ध्वनि सुनायी पड़ रही है, तो तुमने मुझे तो सुना ही नहीं। तुम्हारा मजा तुम्हारे मन का ही मजा है, मुझसे कुछ लेना-देना नहीं। किसी दिन अगर ऐसा हो गया कि कोई बात मैंने ऐसी कही जो तुम्हारे तारण तरण से मेल न खायी, तो बस दोस्ती समाप्त! कट्टी हो गयी! दोस्ती झूठी थी। दोस्ती नाममात्र को थी। मुझसे न थी, तारण तरण से थी। और चूंकि मेरी बात में तुम्हें तारण तरण की बात सुनायी पड़ी थी, तुम मेरे साथ हो लिये थे। मगर तुम मेरे साथ नहीं हुए थे, तुम थे तो तारण तरण के ही साथ। मुझसे तुम्हारा कभी नाता न बना था।

मुझे कब सुनोगे? मुझे सीधा-सीधा कब सुनोगे? अपनी धारणाओं को हटाकर कब सुनोगे?

तारण तरण के माननेवाले मुझे पत्र लिखते रहते हैं कि आप संत तारण तरण पर कब बोलेंगे? जब आप बोलेंगे तब हम सुनने आना चाहते हैं। मुझसे कुछ लेना-देना नहीं, जब तारण तरण पर बोलूंगा तब वे सुनने आना चाहते हैं।

मनुष्य का अहंकार ऐसा है कि वह अपने अहंकार की पुष्टि चाहता है। यह पुष्टि है सिर्फ और कुछ भी नहीं। तुम मानना चाहते हो मुझसे सुनकर कि तुम्हारी जो मान्यता थी, वह ठीक थी। तब मुझसे बड़े प्रसन्न हो जाते हो, कि हां, यह आदमी ठीक है! क्योंकि तुम्हारे अहंकार को इसने थोड़ा भोजन दिया, तुम्हारी मान्यता को सही कहा। तुम्हारे शास्त्र को समर्थन दिया। और अगर मैं तुम्हारे शास्त्र के सम्बंध में एक शब्द भी कह दूंगा जो तुम्हारे मन को छिन्न-भिन्न करेगा, खिन्न करेग, बस तुम दुश्मन हो गये। उसी क्षण दुश्मन हो गये।

तुम्हारी धारणाओं से तुम सम्बंध न बना सकोगे किसी सद्‌गुरु से। क्योंकि कोई सद्‌गुरु किसी दूसरे सदगुरु की प्रतिलिपि नहीं है। इसे खूब समझ लो, कोई सद्‌गुरु किसी दूसरे सद्‌गुरु की प्रतिलिपि नहीं है। यद्यपि सत्य एक है, लेकिन उसके कहने के ढंग अनेक हैं। यद्यपि सत्य एक है, लेकिन जब सत्य अवतरित होता है तो उसकी अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न होती है।

जैसे किसी ने सुबह ऊगते हुए सूरज को देखा। सुंदर सूरज, लाली फैल गयी पूरब पर, पक्षी गीत गाने लगे, वृक्ष जाग गये, सारा जगत आरती में तत्पर हो गया। किसी ने एक गीत लिखा सुबह के इस ऊगते सूरज पर और किसी ने चित्र बनाया और किसी ने अपनी वीणा छेड़ दी इस मस्ती में, इस मस्ती के स्वागत में। इन तीनों की अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न होगी। वीणा का छिड़ना भी सुबह के सूरज के स्वागत में हो रहा है। इसमें भी सुबह के सूरज की थोड़ी लाली है। इसमें भी ऊगते सूरज की थोड़ी छाया है। मगर वीणा वीणा है, इसमें कोई रंग तो नहीं होंगे! इसमें राग होगा, रंग नहीं होंगे। रास का अपना रंग है। 'राग' शब्द का अर्थ भी रंग होता है, ख्याल रखना। इसका भी अपना रंग है, लेकिन वह रंग ध्वनि का है। वह कानों से पकड़ा जाएगा, आंखों से नहीं। वह बड़ा दूसरा रंग है। और जिसने चित्र बनाया तूलिका उठाकर सुबह का, सूरज का ऊगता हुआ, इसकी तूलिका में और वीणा में कोई सम्बंध जुड़ेगा? इसके चित्र में और संगीत में कोई सम्बंध जुड़ेगा? ऊपर-ऊपर कोई सम्बंध नहीं है। और किसी ने गीत लिखा। और यह भी हो सकता है, किसी ने पैरों में घूंघर बांधे और नाचा। इनकी अभिव्यक्ति अलग-अलग है। सूरज एक ही ऊगा था और सबके हृदय में सूरज के ऊगने की एक ही अर्चना जगी थी, एक ही प्रार्थना जगी थी, एक ही पूजा का भाव उठा था, लेकिन फिर भी पूजा का भाव व्यक्ति-व्यक्ति में भिन्न हो गया।

ऐसा ही फ़र्क कबीर में है, नानक में है, जगजीवन में है; बुद्ध में है, महावीर में है, कृष्ण में है; मोहम्मद में है, लाओत्सू में है, जरथुस्त्र में है––ऐसा ही फर्क। लेकिन तुम जब किसी एक धारणा को पकड़ कर बैठ जाते हो और उसी धारणा को लेकर खोजने निकलते हो, तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। अगर तुमने कबीर की धारणा पकड़ ली कि गुरु हो तो कबीर जैसा, तो तुमको फिर कभी गुरु नहीं मिल पड़ेगा। क्योंकि कबीर दोबारा नहीं होते। और अगर तुम्हें कबीर जैसा कभी कोई गुरु मिल जाए, तो समझ लेना नकलची है। क्योंकि दोबारा असली तो होता ही नहीं; सिर्फ नकली हो सकते हैं, पाखंडी हो सकते हैं।

अगर तुम्हारी धारणाओं से मेल खा रहा हो किसी गुरु से, पूरा-पूरा मेल खा रहा हो, तो एक बात पक्की है कि गुरु पाखंडी है। यह तुम बहुत चौंकोगे मेरी बात सुनकर। तुम्हारी धारणाओं से मेल खाता हो अगर पूरा-पूरा, तो समझ लेना कि गुरु

पाखंडी है। वह तुम्हारी धारणाओं से मेल बिठाने का ही आयोजन किये बैठा है। इसलिए जैन मुनि जैन की धारणा से मेल खा जाएगा। और बौद्ध भिक्षु बौद्ध की धारणा से मेल खा जाएगा। हिन्दू संन्यासी हिन्दू की धारणा से मेल खा जाएगा। धारणा से ही मेल खाने का पूरा आयोजन है। सत्य से कोई सम्बंध नहीं है। सूरज ऊगा है, इसका इन्हें पता नहीं है। न इन्होंने अपनी वीणा उठायी है, न इन्होंने अपनी तूलिका उठायी है, न पैरों में घूंघर बांधे हैं, न इनके कंठ में कोई गीत हैं। मगर ये जानते हैं कि शास्त्र में गुरु की परिभाषा क्या है। उसी परिभाषा के अनुसार ये अपने आचरण को नियमित कर रहे हैं, व्यवस्थित कर रहे हैं।

शास्त्र कहता है, इतनी बार भोजन, एक बार भोजन, तो ये एक बार भोजन करते हैं। शास्त्र कहता है कि दो वस्त्र, तो ये दो वस्त्र रखते हैं। शास्त्र कहता है, सूरज ढले चलना नहीं, तो ये चलते नहीं। रात पानी मत पीना, तो पानी नहीं पीते। ब्रह्ममुहूर्त में उठ आना, तो ब्रह्ममुहूर्त में उठ आते हैं। शास्त्र ने जो कहा है, उसकी कवायद करते हैं, उसका रिहर्सल करते हैं, उसका अभ्यास करते हैं, उसके अभ्यास से तुम्हारी धारणा से मेल खा जाता है, अनुकूल पड़ जाते हैं। अगर तुम्हारी भी उसी शास्त्र की धारणा है तो बस एकदम मेल खा जाते हैं।

इसलिए तुम दुनिया में एक चमत्कार देखोगे कि एक संप्रदाय का गुरु दूसरे संप्रदाय को बिलकुल गुरु जैसा नहीं मालूम होता। मगर उस संप्रदाय के लोगों को बिलकुल गुरु मालूम होता है, परम गुरु मालूम होता है। दोनों की धारणाएं एक जैसी हैं। दोनों की धारणाएं मेल खा रही हैं।

अब यह जरा धोखा समझो।

तुमने भी वही शास्त्र पढ़ा... ऐसा समझो। एक अभिनेत्री मुझे मिलने आयी। उसने कहा कि आपका क्या कहना है भृगु-संहिता के सम्बंध में? मैंने उससे पूछा कि तुझे प्रश्न क्यों उठ रहा है? तो उसने कहा कि दिल्ली मैं गयी और भृगु-संहिता मेरे लिए पढ़ी गयी। और जो-जो बातें मेरे सम्बंध में बतायी गयीं, वह मैंने सब नोट कर लीं। भरोसा तो मुझे नहीं आया... मेरे पिछले जन्मों की बातें, मेरे भविष्य के जन्म की भी बात। और इस जन्म के सम्बंध में भी कुछ बातें कहीं जो सच। और कुछ बातें जो अभी सच नहीं हैं, लेकिन पढ़नेवाले ने कहा कि आगे सच हो जाएंगी; अभी जन्म पूरा तो घट नहीं गया है। फिर मैंने मद्रास में भृगु-संहिता पढ़वायी। वहां भी ठीक यही-का-यही! फिर मैंने काशी में भृगु-संहिता पढ़वायी वहां भी ठीक यही-का-यही। अगर धोखा होता तो एक जगह होता। जब तीन जगह से बात मिल गयी––और इन तीनों को एक-दूसरे का कोई पता भी नहीं है––तो इससे सिद्ध होता है कि कुछ सचाई होनी चाहिए।

अब इस महिला को जरा-भी समझ नहीं है कि भृगु-संहिताएं एक-दूसरे की

कापियां हैं; उनमें कोई भेद नहीं है। पढ़नेवाले से कोई सम्बंध ही नहीं है। जिस ढंग से पन्ना खोला जाता है, वह ढंग भी वही-का-वही है। तुम्हारा नाम पूछा, तुम्हारा पता पूछा, तुम्हारी उम्र पूछी, गणित बिठाया--वह गणित भी वही-का-वही है--फिर पन्ना खोला कि इकतीसवां पन्ना निकलता है तुम्हारे हिसाब से। इकतीसवें पन्ने पर जो लिखा है, पढ़कर सुना दिया। तो फिर दिल्ली में पढ़वाओ, कि मद्रास में, कि काशी में। लेकिन जब तीन दफा अलग-अलग लोगों ने भी वही लक्षणाएं बता दीं और वही जन्म कहे, तो भरोसा बढ़ा! भरोसा गहरा हुआ कि तीन तो गलत नहीं हो सकते!

शास्त्र तुम पढ़ते हो, जो गुरु बनने को बैठा है वह भी पढ़ता है उसी शास्त्र को। दोनों एक ही शास्त्र से धारणा लेते हैं। तुम शिष्य बनना चाहते हो, इसलिए तुम इस ढंग से पढ़ते हो कि गुरु को कैसे पहचानेंगे। जो गुरु बनना चाहता है, वह इस ढंग से पढ़ता है कि जो शिष्य आएंगे, वे मुझे कैसे पहचानेंगे? फिर दोनों का तालमेल हो जाता है। और दोनों धोखे में पड़ हो।

सद्‌गुरु की कोई पहचान किसी शास्त्र में नहीं है। क्योंकि जिस सद्‌गुरु की पहचान दी हुई है, वह सद्‌गुरु एक बार हो चुका और दोबारा नहीं होता। प्रत्येक सद्‌गुरु बेजोड़ है, अद्वितीय है। उस जैसा व्यक्ति फिर कभी नहीं होता। कहां कृष्ण दोबारा! कहां बुद्ध दोबारा! कैसे होंगे? कोई उपाय नहीं है दोबारा होने का। परमात्मा दोहराता नहीं। परमात्मा कोई टूटा-फूटा ग्रामोफोन रिकॉर्ड नहीं है कि बस दोहराए चले जा रहे हैं, वही दोहराए चले जा रहे हैं!

परमात्मा नित नूतन सर्जक है, स्रष्टा है। रोज नये गीत गाता है। रोज नयी तान छेड़ता है। रोज नया छंद! जो एक बार हो गया, हो गया। उसकी पुनरुक्ति नहीं होती। परमात्मा फिर किसी नये रूप में उतरता है। और तब तुम मुश्किल में पड़ जाते। तब तुम बड़ी अड़चन में पड़ जाते हो। तुम्हारी धारणा होती है पुराने की, जो कभी हुआ था। और तुम नये सदगुरु से पुरानी धारणा का मेल बिठाना चाहते हो। वह मेल नहीं बैठता। और जिससे मेल बैठता है, वह पाखंडी है। और जो सच्चा है, उससे मेल नहीं बैठता। ये अड़चनें हैं, मुमुक्षु की, मैं तुम्हें साफ करना चाहता हूं।

मेरी तरफ से एक बात समझ लो: तुम नहीं चुन सकते। तुम जो चुनोगे, पुरानी धारणा के आधार पर चुनोगे। अभी नये गुरु को पहचानने वाला शास्त्र तो लिखा नहीं--लिखा जाएगा, जब गुरु जा चुका होगा! तब लोग पहचानेंगे। लेकिन तब पहचानने का कोई अर्थ न रह जाएगा। जब महावीर जिंदा होते हैं, तब तुम पहचानते हो राम के हिसाब से। और गड़बड़ हो जाती है, क्योंकि महावीर राम नहीं हैं। तुम देखते हो, कहां धनुष-बाण है? वहां कोई धनुष-बाण नहीं है। धनुष-

बाण दूर, लंगोटी भी नहीं है। तुम पूछोगे: धनुष-बाण कहां है, महाराज! सीता जी कहां हैं? वहां कोई नहीं है--न कोई सीता जी हैं, न कोई धनुष-बाण है। तुम लिये बैठे हो पुरानी, कि मेरा माथा तो तभी झुकेगा जब धनुष-बाण हाथ लोगे! तो तुम्हारा माथा झुकना नहीं है। क्योंकि वह महावीर धनुष-बाण हाथ लेंगे नहीं। जंचेगा भी नहीं, नंग-धड़ंग धनुष-बाण लिये! बात कुछ बनेगी भी नहीं! शोभा भी नहीं आएगी!

महावीर जा चुकेंगे, तब शास्त्र निर्मित होगा। शास्त्र पीछे ही निर्मित हो सकता है, जब महावीर जी लिये। और अनेक लोगों के हृदयों को पकड़ा उन्होंने। उन्हीं के हृदय पकड़े जिनमें धारणाएं नहीं थीं, ख्याल रखना। जो धारणा लेकर आए थे, उनको तो महावीर से कोई सम्बंध बनेगा नहीं। कुछ निश्छल हृदय, निर्दोष हृदय, कुछ कुंवारे हृदय पकड़े गये। कुछ हिम्मतवर लोग जो चित्त को एक तरफ सरका कर रख दिये, पकड़े गये। लेकिन कल यही सारे हिम्मतवर लोग महावीर के लक्षणों के आधार पर शास्त्र निर्मित करेंगे कि गुरु हो तो ऐसा हो। बस फिर अड़चन शुरू हो जाएगी।

महावीर ने बारह वर्ष मौन रखा, तब उन्हें ज्ञान उत्पन्न हुआ। महामुनि थे! बुद्ध ने छह वर्ष ही जंगल में तपश्चर्या की और ज्ञान को उपलब्ध हुए। अब हिसाब-किताब लगानेवाला कहेगा कि अधूरे रहे। बारह वर्ष और छह वर्ष--कच्चे हैं अभी! एक प्रसिद्ध जैन विचारक ने किताब लिखी। लिखने के पहले मुझसे कहा कि मेरा तो समन्वयवाद है--गांधीवादी थे। गांधी के अनुयायी थे, गांधी के आश्रम में ही बड़े हुए थे--तो मेरा तो समन्वयवाद है। मैं महावीर और बुद्ध पर एक किताब लिख रहा हूं। किताब लिखी, मुझे भेजी, तो मैं देखकर चौंका, उसका शीर्षक ही देखकर चौंका! 'भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध'। तो मैंने उन्हें पूछा कि या तो दोनों को भगवान लिख देते, या दोनों को महात्मा लिखते; इतना-सा भेद क्यों किया? और इसमें भेद क्या है भगवान और महात्मा में? उन्होंने कहा: भेद है थोड़ा-सा! महावीर परिपूर्ण पहुंच गये हैं, बुद्ध अभी थोड़े पीछे हैं! यह समन्वय हो रहा है। यह बनिया की बुद्धि, बारह साल, छह साल, हिसाब लगा रहा है। कि महात्मा ही हो पाए अभी! अभी भगवान नहीं हो पाए। अभी एक जन्म और होगा; रास्ते पर हैं, पहुंच रहे हैं।

और यह सोचते हैं सज्जन कि समन्वयवादी हैं। और यह सोचते हैं कि दोनों का इन्होंने गुणगान किया है--कितनी उदारता है इनके हृदय में, यह सोचते हैं! खाक उदारता है! यह उदारता है? यह कृपणता की सीमा हो गयी! यह बुद्ध को भगवान न कह सके। कैसे कहें बुद्ध को भगवान? लक्षण बना लिये हैं. उन लक्षणों से ही फिर हिसाब चलेगा। और वैसा आदमी दोबारा नहीं होगा। पच्चीस

सौ साल हो गये महावीर को हुए, फिर कोई महावीर तो हुआ नहीं। यद्यपि बहुत लोगों ने नकल की है, बहुत लोग नंगे रहे हैं। बहुत लोग महावीर जैसा भोजन किये हैं और महावीर जैसा ही उपवास किये हैं। मगर कोई महिमा वैसी तो प्रगट न हुई। वैसा सौरभ फिर तो न फूटा, वैसा कमल फिर तो न खिला। यह हो ही नहीं सकता। ये जितने महावीर के पीछे पच्चीस सौ साल में लोग नग्न हुए, यह सिर्फ आचरणगत थी इनकी नग्नता, आयोजित थी, अभ्यासजन्य थी। इसका आविर्भाव भीतर से नहीं हुआ था। और हो नहीं सकता था।

जब कोई सद्‌गुरु पैदा होगा, तब तुम्हारी धारणाएं उससे मेल नहीं खाएंगी। इसलिए जो हिम्मतवर हैं और धारणाओं को सरकाकर रख सकते हैं और सद्‌गुरु जब जाल फेंके तो भाग न जाएं और उसके जाल में फंसने को राज़ी हों... तुम नहीं चुनते, सद्‌गुरु जाल फेंकता है, जैसे मछलियों को पकड़ने को मछुआ जाल फेंकता है।

जीसस ने अपने एक शिष्य को कहा... वह मछलियां मार रहा था; जीसस आकर खड़े हो गये; सुबह-सुबह उसने जाल फेंका था, मछलियां फंस गयी थीं और वह खींच रहा था, जीसस ने उसके कंधे पर हाथ रखा, उसने पीछे लौटकर देखा। सुबह की ताजी हवा और सुबह के ताजे सूरज में जीसस का आभामंडल, जीसस की वे झील से भी ज्यादा गहरी आंखें, वह एकदम मोहित हो गया। उसने कहा : तुम कौन हो? कहां से हो? कैसे आकस्मिक तुम्हारा आगमन हो गया? जीसस ने कहा : ये सब बातें धीरे-धीरे तुझे समझ में आएंगी कि मैं कौन हूं, कहां से हूं, कैसे अचानक मेरा आगमन हो गया है, एक बात तुझसे कहने आया हूं कि कब तक मछलियां पकड़ता रहेगा? आ, मैं तुझे आदमियों को पकड़ने का रास्ता सुझाऊं! कब तक मछलियां पकड़ता रहेगा? मैं तुझे ऐसा जाल फेंकना सिखाऊं जिसमें आदमी फंस जाते हैं।

झिझका नहीं वह मछुआ, उसने फेंक दिया जाल झील का झील में, चल पड़ा जीसस के पीछे। जीसस ने उससे पूछा : तुझे भरोसा आ गया मेरी कही बात पर? उसने कहा : आ ही गया, क्योंकि मैं खुद ही फंस गया! तो जरूर तुम सिखा सकोगे यह कला, इसमें कोई संदेह नहीं, मैं खुद ही फंस गया!

जब गुरु जाल फेंके, तब तुम भाग मत जाना; बस इतना ही अगर कर सको तो मुमुक्षु हो! तुम चुने जाओगे। तो धन्यभागी हो! और जब कोई गुरु चुने तो तुम झुक जाना, समर्पित हो जाना।

और तुमसे अंतिम बात कह दूं। इसकी तुम चिन्ता ही मत करो कि कौन गुरु ठीक, कौन गुरु गलत। जो तुम्हारे हृदय को आंदोलित कर दे, बस वही ठीक। एक गुरु किसी के लिए ठीक हो सकता है, किसी के लिए गलत हो सकता है, यह भी ख्याल

रखना। सभी औषधियां सभी के काम नहीं भी पड़ती हैं। जो औषधि है एक के लिए, किसी के लिए जहर हो सकती है। इसलिए जो तुम्हारे हृदय को मथ दे, जो तुम्हारे हृदय को जगा दे; तुम्हारा हृदय नाच उठे जिसके पास, जिसके सान्निध्य में, वही ठीक है। फिर दूसरे क्या कहते हैं, इसकी फिक्र मत करना। फिर तो चल पड़ना।

और तुमसे एक बात कह दूं : यह भी हो सकता है, यह भी संभावना मान लो कि कभी तुम गलत से प्रभावित हो गये—समझो कि वह सद्‌गुरु था ही नहीं। सत्य को पहुंचा ही नहीं था। यह भी एक संभावना मान लो। मोहक व्यक्तित्व भी हो सकता है किसी का, प्यारा व्यक्तित्व हो सकता है किसी का, चमत्कारिक व्यक्तित्व हो सकता है किसी का। उसका काव्य तुम्हें छू ले, उसकी वाणी तुम्हें छू ले, उसके देह की तरंग तुम्हें छू ले, उसके आंखों की ज्योति तुम्हें छू ले और हो सकता है वह अभी सत्य को उपलब्ध न हुआ हो। क्योंकि एडोल्फ हिटलर जैसे आदमियों की आंखों में भी एक बल होता है। आखिर लाखों लोग ऐसे ही नहीं फंस जाते। और एडोल्फ हिटलर कोई सद्‌गुरु तो नहीं है। लाखों लोग ऐसे ही मोहित नहीं हो जाते। लाखों लोग ऐसे ही मुंह बाकर बैठे नहीं रह जाते, अकारण, एडोल्फ हिटलर की आंखों में कुछ सम्मोहन तो है। हृदयों को पकड़ तो लेता है।

इसलिए यह भी हो सकता है कभी कि तुम किसी ऐसे आदमी के चक्कर में आ जाओ, जो अभी स्वयं भी उपलब्ध न था। तो मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूं कि अगर तुम्हारा समर्पण पूरा हो तो तुम ऐसे आदमी के पास भी मुक्ति को उपलब्ध हो जाओगे। क्योंकि मुक्ति मिलती है समर्पण की पूर्णता से। फिर दोहरा दूं, मुक्ति मिलती है समर्पण की पूर्णता से। मुक्ति किसके प्रति समर्पण हुआ, इससे नहीं मिलती। इसलिए कभी ऐसा हो जाता है कि पत्थर की मूर्ति के सामने अगर समर्पण पूरा हो तो भी मुक्ति मिल जाती है।

तुमने एकलव्य की कथा तो पढ़ी है न! वह पत्थर की मूर्ति के सामने समर्पण पूरा था। न तो गुरु है, न कोई सद्‌गुरु है, कुछ भी नहीं है, पत्थर की मूर्ति है। खुद ही गढ़ ली है, अपने ही हाथ से बना ली है, मगर समर्पण पूरा था! समर्पण ऐसा समग्र था, जितना कि अर्जुन का भी द्रोण के प्रति नहीं था। इसलिए अर्जुन पिछड़ गया एकलव्य से। द्रोण को भी चिंता हो गयी। द्रोण को भी डर पैदा हो गया। द्रोण को भी जाना पड़ा एकलव्य के पास खिंचा हुआ। और जब द्रोण ने देखी उसकी कला, तो चौंक कर रह गये होंगे!

द्रोण खुद कोई सद्‌गुरु नहीं हैं। द्रोण एक साधारण से राजसेवक हैं। अति साधारण कहना चाहिए। सदगुरु तो दूर, गुरु कहने की भी बात ठीक नहीं है। क्योंकि गुरु में भी कुछ होता है जो द्रोण में नहीं है। नहीं तो एकलव्य से अंगूठा न मांगते। एकलव्य से अंगूठा मांगा, इसलिए मांगा कि एकलव्य की कला देखकर एक बात तो

समझ में आ गयी कि उनके सारे शिष्य फीके पड़ गये। न तो अर्जुन, न कर्ण, न दुर्योधन, कोई इस ऊंचाई पर नहीं था। और उनको चिंता हुई कि मेरे राजपुत्र, मेरे शिष्य अगर पीछे पड़ जाएंगे—मोह जगा!—जिन पर मैंने इतनी मेहनत की है; जिनके साथ मेरा अहंकार जुड़ा है, मेरी महिमा जुड़ी है; अगर अर्जुन ऐसे पीछे पड़ जाएगा तो मेरी क्या दुर्दशा होगी? और यह व्यक्ति आगे निकल गया! और इसे मैंने इनकार कर दिया था कि शूद्र है तू, इसलिए तुझे शिष्य की तरह स्वीकार न करूंगा!... यह कोई गुरु होने के ढंग हैं कि शूद्र कहकर किसी को इनकार कर दिया! जिसने किसी को शूद्र कह कर इनकार किया, वह शूद्र ही होगा! ब्राह्मण कैसे होगा? ब्राह्मण तो वह है, जो सब में ब्रह्म को देखे।

और मैं कहता हूं: एकलव्य ब्राह्मण है। द्रोण ने इनकार कर दिया, द्रोण ने धुत्कार दिया, दुत्कार दिया, भगा दिया, हटा दिया, तो भी उसकी श्रद्धा ऐसी अपूर्व है कि फिर भी इन्हीं के प्रति झुका। ब्राह्मण है। और उसका समर्पण ऐसा पूरा है कि पत्थर की मूर्ति के सामने खड़े होकर, आंसू बहाकर, फूल चढ़ा कर, प्रार्थना कर के धनुर्विद्या सीख डाली! धनुर्विद्या का सबसे पारंगत व्यक्ति हो गया!

द्रोण को कठिनाई हुई, यह तो हार हो जाएगी बहुत, दुनिया क्या कहेगी कि जिसको इनकार किया था शूद्र कहकर, तुम्हें इतनी भी समझ न थी कि इसकी संभावना क्या थी? तुम क्या ख़ाक पारखी हो! जिसको हटा दिया था, जिस पत्थर को व्यर्थ कह कर फेंक दिया था, वही मंदिर की मूर्ति बन गया है; तुम क्या ख़ाक पारखी हो! और जिनके साथ तुमने जिंदगी भर मेहनत की, उनको पीछे छोड़ दिया है। तो कहा उससे कि मुझे दक्षिणा तो दे दो। देखते हो, यह कोई गुरु होने के लक्षण हैं? जिसको दीक्षा नहीं दी, उससे दक्षिणा मांग रहे हैं! बेईमानी की कोई सीमा भी होती है!

द्रोण बेईमान से बेईमान गुरु हैं।

और दक्षिणा भी क्या मांगी उस भोले निर्दोष आदमी से! उसने कहा: हां, मैं गरीब हूं, मेरे पास है क्या, जो आप मांगें, जो मेरे पास हो, मैं दे दूं। मैं अपने प्राण दे दूं। उससे उसके दायें हाथ का अंगूठा मांग लिया। क्योंकि बिना अंगूठे के धनुर्विद्या उसकी व्यर्थ हो जाएगी। बिना अंगूठे के वह धनुर्विद न रह जाएगा। और उस अद्‌भुत आदमी ने अंगूठा काटकर दे दिया—एक क्षण भी झिझक न की! ऐसे वह और ऊंचाइयों पर ऊंचाइयां पाता गया।

जिस क्षण उसने अंगूठा काटकर दिया है, समाधि फलित हो गयी होगी! मुक्ति अपने-आप उतर आयी होगी! यह समर्पण! संदेह इस पर भी न उठाया, इस धोखेबाज आदमी पर भी न उठाया, जिसने धुत्कारा था, और जो आज दक्षिणा मांगने आ गया है उसी मुंह से, थूके को चाटने में जिसे जरा भी शर्म और लज्जा

नहीं आयी है, इस आदमी को भी अंगूठा काटकर दे दिया। जरा भी संदेह न किया! यह श्रद्धा है। यह समर्पण है। इस समर्पण में धनुर्विद्या गयी हो तो गयी हो, लेकिन आत्मविद्या आ गयी होगी!

शास्त्र कुछ कहते नहीं, लेकिन मैं मानना चाहता हूं, जोड़ना चाहता हूं शास्त्र में इतना, कि धनर्विद्या तो चली गयी अंगूठे के कटने से, लेकिन आत्मविद्या आ गयी होगी। एकलव्य निश्चित ब्राह्मण हो गया। एकलव्य महाज्ञान को उपलब्ध हो गया होगा। ऐसे समर्पण के द्वार से अगर महाज्ञान न आए तो फिर कैसे आएगा!

तो मैं तुमसे यह अंतिम बात कहना चाहता हूं, श्रीराम शर्मा, कि अगर गलत के प्रति भी समर्पण पूरा हो गया, तो तुम चिंता न करना। समर्पण पूरा चाहिए। लेकिन अहंकार बहुत अद्‌भुत है। अहंकार ऐसा पूछता है: 'और यदि शिष्य को कभी ऐसा महसूस होने लगे कि चुनाव में बाजी हार गया है, तो क्या वह दूसरे गुरु के पास जा सकता है?'

इसको थोड़ा सोचो।

जिस दिन तुमको लगे कि चुनाव में बाजी हार गये हो, उस दिन पहली बात तो यह लगनी चाहिए कि मैंने शिष्यत्व का पूरा गुणधर्म किया? नहीं, वह सवाल ही नहीं उठता। सवाल यह उठता है कि अगर नहीं उपलब्धि हुई तो गुरु गलत है। सवाल यह उठा ही नहीं तुम्हारे मन में कि अगर उपलब्धि नहीं हुई, तो मैंने वह सब पूरा किया है जो गुरु ने कहा है? क्या मैं यह कह सकता हूं कि मैंने समग्रभाव से समर्पण किया है, श्रद्धा की है? क्या मैं कह सकता हूं कि मैंने पूरा श्रम लगाकर साधना की है? जो गुरु ने कहा था, उस पर मैं पूरा-पूरा चला हूं, सौ प्रतिशत? अगर हां, तुम यह कह सको कि मैं सौ प्रतिशत चला हूं जो गुरु ने कहा था, और फिर भी बाजी हार गया हूं, तो निश्चित गुरु बदल लेना। लेकिन, जो सौ प्रतिशत चलता है, उसे बदलने की जरूरत नहीं पड़ती, क्योंकि सौ प्रतिशत चलने से मुक्ति है।

तुम मेरी बात को ठीक से समझ लो।

गुरु और न-गुरु का कोई बड़ा सवाल नहीं है। गुरु तो निमित्त मात्र है जिसके सहारे सौ प्रतिशत समर्पण हो जाता है। तुम निमित्त को ज्यादा मूल्य मत दो। गुरु तुम्हें सत्य नहीं दे सकता। नहीं तो एक गुरु ने सारे जगत को सत्य से भर दिया होता। गुरु तुम्हें कुछ भी नहीं दे सकता। सत्य दिया-लिया नहीं जाता। गुरु तो एक निमित्त है, एक प्रकाशवान निमित्त है, जिसके साथ बैठकर तुम्हें पूरे समर्पण की भावदशा बनाने में आसानी होती है, बस। बहाना है।

तो पत्थर की मूर्ति से भी कभी हो सकता है। बुद्ध को गये तो पच्चीस सौ साल हो गये, लेकिन अगर तुम चाहो तो बुद्ध की मूर्ति पर पूरा समर्पण करो तो वही क्रांति घट जाएगी जो बुद्ध के सामने घटी थी। यह मत सोचना कि बुद्ध आएंगे और

कुछ करेंगे। कोई गुरु कुछ भी नहीं करता है। गुरु की मौजूदगी में सिर्फ तुम्हें आसानी होती है समर्पण करने की, बस। उसके प्रेम में तुम डूब जाते और समर्पण कर पाते। समर्पण हो जाए, महाक्रांति हो गयी।

मगर तुम्हारा सवाल ...आदमी हमेशा सोचता है कि भूल-चूक होगी तो दूसरे की होगी; यह अहंकार का गणित है। अगर मैं अब तक नहीं पहुंचा हूं तो गुरु गलत होना चाहिए। अगर अब तक नहीं पहुंचा हूं तो मैं गलत हूं, यह सवाल ही तुम्हारे सवाल में नहीं आता! और यह तुम्हारी ही भूल-चूक नहीं है, यह सभी की भूल-चूक है। आदमी उत्तरदायित्व दूसरे पर टालना चाहता है।

और तुमने किया क्या! और अगर नहीं हुआ तो गुरु जिम्मेवार है, तो गुरु मिथ्या हो गया। और तुम अगर ऐसे ही दूसरे गुरु के पास जाओगे, तुम दूसरे गुरु को भी मिथ्या करोगे; तीसरे को भी मिथ्या करोगे। जनम-जनम से तुम ऐसे ही तो चल रहे हो। श्रीराम शर्मा, तुम सोचते हो तुमने अब तक गुरु नहीं चुना है! कितने गुरु चुने होंगे! और हर बार तो हार गये, तभी तो वापिस आ गये हो। नहीं तो अभी तक मुक्त हो गये होते। जो एक बार जाग गया, जान गया, फिर दोबारा वापिस नहीं आता है। और अनंत-अनंत जन्मों में अनंत-अनंत गुरु चुने होंगे, लेकिन हमेशा यही भूल की होगी जो तुम फिर पूछ रहे हो। यह तुम्हारी बुनियादी भूल होगी। जैसे सभी की यही बुनियादी भूल है।

कोई दोष अपने ऊपर नहीं देना चाहता। आदमी हमेशा दोष टालता है। और जो दोष टालता है, वह दोष से कभी मुक्त नहीं होता। क्योंकि जो दोष स्वीकार ही नहीं करता है कि मेरा है, वह मुक्त कैसे होगा? कोई कहता है, भाग्य के कारण नहीं हो रहा है; कोई कहता है, कर्म के कारण नहीं हो रहा है; कोई कहता है, पिछले जन्मों के कारण नहीं हो रहा है; कोई कहता है, भगवान ने लिखा नहीं है तकदीर में, इसलिए नहीं हो रहा है।

फिर लोग बिलकुल धार्मिक नहीं होते, वह भी इसी तरह की बातें करते हैं। कम्यूनिस्ट कहते हैं: आदमी सुखी नहीं है, क्योंकि समाज की व्यवस्था गलत है। आदमी गलत नहीं है, समाज की व्यवस्था गलत है! अर्थ-व्यवस्था गलत है! जैसे अर्थ-व्यवस्था आकाश से आती है! कौन लाता है अर्थ-व्यवस्था को? आदमी गलत नहीं है। और आदमी प्रसन्न होता है इस बात को मानकर कि मैं गलत नहीं हूं। तुम सदा इसी फिक्र में रहते हो कि दोष किसी और पर पड़ जाए। यह दोष को बचा लेने का उपाय है।

जब किसी सद्गुरु के पास बैठो तो एक बात स्मरण रखना सदा, अगर कुछ न हो रहा हो तो सोचना: 'मैं कर रहा हूं?' तीर अपनी तरफ लौटाना। विचार यह करना कि जो मुझे कहा गया है, वह मैं कर रहा हूं? जैसा कहा गया है वैसा

कर रहा हूं? शर्तें पूरी की जा रही हैं? साधना कर रहे हो कि बस कुनकुनी-कुनकुनी बातें कर रहे हो?

मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं कि बस, समर्पण कर दिया, अब आप सम्हालो! समर्पण क्या कर दिया उन्होंने? अगर उनके समर्पण की परीक्षा लेनी हो तो पता चल जाए कि समर्पण कुछ नहीं किया, बात कर रहे हैं। समर्पण शब्द सीख लिया है। अगर उनसे मैं कहूं कि जाओ, कूद जाओ छत पर से, तो वे कूदेंगे नहीं। छत पर जाने के पहले ही वह यह सोचेंगे कि यह आदमी पागल है! यह कोई बात हुई! हम तो समर्पण कर रहे हैं और यह सज्जन कह रहे हैं छत से कूद जाओ! यहां कोई ज्ञान वगैरह होनेवाला नहीं है। छत से कुदाकर और क्या जान लोगे? समर्पण कहते हैं लोग, कि समर्पण कर दिया, अब आप सम्हालो! वे यह कह रहे हैं कि अगर नहीं सम्हले, तो फिर ख्याल रखना, जिम्मा आपका है!

आ जाते हैं दो-चार-छह महीने बाद कि छह महीना हो गया है संन्यास लिये हुए, समर्पण कर दिया . . . समर्पण क्या किया है? कुछ भी समर्पण नहीं किया है . . . आ जाते हैं चार-छह महीने बाद कि समर्पण कर दिया है, अभी तक ज्ञान नहीं हुआ, ध्यान नहीं हुआ। अभी आत्म-ज्योति जग नहीं रही। जैसे जिम्मा मेरा है! अब उनको संदेह पैदा हो रहा होगा कि यह ठीक गुरु मिला कि गलत? कि किसके चक्कर में पड़ गये हैं! छह महीने हो गये और अभी तक ज्ञान नहीं हुआ! छह महीने तो मैं कह रहा हूं, लोग तो छह दिन का भी हिसाब रखते हैं। यहां आ जाते हैं, तीन दिन ध्यान कर लेते हैं कुछ—ऐसा थोड़ा उछल-कूद किया, जरा गहरी सांस वगैरह ली, थोड़ा नाचे-गाये—तीन दिन बाद आ जाते हैं कि शिविर के तीन दिन तो समाप्त हो गये, सात ही दिन बचे हैं और अभी तक समाधि नहीं लगी! अभी तक विचार आए ही चले जाते हैं। तुम सोचते हो, तुम कैसी बचकानी बातें कर रहे हो? उम्र बढ़ जाती है, बचपना नहीं जाता।

तुम देखते हो, दिल्ली में बयासी साल की उम्र के बच्चे और पैंसठ साल की उम्र के बच्चे और पचहत्तर साल की उम्र के बच्चे, और लगे हैं एक-दूसरे को लंगड़ी मारने में। सब अपने-अपने लंगोट कसे कूदे हैं अखाड़े में। बयासी साल के बच्चे! दिल्ली में तुम जैसा बचकानापन देखोगे, कहीं और देखने को मिलेगा? मगर यही चित्त की दशा है लोगों की। उम्र तो बढ़ जाती है शरीर की, चित्त की उम्र नहीं बढ़ती। चित्त वही बचकाना बना रहता है।

कुनकुने प्रयास करोगे तो कुछ भी नहीं होगा। बुद्धों के पास रहकर भी लोग ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुए हैं। आनंद चालीस वर्षों तक बुद्ध के पास रहा—निकट, चौबीस घंटे। एक दिन साथ नहीं छोड़ा। उसी कमरे में सोया जिसमें बुद्ध सोते थे। उनकी सेवा में रत रहा। मगर भाव उसका वही था कि हो जाएगा उनकी कृपा से।

और बुद्ध उससे बार-बार कहते कि सत्य किसी की कृपा से नहीं होता, तू कुछ कर, आनंद, अब कुछ होश सम्हाल ! वह कहता : आप हैं, तो मुझे करना क्या ? आप हैं तो सब है। यह भी अगर समग्र हो तो इससे भी घटना घट सकती है; मगर यह भी समग्र नहीं, यह भी केवल औपचारिक है। ऐसा कहते भर हैं कि आप हैं। यह शिष्टाचार है। यह पूर्ण नहीं है। यह बहाना है बचाने का अपने को कि आप तो हैं, आपके रहते सब हो जाएगा। यह कुछ करना नहीं है, करने से बचना है।

बुद्ध की जिस दिन मृत्यु हुई, आनंद रोने लगा। रोना स्वाभाविक भी था, चालीस साल साथ रहा और अज्ञानी का अज्ञानी, अंधेरे का अंधेरा, अमावस की अमावस; पूर्णिमा हुई नहीं। तो बुद्ध ने कहा : तू रोता क्यों है, आनंद ? उसने कहा: अब आप जाते हैं, अब क्या होगा ? बुद्ध ने कहा : मेरे रहते चालीस साल कुछ नहीं हुआ, तो तेरा कुछ खो नहीं रहा है। एक बात तो पक्की ही है कि तेरा कुछ नहीं खो रहा है। तेरा कोई कुछ बिगाड़ ही नहीं सकता ! चालीस साल मेरे साथ रहकर नहीं हुआ तो अब तेरा हर्जा क्या है, मैं रहूं कि न रहूं ? तुझे तो अंधेरे में रहना है सो तू अंधेरे में रहेगा।

और, बुद्ध ने कहा, यह भी हो सकता है कि तू यह मुझ पर बहाना कर के टाल रहा था, शायद मेरे न रहने से हो जाए। शायद जब मैं न रहूं तो दायित्व दूसरे को सौंपने की बात खत्म हो गयी, फिर दायित्व खुद लेना पड़े। शायद, कौन जाने, जरूरी है कि मैं हट जाऊं तेरे लिए तो तुझे हो।

और ऐसा ही हुआ भी।

चौबीस घंटे के भीतर आनंद ज्ञान को उपलब्ध हुआ। बुद्ध की मृत्यु का धक्का भारी था ! विश्लेषण किया होगा, चालीस साल. . .और मैंने यूं ही गंवाए ! और बुद्ध पुकारते रहे और मैं टालता रहा और मैं कहता रहा : आप तो हैं, आपके रहते सब हो जाएगा। और मैंने कुछ किया नहीं। और आनंद के पीछे बहुत लोग आए और ज्ञान को उपलब्ध होते चले गये। आनंद सबसे बुजुर्ग शिष्यों में एक था। बुद्ध से उम्र में थोड़ा बड़ा भी था। बुद्ध का चचेरा भाई था। राजकुल से था, सुशिक्षित था, लेकिन चूकता गया। बुद्ध के मरते ही जो बैठ गया आंख बंद कर के, उसने आंख नहीं खोली फिर। उसने कहा, अब आंख तो तभी खोलूंगा जब भीतर की आंख खुल जाए। चौबीस घंटे में घटना घट गयी ! जो चालीस साल में न घटी थी ! चालीस साल कुनकुना-कुनकुना चलता रहा, भाप बने पानी तो कैसे बने ? सौ डिग्री पर उबलता है।

चौबीस घंटे न खाया, न पिया, न सोया। अब यह मौका गंवाने का भी नहीं था। बुद्ध छोड़कर चले गये और बुद्ध के जीवन-भर का उपदेश कभी सुना नहीं। और बुद्ध मरते वक्त भी कह गये कि 'आनंद, अप्प दीपो भव।' अपना दिया बन!

अब तो अपना दिया बन, अब मैं जा रहा हूं, यह दिया बुझा, जिसके सहारे तू सोचता था कि रोशनी हो जाएगी, अब तुझे पता चलेगा कि दूसरों के दियों से रोशनी नहीं होती। अब तुझे अंधेरे का पूरा पता चलेगा।

अक्सर ऐसा हो जाता है कि तुम गुरु के साथ चलते हो ऐसे जैसे कि अंधेरी रात में कोई लालटेन लिये हुए एक आदमी तुम्हारे साथ होता है। उसकी लालटेन की रोशनी तुम्हारे रास्ते पर भी पड़ने लगती है। तुम शायद भूल ही जाओ कि अपने पास लालटेन नहीं। फिर एक जगह तो आएगी, एक मोड़ तो आएगा, एक चौराहा तो आएगा, जब रास्ते अलग-अलग हो जाएंगे, मौत अलग-अलग कर देगी। तो लालटेनवाला आदमी जब अपने रास्ते पर मुड़ने लगेगा, तब तुम्हें पहली दफा पता चलेगा कि भयंकर अंधकार है और मेरे हाथ में लालटेन नहीं।

ऐसी दशा आनंद की हो गयी। बुद्ध तो गये तो दिया बुझ गया। भयंकर अंधकार हो गया ! बुद्ध की छाया में, बुद्ध की शान्ति में, बुद्ध की तरंग में जी रहा था, एक रस बह रहा था। मगर वह रस तो बुद्ध का था, स्वयं का न था। आज पहली दफा समझ में आया कि मैं तो बिलकुल रिक्त हूं, कोरा हूं, व्यर्थ हूं, खाली हूं, घास-फूस हूं; मेरी आतमा का कोई जन्म नहीं हुआ। एक चोट पड़ी। क्षत्रिय था आनंद : एक चोट पड़ी। आंख बंद करके बैठा सो बैठा। उसने कहा : अब उठूंगा नहीं। या तो जागूंगा या मरूंगा, मगर उठूंगा नहीं। सब दांव पर लगा दिया। यह समर्पण है।

फिर बिना गुरु के हो गया। बुद्ध तो जा चुके थे और हो गया। तो मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि बुद्ध के साथ रहते न हुआ और बुद्ध के जाते ही हो गया। क्रांति तुम्हारे भीतर घटनी है। अगर किसी एक गुरु के पास रहकर तुम्हें न घटी हो, तो जल्दी से गुरु बदलने के बजाय इसकी फिक्र करना कि मैंने किया है जो कहा गया है।

हां, अगर तुम्हें लगे कि तुमने सब कर लिया जो तुम कर सकते थे और अब कोई और करने को तुम्हारे पास बचा नहीं है, जरूर गुरु बदल लेना। क्योंकि गुरु थोड़े ही लक्ष्य है, लक्ष्य तो सत्य है। मगर जिस गुरु के पास भी हो, उसे पूरा मौका दे देना। यह कहने को न रह जाए कि तुमने नहीं किया।

बुद्ध के साथ ऐसी घटनाएं घटीं।

बुद्ध जब सत्य की खोज करते थे, बहुत गुरुओं के पास गये। आलार कालाम नाम के गुरु के पास वर्षों रहे। जो उसने कहा, किया। उसने ऐसी बातें कहीं जो कोई करने को राजी न हो, लेकिन बुद्ध ने वे भी कीं। उसने कहा कि रोज भोजन कम करते जाओ, कम करते जाओ। जब एक चावल का दाना भोजन रह जाए, फिर दो दाना, फिर तीन दाना, एक-एक दाना फिर एक-एक दिन बढ़ाना। वह

भी किया। वर्षों भूखों मरे। शरीर सूख कर हड्डी-हड्डी हो गया। इतने निर्बल हो गये कि नदी में स्नान करने उतरे थे––तो वह नदी कोई बहुत भारी नदी नहीं है। मैंने नदी जाकर देखी है। छिछली नदी है। 'निरंजना' कोई बहुत बड़ी नदी नहीं है; सूखी-साखी-सी नदी है––उसमें उतरे थे स्नान करने को, लेकिन उस नदी की धार भी इतनी थी––कमजोर इतने हो गये थे––कि बहने लगे। चढ़ न सके घाट पर, इतने कमजोर हो गये थे। एक झाड़ की जड़ पकड़ कर लटके रहे। हड्डी-हड्डी रह गये थे। सारा मांस विलीन हो गया था। जो भी जिसने कहा, पूरा किया।

एक दिन आलार कालाम ने देखा कि जो भी मैंने कहा, पूरा किया, आलार कालाम ने कहा : बस, तू कहीं और जा! तू मुझे छोड़! मैं जो दे सकता था, दे दिया, जो मेरे पास था, तुझे बता दिया। इससे ज्यादा मेरे पास नहीं है। इससे ज्यादा मेरे पास सीखने को अब कुछ और बचा नहीं। जितना मेरा बोध था, उतना मैंने तुझे दिया। अब तू जा!

तू कहीं और खोज, तू कोई और गुरु खोज! और अगर किसी दिन तुझे सत्य मिल जाए, तो मुझे याद रखना। मुझे आकर खबर देना। मुझे अभी मिला नहीं। मैं खुद ही खोज रहा हूं।

जब शिष्य इतना समग्र होता है, तो मिथ्या गुरु को भी बोध होगा। शिष्य की समग्रता उसको तो जगाएगी ही, अगर मिथ्या गुरु के पास रहा तो मिथ्या गुरु को भी जगाएगी। समग्रता का ऐसा गुण है! समग्रता में ऐसी ज्योति है! बुद्ध ने उसे भी चौंका दिया। उसे भी तो पीड़ा होने लगी होगी कि यह बेचारा इतना कष्ट पा रहा है! जो मैं कहता हूं, करता है। और आए थे बहुत लोग, उनके साथ एक सुविधा थी : वे करते ही नहीं थे। इसलिए कभी यह सवाल उठता ही नहीं था। इसने तो सब किया। पीड़ा होने लगी होगी आलार कालाम को भी। कांटा चुभने लगा होगा कि यह मैं क्या कर रहा हूं? दया आने लगी होगी। इस व्यक्ति के निर्दोष समर्पण पर प्रीति उगमने लगी होगी। खुद भी जागा होगा कि मैं यह क्या कर रहा हूं, क्या करवा रहा हूं, मुझे कुछ पता नहीं है। मैंने खुद शास्त्रों से पढ़ लिया है। और मैंने शास्त्रों से जो पढ़ लिया है, वही करवा रहा हूं। मेरा स्वयं का अनुभव नहीं है। तो क्षमा मांगी।

अगर शिष्य संपूर्ण हो, तो शायद गुरु गलत हो तो क्षमा मांगे। शायद उसको बोध आए!

तो तुम जागो। अपनी पूरी चेष्टा करो जागने की। हां, अगर तुम्हें लगे कि नहीं, मेरे सब करने से कुछ नहीं हुआ, तो जरूर गुरु को बदल लेना। क्योंकि गुरु को पकड़ रखना कोई जीवन का लक्ष्य नहीं है। जीवन का लक्ष्य तो परमात्मा को पाना है। गुरुद्वार बने तो ठीक, दीवार बन जाए तो रुकने की कोई जरूरत नहीं है।

और यह भी मत सोचना कि तुमने गद्दारी की। गद्दारी का भाव भी तभी उठता है, जब तुमने गुरु का कहा कुछ किया न हो और छोड़कर जाओ। अगर उसका कहा सब किया तो गद्दारी का भाव उठेगा ही नहीं। क्या करोगे! शायद हमारा तालमेल नहीं बैठता। और तब भी मन में यह मत सोचना कि गुरु गलत है। इतना ही जानना कि हमारा तालमेल नहीं बैठा। उसकी विधि मेरे काम नहीं पड़ी। इससे ज्यादा सोचना मत। इससे ज्यादा सोचने की कोई जरूरत नहीं है। कौन जाने वह ठीक हो, कौन जाने वह गलत हो! यह वह जाने, तुम्हें क्या लेना-देना है? नहीं तो अहंकार इस तरह के निर्णय लेने लगता है। और अहंकार से मुक्त होना है। समर्पण का अर्थ है, अहंकार से मुक्ति।

हृदय कहीं डोलने लगे, कहीं हृदय बुद्धि के विपरीत जाने लगे, जाने देना।

> छेड़ा था जिसे पहले-पहल तेरी नज़र ने
> अब तक है वो इक नग़्मा-ए-बेसाज़-ओ-सदा याद

और जो पहली दफा हृदय को छेड़ा जाता है, वह फिर कभी भूलता नहीं, अगर तुम हृदय को छेड़ने दो।

> छेड़ा था जिसे पहले-पहल तेरी नज़र ने
> अब तक है वो इक नग़्मा-ए-बेसाज़ ओ-सदा याद

बिना साज का, बिना वीणा के संगीत उठ जाता है। बिना वाणी के कोई स्वर भीतर पहुंच जाता है। वह फिर कभी भूलता नहीं। वह मील का पत्थर हो जाता है।

> क्या जानिए क्या हो गया अरबाबे-जुनूं को
> मरने की अदा याद, न जीने की अदा याद

किसी के पास बैठकर ऐसा हो जाए कि न जीने की सुध रहे, न मरने की सुध रहे, तो फिर संकोच मत करना, फिर गणित मत बिठाना; फिर सरक जाना चुपचाप उस जाल में! क्योंकि वही जाल तुम्हें मुक्ति के मार्ग पर ले जाएगा।

> वो कौन है कि जो सरे-मंज़िल पहुंच सका
> धुंदले-से-कुछ निशान नज़र आके रह गये

मिटने की तैयारी चाहिए। पहुंचते-पहुंचते तुम मिट जाओगे। 'धुंदले-से निशान नज़र आके रह गये'। बस कुछ धुंदले-से निशान। जैसे-जैसे चलने लगोगे, वसे-वैसे मिटने लगोगे। पहुंचने का मतलब ही है, वह घड़ी जब पूरे मिट गये। धुआं बिखर गया। बस अहंकार धुआं है और कुछ भी नहीं। और जहां धुआं बिखर गया, वहीं ज्योति जलती है निर्धूम!

> कुछ दाग़े-दिल से थी मुझे उमीद इश्क़ में
> सो रफ़्ता-रफ़्ता वो भी चिराग़े-सहर हुआ

धीरे-धीरे दिल भी, दिल के घाव भी, दिल की पीड़ा भी बुझ जाती है। जैसे

सुबह का दिया सुबह होते-होते बुझ जाता है ।

सो रफ़्ता-रफ़्ता वो भी चिरागे-सहर हुआ

एक दिन दिल भी बुझ जाता है, सब बुझ जाता है, और जब तुम्हारा सब बुझ जाता है, तब परमात्मा का अवतरण होता है । शुरुआत होती है बुद्धि के बुझने से और अंत होता है हृदय के बुझने पर । और इसलिए तो उसकी तस्वीर कोई नहीं खींच पाता । जो पहुंच गया वह भी उसकी तस्वीर नहीं खींच पाता ।

अर्सा-ए-हस्र कहां, ये दिले-बर्बाद कहां
वो भी छोटा-सा है टुकड़ा इसी वीराने का

उसकी तस्वीर किसी तरह नहीं खिंच सकती
शम्अ् के साथ तअ़ल्लुक है जो परवाने का

अब शमा अगर परवाने को पुकारे, शमा दिखायी पड़ जाए परवाने को, तो परवाना चला, उड़ा ! ऐसा एक ताअ़ल्लुक़ है । ऐसी ही घटना घटती है गुरु और शिष्य के बीच । गुरु है शमा, शिष्य हो जाता है परवाना । खिंच चलता । मगर ध्यान रखना, परवाने का जाना शमा की तरफ अपनी मौत की तरफ जाना है । परवाना तो जलेगा शमा में, राख हो जाएगा । राख होकर ही शमा हो पाएगा । इसीलिए अगर कोई परवाने से कहे कि शमा की तस्वीर बना दो, तो न बना पाएगा । क्योंकि शमा को जान ही तब पाता है, जब मिट जाता है । जब स्वयं नहीं रहता तब शमा को जान पाता है । और जब तक स्वयं रहता है तब तक शमा को न देखा है, न जाना है । देखते ही तो दीवानगी आ जाती है ।

इसलिए सद्गुरु की भी कोई तस्वीर नहीं खींच पाता है । ऊपर-ऊपर के लक्षण लिखे जाते हैं, भीतर की तस्वीर नहीं खिंचती । और न कोई परमात्मा की तस्वीर कभी खींच पाता है । बाहर-बाहर की बातें होती हैं । जाननेवाले मुश्किल में पड़ जाते हैं : क्या कहें, कैसे कहें ? जगजीवन कहते हैं न बार-बार कि कुछ कहते नहीं बनता, कुछ बताते नहीं बनता । जान तो लिया, जनाते नहीं बनता ।

शास्त्रों में तो सब ऊपर के लक्षण दिये हैं । ऊपर के लक्षणों से मत चलना, नहीं तो तुम बुद्धि के घेरे में ही आबद्ध रहोगे । और बुद्धि बंधन है । बुद्धि जंजीर है । तोड़ो इस जंजीर को । नाचने दो हृदय को, गाने दो हृदय को—मुक्त भाव से । जरूर सद्गुरु मिल जाएगा । सद्गुरु सदा मौजूद है । प्यासा कोई हो, सरोवर सदा मौजूद है ।

लेकिन सरोवर प्यासे के पास नहीं जाते । शमा परवाने के पास नहीं जाती, परवाने को शमा के पास आना पड़ता है । यद्यपि जब परवाना शमा की तरफ आता है तो शमा के खींचने के कारण ही आता है ।

दूसरा प्रश्न : तेरे द्वार खड़ी भगवान
रजनीश भर दे रे झोली

कुसुम ! झोली भरी है; झोली खाली नहीं । आंख खोलो और देखो ! झोली भरी नहीं जानी है, झोली तुम भरी ही लेकर आए हो । झोली सदा से भरी है । संपदाओं की संपदा तुम्हारे भीतर है । साम्राज्यों का साम्राज्य तुम्हारे हृदय में छिपा है । सब जो तुम्हें चाहिए, तुम्हें दिया ही हुआ है, तुम्हें मिला ही हुआ है । रत्ती-भर भी जोड़ना नहीं है । न कुछ जोड़ना है, न कुछ घटाना है, सिर्फ जागना है । और जागते ही क्रांति घट जाती है ।

तो कुसुम, यह तो मत पूछ कि झोली भरूं तेरी ! अगर कोई झोली भर सकेगा तेरी तो कोई फिर खाली भी कर सकता है । फिर तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी ! मैं तो सिर्फ जगा सकता हूं । और जागते ही तुझे दिखायी पड़ेगा कि तेरी झोली सदा से भरी है, कभी खाली थी ही नहीं । क्योंकि परमात्मा से क्षण-भर को हमारा सम्बंध नहीं टूटता है । हम भूल जाएं उसे, वह हमें नहीं भूला है । हम पीठ कर लें उसकी तरफ, लेकिन उसने हमारी तरफ मुंह रखा है । हम विमुख हो जाएं, वह हमारे सदा सन्मुख है । नहीं तो हम जिएंगे कैसे ? वही तो डालता है श्वांस । वही तो प्राण का तार खींचता है । वही तो धड़कता है हृदय में । वही तो हमारा जीवन है । परमात्मा हमारे जीवन से भिन्न तो कोई नहीं है, भिन्न तो कुछ नहीं ।

लेकिन इसे जानने के लिए, जागने के लिए कुछ प्रक्रिया समझनी होगी ।

संसार में जो भी पाना हो, दौड़ने से मिलता है । और अंतरतम में जो भी पाना हो, वह रुकने से मिलता है । संसार में कुछ पाना हो, विचार करने से मिलता है; भीतर कुछ पाना हो, निर्विचार होने से मिलता है । क्योंकि भीतर पाना नहीं है, पाया ही हुआ है । विचारों के कारण पता नहीं चलता है—विचारों की भीड़ में' शोरगुल में खो जाता है । निर्विचार होते ही तत्क्षण चकित होकर पाया जाता है कि हम किसको खोजते थे, क्यों खोजते थे ? हम कहां-कहां भटके ! और जिसे हम खोजते थे, वह खोजनेवाले में छिपा बैठा है ।

राह यह परायी है !
भटके इन कदमों के साथ-साथ मेरे
यह बावरी
अंधेरे में साथ चली आयी है !

भूखे ये पांव रहे,
प्यासे ये पांव रहे,
जाने किस ओर तक

कहां से ये पांव रहे ।
और रुके पांव नहीं
और मिला गांव नहीं ।

पांवों के आंसू थे,
मिट्टी का आंचल था,
स्नेहभरी गोद राह की——
कितना संबल था ।

सुबह मुंहअंधेरे से
रात मुंहअंधेरे तक,
रुके कहीं पांव नहीं
और मिला गांव नहीं ।

पावों के साथ सिर्फ राह भटक आयी है !
दिन भर की भ्रांति और क्लांति की कमाई है !
राह यह परायी है !

जिन रास्तों पर भी तुम चल रहे हो, सब पराये हैं, सब दूर ले जानेवाले हैं। सब खोज तुम्हें अपने से दूर ले जा रही है ।

रुके कहीं पांव नहीं,
और मिला गांव नहीं ।

रुको, तो गांव अभी मिले, इसी क्षण मिले ! गांव तुम्हारे भीतर बसा है। मालिक भीतर बैठा है ।

मत मुझसे मांगो। मांगने में ही भूल हो जाती है। मैं तुम्हें कुछ दे नहीं सकता। लेकिन जागकर मैंने पाया है कि पाने को कुछ है ही नहीं। यही संकेत तुम्हें देता हूं। जागो, और पा लो ।

भूखे ये पांव रहे,
प्यासे ये पांव रहे,
जाने किस ओर तक
कहां से ये पांव रहे ।
और रुके पांव नहीं,
और मिला गांव नहीं ।

गांव मिल सकता है——अभी, इसी क्षण, कुसुम, पांव रुकने चाहिए । विचार के पांव, वासना के पांव——पांव रुकने चाहिए । सब तरह के पांव रुकने चाहिए। यही

ध्यान है । बैठ जाना चुप, मौन; बैठ जाना शांत, निर्विचार; डूब जाना अंतर में, भूल जाना बाहर को । और किसी दिन, किसी घड़ी में खजाना खुल जाता है। किसी शुभ घड़ी में, किसी शुभ मुहूर्त में राजाओं का राजा भीतर ही उपलब्ध हो जाता है ! और तब फूल-ही-फूल हैं। तब जीवन सुगंध-ही-सुगंध है।

फूले कदंब
टहनी-टहनी में कंदुक सम झूले कदंब
फूले कदंब

सावन बीता
बादल का कोष नहीं रीता
जाने कबसे वो बरस रहा
ललचाई आंखों से नाहक
जाने कब से तू तरस रहा
मन कहता है, छू ले कदंब
फूले कदंब
झूले कदंब

फिर फूल-ही-फूल हैं। फिर जीवन सुवास-ही-सुवास है। नहीं कहीं जाना है, नहीं कुछ पाना है। बस, अपने में आना है। यह सत्य आंख खोलकर नहीं देखा जाता, यह सत्य आंख बंद करके देखा जाता है। कछुए की तरह सिकुड़ रहो। सारी इन्द्रियों को शिथिल छोड़ दो । द्वार-दरवाजे सब बंद कर दो, बाहर को भूल-भाल जाओ । न अतीत रह जाए, न भविष्य——बस यही क्षण ! और इस क्षण में डुबकी लगा लो। और अतल गहराई है !

फूले कदंब
टहनी-टहनी में कंदुक सम झूले कदंब
फूले कदंब

खुल जाती है पंखुड़ी । भीतर जाते ही खुल जाती है !

वर्षा में अनावृत धुले पात
फीके थे कल, आज खुले पात

धूप के जादू में खिले पात
मस्तानी हवा में हिले पात

जादुई सांचे में ढले पात
भूल गये दाह-दिन भले पात
वर्षा में अनावृत धुले पात

फीके थे कल, आज खुले पात

बस खुलने की बात है। रुको, तो खुलो। पंखुड़ी खुल जाए। स्वर्ण-कमल तुम्हारे भीतर है। तुम हो स्वर्ण-कमल। मांगो मत, जागो!

तीसरा प्रश्न: कृष्ण का नाम ही सुना है। शिव को जाना भी नहीं। किंतु कुंडलिनी ध्यान में ऐसा क्यों लगा कि यहीं शिव का नृत्य हो रहा है और यहीं की मधुर आवाज कृष्ण की बांसुरी की आवाज है? बिना पहचान के ऐसा आभास क्यों हुआ?

पन्नालाल पाण्डेय! सभी नृत्य कृष्ण का नृत्य है। सभी धुन कृष्ण की धुन है। कृष्ण तो प्रतीक हैं, नृत्य असली बात है। नाच तुम्हारे भीतर खिलने लगेगा तो सुनी हुई बात कृष्ण के नृत्य की अचानक सार्थक हो जाएगी। अचानक उसका अर्थ तुम्हारे अनुभव में आ जाएगा। गीत तुम्हारे भीतर खुलने लगेगा तो अचानक, तुमने सुना है कृष्ण की बांसुरी की टेर--उसकी बात ही सुनी है--मगर जब तुम्हारे भीतर टेर खुलने लगेगी और तुम्हारे भीतर पुकार आने लगेगी तो तुम्हें वही प्रतीक याद आ जाएगा जो सुना है। स्वाभाविक।

ऐसा किसी ईसाई को नहीं होगा। ऐसा किसी जैन को भी नहीं होगा। जैन भी कुण्डलिनी कर रहे हैं। उनको कृष्ण की टेर नहीं सुनायी पड़ेगी। उनको शिव का नृत्य नहीं दिखायी पड़ेगा। वह प्रतीक उनके भीतर नहीं है। नृत्य तो उनके भीतर भी होगा, स्वर उनके भीतर भी जागेगा, मगर उस स्वर को प्रगट करनेवाला प्रतीक उनके पास नहीं है। तुमने सुना है, तुम्हारे पास प्रतीक है। इसलिए प्रतीक एकदम जीवंत हो उठा। इससे चौंको मत। इससे कृष्ण का कुछ लेना-देना नहीं है। तुम्हारे मन में, तुम्हारी स्मृति में एक संस्कार है। अनुभव हुआ, अनुभव ने संस्कार सजग कर दिया।

लेकिन शुभ हुआ। सब प्रतीक प्यारे हैं। मगर प्रतीक तभी प्यारे हैं जब उनका अर्थ तुम्हारे भीतर फले। घर में बैठे हो कृष्ण की मूर्ति लगाए, कि तस्वीर लटकाए, इससे कुछ भी न होगा। तुम्हारे भीतर नाच उठे, तो कुछ हुआ। घर में बैठे हो महावीर की प्रतिमा बिठाए, इससे कुछ भी न होगा। जब तुम्हारे भीतर सब थिर हो जाएगा महावीर जैसा, निस्तरंग! अब जैसे तुम्हें यह हुआ, ऐसे ही विपस्सना ध्यान में किसी जैन को अचानक महावीर की याद आ जाएगी, उनकी प्रतिमा आ जाएगी। हिन्दू के पास वैसा प्रतीक नहीं है।

सब धर्मों ने प्रतीक चुन लिये हैं।

और मैं तुम्हें यहां जिस वातावरण में प्रवेश दे रहा हूं, यह सारे धर्मों का वातावरण है। यह किसी एक संप्रदाय का मंदिर नहीं है। इस मंदिर के सब द्वार खुले हैं! एक तरफ से यह मस्जिद है, एक तरफ से यह मंदिर है, एक तरफ से

गिरजा है, एक तरफ से गुरुद्वारा है, एक तरफ से चैत्यालय है। इन सब द्वारों से मंदिर में प्रवेश संभव है। यहां जब कोई मस्त हो जाएगा, अगर उसके पास कृष्ण का प्रतीक है, तो अचानक उसे समझ में आएगी पहली दफा बात कृष्ण के रास की और अगर किसी ने मीरा को प्रेम किया है तो नाचते में उसे मीरा की याद आ जाएगी, मीरा के भजन गूंज उठेंगे। किसी ने चैतन्य को प्रेम किया है, अचानक उसे लगेगा कि चैतन्यमय हो गया। किसी ने महावीर को चाहा है, महावीर की परंपरा में पैदा हुआ है, महावीर का प्यारा प्रतीक उसके मन में बैठा है, मौन जब सधेगा, सब थिर जब होगा, तब उसे लगेगा कि आज जाना। बहुत गया जैन मंदिरों में, बहुत की पूजा, बहुत चढ़ाए चावल, बहुत झुका, लेकिन आज दर्शन हुए। आज अपने भीतर दर्शन हुए!

यहां तो अलग-अलग धर्मों के लोग हैं। शायद पृथ्वी पर ऐसी कोई और दूसरी जगह नहीं है जहां सारे धर्मों के लोग हों! यहां ईसाई हैं, पारसी हैं, यहूदी हैं, मुसलमान हैं--यहां सारी जातियों के लोग हैं, सारे देशों के लोग हैं। सारे प्रतीकों को ले आए हैं। यह बड़ी समृद्ध जगह है। सातों रंग यहां हैं, यह पूरा इन्द्र-धनुष है। और मैं चाहता यह हूं कि तुम धीरे-धीरे सभी प्रतीकों में लीन होने लगो। कृष्ण का ही प्रतीक क्यों रहे, महावीर का प्रतीक भी जुड़ जाए, बुद्ध का प्रतीक भी जुड़ जाए। क्योंकि ध्यान की अलग-अलग स्थितियों में सारे प्रतीकों के अर्थ हैं। ध्यान में मस्ती भी आती है, बांसुरी भी बजती है, मौन भी छा जाता है, शून्य भी प्रगट होता है। ध्यान के बड़े चढ़ाव हैं, बड़े पड़ाव हैं। अलग-अलग अर्थ अलग-अलग पड़ावों पर खुलते हैं। धर्मों ने एक-एक पड़ाव को पकड़ लिया है। मैं तुम्हें पूरी यात्रा देता हूं। इस यात्रा में सब पड़ाव आते हैं, सब तीर्थ आते हैं। इस यात्रा में काशी आती है और काबा आता है और कैलाश आता है और गिरनार भी, और जेरूसलम। हम एक विश्वयात्रा पर निकले हैं।

तो तुम अपने ही प्रतीकों मे बंधे मत रह जाना। तुम धीरे-धीरे अपने मन को खोलो; और प्रतीकों को भी अपने निकट आने दो। तुम औरों के प्रतीक भी सीखो और समझो। क्योंकि जितने प्रतीक तुम जानोगे, उतनी ही तुम्हारी भाषा समृद्ध होगी। तुम्हारा भाव समझने में आसानी होगी।

अच्छा हुआ। पहली बार चोट पड़ी!

अबके इस मौसम में
कोयल आज बोली है
पहली बार!
टूसों को उमगे कई दिन हो गये
टेसू को सुलगे कई दिन हो गये

अलसी को फूले कई दिन हो गये
बौरों को महके कई दिन हो गये

झपटी पछिया
दरक गये केलों के पात
लेते ही करवट
तेजाब की फुहारें
छिड़कने लगा सूरज
मुंह बा दिया कलियों ने
देखती रह गयी निठुराई के खेल
चुपचाप कलमुंही
भर गया जी
जोरों से कूक पड़ी

अब के इस मौसम में
कोयल आज कूकी है
पहली बार !

अच्छा हुआ ! तुम्हारे भीतर कोयल पहली दफा बोली है । तुम धन्यभागी हो ! अब इसे सुने जाना । यह तो गीत की शुरुआत है, अंत नहीं । यह तो पहला कदम है । अभी बहुत होने को है । इस पर ही अटक मत जाना । जैसे कृष्ण आए और शिव आए, ऐसे ही आने दो बुद्धों को भी, महावीरों को भी; क्राइस्ट को, लाओत्सू को, जरथुस्त्र को, आने दो सबको । सब को भरने दो अपना-अपना रंग तुम्हारे प्राणों में । सब को अवसर दो । सब तुम्हारे हैं, तुम सबके हो । और जैसे-जैसे ये प्रतीक आत्मसात होते जाएंगे वैसे-वैसे दृष्टि बदलेगी--और सृष्टि बदलेगी !

पीपल के पत्तों पर फिसल रही चांदनी
नालियों के भीगे हुए पेट पर, पास ही
जम रही, घुल रही, पिघल रही चांदनी
पिछवाड़े, बोतल के टुकड़ों पर--
चमक रही, दमक रही मचल रही चांदनी
दूर उधर, बुर्जी, पर उछल रही चांदनी

आंगन में, दूबों पर गिर पड़ी--
अब मगर, किस कदर, संभल रही चांदनी
वो देखो सामने--

पीपल के पत्तों पर फिसल रही चांदनी

एक बार भीतर जगने लगे रोशनी, सब तरफ फिसलने लगेगी । पीपल के पत्तों पर, पत्तों-पत्तों पर । सारा जगत एक अपूर्व सौन्दर्य से भर जाता है जब तुम्हारे हृदय में संगीत का जन्म होता है । सब तरफ प्रार्थना उठने लगती है, भजन पैदा होने लगता है । भजन वह नहीं है जो तुम आयोजन से करते हो; भजन वह है जो बिना किसी आयोजन के अचानक तुम्हें पकड़ लेता है, मथ जाता है जैसे झंझावात पकड़ ले । जैसे आए एक तूफान, आए एक आंधी और तुम्हें पकड़ ले और तुम उड़ चलो और तुम्हें पंख दे दे !

लोचन अंजन, मानस रंजन
        पावस, तुम्हें प्रणाम
तापतप्त वसुधा दुख भंजन
        पावस, तुम्हें प्रणाम
ऋतुओं के प्रतिपालक ऋतुवर
        पावस, तुम्हें प्रणाम
अतुल अमित अकुरित बीजधर
        पावस, तुम्हें प्रणाम
नेह-छोह की गीली मूरत
        पावस, तुम्हें प्रणाम
अग-जग फैली नीली सूरत
        पावस, तुम्हें प्रणाम

फिर वर्षा आए तो प्रणाम ! सर्दी आए तो प्रणाम ! धूप ऊगे तो प्रणाम ! फिर नमन तुम्हारा स्वभाव हो जाता है, क्योंकि परमात्मा सब तरफ मौजूद है । इधर देखो, कृष्ण नाच रहे हैं । यह जो न चने लगा मोर, और कौन है ? याद करो वे मोरपंख जो कृष्ण के मुकुट पर बंधे हैं । इधर नाचा मोर, कृष्ण नाचे ! इधर देखो यह पीपल का दरख्त चुपचाप खड़ा सन्नाटे में, पत्ता भी हिलता नहीं--बुद्ध खड़े हैं ! तुम्हारी आंख जरा खुलने लगे तो यह सारी प्रकृति धीरे-धीरे परमात्मा में रूपांतरित होने लगती है । और जहां उठाओ कदम, वहीं पवित्र भूमि है । जिस तरफ रखो आंख, वहीं परमात्मा के दर्शन हैं । फिर झुकता मन ! फिर प्रणाम ! फिर अभिनंदन ! पल-पल, श्वांस-श्वांस, हृदय की धड़कन-धड़कन में नमन ! ऐसी भावदशा को ही मैं भक्ति कहता हूं । ऐसी भावदशा बढ़ते-बढ़ते एक दिन भगवत्ता बन जाती है ।

इससे कम पर राजी नहीं होना है । भक्ति को भगवत्ता तक ले चलना है । भक्ति के बीज को भगवत्ता का फूल बनाना है ।

और तुम समर्थ हो। प्रत्येक समर्थ है। और तुम्हारा यह स्वरूपसिद्ध अधिकार है। अगर तुम चूको, तो तुम्हारे सिवाय और कोई जिम्मेवार नहीं। चूको तो तुम्हारी ही भूल है। पा लो, तो कुछ विशेष तुमने पाया नहीं। जो सहज ही मिलना था वही मिल गया है।

परमात्मा को चूकना बड़ी विशेष कला है, परमात्मा को पाना इतनी विशेष कला नहीं। परमात्मा को पाना सहज बात है. क्योंकि हमारा स्वभाव है। परमात्मा को तुम चूक रहे हो, यही चमत्कार है! यह बिलकुल अविश्वसनीय है कि कैसे तुम चूके चले जाते हो! सब तरफ जो भरा है, सब तरफ से जो आ रहा है, सब तरफ से तुम्हें घेरे है, बाहर और भीतर जो उमगा पड़ रहा है, उससे तुम कैसे चूके जा रहे हो? मगर हो जाता है ऐसा। सागर में मछली हो, तो पता नहीं चलता उसे सागर का। ऐसे ही हम परमात्मा में और हमें परमात्मा का पता नहीं चलता है।

सत्संग में पहली बार धीरे-धीरे तुम्हें रस की बूंद-बूंद पड़नी शुरू होगी, बूंदाबांदी होगी। फिर तो मूसलाधार होने लगती है वर्षा। तुम जैसे-जैसे तैयार होने लगे हो, जितने को लेने की तुम्हारी तैयारी होने लगती है, उतना ज्यादा-ज्यादा परमात्मा तुम में बहने लगता है। तुम्हारी पात्रता, तुम्हारे पात्र के अनुकूल सदा तुममें भरने को परमात्मा राजी है।

यह पहली कूक पड़ी, यह कृष्ण का तुम्हें थोड़ा-सा आभास हुआ, शिव का थोड़ा-सा आभास हुआ, यहीं रुक मत जाना। बढ़ने दो। फैलने दो। पूरे आकाश को घेर लेना है। सारे धर्म तुम्हारे हैं। सब कुरानें, सब बाइबिलें, सब वेद तुम्हारे हैं। और अगर तुम राज़ी हो, हिम्मतवर हो और छाती तुम्हारी बड़ी है, तो एक दिन तुम वेद को जगते देखोगे, एक दिन कुरान को उठते देखोगे। अगर वेद ही जागा तो आदमी गरीब रह गया। क्योंकि कुछ है जो वेद में है और कुछ है सौंदर्य जो कुरान में है। जिसके भीतर दोनों जगे, वह धन्यभागी। और जिसके भीतर धम्मपद भी उठा, और महावीर की वाणी भी गूंजी, उसका तो कहना क्या!

मनुष्य को हमें घोषणा देनी है कि सारी मनुष्यता का पूरा अतीत, पूरा इतिहास हमारी वसीयत है। संकीर्ण न होना, कृष्ण को ही पकड़ कर मत रह जाना, अन्यथा नाच तो जान लोगे, लेकिन महावीर की शांति से वंचित हो जाओगे। महावीर को ही पकड़कर मत रह जाना, अन्यथा शांति तो जान लोगे, लेकिन तुम्हारे पैर में घूंघर न बंधेंगे, बांसुरी न बजेगी। सब सुंदर है! किसी क्षण में मौन और किसी क्षण में मुखर गीत--सब सुंदर है। सर्वांगीण का स्वीकार, सर्व का स्वीकार धार्मिक व्यक्ति का लक्षण है। धार्मिक व्यक्ति सांप्रदायिक नहीं होता, नहीं हो सकता है।

आज इतना ही।
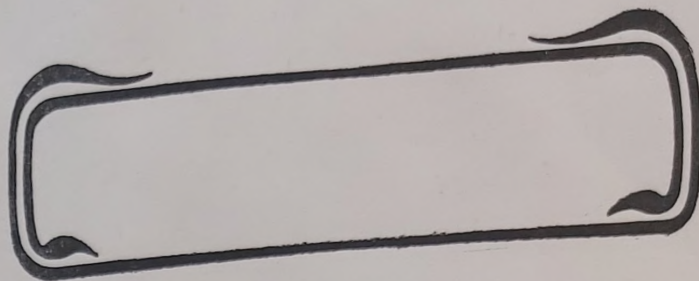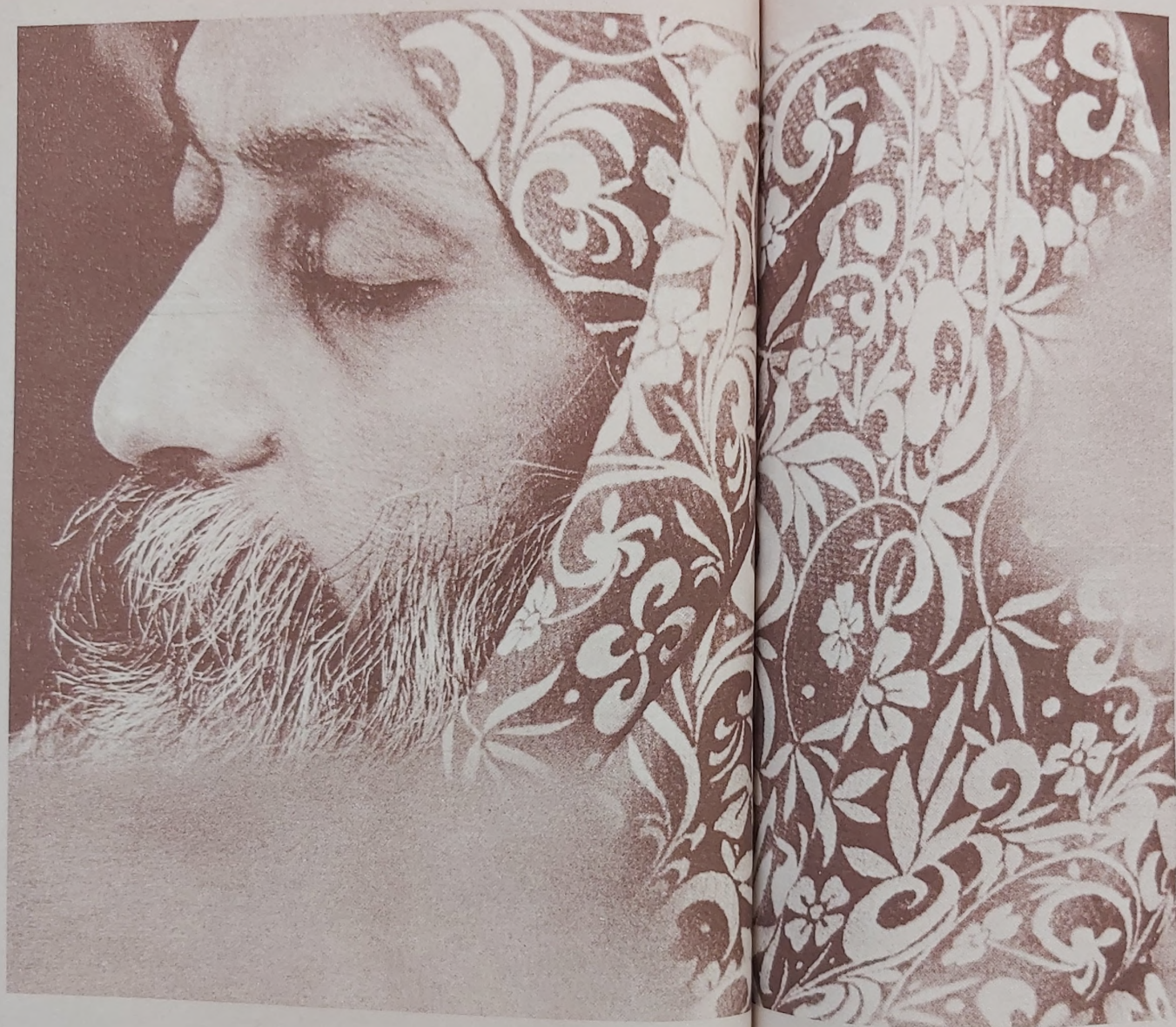
यहि नगरी में होरी खेलौं री

नौवां प्रवचन; १९ सितम्बर १९७८; श्री रजनीश आश्रम, पूना.

रंगि-रंगि चन्दन चढ़ावहु, सांईं के लिलार रे ।।
मन तें पुहुप माल गूंथिकै, सो लैकै पहिरावहु रे ।
बिना नैन तें निरखु देखु छवि, बिन कर सीस नवावहु रे ।।
दुइ कर जोरिकै बिनती करिकै, नाम कै मंगल गावहु रे ।
जगजीवन विनती करि मांगै, कबहुं नहीं बिसरावहु रे ।।

यहि नगरी में होरी खेलौं री ।।
हमरी पिया तें भेंट करावौ, तुम्हरे संग मिलि दौरौं री ।।
नाचौं नाच खोलि परदा मैं, अनत न पीव हंसौ री ।
पीव जीव एकै करि राखौं, सो छवि देखि रसौं री ।।
कतहूं न वहौं रहौं चरनन ढिग, मन दृढ़ होय कसौं री ।।
रहौं निहारत पलक न लावौं, सर्बस और तजौं री ।।
सदा सोहाग भाग मोरे जागे, सतसंग सुरति बरौं री ।
जगजीवन सखि सुखित जुगन-जुग, चरनन सुरति धरौं री ।।

अरी ए, नैहर डर लागै, सखी री, कैसे खेलौं मैं होरी ।
औंगुन बहुत नाहिं गुन एकौ, कैसे गहौं दृढ़ डोरी ।।
केहिं कां दोष मैं देउं सखी री, सबैं आपनी खोरी ।
मैं तो सुमारग चला चहत हौं, मैं तैं विष मां घोरी ।।
सुमति होहि तब चढ़ौं गगन-गढ़, पिय तें मिलौं करि जोरी ।।
भीजौं नैनन चाखि दरसन-रस, प्रीति-गांठि नहिं छोरी ।।
रहौं सीस दै सदा चरनतर, होउं ताहिकी चेरी ।
जगजीवन सत-सेज सूति रहि, और बात सब थोरी ।।

सहर तक शमए-महफ़िल ! मैंने जल बुझने की ठानी है
हमें ये देखना है, ख़ाक हो जाते हैं हम कब तक

परमात्मा की जो खोज पर निकले हैं, उन्हें ख़ाक हो जाने की तैयारी रखनी होती है । मिटो, तो ही उसे पा सकोगे । जरा से भी बच गये, तो उतना ही फ़ासला शेष रह जाता है । तुम्हारा मिटना ही उसका होना है । तुम्हारा मिटना ही उससे मिलना है । इसलिए जिसे यह बात साफ नहीं है, वह जन्मों-जन्मों तक भटकता रहे, खोजता रहे, पाएगा नहीं ।

सहर तक शमए-महफ़िल ! मैंने जल बुझने की ठानी है
हमें ये देखना है, ख़ाक हो जाते हैं हम कब तक

मिटने की तैयारी ही उसकी एकमात्र साधना है । मैं विदा हो जाए, समग्र-रूपेण विदा हो जाए, तो द्वार खुल जाता है । मैं के अतिरिक्त और कोई ताला नहीं है उसके द्वार पर । तुम ही बाधा हो ।

लोग सोचते हैं, कोई और बाधा है । लोग सोचते हैं, अज्ञानी हूं, थोड़ा ज्ञान हो जाएगा तो बाधा मिट जाएगी । पापी हूं, थोड़ा पुण्य कर लूंगा तो बाधा मिट जाएगी । नहीं, न तो पुण्य से बाधा मिटेगी, न ज्ञान से बाधा मिटेगी । जब तक तुम हो, बाधा रहेगी । अज्ञानी होकर रहो तो बाधा रहेगी, ज्ञानी होकर रहो तो बाधा रहेगी; पापी होकर रहो तो बाधा रहेगी, पुण्यात्मा होकर रहो तो बाधा रहेगी । फिर ताला लोहे का है कि सोने का, फर्क नहीं पड़ता । ताला ताला है । दरवाजा नहीं खुलेगा सो नहीं खलेगा । मिटना होगा । ख़ाक हो जाना होगा । जैसे दीया बुझ जाता है !

इसलिए बुद्ध ने उस परम अवस्था को निर्वाण कहा । निर्वाण का अर्थ है :

दीये का बुझ जाना। जैसे दीया बुझ जाता है ऐसे तुम बुझ जाओ, तो सूरज प्रगट हो जाए। तुम्हारे दीये की टिमटिमाती लौ ने ही सूरज को छिपा रखा है। जरा-सी किरकिरी आंख में पड़ जाती है, पहाड़ ओझल हो जाते हैं। ऐसी जरा-सी ही किरकिरी है अहंकार की, पर उसी की आड़ में, उसी की ओट में सब कुछ छिप गया है।

किसे यकीन कि तुम देखने को आओगे,
आखिरी वक्त मगर इंतजार और सही।

अंत तक, ठीक अंत तक भी उसका आगमन नहीं होता--अंत हो जाने के बाद ही होता है। जरा-से भी बच गये हो, तो उतनी ही बाधा शेष रह गयी है।

सिद्ध कौन है? जो शून्य है। जो परिपूर्ण शून्य है। जो है ही नहीं। जिसके भीतर जाओ तो रिक्तता है। कोरा आकाश! न विचार के बादल रह गये हैं, न अहंकार की गांठ रह गयी है। फिर घटना घटती है। फिर आ जाती सुहाग की घड़ी। होली का परम क्षण आ जाता है!

उन को बुला के और पशेमां हुए ज़िगर
ये क्या खबर थी होश में आया न जाएगा

फिर बेहोशी और मस्ती का क्षण आता है। फिर जीवन में नृत्य है--फिर जीवन नृत्य है! फिर जीवन में रंग है--फिर जीवन रंग है! उसके पहले बेरंग है जीवन। उसके पहले नाममात्र को ही जीवन है, जीवन कहां? श्वांस के लेने का नाम तो जीवन नहीं है। श्वांस तो पशु भी ले लेते हैं। हृदय के धड़कने का नाम तो जीवन नहीं। पशु-पक्षियों के भी हृदय धड़क रहे हैं। जिसने श्वांस और हृदय के धड़कन को ही जीवन समझ लिया, उसने यात्रा शुरू ही नहीं की, उसने पहला कदम भी नहीं उठाया।

जीवन तो तब है जब परम जीवन का अनुभव हो, शाश्वत जीवन का अनुभव हो। ये सांसें तो टूट जाएंगी, असली सांस कब लोगे, जो टूटती नहीं? यह धड़कन तो बंद हो जाएंगी। यह हृदय असली हृदय नहीं है। उस हृदय को कब धड़काओगे, जो एक बार धड़कता है तो शाश्वत तक धड़कता है, फिर उसका कोई अंत नहीं आता। अमृत को कब पिओगे? यह जीवन तो मृत्यु है। इस जीवन के पीछे तो मौत खड़ी ही है, हर घड़ी खड़ी है; कब आ जाए, कुछ पता नहीं। यह जीवन तो मौत के पास ही सरकते जाने का एक नाम है। मरघट के करीब रोज जा रहे हो। अर्थी रोज कसी जा रही है। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, मौत घेर लेगी, अंधकार आ जाएगा। यह रोशनी का दिखावा थोड़ी देर का है। यह चहल-पहल चार घड़ी की है। और इस चहल-पहल में सिर्फ चहल-पहल ही है, हाथ कुछ लगता नहीं, हाथ खाली-के-खाली रह जाते हैं। न कुछ लेकर आते हो, न कुछ लेकर जाते हो। खाली

आते, खाली चले जाते हो।

जागो! इस शोरगुल में बहुत मत उलझ जाओ! एक और सन्नाटा है भीतर जिससे पहचान करनी है। एक और हृदय है, जिसकी कुंजी तलाशनी है। तुम्हारे भीतर ही छिपा हुआ एक और राज है, जिसके पर्दे उघाड़ने हैं, जिसका घूंघट उठाना है। जिस दिन वह पर्दा उठता है, उस दिन ही पता चलता है कि हम क्या थे और क्या होकर रह गये थे! कमल थे और कीचड़ ही होकर रह गये थे। कमल की सम्भावना थी और हमने कीचड़ को ही अपना होना मान रखा था। राम थे और काम ही होकर रह गये थे। विराट थे और बड़े क्षुद्र में अपने को बांध लिया था। सारा आकाश थे, मुक्त आकाश थे, और कितने छोटे-छोटे इरछे-तिरछे आंगनों में आबद्ध हो गये थे!

जो खोजने चलता है, उसे यह दिखायी पड़ना शुरू हो जाता है कि यह जीवन तो असली जीवन नहीं। इस जीवन से तो उसका चित्त निराश हो जाता है। इस जीवन से तो हताश हो जाते हैं उसके प्राण। और जिसने असार को असार की तरह जान लिया, अब ज्यादा देर नहीं है सार को सार की तरह देखने में। व्यर्थ को व्यर्थ की तरह पहचान लिया, तो सार्थक के बहुत करीब आ गये। झूठ को झूठ की तरह पहचान लेना सत्य को सत्य की तरह पहचान लेने की अनिवार्य मंजिल है।

'रंगि-रंगि चंदन चढ़ावहु सांईं के लिलार रे।।'

और जो खोजने निकलता है और इतनी कीमत चुकाने को राजी है कि ख़ाक होना पड़े तो ख़ाक हो जाए; जो सूली पर चढ़ने को राजी है, उसे सिंहासन मिलता है। आ जाती है वह अमृत-घड़ी! रंगि-रंगि चंदन चढ़ावहु सांईं के लिलार रे.... कि उस प्यारे के ललाट पर चंदन का टीका लगाने का मौका आ जाता है!

'मन तें पुहुप माल गूंथिकै, सो लैकै पहिरावहु रे।'

और जब तुम शून्य हो जाते हो, तो जहां तुमने केवल विचारों की भीड़ देखी थी, जिस मन में तुमने सिवाय वासनाओं के, विचारों के, कल्पनाओं के, व्यर्थ के ऊहापोह के और कभी कुछ भी न पाया था; जिस मन में तुमने सिर्फ हाट भरी देखी थी वासनाओं, इच्छाओं, एषणाओं की, उसी मन में एक फूल खिलता है--चैतन्य का! यही मन, जो बाहर उलझा रहता है तो विक्षिप्तता लाता है, यही मन बाहर से मुक्त हो जाता है तो विमुक्तता लाता है। यही सीढ़ी है बाहर जाने की, यही सीढ़ी है भीतर आने की। उसी द्वार से तो बाहर जाते हो, जिस द्वार से भीतर आते हो। जिस सीढ़ी से नीचे उतरते हो, उसीसे तो ऊपर भी जाते हो। सीढ़ी को दोष मत देना, दिशा का सवाल है।

यही मन संसार से जोड़ देता है, यही मन परमात्मा से जोड़ देता है। जब तक संसार से जोड़ता है, तब तक इस मन में कांटे-ही-कांटे ऊगते हैं क्योंकि संसार में

सिवाय कांटों के और कुछ भी नहीं है--कांटों का जंगल है ! और जब यही मन तुम्हें परमात्मा से जोड़ देता है, अंतरात्मा से जोड़ देता है, तो फूल खिल आते हैं। और वे ही फूल चढ़ाने योग्य हैं।

वृक्षों के फूल तोड़कर जाकर मंदिर की मूर्तियों पर चढ़ा देते हो ! न मूर्तियां सच्ची तुम्हारी, न फूल अपने। इस झूठ को तुम पूजा कहते हो ? फूल पौधों के-- और चढ़े ही थे, पौधों पर चढ़े ही तो चढ़े थे परमात्मा को । जिंदा तो थे ! रस बह रहा था। चांद-तारों से बातें कर रहे थे। हवाओं में गंध बिखेर रहे थे। ये परमात्मा के ही चरणों पर चढ़े थे। और जीवंत थे और तुम्हारी पूजा बड़ी अनूठी है ! इन जिन्दाओं को तुमने तोड़ डाला, मार डाला, काट लिया ! और चढ़ा कहां आए ? जीवन को मुर्दा कर दिया और अपनी ही बनायी हुई मूर्तियों पर, पत्थर की मूर्तियों पर चढ़ा आए !

तुम्हारी बनायी मूर्तियां तुम्हारी प्रतिछबियां हैं। तुम्हारी ही तस्वीरें हैं। तुम्हारी बनायी मूर्तियां तुम्हारी ही कल्पनाएं हैं। तुम्हारे हाथ से परमातमा गढ़ा जाए, यह सम्भव कैसे ? तुम्हें परमात्मा ने गढ़ा है। तुम गढ़नेवाले को गढ़ लेते हो, किसको धोखा देते हो ? बजाय इसके कि समझो कि वह स्रष्टा है, तुम उसके स्रष्टा बन जाते हो। और तुमने रंग-रंग, ढंग-ढंग के परमातमा बना रखे हैं। तुम्हारी मौज ! मगर धोखा दे रहे हो और धोखा खुद ही खा रहे हो--किसको दोगे और ?

नहीं, एक और घड़ी है--वास्तविक परमात्मा के साक्षात्कार की, जब जीवन का अनुभव होता है, जब अमृत की वर्षा होती है। तब भी फूल चढ़ाए जाते हैं लेकिन वे फूल वृक्षों से नहीं लिये जाते, उधार नहीं होते--अपने ही प्राणों के होते हैं; मनुष्य भी एक वृक्ष है और उसमें भी फूल खिलते हैं--चैतन्य के, प्रज्ञा के, ध्यान के, सुरति के। उन्हीं फूलों को चढ़ाना। उन्हीं फूलों को खिलाओ, ताकि चढ़ा सको। उनसे कम में कुछ काम नहीं चलेगा। इस मन को फूल बनाओ। यह वचन प्यारा है-- 'मन तें पुहुप माल गूंथिकै'..., मन से ही गूंथ लिये फूल, मन से ही तोड़ लिये फूल..., 'सो लैकै पहिरावहु रे।' और इसकी ही माला उसे पहनायी।

'रंगि-रंगि चंदन चढ़ावहु'...; निश्चित ही यह चंदन भी बाहर का नहीं हो सकता। जब फूल भीतर के हैं तो चंदन भी भीतर का होगा। तुम्हारी चेतना में ही जो सुवास उठती है, उसी का नाम चंदन है। तुम्हारी चेतना की सुवास का नाम चंदन है। तुम्हारे भीतर छिपी है वास और तुम बाहर तलाश रहे हो। देखते न, कस्तूरा, कस्तूरी मृग भागता फिरता, भागता फिरता--इस तलाश में कि कहां से आ रही है यह सुवास ? और सुवास उसकी ही नाभि से आती है। 'कस्तूरी कुंडल बसै'!

तुम्हारे भीतर बड़ी सुवास के खजाने पड़े हैं। मगर तुम बाहर की गंध में ऐसे

उलझे हो कि अपनी गंध का पता ही नहीं चलता। तुम्हारे नासापुट बाहर की गंधों से ही भरे हैं। तुम समय ही नहीं देते, सुविधा ही नहीं देते कि तुम्हारी आंखें भीतर देख सकें, कि तुम्हारे कान भीतर सुन सकें, कि तुम्हारे नासापुट भीतर की गंध ले सकें, कि तुम्हारी जीभ भीतर का स्वाद ले सके, कि तुम्हें भीतर का स्पर्श हो सके, दरस-परस हो सके--मौका ही नहीं देते। बाहर इतने उलझे हो; तुम्हारी सारी इन्द्रियों को तुमने बाहर उलझा रखा है, और फिर इंद्रियों को गाली देते हो। उलझाया तुमने है। इन्द्रियां तो भीतर भी ले जा सकती हैं, इंद्रियां बाहर भी ले जा सकती हैं। इंद्रियां तो द्वार हैं।

जिस दरवाजे पर एक तरफ से लिखा होता है--'एंट्रेन्स', प्रवेश, उसी दरवाजे पर दूसरी तरफ से लिखा होता है--'एक्जिट', निकास। दरवाजा एक ही है। यह आंख बाहर ही अगर देखती होती तो मनुष्य परमात्मा को कभी भी नहीं देख सकता था। यह आंख भीतर भी देखती है--यह मुड़ कर भी देखती है। यह आंख दुधारी तलवार है। और ऐसी ही तुम्हारी सारी इन्द्रियां हैं। बाहर चाहो बाहर देखो, भीतर चाहो भीतर देखो। बाहर देखोगे तो संसार है, भीतर देखोगे तो निर्वाण है। और जो तुमने संसार में देखा है, सब तुम्हें भीतर मिल जाएगा--और अनंत-अनंत गुना और अनंत-अनंत गहरा।

गंधें तुमने बाहर भी देखी हैं, मगर कुछ भी नहीं ! बाहर की गंधें तो केवल दुर्गंधों को छिपाने के उपाय हैं। बाहर की गंधें तो ऐसे ही हैं जैसे किसी को घाव हुआ हो, मवाद पड़ गयी हो और उसके ऊपर एक गुलाब का फूल रख ले। गुलाब का फूल रख लो घाव पर, इससे घाव मिटेगा नहीं, छिप भला जाए। किसे धोखा दे रहे हो ? घाव बढ़ता रहेगा। और गुलाब की ओट में हो जाएगा तो और सुविधा से बढ़ेगा, क्योंकि दिखायी भी नहीं पड़ेगा।

अपनी दुर्गंध को छिपाने के लिए लोग सुगंध छिड़क लेते हैं। वह सिर्फ उपाय है भ्रांति पैदा करने का। अपनी कुरूपता को छिपाने के लिए लोग कितने सौंदर्य के आयोजन करते हैं। वस्त्रों से, परिधान से, परिवेष्ठन से, अलंकारों से, आभूषणों से, कितने-कितने उपाय हैं ! ये सिर्फ कुरूपता को छिपाने के उपाय हैं। बाहर से कोई सुन्दर नहीं हो सकता। सौन्दर्य का तो अन्तस्तल में आविर्भाव होता है।

तुमने बाहर भी रंग देखे हैं, मगर वे रंग कुछ भी नहीं हैं उन रंगों के मुकाबले जो तुम्हारे भीतर भरे हैं। और तुमने बाहर भी इन्द्रधनुष देखे हैं, मगर जब भीतर के इन्द्रधनुष देखोगे तब पता चलेगा कि बाहर के इन्द्रधनुष तो सब फीके थे; सब छायामात्र थे। बाहर तो केवल प्रतिध्वनियां हैं, मूल तो भीतर है। बाहर तो ऐसा समझो कि जैसे तुम पहाड़ों में गये हो और तुमने जोर से आवाज लगायी और पहाड़ी घाटियों में आवाज गूंजी और तुम पर लौट आयी। और तुम चौंकते हो और लगता

है, शायद पहाड़ों ने तुम्हें पुकारा !

बाहर प्रतिध्वनि हो रही है। गूंज का असली मूल तुम्हारे भीतर है। वहां चंदन के रंग भी हैं, चंदन की मूल सुवास भी। वहां फूल भी खिलते हैं। वहां सहस्रार का परम फूल भी खिलता है ! और उसी को परमात्मा के चरणों में चढ़ाया जा सकता है, उसी की माल बनायी जा सकती है।

'बिना नैन तें निरखु देखु छवि,'...

और जब आंख भीतर मुड़ती है तो आंख में एक रूपांतरण हो जाता है, एक क्रांति हो जाती है। जब आंख बाहर देखती है तो देखनेवाला और दिखायी पड़नेवाली चीज अलग-अलग होती हैं, द्रष्टा और दृश्य का भेद होता है। जब आंख भीतर मुड़ती है, तो देखनेवाला भी वही होता है, दिखायी पड़नेवाला भी वही होता है। वहां दृश्य और द्रष्टा एक हो जाते हैं। वहां तो दो कैसे होंगे ? वहां जाननेवाला और जो जाना गया है, एक होता है। वहां भक्त और भगवान एक होता है। वहां सब द्वैत मिट जाते हैं। वहीं असली दर्शन है जहां दृश्य और द्रष्टा दोनों एक में ही खो जाएं।

'बिना नैन तें निरखु देखु छवि,'...

देखनेवाला तो बचता ही नहीं वहां। तब बड़ा चमत्कार अनुभव होता है, बड़े रहस्य का जन्म होता है। चौंक पड़ता है मनुष्य, अवाक रह जाता है !

'बिना नैन तें निरखु देखु छवि, बिन कर सीस नवावहु रे ।।

और वहां तो कोई सिर नहीं है, वहां तो कोई हाथ भी नहीं है--भीतर--मगर बिना हाथ के भी हाथ जुड़ते हैं और बिना सीस के भी सीस झुकता है। और वही असली झुकना है। बाहर का सीस तो तुमने बहुत बार झुकाया मगर झुकता कहां है ? झुक-झुक कर अकड़ जाता है। सीस तो झुक जाता है, तुम नहीं झुकते। मंदिरों में खड़े लोगों को देख लो, सीस झुका है मगर खुद अकड़ कर खड़े हैं ! खुद का अहंकार तो पूरी तरह मजबूत है, जरा नहीं झुकता, रंच-भर नहीं झुकता।

सीस को झुकाने से अहंकार नहीं झुकता। लेकिन जब भीतर सीस झुकता है, बिना सीस के सीस झुकता है तो अहंकार बिदा हो जाता है। और फिर एक बार जो भीतर दिखायी पड़ जाए, भीतर सुनायी पड़ जाए, तो फिर सब तरफ उसकी झलक दिखायी पड़ने लगती है।

पासे-अदब से छुप न सका राज़े-हुस्नो-इश्क़
जिस जा तुम्हारा नाम सुना सर झुका दिया

फिर तो कोई नाम ही ले दे कहीं, याद आ जाती है उसकी !

रामकृष्ण को रास्तों तक पर ले जाने में मुश्किल हो जाती थी। उनके शिष्यों को बड़े सम्हाल कर ले जाना पड़ता था। कोई रास्ते में 'जय राम जी' ही कर दे,

बस उतना काफी था, कि वे मस्त हो जाते, कि वे भावदशा में आ जाते, कि चौरस्ते पर खड़े हो जाते, आंखें बंद हो जातीं, आंसू झर-झर बहने लगते, आनंदमग्न हो नाचने लगते। भूल ही जाते कि चौराहा है, कि रास्ता चल रहा है, कि गाड़ियां गुजर रहीं हैं, कि भीड़ लग गयी, कि पुलिसवाला भीड़ छांटने आ गया है। उन्हें फिर कुछ भी याद न रहती। नाम भी कोई ले देता !

एक शिष्य के घर विवाह था, उसकी बेटी का विवाह था, उसने बहुत प्रार्थना की रामकृष्ण को कि आप आएं। उन्होंने कहा, मैं आऊंगा। दूसरे शिष्यों ने कहा, बेहतर है न ले जाओ। कोई झंझट हो गयी तो दूल्हा और दुल्हन तो एक तरफ रह जाएंगे... ! मगर भक्त नहीं माना तो रामकृष्ण गये। और जो होना था वही हुआ। दूल्हे को सजे देखकर घोड़े पर उन्हें असली दूल्हे की याद आ गयी। सबको सम्हाल दिया था कि कोई 'जय राम जी' इत्यादि मत करना, परमात्मा का नाम मत लेना, मगर यह किसी ने सोचा न था कि घोड़े पर बैठे दूल्हे को देखकर ... उनके मन में वैसा ही हो गया होगा जैसा कबीर ने कहा है : 'मैं तो राम की दुल्हनियां !' वे तो एकदम नाचने लगे। वे नाचने लगे तो बस सब फीका पड़ गया। रामकृष्ण नाचें तो फिर और क्या रह जाए ! जो होना था--विवाह का क्रियाकांड--वह तो एक तरफ पड़ गया, वह तो भूल ही भाल गये लोग, सब रामकृष्ण के पास इकट्ठे हो गये। भक्त बड़े हैरान हुए ! क्योंकि किसी ने न 'जय राम जी' की, न हरिनाम लिया, न कुछ सवाल उठा, यह आज मामला कैसे हुआ ?

जब होश आया तीन घंटे बाद, रामकृष्ण से पूछा कि किसी ने तो कुछ कहा ही नहीं, आप एकदम से कैसे हो गये ? उन्होंने कहा, किसी के कहने का क्या सवाल था, देखा नहीं घोड़े पर राम जी को ! क्या सवार थे ! याद आ गयी ! असली वर की याद आ गयी ! मेरी भी तो गांठ बंध गयी ऐसे ही। ऐसे ही मेरी भी तो भांवर पड़ गयी ! फिर न सम्हाल सका।

भीतर झुक जाओ, फिर तो बाहर भी झुकोगे। फिर मैं तुमसे कहता हूं, पत्थर की मूर्ति के सामने भी झुक जाओगे तो तुम उसी के सामने झुक रहे हो ! मगर तब तक नहीं, जब तक भीतर की पहचान नहीं है। फिर तो वृक्ष के सामने झुकोगे तो भी उसीके सामने झुक रहे हो, क्योंकि उसीकी हरियाली है वहां। फिर तो तुम किसी के भी सामने झुक जाओगे। झुकना तुम्हारा जीवन का ढंग हो जाएगा। तुम झुके ही जीने लगोगे। तुम्हारे भीतर झुकाव एक शैली बन जाएगी। एक सहज भावदशा !

ठेस लग जाए न उनकी हसरते-दीदार को
ऐ हुजूमे-ग़म संभलने दे ज़रा बीमार को
फ़िक्र है ज़ाहिद को हूरो-कौसरो-तसनीम की

और हम जन्नत समझते हैं तिरे दीदार को

भक्त तो कहते हैं कि हमें बस इतना काफी है कि तेरा दीदार हो जाए, कि तू दिखायी पड़ जाए।

फ़िक्र है ज़ाहिद को हूरो-कौसरो-तसनीम की

लेकिन वे जो तपस्वी हैं तथाकथित, विरागी हैं तथाकथित, उनको बड़ी आकांक्षाएं हैं कि स्वर्ग मिले, स्वर्ग में स्वर्ण-महल मिले, सुन्दर अप्सराएं मिलें, उर्वशियां उनके पैर दाबें और गंधर्व उनके आसपास वीणा बजाएं, और शराब के चश्मे बहें और कल्पवृक्ष हों, और उनके नीचे बैठ कर वे जो मर्जी हो पूरा करें ! ये कोई भक्त के लक्षण नहीं, न धार्मिक के लक्षण हैं। यह तो वही आकांक्षाएं, वही संसार। तुमने फिर नये पर्दे पर वही चित्र बना लिये। फिर तुमनें नयी दिशा में वही आकांक्षाएं आरोपित कर लीं। फिर तुम अपना बाजार वापिस ले आए।

पुराणों में जो स्वर्गों की कथाएं हैं, स्वर्गों के जो वर्णन हैं, अगर गौर से समझोगे, तुम्हारे चित्त के वर्णन हैं, स्वर्गों के नहीं। तुम्हारी वासनाओं के वर्णन हैं, स्वर्गों के नहीं। स्वर्ग कोई स्थान नहीं है। स्वर्ग तो उसके दीदार में मिट जाने का नाम है। स्वर्ग तो उसके दर्शन में तिरोहित हो जाने का नाम है। स्वर्ग तो उसके दरस-परस का ही नाम है। कोई स्थान नहीं कि जहां कल्पवृक्ष लगे हैं, जिनके नीचे तुम बैठोगे। कल्पवृक्ष की कल्पना ही यह बताती है कि तुम्हारे मन में अधूरी रह गयी हैं वासनाएं। यहां पूरी नहीं कर पाए तो वहां पूरा करोगे। और वहां पूरा करने के लिए यहां तुम वासनाओं को दबा रहे हो, उनसे लड़ रहे हो——जरा पागलपन देखो, जरा तुम्हारा गणित समझो !

अगर वासनाएं गलत हैं, तो यहां भी गलत हैं, वहां भी गलत होंगी। अगर शराब गलत है, तो यहां भी गलत है, वहां भी गलत होगी। मगर मजा देखो कि यहां तो जरा-से कुल्हड़ में शराब पीना पाप है और वहां झरने बह रहे हैं, कि पिओ दिल भर कर, कि डुबकी मारो ! यहां तुम्हारे साधु-संत तुमसे कहे जाते हैं, सावधान, स्त्री से सावधान ! और वहां सुन्दर स्त्रियां मिलेंगी——इसी सावधानी के परिणाम में ! यह गणित कैसा है ? यह तो बड़ी चालबाजी हो गयी, यह तो बड़ा लोभ और लालच हो गया ! यह तो ऐसा हुआ कि यहां की साधारण स्त्रियां छोड़ीं वहां की असाधारण स्त्रियों को पाने के लिए। वहां की स्त्रियां असाधारण हैं। मनुष्य के मन ने कैसी कल्पनाएं की हैं, कि वहां की स्त्रियों की उम्र नहीं बढ़ती। बस सोलह साल पर रुकी है सो रुकी है ! उर्वशी अभी भी सोलह ही साल की है ! हजारों साल बीत गये, ऋषि-मुनि आते रहे, जाते रहे, उर्वशी सोलह साल की है सो सोलह ही साल की है ! वहां कोई बूढ़े नहीं होते।

यह तुम्हारी आकांक्षा है। यह तुम्हारी मनोवासना है। तुम यहां भी नहीं

चाहते कि बुढ़ापा आए। मगर यहां तुम विवश हो। आता है; क्या करोगे ? बहुत छिपाते हो, बहुत रोकते हो, बहुत सम्हालते हो, आ-आ जाता है। मगर कम-से-कम स्वर्ग की कल्पना में ही मन को रमाते हो। वहां भी तुम यही भोग कल्पना कर रहे हो। यह कोई त्याग नहीं।

फिर असली त्यागी कौन है ?

असली त्यागी वही है जो कहता है : परमात्मा का दर्शन हो गया, सब मिल गया। 'और हम जन्नत समझते हैं तिरे दीदार को'। इससे ज्यादा की मांग संसार की मांग है। फिर तुमने परमात्मा से भी ऊपर कोई चीजें अभी रखी हैं।

तुम जरा सोचो, अगर तुमसे कोई कहे कि परमात्मा से तुम्हारा मिलन हो जाएगा, तो तुम कौन-सी तीन चीजें मांगोगे ? तत्क्षण तुम्हारा चित्त फेहरिश्त बनाने लगेगा। कभी बैठकर एक क्षण को सोचना कि परमात्मा से मिलना हो जाए तो तैयार तो कर लो फेहरिश्त, मांगोगे क्या ? कम-से-कम तीन चीजें तो तय कर लो। क्योंकि कहानियां हैं, जिनमें कभी-कभी परमात्मा से मिलना हो गया है लोगों का और उन्होंने फेहरिश्त तैयार नहीं की थी और बड़ी झंझट में पड़े। क्योंकि जो मांगा, उससे मुसीबत हो गयी। गलत-गलत मांग लिया। बिना सोच-समझ कर मांग लिया। ऐसी बहुत कहानियां हैं।

एक आदमी को इष्टदेवता के दर्शन हो गये। और देवता जैसा पूछते हैं कहानियों में, उन्होंने पूछा, कि मांग ले, तीन वरदान मांग ले। वह आदमी अपनी पत्नी से परेशान था——जैसे सभी आदमी परेशान हैं। तो उसने कहा कि ठीक, यह मेरी पत्नी मर जाए। तत्क्षण पत्नी गिर पड़ी और मर गयी। और जैसा पत्नी के मरने पर होगा, तब घबड़ाया। क्योंकि पत्नी के बिना कैसे चलेगा ! न साथ चलता है, न बिना चलता है। पत्नी से दूर होते ही से पता चलता है कि बिना चल ही नहीं सकता। तब उसे होश आया कि खाना कौन पकाएगा, बिस्तर कौन लगाएगा, बच्चों की कौन फिकिर करेगा। मारे गये ! मुश्किल में पड़ गये ! जल्दी से प्रार्थना की कि पत्नी को जिन्दा करो। उसमें दूसरा वरदान भी खत्म हो गया——बात वहीं की वहीं है——पत्नी जिन्दा हो गयी। इष्टदेवता ने कहा, अब जल्दी करो, तीसरा मांग लो। उसने कहा, अब रुको ! अब एक ही बचा, अब मुझे सोचने दो।

और मैंने सुना है, वह अभी भी सोच रहा है। अब एक ही वरदान मांगना हो, इतनी दुनिया की वासनाएं, इतनी कामनाएं, कैसे चुनाव कर पाओगे ? पागल हो गया होगा बेचारा ! यह मांगो तो वह छूटता है, वह मांगो तो यह छूटता है। इतनी चीजें हैं संसार में मांगने को।

तो तुम फेहरिश्त बनाना। कम-से-कम तीन का तो तैयार ही रखना, क्योंकि पुरानी आदत देवताओं की, वे कहते हैं : तीन मांग लो। न दो, न चार। तुम तीन

की फेहरिश्त बनाना, तुम भी चकित हो जाओगे। अपनी फेहरिश्त देखकर चकित हो जाओगे । एक कागज पर लिखना । डरना मत। झूठी फेहरिश्त मत बना लेना। किसी को दिखाने के लिए नहीं बनाना है, तुम्हीं को जानने के लिए बनाना है। दिखाने के लिए बनाओगे तो झूठी हो जाएगी। जो आता है मन में, वही लिखना। तब तुम्हें पता चलेगा : परमात्मा भी सामने खड़ा हो तो तुम क्षुद्र बातें मांगोगे। बड़ी क्षुद्र बातें मांगोगे ! धन मांगोगे, पद मांगोगे, प्रतिष्ठा मांगोगे । भोग की कोई यात्रा पर निकलना चाहोगे। मांगोगे क्या और ? तुम्हारा त्यागी-व्रती यही कर रहा है।

नहीं, भक्त की ऐसी कोई आकांक्षा नहीं। भक्त कहता है, तेरा दीदार, बस काफी !

'बिना नैन तें निरखु देखु छवि, बिन कर सीस नवावहु रे ॥
दुइ कर जोरिकै बिनती करिकै, नाम कै मंगल गावहु रे।'

दोनों हाथ जोड़कर बिनती करूंगा, तेरे नाम का मंगल गाऊंगा। और क्या करने को बचता है ! जिसे परमात्मा का दर्शन हुआ, उसके पास सिवाय उत्सव के और कुछ भी नहीं है अब। स्वर्ग उत्सव है। भोग नहीं, उत्सव। मांग नहीं, उत्सव --धन्यवाद, आभार-प्रदर्शन।

इसलिए मैं अपने संन्यासियों को कहता हूं : प्रत्येक ध्यान के बाद थोड़ी देर के लिए उत्सव की घड़ी जरूर लाना, उत्सव मना लेना। हर ध्यान के बाद। क्योंकि अंततः परम ध्यान के बाद उत्सव ही घटने वाला है, उसकी तैयारी करो। उसके लिए धीरे-धीरे-धीरे-धीरे अपने को निष्णात करो। समाधि के बाद सिर्फ उत्सव ही रह जाता है और सब खो जाता है। समाधिस्थ पुरुष के जीवन में सिवाय नृत्य के, गीत के और क्या है ? और गीत भी उसके अपने नहीं हैं अब।

प्रिय, तुमने ही तो गाए थे
मैंने ये जितने गीत लिखे !
अम्बर की लाली को उस दिन
तुमने ही था अनुराग दिया,
तुमने ऊषा को अपनी छवि,
कलरव को अपना राग दिया,
अपना प्रकाश रवि-किरणों को,
अपना सौरभ मलयानिल को,
पुलकित शतदल को तुमने ही
प्रिय, अपना मधुर पराग दिया !

फिर भक्त तो बचा ही नहीं, भगवान ही भक्त में नाचता है। अनूठा रास !

आनंद-उत्सव, महोत्सव ! फूल पर फूल खिलते हैं। बीन पर बीन बजती है। नये-नये पर्दे उठते जाते रहस्य के। चारों तरफ दीये ही दीये जल जाते हैं। दीवाली भी आ गयी और होली भी आ गयी--सब साथ हो जाता है।

'जगजीवन बिनती करि मांगै, कबहूं नहीं बिसरावहु रे ॥'

बस एक ही प्रार्थना रह जाती है करने की, कि कभी भूलूं न, कभी फिर न भूल जाऊं ! ध्यान करना इस बात पर, और कुछ नहीं मांगते जगजीवन, इतना ही मांगते हैं कि यह दर्शन जो हो गया है, यह मेरी पात्रता से तो नहीं हुआ है, मैं तो अपात्र ही हूं, मैं तो जैसा हूं वैसा ही हूं, मैंने कोई बहुत बड़ा अर्जन नहीं कर लिया है, मैंने कोई बहुत बड़ा त्याग नहीं कर दिया है--मेरे त्याग में भी क्या रखा है; मेरा त्याग मेरे ही जैसा होगा ! दो कौड़ी की मेरी स्थिति है, दो कौड़ी का मेरा त्याग होगा। न मेरा ज्ञान है, न मेरा ध्यान है, और तुम आ गये ! अनायास तुम आ गये हो, अतिथि बनकर तुम मौजूद हो गये हो, तुमने द्वार पर दस्तक दे दी है, यह दस्तक देते रहना ! और मुझे याद दिलाते रहना। मैं तो नासमझ हूं, भूल भी सकता हूं, पा-पाकर भी चूक सकता हूं। तुम्हें देख लिया, फिर भी विस्मरण कर सकता हूं।

भक्त यही कहता है, यही निवेदन करता है कि तुम्हें देख लिया, अब विस्मरण होना नहीं चाहिए, लेकिन मुझे अपनी अपात्रता का पता है, मुझे अपने अज्ञान का पता है, मैं फिर अंधेरी रात में खो सकता हूं। यह पूर्णिमा जो आज मेरे जीवन में आयी है, फिर अमावस बन सकती है। अगर मुझ पर ही निर्भर रहा तो अमावस बन ही जाएगी। तुम्हारे सहारे की अब मुझे और भी जरूरत होगी। अब दर्शन दिया है, तो अब विस्मरण न हो पाए ! मैं तुम्हारे स्मरण को करता ही रहूं।

'दुइ कर जोरिकै बिनती करिकै,'...

मैं दोनों हाथ जोड़कर बिनती करता हूं।

दुनिया में बहुत तरह के प्रणाम हैं, लेकिन दोनों हाथ को जोड़कर प्रणाम करने की प्रक्रिया इस देश की है। और इसके पीछे बड़े रहस्य हैं, बड़े प्रतीक हैं। अब तो वैज्ञानिक अनुसंधान भी इस बात के करीब आ रहा है। विज्ञान की नयी खोजें कहती हैं कि मनुष्य का मस्तिष्क दो हिस्सों में बंटा हुआ है। जो दाएं तरफ का हिस्सा है मनुष्य के मस्तिष्क का, वह बाएं हाथ से जुड़ा है। और जो बाएं तरफ का हिस्सा है मस्तिष्क का, वह दाएं हाथ से जुड़ा है। उल्टा, क्रॉस के जैसा। बायां दाएं-से जुड़ा है, दायां बाएं से जुड़ा है। चूंकि हमने दाएं हाथ को महत्त्वपूर्ण बना लिया है और हमारे सारे कृत्य उसीसे हो रहे हैं, इसलिए हमारा बायां मस्तिष्क का हिस्सा सक्रिय है। बाएं मस्तिष्क के हिस्से के कुछ लक्षण हैं--गणित, तर्क, हिसाब-किताब, बहिर्यात्रा। और शायद इसीलिए दायां हाथ महत्त्वपूर्ण हो गया। अब विज्ञान इस

खोजबीन में लगा है, शायद इसीलिए दायां हाथ महत्त्वपूर्ण हो गया। क्योंकि बाएं मस्तिष्क को सक्रिय करने के लिए दाएं हाथ को सक्रिय करना जरुरी है; वे जुड़े हैं। जब दायां हाथ चलता है, तो बायां मस्तिष्क चलता है। जब बायां हाथ चलता है, तो दायां मस्तिष्क चलता है। दाएं मस्तिष्क के लक्षण हैं—काव्य, भाव, अनुभूति, प्रेम। उनका तो कोई मूल्य नहीं है जगत में। इसीलिए बायां हाथ बेकार डाल दिया गया है। बायां हाथ को बेकार डालने में हमने काव्य को बेकार कर दिया है, प्रेम को बेकार कर दिया है, अनुभूति को, भाव को बेकार कर दिया है। यह बड़ी तरकीब है। बड़ी जालसाजी है!

ये दोनों हाथ समान रूप से सक्रिय हो सकते हैं भविष्य में। और होने चाहिए। भविष्य के मनुष्य की जो प्रशिक्षण-प्रक्रिया होगी, उसमें ये दोनों हाथ सक्रिय करने की कोशिश की जाएगी। अभी तो हालत यह है, अगर कोई बच्चा बाएं हाथ से लिखता है, तो हम उसके पीछे पड़ जाते हैं कि दाएं से लिखो। दस प्रतिशत लोग बाएं हाथ से लिखने वाले पैदा होते हैं। सौ में दस आदमी बाएं हाथ से लिखने वाले पैदा होते हैं। लेकिन मिलेंगे तुमको शायद एकाध ही आदमी मिलेगा सौ में से जो बाएं हाथ सेलिखता हो, बाकी नौ को हम धक्का मार-मार कर, सजा दे-देकर, स्कूल में मारपीट कर दाएं हाथ से लिखवाने लगते हैं।

उसके पीछे कारण हैं।

समाज तर्क को मूल्य देता है, काव्य को नहीं। समाज गणित को मूल्य देता है, प्रेम को नहीं। समाज हिसाब-किताब से जीता है, भाव से नहीं। यह भाव की हत्या की खूब तरकीब निकाली! मगर हजारों-हजारों सदियों से यह तरकीब चल रही है और हमारा मस्तिष्क का आधा हिस्सा बिल्कुल निष्क्रिय होकर पड़ा है।

दोनों हाथों को एक साथ रखकर जोड़ने में प्रतीक है कि हम दोनों अंगों को जोड़ते हैं हम इकट्ठे होकर नमस्कार कर रहे हैं। हम दोनों मस्तिष्कों को एक साथ लाकर नमस्कार कर रहे हैं। हमारा तर्क भी तुम्हें निवेदन है, हमारा प्रेम भी तुम्हें निवेदन है; हमारा गणित भी, हमारा काव्य भी; हमारा स्त्रैण चित्त भी, हमारा पुरुष चित्त भी, दोनों समर्पित हैं। हम इकट्ठे होकर समर्पित हैं।

अब भेद है! पश्चिम में लोग हाथ मिलाते हैं। उसमें एक ही हाथ का काम होता है। वह आधे मस्तिष्क का कृत्य है। उसमें समग्र मनुष्य समाहित नहीं है। दोनों हाथ को जोड़ने में समग्रता समाहित है। हम दुई को मिटाने की कोशिश कर रहे हैं। दो नहीं, एक। इसलिए परमात्मा के सामने दोनों हाथ जोड़ते हैं। जहां भी निवेदन करते हैं, वहां दोनों हाथ जोड़ते हैं।

जब तुम दोनों हाथ जोड़ते हो एक साथ, तो तुम्हारा मस्तिष्क और तुम्हारे दोनों हाथों की ऊर्जा वर्तुलाकार हो जाती हैं, विद्युत वर्तुल में घमने लगती है। यह

सिर्फ प्रतीक ही नहीं है, वस्तुतः यह घटना घटती है।

इसलिए ध्यान में कहा जाता है: पद्मासन। पद्मासन में एक पैर दूसरे पैर से जुड़ जाता है और हाथ पर हाथ रख लो तो हाथ भी एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं—तुम्हारा पूरा शरीर एक हो गया। तुम्हारा द्वंद्व टूट गया भीतर। तुम्हारे शरीर में विद्युत की ऊर्जा वर्तुलाकार घूमने लगी। यह जो वर्तुल है विद्युत का, बड़ा शांतिदायी है। इसलिए पद्मासन, सिद्धासन बड़े वैज्ञानिक आसन हैं। सुगमता से चित्त शांत हो सकेगा। सरलता से चित्त शांत हो सकेगा। शरीर को जोड़कर हमने मस्तिष्क के दोनों खंडों को जोड़ दिया। दोनों मस्तिष्क के खंड जुड़ जाएं तो हमारे भीतर जो भाव का और विचार का द्वंद्व है, वह समाप्त हो जाता है। विज्ञान और धर्म का जो द्वंद्व है, वह समाप्त हो जाता है।

दोनों हाथों को जोड़कर नमस्कार करना बड़ा वैज्ञानिक है। इसे हाथ मिलाने से मत बदल लेना, वह बहुत सस्ता है, उसका कोई मूल्य नहीं, उसकी कोई वैज्ञानिकता नहीं है।

'दुइ कर जोरिकै बिनती करिकै, नाम कै मंगल गावहु रे।'

अब तो कुछ और बचा नहीं, दुई मिटा दी है, एक हो गया हूं और अब एक होने के बाद सिवाय मंगल गाने के और क्या बचता है! मंगल ही मंगल है!

'जगजीवन बिनती करि मांगै, कबहुं नहीं बिसरावहु रे।।'

कभी बिसराऊं न, कभी भूलूं न। क्योंकि जिसने एक बार जान लिया है, फिर बिसराना बहुत दुखद हो जाता है! बहुत दुखद हो जाता है!! इससे तो अच्छा था न जानना। स्वाद नहीं लगा था तो विषाद भी नहीं था। स्वाद लग गया, फिर उसे पता है शराब का रस, शराब की मस्ती! जिसने कभी पी ही नहीं है, उसे न मस्ती का पता है, न रस का पता है; उसे कोई अड़चन भी नहीं है, उसे याद भी नहीं है।

इश्क ने तोड़ी सर पे क़ियामत, ज़ोरे-क़ियामत क्या कहिए
सुनने वाला कोई नहीं, रूदादे-मोहब्बत क्या कहिए

जब से उसने फेर लीं नज़रें, रंगे-तबाही आह! न पूछ
सीना ख़ाली, आंखें वीरां, दिल की हालत क्या कहिए

अगर उससे नजर मिलकर फिर नजर चूकी, तो—

जबसे उसने फेर लीं नज़रें रंगे-तबाही आह! न पूछ—

फिर तबाही का रंग न पूछो! फिर तबाही का हाल न पूछो! 'सीना ख़ाली, आंखें वीरां ... फिर भीतर सब रिक्त-रिक्त, आंखें वीरान ... 'दिल की हालत क्या कहिए!' फिर कुछ कहा नहीं जा सकता। फिर सब टूट गया, सब मरुस्थल हो गया। कल तक तो झूठे गुलिस्तां में जीते थे, रुक तक तो भ्रामक सपनों में

जीते थे। उससे आंख क्या मिली, सपने तो टूट गये; अब सपनों से तो अपने को भर न सकोगे; और अब उसका विस्मरण हो गया ! सपने भी गये और सत्य का भी विस्मरण हो गया ! यह बड़ी कठिन दशा हो जाती है।

इसलिए भक्त एक ही प्रार्थना करता है : 'जगजीवन बिनती करि मांगै, कबहुं नहीं बिसरावहु रे।।' बस इतना ही मुझे चेताए रखना। मैं तो अपनी तरफ से भूल ही जाऊंगा। मुझ पर भरोसा मत रखना। मैं तो अवश हूं। मुझे अपनी कमजोरियों का भलीभांति पता है। अगर मुझ पर ही छोड़ दिया तो भूल होने ही वाली है। मैं फिर किसी गड्ढे में गिर जाऊंगा। मैं फिर किसी उलझन में फंस जाऊंगा। मुझे उलझनों में पड़ने की पुरानी आदत है। मेरे पैर अपने-आप उलझनों की तरफ बढ़ जाते हैं। यह जो सुलझाव की घड़ी आ गयी है, जैसे तुम ले आए हो सुलझाव की घड़ी, इसी तरह अब मेरी याद को भी जगाए रखना। यह दीया बुझे न। यह दीया तुम उकसाए रखना। यह ज्योति तुम जलाए रखना।

यह भक्त की प्रार्थना है--और इससे श्रेष्ठ क्या प्रार्थना हो सकती है? प्रार्थना करना तो यही करना। फेहरिश्त कुछ और बनाओ तो गलत होगी।

'यहि नगरी में होरी खेलौं री।।'

बुद्ध का प्रसिद्ध वचन है : 'यही पृथ्वी है स्वर्गों का स्वर्ग...' 'दिस वेरी अर्थ दॅ लोटस पैराडाइज,...' और यही देह है भगवत्ता...' 'ऐंड दिस वेरी बॉडी दॅ बुद्धा।' जगजीवन कहते हैं: 'यहि नगरी में होरी खेलौं री।।' इसी देह की नगरी में होली का क्षण आ गया। सोचा भी न था ! क्योंकि तथाकथित साधु-संत तो यही कहे चले जाते हैं कि शरीर दुश्मन है, शरीर को नष्ट करो। भक्त नहीं कहते ऐसी भ्रांत बात। भक्त कहते हैं: शरीर तो उसका मंदिर है। सम्हालो, साज-संवार रखो ! जैसे मंदिर की रखते हैं, ऐसी ही देह की भी साज-संवार रखो, यह उसका मंदिर है।

सच तो यह है, हमने जो मंदिर बनाए हैं इस देश में, वे पद्मासन में बैठे हुए आदमी की प्रतिमा के रूप में ही बनाए हैं। आदमी जब पद्मासन में बैठे तो जो उसकी प्रतिमा का रूप होगा, जो उसका रूप बनेगा, उसी रूप में हमने मंदिर को भी बनाया है। बुनियाद उसके पैर हैं। फिर मंदिर की चार दीवारें हैं, वह देह है। फिर मंदिर का गुम्बज है, वह मस्तिष्क है, वह सिर है। और फिर ऊपर चढ़ाते हैं स्वर्ग का कलश, वह भीतर खिलनेवाले स्वर्ण के फूल का प्रतीक है।

यह देह मंदिर है। स्वर्गों का स्वर्ग ! इससे लड़ना मत। यह परमात्मा की भेंट है तुम्हें। इससे लड़ोगे, कृतघ्नता होगी। सुनो, जगजीवन कहते हैं : यहि नगरी में होरी खेलौं री ! इसी नगरी में, इसी देह में, इसी संसार में होली का क्षण आ गया। परमात्मा कहीं और नहीं है, यहीं है--आंख भर निर्मल हो, आंख भर भीतर

देखे, यहीं है, इसी क्षण है !

फिर झमका रंग-गुलाल सुमुखि, फिर गमका फागुन-राग,
फिर चमका मनसिज के नयनों में रति का नव अनुराग।
फिर घिर आई है होली।
सौरभ से श्लथ, मद से अलसित
फिर मलय समीरन डोली।

उर में अदम्य उच्छ्वास लिए,
सुर में अतृप्ति की प्यास लिए,
मंजरित आम की डाली पर
फिर काली कोयल बोली।

अपने पराग से हो विह्वल
कलियों ने खोले वक्षस्थल
आकांक्षा की पुलकन बनकर
है छलक रहा उनका परिमल

वे झूम-झूम वे विहंस-विहंस
वितरित करती हैं अपना रस
उनके वभव पर उमड़ पड़ी
फिर से भ्रमरों की टोली।

फिर है मानस में स्पन्दन
फिर है शरीर में कम्पन
फिर अंग-अंग में है उमंग
फिर है नयनों में राग-रंग
फिर तन्मयता संचरित और
फिर बांहों में आलिंगन।
फिर आज भरी-सी लगती है
उन अरमानों की झोली।
फिर से है मन में आग लगी, फिर से जीवन में आग,
फिर झमका रंग-गुलाल सुमुखि, फिर गमका फागुन-राग।

इसी देह में, तुम जैसे हो ऐसे ही परमात्मा बरस सकता है। तुम्हारी वीणा तैयार है, जरा तार कसने हैं, जरा साज बिठाना है। सब कुछ मौजूद है, सिर्फ संयोग ठीक नहीं है। जैसे वीणा तो रखी है, किसी ने तार अलग कर दिये हैं, तो वीणा रखी रहेगी। सब मौजूद था, जरा तार कसने थे, जरा तार बिठाने थे और गीत का जन्म हो जाता। ऐसे ही तुम्हारे भीतर परमात्मा सम्भावना की तरह मौजूद है,

सत्य हो सकता है, जरा-से तार बिठाने हैं। उन्हीं तार बिठालने की कलाओं का नाम धर्म है।

फिर स्वभावतः बहुत ढंग से तार बिठाए जा सकते हैं। ढंग-ढंग से बिठाए जा सकते हैं। इसलिए बहुत धर्म दुनिया में पैदा हुए। धर्म तो एक ही है, बहुत ढंग पैदा हुए तार बिठाने के।

तुम जो भी लेकर आए हो, काश तुम उस पूरे को प्रगट हो जाने दो, तो यहीं, इसी देह में... 'यहि नगरी में होरी खेलौं री।'

'हमरी पिया तें भेंट करावौ, तुम्हारे संग मिलि दौरौं री।'

और शरीर से कह रहे हैं जगजीवन, कि तुमने ही, तुम्हारे द्वारा ही प्यारे से मिलन हो सका, तो अब तुम्हें ही संग लेकर दौड़ना है। परमात्मा के मिलन में देह बाहर नहीं रह जाती, यह याद रखना। परमात्मा के मिलन में देह उतनी ही समाविष्ट होती है जितने तुम। पदार्थ भी परमात्मा का है--उतना ही, जितना चैतन्य। मिट्टी भी उसकी है, अमृत भी उसका है। तुम मिट्टी और अमृत के मेल हो। और जब तुम्हारा अमृत नाचेगा तो तुम्हारी मिट्टी भी नाच उठेगी। और जब स्वर्ग नाचता है तो धरा भी नाचती है। अलग-अलग नहीं हैं ये सब। इनमें कुछ फासला नहीं, भेद नहीं है। मिट्टी अमृत का ही सोया हुआ रूप है और अमृत मिट्टी का ही जागा हुआ रूप। 'दिस वेरी बॉडी दॅ बुद्धा'! यह देह ही तो बुद्धत्व है, यह जगत ही स्वर्गों का स्वर्ग!

'नाचौं नाच खोलि परदा मैं, अनत न पीव हंसौ री।'

जगजीवन कहते हैं: अब सब परदे खोलता जा रहा हूं और नाच पर नाच बढ़ता जा रहा है। नृत्य गहन होता जा रहा है। नर्तक नृत्य में खोता जा रहा है। अब सब पर्दे उठा देने हैं। अब सब घूंघट अलग कर देने हैं। अब क्या छिपाना है? अब किससे छिपाना है?

साधारणतः आदमी छिप-छिप कर रह रहा है। कितने तुमने मुखौटे ओढ़ रखे हैं, ताकि तुम छिपे रहो, तुम्हारा असली चेहरा लोगों को पता न चल जाए। तुमने कितनी तरकीबें कर रखी हैं! तुम कैसे-कैसे रूप बनाए हो! यहां सब बहुरूपिये हैं। सारा संसार बहुरूपियों से भरा है। होते कुछ हो, दिखाते कुछ हो। और धीरे-धीरे दूसरों को धोखा देते-देते खुद भी धोखा खा जाते हो।

ख्याल रखना, बहुत दिन तक धोखा देने का दुष्परिणाम यही है कि अंततः खुद ही भरोसा आ जाता है कि यही ठीक होगा। झूठे ही मुस्कुराते हो, फिर मुस्कुराहट आदत हो जाती है। जैसे जिमी कार्टर जैसे राजनेता। तुम सोचते हो रात भी बिना मुस्कराए सोते होंगे! मैंने तो सुना है, नींद में भी उनके ओंठ खुले ही रहते हैं। चौबीस घंटे! अभ्यास हो गया।

जो तुम दिन-भर करते हो, वही अभ्यास रात में भी चल जाता है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक रात उठा और अपनी चादर फाड़ी। उसकी पत्नी ने रोका कि क्या करते हो, क्या करते हो?! मगर उसने तो फाड़ ही दी, उसने कहा कि तो तू दुकान पर भी आकर झंझट करने लगी! दिन-भर कपड़ा फाड़ता है--कपड़े की दुकान है। सपने में भी किसी ग्राहक से मुलाकात हो गयी--फाड़ दी चादर! नाराज पत्नी पर हो रहा है: तो तू अब दुकान पर भी आने लगी! यहां भी चैन नहीं!

दिन जो है, वही तो तुम्हारी रात भी हो जाएगी। तुम्हारा चेतन मन जो करता है, वही तुम्हारा अचेतन मन भी करने लगेगा। धीरे-धीरे अपने ही धोखे अपने लिए ही सच मालूम होने लगते हैं। जो आदमी मुस्कुराता रहता है झूठा, उसे खुद ही भरोसा आ जाता है कि मैं बड़ा प्रसन्नचित्त आदमी हूं। दूसरे कहते हैं कि वाह, कितने प्रसन्नचित्त आदमी हो! सुनते-सुनते उसे भी भरोसा आ जाता है कि हो न हो, ठीक ही कहते होंगे लोग! सच ही कहते होंगे लोग!

मैंने सुना है, एक पत्रकार मरा और स्वर्ग पहुंचा। दरवाजे पर दस्तक दी, द्वारपाल ने दरवाजा खोला और कहा कि पत्रकारों की जगह सब पहले से पूरी भरी हैं; दूसरी जगह जाओ। दूसरी जगह मतलब सामने नर्क का दरवाजा है। पत्रकार ने कहा कि नहीं, ऐसी आसानी से न जाऊंगा; इतनी तो कृपा करो, मुझे चौबीस घंटे का अवसर दो। मैं अगर किसी दूसरे पत्रकार को राजी कर लूं और वह जाने को राजी हो, तो फिर तो तुम्हें कोई अड़चन नहीं? द्वारपाल ने कहा, फिर कोई अड़चन नहीं है।

स्वर्ग में पत्रकारों की वैसे भी ज्यादा कोई जगह थी नहीं--बारह जगह थीं। वह भी होनी चाहिए जगह--क्योंकि अखबार कोई निकलता ही नहीं वहां--नहीं तो शैतान डींग मारेगा। नर्क में बहुत अखबार निकलते हैं, एक-से-एक शानदार अखबार! अखबार के लायक घटनाएं भी वहां घटती हैं। स्वर्ग में घटता ही क्या है--ऋषि-मुनि बैठे हैं! एक दफा छापो कि हजार दफा छापो, खबर वही-की-वही है। चाहो तारीख बदलते रहो, वही-का-वही अखबार चलेगा। ऋषि-मुनि अपने-अपने झाड़ के नीचे बैठे हैं--अपनी-अपनी सिद्धशिला पर, आंखें बंद किये। अब ध्यान कोई खबर तो नहीं है। कोई मारपीट हो, छुरेबाजी हो; कोई झगड़ा-फसाद हो; कोई घेराव-जुलूस हो; कोई हड़ताल हो जाए, कुछ हो तो खबर। खबर जैसी कोई चीज वहां है नहीं।

बर्नार्ड शॉ ने कहा है कि अगर कुत्ता आदमी को काटे तो यह कोई खबर नहीं है। जब आदमी कुत्ते को काटता है, तो यह खबर है! खबर का मतलब ही होता है: कुछ हो!

पत्रकार अंदर गया। उसने खबर उड़ा दी एकदम जाते ही से कि नर्क में एक नये अखबार की शुरुआत होनेवाली है, बड़ा अखबार निकलनेवाला है। प्रधान संपादक

की, उपप्रधान संपादक की, और-और पत्रकारों की जरूरत है। झूठी खबर!

जब चौबीस घंटे बाद वह आया, द्वारपाल से उसने पूछा कि भाई, क्या हालत है, कोई गया? उसने कहा, कोई नहीं, सब गये! अब तुम जा नहीं सकते। कम-से-कम एक तो होना ही चाहिए। उसने कहा, अब मैं रुक नहीं सकता, मुझे भी जाने दो। उसने कहा, तुम पागल हो गये हो, तुम किसलिए जाते हो? उसने कहा कि हो न हो, बात में कुछ सचाई होनी चाहिए। बारह आदमी चले गये!

इसीने उड़ाई है अफवाह!

तुम ख्याल करना, तुम्हीं अफवाह उड़ा देते हो और जब चौबीस घंटे बाद अफवाह पूरे मुहल्ले में घूमकर तुम्हारे पास लौटती है तो तुम्हें भी शक होने लगता है: हो न हो, कुछ बात होगी! चिन्दी का सांप होगा, मगर चिन्दी तो होगी! कुछ-न-कुछ तो होगा ही! जहां धुआं होता है, वहां आग भी होती है। तुम्हीं कहने लगोगे कि जहां धुआं होता है वहां आग भी होती है, जरूर कहीं-न-कहीं कुछ हुआ होगा।

लोग झूठ बोल-बोल कर खुद ही झूठ हो जाते हैं। असली धोखा इस जगत में यही है कि तुम खुद ही धोखे में आ जाते हो। अपने दिये गये धोखे अपने पर ही लौट कर पड़ जाते हैं। और फिर परदे-पर-परदे डालने होते हैं, क्योंकि तुम कुछ हो, कुछ दिखलाना चाहते हो। कोई अपनी नग्नता में प्रगट नहीं होना चाहता।

परमात्मा के सामने तो परदे हटाने होंगे। सब मुखौटे उतारकर रख देने होंगे। निर्वस्त्र हो जाना होना। सारी धोखाधड़ी छोड़ देनी होगी। सारी वंचनाएं हटा देनी होंगी। वहां तो प्रामाणिक होना होगा।

'नाचौं नाच खोलि परदा मैं,'... जगजीवन कहते हैं: अब क्या परदा, किससे परदा? अपने मालिक के सामने खड़ा हूं, अब सब परदे गिरा देता हूं। अब निर्वस्त्र नग्न अपने परमात्मा के सामने खड़ा हूं, अब छिपाना क्या है? उससे क्या छिपाना है? उससे क्या छिपा है?

'पीव जीव एकै करि राखौं', ...

और जब ये सब परदे गिर जाते हैं, तभी पीव और जीव एक हो पाते हैं, नहीं तो परदों का ही तो फासला है। जितने तुमने झूठ अपने आसपास बना रखे हैं, उतनी ही दूरी है। अहंकार तुम्हारा सबसे बड़ा झूठ है। और फिर छोटे-छोटे झूठों की कतार लगी है अहंकार के पीछे। 'यह मेरा', 'वह तेरा'——यह सब झूठ है, क्योंकि न तुम कुछ लाए थे, न ले जाओगे। क्या मेरा, क्या तेरा? 'मैं बड़ा, 'तुम छोटे'। तुममें भी वही, उसमें भी वही——कौन बड़ा, कौन छोटा? पर झूठ तुम बोले जा रहे हो और झूठ पर झूठ तुम जमाए जा रहे हो। धीरे-धीरे इन्हीं झूठों की दीवाल के पीछे उलझ जाओगे।

लोग अपने ही बनाए कारागृहों में पड़ गये हैं। किसी और ने किसी के लिए जंजीरें नहीं ढाली हैं। अपनी ही जंजीरे हैं, अपने ही बनाए कारागृह हैं, फिर खुद ही फंस गये हैं। यह हो सकता है, दूसरों को फंसाने के लिए बनाए थे। मगर ख्याल रखना, जो गड्ढे तुमने दूसरों के लिए खोदे हैं, आज नहीं कल तुम स्वयं उनमें गिरोगे। दूसरे भी गिरेंगे——वे अपने खोदे गड्ढों में गिरेंगे; आखिर अपने-अपने गड्ढों की सबको फिकिर रखनी है। उसने भी खोदे हैं, वे कोई तुम्हारे गड्ढों में गिरने आएंगे? और कुछ न कर सकें, गड्ढे तो खोद ही सकते हैं। उनने भी खोदे हैं खूब गड्ढे, वे अपने गड्ढों में गिरेंगे, तुम अपने गड्ढों में गिरोगे।

और जरा जिंदगी की परख करना। तुम सदा पाओगे कि जिस गड्ढे में तुम गिरते हो, वह तुम्हारा खोदा हुआ गड्ढा है।

मैं एक रात स्टेशन पर रुका। एक अनोखी घटना घट गयी वहां। एक छोटी-सी स्टेशन——मकरौनियां। दो ही गाड़ियां वहां खड़ी होती हैं——एक सुबह आने वाली, एक सांझ जानेवाली। एक आदमी काफी रुपयों की थैली लिये प्रतीक्षा कर रहा था। और डर के मारे उसने स्टेशन मास्टर को बता दिया कि मैं काफी सम्पत्ति लिए हूं और यहां अंधेरी रात और रात दो बजे गाड़ी आएगी, तो मैं आपको बता देता हूं कि थोड़ी मुझे बैठने की सुविधा अंदर कर दें, स्टेशन मास्टर के कमरे में, यहां न कोई है न कुछ...। स्टेशन मास्टर का मन डोला। उसने कहा, बेफिक्री से तुम इस पास में पड़ी हुई बेंच पर लेट जाओ। और उसने जाकर पोर्टर को कहा कि यह मौका चूकने जैसा नहीं है, कुल्हाड़ी लाकर इसकी गर्दन अलग कर दो। वह पोर्टर प्रतीक्षा करता रहा, कब मौका मिले कि गर्दन अलग कर दे!

वह आदमी सो न सका। जिसके पास इतने पैसे हों, वह सोए कैसे? तो वह उठकर टहलने लगा। वह अपना झोला लेकर टहलने लगा। रात देर हो गयी, स्टेशन मास्टर रोज उसी बेंच पर विश्राम करता था, वह उस पर विश्राम करने लेट गया, और मौका पाकर पोर्टर ने उसकी गर्दन अलग कर दी। यह तो राज तब पता चला जब अदालत में मामला चला, सारी बात ज़ाहिर हुई, खुली कि वह स्टेशन मास्टर का ही षड्यंत्र था। पोर्टर तो सिर्फ आज्ञा का पालन कर रहा था।

इतनी स्पष्ट घटनाएं तो बहुत कम घटती हैं, मगर जिंदगी इसी तरह की घटनाओं से भरी है, स्पष्ट घटती हों कि न घटती हों। अगर तुम गौर करोगे तो तुम पाओगे तुम अपने ही खोदे गड्ढों में गिर गये हो; हो सकता है गड्ढा आज खोदा और तीस साल बाद गिरो, इसलिए याद भी न रह जाए, भूल भी जाओ तुम, सोचने लगो किसी और ने खोदा है। लेकिन सदियों का अनुभव यह है ज्ञानियों का कि हर आदमी अपने खोदे गड्ढे में गिरता है। यही बात है मूल आधार कर्म के सिद्धांत की, और कुछ अर्थ नहीं है कर्म के सिद्धांत में। तुमने जो बोया है, वही तुम काट रहे हो,

वही तुम काटोगे; वही तुम काटोगे, वही तुम काट सकते हो ।

ये महफ़िले हस्ती भी क्या महफ़िले-हस्ती है
जब कोई पर्दा उठा, मैं खुद ही नज़र आया

यह जिंदगी की महफिल बड़ी अजीब महफिल है। यहां जब पर्दे उठेंगे तो तुम चकित होओगे कि हर पर्दे के भीतर तुम्हीं हो । झूठ के भीतर भी तुम्हीं हो, पाप के भीतर भी तुम्हीं हो । और अंततः जब आखिरी पर्दा उठ जाएगा तो परमात्मा के भीतर भी तुम अपने को ही पाओगे। तुम्हारे अतिरिक्त यहां और कोई भी नहीं है। यहां एक का ही वास है । यहां एक का ही आन्दोलन हो रहा है ।

'पीव जीव एकै करि राखौं, सो छवि देखि रसौं री ।।'

और अब प्रेमिका प्रेमी से मिल जाती है, जब जीव पीव से मिल जाता है, जब आत्मा परमात्मा से मिल जाती है, जब सब पर्दे बीच के हट जाते हैं. . . पीव जीव एकै करि राखौं, सो छवि देखि रसौं री... फिर रसधार बहती है, फिर आनंद डगमगाता है, फिर फूल खिलते हैं, फिर उत्सव जन्मता है, फिर मंगल-गीत पैदा होते हैं !

क्या जानिए ख़याल कहां है नज़र कहां
तेरी ख़बर के बाद फिर अपनी ख़बर कहां

'पीव जीव एकै करि राखौं,'... उस पर नजर आ गयी कि तुम गये । तुम गये कि उस पर नजर आयी। ये एक साथ घटती हैं घटनाएं--युगपत । एक ही क्षण में घट जाती हैं। ये एक ही घटना के दो पहलू हैं--तुम्हारा जाना, उसका आना; उसका आना, तुम्हारा जाना ।

'पीव जीव एकै करि राखौं, सो छवि देखि रसौं री ।।'

प्यारा वचन है--'सो छवि देखि रसौं री ।। ' रस ही रस बह जाता है। रस-निमग्नता आ जाती है ।

कब तक आख़िर मुश्किलाते-शौक़ आसां कीजिए
अब मोहब्बत को मोहब्बत पर ही कुर्बां कीजिए

चाहता है इश्क़, राजे-इश्क़ उरियां कीजिए
यानी खुद खो जाइए, उनको नुमायां कीजिए

मिटो, उसको होने दो !

यानी खुद खो जाइए, उनको नुमायां कीजिए

हट जाओ, जगह खाली कर दो ! सिंहासन खाली करो, परमात्मा आने को उत्सुक है ! तुम जब तक सिंहासन पर बैठे हो, कैसे आए ? तुम मिटो तो आ जाए और तब रसधार बहती है। तभी जीवन में आनंद है ।

अगर तुम दुखी हो तो अपने कारण दुखी हो। तुम्हारे दुख का मूल आधार

एक ही है कि तुम हो । तुम दुख हो । बुद्ध ने कहा है : संसार दुख है । मैं कहता हूं: तुम दुख हो ! और तुम्हारा होना ही संसार का फैलाव है। तुम गये कि तुम्हारा तथाकथित कल्पनाओं का संसार गया । फिर जो शेष रह जाता है, वह तो परमात्मा है, संसार नहीं ।

'कतहूं न बहौं रहौं चरनन ढिग, मन दृढ़ होय कसौं री ।।'

कहते हैं जगजीवन, अब हटूंगा नहीं । अब हटाए न हटूंगा । 'कतहूं न बहौं रहौं चरनन ढिग,'. . . अब कुछ भी हो जाए, कितने ही पुराने अतीत की याददाश्तें आएं, पुराने भुलावे जाल फैलाएं, पुराने आकर्षण खींचें--पुरानी आदतें, पुराने संस्कार बलशाली होते हैं--' कतहूं न बहौं रहौं चरनन ढिग,' अब बहूंगा नहीं, अब इन चरणों से दूर न हटूंगा । अब लाख कुछ हो जाए, अपनी पूरी शक्ति एक ही बात में लगाऊंगा--' मन दृढ़ होय कसौं री ' । अब तो मन को दृढ़ता से इन्हीं पैरों से कस दूंगा ।

लेकिन फिर भी यह तो प्रार्थना जारी रहती है भक्त की--' जगजीवन बिनती करि मांगै, कबहुं नहीं बिसरावहु रे । ' मुझे भूल मत जाना और मुझे भटकने मत देना । मैं तो अपनी पूरी सामर्थ्य लगाऊं कि तुम्हारे पैर न छूटें, मगर मैं आखिर मैं हूं ! मेरा भरोसा क्या ? मेरा बल कितना छोटा है ! तुम्हारे सहारे के बिना मैं निर्बल हूं । तुम हो तो मैं बलशाली हूं । तुम मेरे बल हो । 'निर्बल के बल राम'।

'रहौं निहारत पलक न लावौं, सर्बस और तजौं री ।।'

सब छोड़ दूं, सब छोड़ दूंगा, सदा तुम्हारी तरफ अपलक निहारता रहूंगा। अब और देखने जैसा क्या ! जिसने उसे देखा, अब और देखने जैसा क्या ! 'रहौं निहारत पलक न लावौं,'. . . सोऊंगा भी नहीं, आंख भी न झपाऊंगा, सतत चौबीस घंटे उठते-बैठते तुम्हारी याद करता रहूंगा, . . . 'सर्बस और तजौं री '। और सब छोड़ दूंगा । जो भी है, सब छोड़ दूंगा ।

दिखा कर इक झलक सामाने-राहत जिसने लूटा था
निगाहें ढूंढती हैं फिर उसी गारतगरे-जां को

और अगर कभी साथ छूट जाता है उससे--जिसने सब लूट लिया, दिखाकर इक झलक सामाने-राहत जिसने लूटा था, जिसने एक झलक दिखाकर सारे संसार का सब कुछ जो सोचते थे अपना है, मेरा है, लूट लिया था... निगाहें ढूंढती हैं फिर उसी गारतगरे-जां को, उसी मिटा देने वाले को, उसी लूटनेवाले को फिर निगाहें बार-बार ढूंढ़ती रहती हैं । इसलिए हमने उसको नाम दिया : हरि। हरि का अर्थ होता है : लुटेरा; जो हर ले; जो सब छीन ले । दुनिया में बहुत नाम परमात्मा के हैं, मगर हरि जैसा प्यारा नाम नहीं । लुटेरा, चोर, हरन करने वाला हरि । लूट लेता है । मगर लूटता है वही, जो नहीं है; और देता है वही, जो है।

लूटता है वही जो भ्रांति थी; और देता है वही जो सत्य है। लुटेरा है और दाता है।

तू खुश है कि तुझको हासिल हैं, मैं खुश कि मेरे हिस्से में नहीं
वो काम जो आसां होते हैं, वो जल्वे जो अर्ज़ां होते हैं

साधारण काम, आसान काम, भक्त कहता है, मैं खुश हूं कि मेरे हिस्से में नहीं हैं; मेरे हिस्से में कठिन काम पड़े। मेरे हिस्से तलवार की धार पर चलना पड़ा।

तू खुश है कि तुझको हासिल हैं, मैं खुश कि मेरे हिस्से में नहीं
वो काम जो आसां होते हैं, वो जल्वे जो अर्ज़ां होते हैं

आसूदा-ए-साहिल तो है मगर शायद ये तुझे मालूम नहीं
साहिल से भी मौजें उठती हैं, खामोश भी तूफ़ां होते हैं

ऐसे तूफान भी होते हैं जो खामोश हैं। भक्त ऐसे ही खामोशी के तूफान में उतर जाता है।

जो हक़ की खातिर जीते हैं मरने से कहीं डरते हैं 'जिगर'?
जब वक़्ते-शहादत आता है, दिल सीनों में रक़्सां होते हैं

मरने का जब क्षण आता है भक्त को, तब उसका हृदय नाच उठता है। दिल सीनों में रक़्सां होते हैं। दिल नाच उठते हैं। मृत्यु को भक्त परम आनंद का क्षण मानता है; क्योंकि अपना मिटना उसका होना है। मृत्यु परम सखा है।

भक्ति के मार्ग पर मृत्यु परम अनुभूति है। वह उसका द्वार है।

भक्ति के मार्ग पर मृत्यु होती ही नहीं। यह जीवन गया और महाजीवन मिलता है। यह छोटी-सी दुनिया गयी और विराट दुनिया मिलती है। बूंद खो जाती है और सागर मिलता है।

'रहौं निहारत पलक न लावौं, सर्बस और तजौं री।।'

जब वक़्ते-शहादत आता है, दिल सीनों में रक़्सां होते हैं
जो हक़ की खातिर जीते हैं मरने से कहीं डरते हैं 'जिगर'?
'सदा सोहाग भाग मोरे जागे',...

और अब पता चला कि सुहाग क्या है, सुहागरात क्या है? अब पता चला। अब तक जो सुहाग रचाए थे, रचे और उजड़े। अब तक जो विवाह रचाए थे, बने और मिटे। अब तक जो मिलन हुए थे, केवल बिछोह की तैयारियां थे। सब क्षणभंगुर था। कोई मिलन शाश्वत नहीं था। इसलिए सब मिलन दुख दे गये, घाव दे गये। 'सदा सोहग भाग मोरे जागे,' . . . अब परमात्मा से जो मिलन हुआ है, तो सदा सुहाग! अब सच में ही--जगजीवन कहते हैं--सुहागवती हो गयी मैं। भाग मोरे

जागे! . . . 'सतसंग सुरति बरौं री।' और अब तो बस सतसंग ही जीवन है। सुरति ही श्वांस है। अब तो उसका स्मरण ही एकमात्र भोजन है, पोषण है।...'सतसंग सुरति बरौं री।'

खुदा जाने मोहब्बत कौन सी मंज़िल को कहते हैं
न जिस की इब्तिदा ही है, न जिसकी इन्तिहा ही है

न तो शुरुआत है अब, न अंत है अब। शाश्वत! प्रेम एक ऐसी यात्रा है। सदा सोहाग भाग मोरे जागे, सतसंग सुरति बरौं री।

'जगजीवन सखि सुखित जुगन-जुग, चरनन सुरति धरौं री।।'

जुगों-जुगों की आशा पूरी हो गयी। जन्मों-जन्मों की यात्रा पूरी हो गयी। जन्मों-जन्मों की आकांक्षा फल गयी। 'चरनन सुरति धरौं री।' तुम्हारे चरणों की स्मृति आ गयी, तुम्हारे चरणों पर सुरति धरने का अपूर्व क्षण आ गया!

'अरी ए, नैहर डर लागै, सखी री, कैसे खेलौं मैं होरी।'

लेकिन फिर भी डर लगता है। नाचने में डर लगता है। आदत ही नाचने की नहीं है। पैर जंजीरों में बंधे रहे। घूंघर कभी बांधे नहीं। जंजीरें ही एकमात्र परिचित रही हैं। अगर तुम कैदी को एकदम कैदखाने से निकाल भी दो और उससे कहो, नाचो, नाच नहीं पाएगा। जो जंजीरें उसके पैर से निकल गयीं, उनका बोझ अब भी बाकी होगा। अगर कोई आदमी तीस साल तक लोहे की जंजीरें पहने रहा है, तो क्या तुम सोचते हो आज जंजीरें काटकर एकदम उसका बोझ मिट जाएगा? बोझ चित्त पर हो गया है।

चिकित्सक ऐसा एक अनुभव जानते हैं।

दूसरे महायुद्ध में बहुत बार ऐसी घटना घटी। किसी आदमी के पैर पर बम गिर गया, उसका पूरा पैर क्षत-विक्षत हो गया। भयंकर पीड़ा। बेहोशी होश में डोल रहा है। उसे अस्पताल ले जाया गया। हालत ऐसी खराब है कि उसका पैर तो बचाया नहीं जा सकता। पैर के बचाने की कोशिश की तो पूरी देह चली जाएगी। तो रात उसे बेहोश करके उसका पूरा पैर काट दिया गया। जब भी उसे होश आता था वह एक ही बात चिल्लाता था: मेरे पंजे में बहुत दर्द है। जब सुबह उसे होश आया, तब भी वह कहने लगा: मेरे पंजे में बहुत दर्द है। चिकित्सक हंसने लगे। उन्होंने कहा: तुझे पता नहीं, अब पंजा है ही नहीं, दर्द कैसे हो सकता है? उघाड़ा गया कंबल, उसे दिखाया गया कि तेरा पूरा पैर ही काट दिया गया है। अब तो पंजे में दर्द हो ही क्या सकता है? जो पंजा ही नहीं है, उसमें दर्द कैसे होगा? लेकिन वह आदमी कहता: दर्द तो है। हालांकि मैं देख रहा हूं कि पैर काट दिया गया है, मगर दर्द तो मुझे अब भी हो रहा है।

दर्द मन पर छाया रह गया। पैर नहीं है और दर्द है। दर्द मन से छूटने में

समय लगेगा।

बहुत बार ऐसा होता है, बीमारी चली जाती है, सिर्फ तुम्हारे मन में बीमारी की आभा रह जाती है, सरकती-सरकती छाया रह जाती है। बीमारी से छूटना एक बात है और बीमारी के मन से छूटना बिल्कूल दूसरी बात है। बीमारी का मन अलग बात है।

डाक्टर जानते हैं इस तरह के लोगों को, जिनके शरीर में कोई बीमारी नहीं है, मगर वे पहुंचते रहते हैं डाक्टरों के पास, कि होनी चाहिए। अगर एक डाक्टर के पास नहीं तो दूसरे के पास जाते हैं, जब तक कि कोई डाक्टर कह ही न दे कि हां, बीमारी है। चाहे शक्कर की गोलियां ही क्यों न दे, मगर जब तक कोई डाक्टर कह न दे कि बीमारी है, तब तक वे जाते ही रहते हैं ऐसे बहुत लोग हैं, जिनका काम ही यही है। मगर वे दया के पात्र हैं। यद्यपि उनके शरीर में कोई बीमारी नहीं है।

ऐसे मैंने एक आदमी के बाबत सुना है। हाइपोकान्ड्रीयाक था, इसी तरह का बीमार था। बीमारी कोई भी नहीं, बस बीमारी के ख्याल। और बड़ी-बड़ी बीमारियां खोजता था। और ऐसे लोग तरकीबें भी निकालते हैं, अखबारों में भी बीमारी की खबरें पढ़ते हैं; पत्रिकाओं में नयी-नयी बीमारियों की खोजें होती हैं, वे पढ़ते हैं; रेडियो पर बीमारियों की खबरें सुनते है; टेलीविज़न पर भी वही देखते हैं; जो देखते हैं, जो पढ़ते हैं, वही उनको हो जाती है! डाक्टर को फोन किया उसने कि सुनते हो, हृदय में मुझे बहुत धड़कन हो रही है। डाक्टर ने कहा, बकवास बंद करो; तुम जो टेलीविज़न पर फिल्म देखी है, वह मैंने भी देखी है!

अक्सर मेडिकल कालेज में ऐसा ही जाता है कि लड़कों को जो बीमारी पढ़ायी जाती है, वही बीमारी कालेज में फैलने लगती है। मन पकड़ लेता है। अक्सर; जो बीमारी उन्हें समझायी जाती है, पढ़ायी जाती है, उसी बीमारी के ख्याल प्रविष्ट हो जाते हैं।

ऐसा एक आदमी जो जिंदगी-भर डाक्टरों को परेशान करता रहा और डाक्टर जिसे कहते रहे तुम्हें कोई बीमारी नहीं है, तुम चंगे हो, तुम्हें कोई परेशान होने की जरूरत नहीं है, जब मरा तो अपनी पत्नी से कह गया कि यह मेरे कब्र के पत्थर पर खुदवा देना कि 'अब तो मानते हो कि मैं मर गया?' डाक्टरों के नाम इतना मेरे कब्र पर पत्थर लगवा देना; इन दुष्टों ने कभी नहीं माना; मगर अब तो मानेंगे कि मैं मर गया? कि अभी भी नहीं मानते? कि अभी भी मैं धोखा खा रहा हूं मरने का? वह अपनी कब्र पर पत्थर लगवा गया।

चित्त आसानी से नहीं छूटता। जगजीवन ठीक कह रहे हैं। ये बड़े अनुभव की बातें हैं। होली का क्षण आ गया, फाग खेलने का दिन आ गया; भरें पिचकारी में रंग, बांधें घूंघर, गाएं गीत, उड़ाएं गुलाल—घड़ी आ गयी! मगर—'अरी ए, नैहर डर लागै, सखी री, कैसे खेलौं मैं होरी?' जन्मों-जन्मों से कभी होली तो खेली नहीं, जन्मों-जन्मों से रंग तो उड़ाया नहीं, गंध तो फेंकी नहीं; जन्मों-जन्मों से उत्सव तो मनाए ही नहीं, उत्सव की तो बात ही नहीं जानते, उत्सव की भाषा नहीं जानते-उत्सव की शैली नहीं आती। जो कभी नहीं नाचा, एकदम से कैसे नाचेगा? नाचते-नाचते ही नाच पाएगा।

'औंगुन बहुत नाहिं गुन एकौ,...

उत्सव की घड़ी भी आ गयी, उसने सुहाग का टीका भी कर दिया, उसने मांग भी भर दी, मगर 'औंगुन बहुत नाहिं गुन एकौ', मुझमें तो अवगुण ही अवगुण हैं, गुण तो एक भी नहीं,... 'कैसे गहौं दृढ़ डोरी,' कैसे जोर से पकड़ लूं इस प्रेम की डोर को? मुझे तो अपनी अपात्रता का ही बोध है, पात्रता का तो कोई बोध नहीं। मैं तो अपने पाप को ही जानता हूं, पुण्य की तो मुझे कोई खबर नहीं, किस तरह पकड़ूं इस डोर को कि छूट न जाए?

'केहिं कां दोष मैं देउं सखी री,'... किसको दोष दूं,... 'सबै आपनी खोरी'; अब तो दिखायी पड़ता है, जन्मों-जन्मों से अपने ही दोष थे, अपने ही खोदे गड्ढे थे, अपने ही बोए बीज थे, वही काटते रहे। आज सुदिन भी आ गया, मगर पैर नाचना भूल गये हैं। कंठ से गीत नहीं फूटता।

'मैं तो सुमारग चला चहत हौं,'... मैं तो चाहती हूं कि नाचूं, सुमारग पर चलूं,... 'मैं तैं विष मां घोरी'। लेकिन जन्मों-जन्मों से विष घुल गया है। आज अमृत भी बरसा है, स्वाद भी आ रहा है, मगर धन्यवाद देने के लिए हिम्मत नहीं जुटती। 'अरी ए, नैहर डर लागै'!

तुम चौंकोगे यह बात जानकर कि आनंद का भी डर लगता है। निश्चित लगता है। आनंद का जितना डर लगता है और किसी चीज का नहीं लगता। दुख के तो तुम आदी हो, परिचित हो; पहचान है, पुरानी दोस्ती है; दुख से तो तुम निपट लेते हो; आनंद का डर लगता है!

यहां मेरे पास रोज यह घटना घटती है। जब कोई आदमी आनंदित होता है, वह एकदम घबड़ाकर मेरे पास आ जाता है। वह कहता है कि बहुत डर लग रहा है। ऐसा आनंद हो रहा है कि शक होता है कि मैं पागल तो नहीं हुआ जा रहा हूं! दुख में पागल नहीं था। दुख में कभी शक नहीं हुआ था। शक क्या खाक होता, दुख तो जन्मों-जन्मों से परिचित है, आदत है। दुख की पाठशाला में तो जिए हैं, वहीं तो बड़े हुए हैं...'मैं तैं विष मां घोरी,' विष में घुले हुए हैं, रग-रग में रमा हुआ है विष-ही-विष, तो विष पीने में तो कोई अड़चन नहीं आती। और जब पहली दफा आनंद के द्वार खुलते हैं, सुनायी पड़ती है उसकी टेर, उसकी पुकार, तो भरोसा नहीं आता। कैसे भरोसा आए? कैसे आए? कभी तो हुआ नहीं था। अनहुआ हो रहा

है। नहीं होना चाहिए, ऐसा कुछ हो रहा है। मांगा था खुद, प्रार्थना भी की थी, मगर भरोसा खुद भी कब किया था कि मिलेगा !

प्रार्थना करकर भी हम कहां भरोसा करते हैं कि मिलेगा ! सोचते हैं, शायद ! 'शायद' बना ही रहता है मन में। निश्चय नहीं हो पाता। इसलिए जब पहली दफा घटना घटती है, तो जगजीवन ठीक कह रहे हैं, ठीक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है; अनुभूत; विचार का ही नहीं है, अस्तित्वगत।

संन्यासियों में रोज यह घटना घटती है। कोई आता आनंद से परेशान, भयभीत, डरा हुआ--कि क्या हो रहा है ? आश्वासन मांगने आता है कि मैं ठीक तो हूं ? यह इतना जो भीतर आनंद हो रहा है, यह जो हंसी फूटी पड़ती है, यह अकारण मुस्कुराहट खेल रही है, कोई कारण समझ में नहीं आता खुशी का और खुशी फूटी पड़ती है, बही जाती है। ऐसा तो कभी न हुआ था। मैं होश में तो हूं ? विक्षिप्त तो नहीं हो गया ?

गुरु की जरूरत पड़ती है तुम्हें मार्ग पर चलाने में, गुरु की जरूरत पड़ती है तुम्हें मार्ग से न भटकने देने में और गुरु की सबसे बड़ी जरूरत पड़ती है जब आनंद की घड़ी करीब आती है; तब आश्वासन देने में कि मत घबड़ाओ, तुम विक्षिप्त नहीं हो गये हो, पागल नहीं हो गये हो। शुभ दिन आ गया। होरी का क्षण आ गया। खेलो ! भरो पिचकारी ! उड़ाओ रंग-गुलाल !

'मैं तो सुमारग चला चहत हौं, मैं तैं विष मां घोरी ।।'

'सुमति होहि तब चढ़ौं गगन-गढ़,' . . .

द्वार सामने है अब, अब कोई देर नहीं है, सुहाग भर दिया गया, परमात्मा ने स्वीकार कर लिया है--पीव जीव को अपने भीतर लेने को तैयार है।

'सुमति होहि तब चढ़ौं गगन-गढ़, पिय तें मिलौं करि जोरी ।।'

मगर भक्त अभी डर रहा है। प्रार्थी अभी भयभीत है। सीढ़ियां सामने हैं, चढ़ जाए, मगर अभी भी सोच रहा है : 'सुमति होहि तब चढ़ौं गगन-गढ़'। होगी सुमति जब; अभी तो पुराना विष, पुरानी आदतें, पुराने संस्कार खींचे डाल रहे हैं। सुमति जब होगी, ठीक-ठीक बुद्धि जब होगी, तब चढ़ जाऊंगी--इस गगन-गढ़ पर, इस आकाश में, इस अनंत में, इस विस्तीर्ण में, इस ब्रह्म में ! 'पिय तें मिलौं करि जोरी।।' और हाथ जोड़कर प्रभु से मिलूंगी।

'अरी ए, नैहर डर लागै'। पर बहुत डर लगता है। यात्रा बड़ी नयी है। यह आकाश की तरफ जाती हुई सीढ़ियां कहां ले जाएंगी ? सीमा में रहने का आदी असीम में उतरे तो डरेगा तो। नदी जब सागर के पास पहुंचती है, भयभीत तो होगी।

खलील जिब्रान ने लिखा है : जब नदी सागर में गिरती है, लौटकर पीछे देखती है। जरूर देखती होगी। वे सब यादें, वे पर्वत-शृंखलाएं, वे मूल उद्गम-स्रोत, वे पहाड़, वे खाइयां, वे जलप्रपात, वे मैदान, वे तीर्थ, वे मंदिर, वे लोग, सारी यात्रा, सारा अतीत पुकारता होगा ! लौटकर नदी देखती होगी, क्योंकि सामने सागर है। सागर यानी खोना। डरती भी होगी, झिझकती भी होगी... 'अरी ए, नैहर डर लागै, सखि री, कैसे खेलौं मैं होरी।' नदी भी सोचती होगी कि सागर से कैसे मिलूं ? मिली कि गयी ! मिली कि सदा के लिए गयी, फिर लौटना न हो सकेगा ! फिर मेरा होना न हो सकेगा। सिकुड़ती होगी, सकुचती होगी, झिझकती होगी, लौट पड़ना चाहती होगी--पुरानी आदतें, फिर पुरानी स्मृतियां वापिस खींचती होंगी।

'सुमति होहि तब चढ़ौं गगन-गढ़, पिय तें मिलौं कर जोरी ।।'

यह झिझक तो आती है। मगर झिझक रोक नहीं पाती। डर तो लगता है। लेकिन सामने खड़ा स्वाद इतना गहन है कि सब डर के बावजूद चढ़ ही जाता है आदमी गगन-गढ़। सब भयों के बावजूद, प्रेम का खिंचाव ऐसा है, यह आकर्षण ऐसा है कि भूल कर सब अतीत को छलांग ले लेता है भविष्य के अज्ञात में।

'भीजौं नैनन चाखि दरसन-रस, प्रीति-गांठि नहिं छोरी ।।'

आंखें भीगी जा रही हैं। 'भीजौं नैनन चाखि दरसन-रस'। दर्शन का रस आंखों में उतर रहा है। सब भीगा जा रहा है।

'भीजौं नैनन चाखि दरसन-रस, प्रीति-गांठि नहिं छोरी ।।'

अब चाहे कुछ भी हो, भय तो बहुत लगता है, मगर यह प्रेम की गांठ नहीं छोडूंगी। भय तो बहुत लगता है।

ऐसे ही समझो, जब नई दुल्हन विवाहित होकर जाने लगती है, नैहर से, मां के घर से जब जाने लगती है, पति के घर की तरफ, तो लौट-लौट कर नहीं देखती ? ज़ार-ज़ार नहीं रोती ? इसलिए 'नैहर' शब्द का प्रयोग किया है... 'अरी ए, नैहर डर लागै।' जहां जन्मे, जहां बड़े हुए, जिन सखियों के साथ खेले, जिन माता-पिता की छाया में बड़े हुए, सब को छोड़ना पड़ रहा है। अरी ए, नैहर डर लागै ! मगर फिर भी--रोते-रोते भी, मगर फिर भी--बैठ जाती है डोली में। बैठना ही पड़ेगा। अतीत का भय भविष्य के प्रेम में बाधा नहीं बन सकता। जाना ही पड़ेगा। रोते-रोते तो रोते-रोते सही, भयभीत तो भयभीत सही, जाना तो पड़ेगा ही। यह नृत्य की घड़ी आ गयी, नाचना तो पड़ेगा ही। नहीं आता नाच तो कोई फिक्र नहीं। नहीं जमेंगे पैर आज, कोई हर्ज नहीं। नाचना तो पड़ेगा ही। अब कोई बहाने काम न आएंगे। डोली द्वार पर आ गयी है, चढ़ना तो होगा ही।

'भीजौं नैनन चाखि दरसन-रस, प्रीति-गांठि नहिं छोरी।।' अब छोड़ भी नहीं सकती हूं प्रीति की गांठ को, कितना ही लगे भय !

'रहौं सीस द सदा चरनतर,' . . .

अब तो अगर सीस भी देना पड़ेगा तो दूंगी, भय लगे तो लगे।

'रहौं सीस दै सदा चरनतर, होउं ताहिकी चेरी।'

अब तो उसकी ही सेवा में, उसकी ही दासी होकर रह जाऊंगी।

'जगजीवन सत-सेज सूति रहि,'...

अब तो सेज है पिया की,

...'और बात सब थोरी।।'

और बाकी सब बातें व्यर्थ हैं, थोथी हैं। जाना तो होगा ही––सेज तैयार हो गयी, पिया मिलने को आतुर, उसका बुलावा आ गया, आंखों में उसका रस भर आया, हृदय उसको अनुभव करने लगा, सामने सीढ़ियां हैं, डोली द्वार आ लगी... अरी ए, नैहर डर लागै, सखी री, कैसे खेलौं मैं होरी... मगर खेलनी ही होगी! शुरू-शुरू, कुशलता न होगी, पैर इधर-उधर पड़ेंगे; शुरू-शुरू वाद्य ठीक न बजेगा; शुरू-शुरू छंद ठीक न बैठेगा––फिर बैठ जाएगा––मगर अब सब चिन्ताएं छोड़कर छलांग तो लेनी ही है।

'जगजीवन सत-सेज सूति रहि, और बात सब थोरी।।'

अब तो उसके बिना जिंदगी व्यर्थ है।

यूं ज़िंदगी गुज़ार रहा हूं तिरे बग़ैर
जैसे कोई गुनाह किए जा रहा हूं मैं

ऐसी भी इक निगाह किए जा रहा हूं मैं
ज़र्रों को मेह्रो-माह किए जा रहा हूं मैं

मुझसे लगे हैं इश्क़ की अ़ज़्मत को चार चांद
खुद हुस्न को गवाह किए जा रहा हूं मैं

आगे क़दम बढ़ाएं जिन्हें सूझता नहीं
रौशन चिराग़े-राह किए जा रहा हूं मैं

जगजीवन कह रहे हैं कि जैसे मैं जा रहा हूं इस डोली में चढ़कर अज्ञात की, पीव से जीव को मिलने का साहस जुटा रहा हूं, ऐसे ही तुम भी जुटाना।

आगे क़दम बढ़ाएं जिन्हें सूझता नहीं
रौशन चिराग़े-राह किए जा रहा हूं मैं

जिस दिन कोई भक्त परमात्मा से मिलने का साहस जुटा लेता है, उसी दिन उसके भीतर सतगुरु का जन्म हो जाता है। फिर उसके द्वारा औरों को सहारा मिलने लगता है। जब तक डर है तब तक वह शिष्य रहता है। जिस दिन डर को त्याग कर, निर्भय छलांग ले लेता है, उसी दिन गुरु हो जाता है।

एक सद्गुरु के पास अनेक सद्गुरु पैदा हो सकते हैं। एक दीये से अनेक दीये जल सकते हैं। और फिर प्रत्येक दीया अनेक-अनेक दीयों को जलाने का कारण बन सकता है। यह सारी पृथ्वी दीपावली हो सकती है। यह सारी पृथ्वी गुलाल से भर सकती है, रंग से भर सकती है। मगर बड़ी-से-बड़ी जो बात है, वह है सारे भय छोड़कर अज्ञात की यात्रा पर निकल जाना।

आगे क़दम बढ़ाएं जिन्हें सूझता नहीं
रौशन चिरागे-राह किए जा रहा हूं मैं

ऐसे ये प्यारे वचन थे जगजीवन के। इन्हें तुमने सुना, गुनना भी! इन्हें तुमने सुना, जीना भी! और इनसे तुम्हारे भीतर छिपे चिराग प्रगट होंगे, बंद पड़ी कलियां खिलेंगी।

यह कठिन नहीं है। यह हो सकता है। जैसा एक को हुआ, वैसा सभी को हो सकता है। जो एक मनुष्य के जीवन में घटता है, वह सभी का अधिकार है।

अरी, मैं तो राम के रंग छकी!

अरी, मैं तो नाम के रंग छकी!

तुम भी छको! मगर पियोगे तो ही छकोगे; जियोगे तो ही छकोगे। ऐसे छको कि तुम्हारे ऊपर से बहने लगे; ऐसे भरो कि तुम्हारी प्याली से औरों की प्याली में बहने लगे रस। जलो, औरों को जलाओ! भरो, औरों के भरो! वही व्यक्ति धन्य है। फिर तुम भी कह सकोगे:

'सदा सोहाग भाग मोरे जागे, सतसंग सुरति बरौं री।
जगजीवन सखि सुखित जुगन-जुग, चरनन सुरति धरौं री।।

रंगि-रंगि चंदन चढ़ावहु सांई के लिलार रे।।
मन तें पुहुप माल गूंथिकै, सो लैकै पहिरावहु रे।
बिना नैन तें निरखु देखु छवि, बिन कर सीस नवावहु रे।।
दुइ कर जोरिकै बिनती करिकै, नाम कै मंगल गावहु रे।
जगजीवन बिनती करि मांगै, कबहुं नहीं बिसरावहु रे।।'

छको––ऐसे ही छको! ऐसा ही सुहाग तुम्हारा हो! ऐसा ही भाग तुम्हारा हो!

अरी, मैं तो नाम रंग छकी!

आज इतना ही।
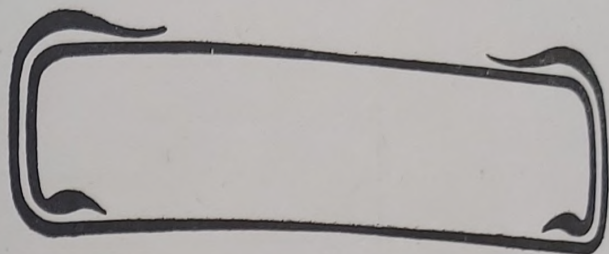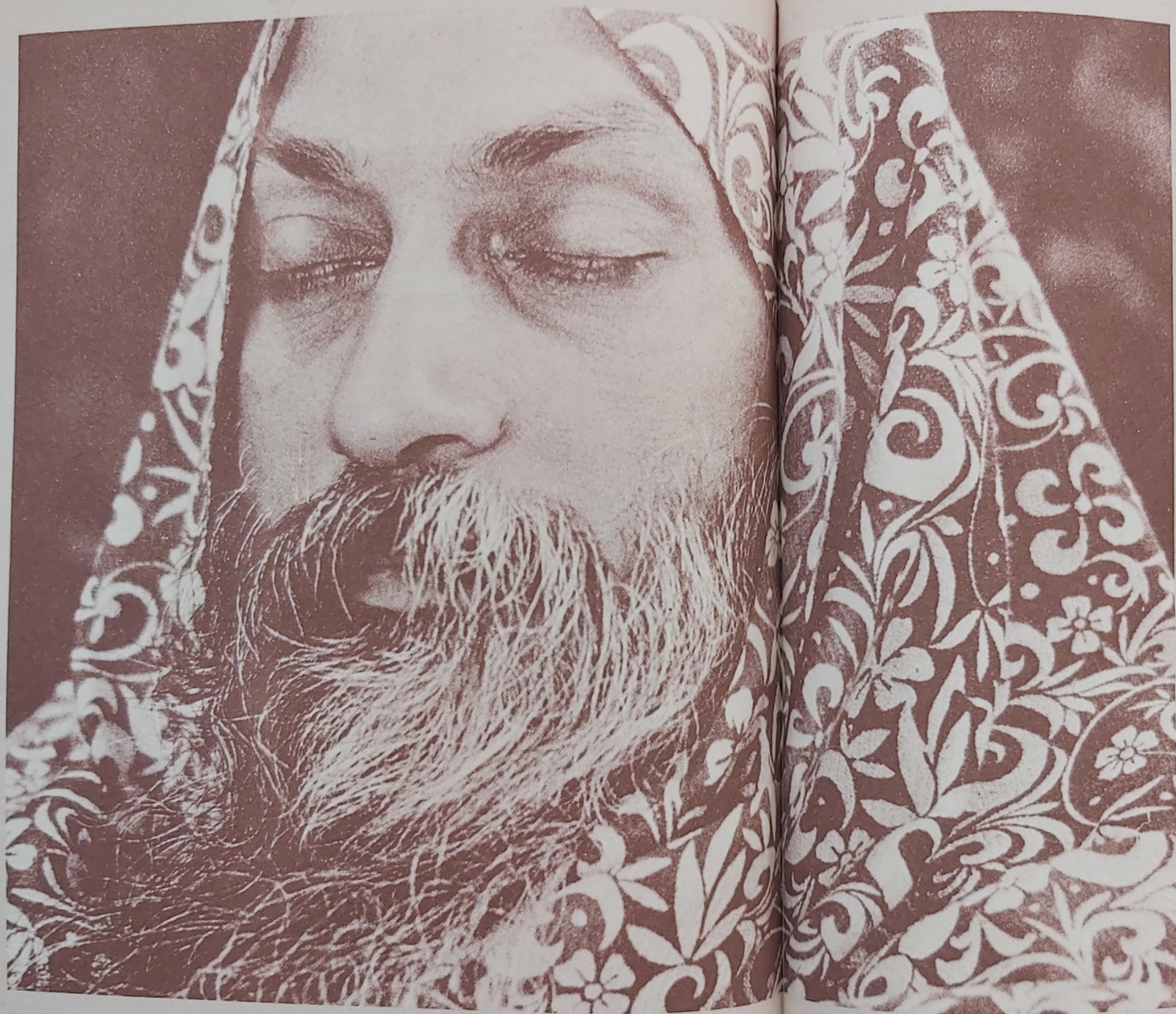
शाश्वत संगीत भीतर है

दसवां प्रवचन; २० सितम्बर १९७८; श्री रजनीश आश्रम, पूना.

मैं सुखी होना चाहता हूं। अहंकार को मिटाने से तो मैं स्वयं ही मिट जाऊंगा; और मैं रहूंगा ही नहीं तो सुखी कैसे होऊंगा? अस्तित्व खोने की अपेक्षा दुखमय अस्तित्व ही क्यों न ठीक होगा?

संतों में किसीने उस परम अनुभूति को प्रकाश कहा है, किसीने रंगों की होली, किसीने अमृत का स्वाद। यह भेद क्यों?

भगवान,
जगजीवन के साथ मेरे जीवन का अंतिम मोड़ आ चुका है। आपके चरणों में लपटाई रहूं, यही प्रार्थना है।

पहला प्रश्न : मैं सुखी होना चाहता हूं। मैं जो भी करता हूं, सो सुखी होने की आशा में ही करता हूं। अब मैं धर्म साधने आया हूं, सो भी उसी आशा में। आप कहते हैं--अहंकार को मिटाओ। इससे मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अहंकार को मिटाने से मैं स्वयं ही मिट जाऊंगा; फिर मैं रहूंगा ही नहीं, तो सुखी कैसे होऊंगा? अस्तित्व खोने की अपेक्षा दुखमय अस्तित्व ही क्यों न ठीक होगा?

स्वरूपानंद, जीवन की सबसे बड़ी समस्या यही है, सबसे मूलभूत प्रश्न यही है। अहंकार जब तक है, तब तक सुख नहीं। क्योंकि अहंकार जब तक है तब तक परमात्मा से मिलन नहीं। और जब परमात्मा से मिलन होगा, सुख की वर्षा होगी, तो अहंकार न बच सकेगा--अहंकार को न बचा सकोगे। 'मैं' के मिट जाने से ही द्वार खुलते हैं।

पर एक बात ख्याल में रख लेना। 'मैं' के मिट जाने का यह अर्थ नहीं है कि तुम मिट जाते हो। वहां तुम्हारी भूल हो रही है। 'मैं' की वजह से तुम मिटे हुए हो। तुम हो क्या ख़ाक! 'मैं' के कारण ही तुम मिटे हुए हो। तुम्हारा होना ऐसा ही है जैसे सिरदर्द के कारण सिर का होना। यद्यपि यह सच है कि सिरदर्द होता है तभी सिर का पता चलता है। नहीं तो सिर का कहां पता चलता है? लेकिन क्या सिर का पता चलाने को सिरदर्द चाहोगे? जब सिर में दर्द नहीं होता तो भी सिर तो होता है, पता नहीं चलता! चलने की जरूरत नहीं रह जाती। जब शरीर परिपूर्ण स्वस्थ होता है तो शरीर का पता नहीं चलता। बीमारी में ही पता चलता है।

इसलिए हमारे पास एक प्यारा शब्द है, दुनिया की किसी भाषा में नहीं। वह शब्द है : वेदना। वेदना के दो अर्थ हैं : ज्ञान और दुख। वेदना उसी धातु से बना

है जिससे वेद, विद्वान । वेदना का अर्थ है : ज्ञान । और वेदना का अर्थ दुख भी । यह अनूठा शब्द है । और इन दोनों का क्या मेल होगा -- दुख और ज्ञान का ? मेल है । हमें किसी चीज का ज्ञान ही तब होता है जब कांटे की तरह कुछ चुभे । पैर में कांटा लगे तो पैर का पता चलता है । जूता पैर को काटे तो पैर का पता चलता है । अगर जूता बिल्कुल न काटता हो पैर को तो पैर का पता नहीं चलता ।

लेकिन पता चलना और होने में फर्क है । सिर तो तब भी रहेगा जब सिरदर्द न रहेगा; लेकिन पता नहीं चलेगा । तुम तो तब भी रहोगे जब अहंकार नहीं रहेगा । अहंकार तो घाव है, चोट है, पीड़ा है--वेदना है। जब अहंकार चला जाएगा, तब भी तुम रहोगे । वेदनामुक्त, स्वस्थ । सारे घाव विदा हो गये। एक सन्नाटा होगा, एक शांति होगी; एक नीरव संगीत होगा । मिट नहीं जाओगे तुम, पहली दफा होओगे । अभी मिटे हुए हो । सिरदर्द के कारण सिर मिटा जा रहा है ।

लेकिन अभी तुमने एक ही जीवन की व्यवस्था जानी--अहंकार की । और इस अहंकार के कारण तुम दुख तक को जीने को राजी हो । तुम कहते हो, यही बेहतर है, फिर दुख को ही पकड़े रहें, कम-से-कम हैं तो। और मैं तुम्हारा तर्क समझता हूं। यही तो सभी का तर्क है। इसीलिए तो लोग अहंकार नहीं छोड़ रहे हैं। क्योंकि उन्हें लगता है, अहंकार गया तो हम गये, फिर सुख किसको होगा ? सुख किसीको नहीं होता, सुख होता है । दुख किसीको होता है । दुख में दो होते हैं । जिसको होता है, वह, और जो होता है, वह । जब सिरदर्द होता है तब दो होते हैं -- सिर और सिरदर्द । द्वंद्व होता है, दुई होती है। जब पैर का पता चलता है कांटे के चुभने से तो दो होते हैं--कांटा और पैर होते हैं । जब कांटा निकल गया, पैर ही बचा, अब सुख होता है । लेकिन किसको होता है ?

सुख का भी पता नहीं चलता ।

तुम्हें कभी पता चलता है ? तुम कभी ऐसा तो नहीं कहते लोगों से कि आज बड़ा अच्छा लग रहा है, सिर में भी दर्द नहीं है, पैर में कांटा भी नहीं गड़ा है, कमर में भी दर्द नहीं हो रहा है--बड़ा आनंद आ रहा है । अगर तुम इतना हिसाब रखो कितना-कितना नहीं हो रहा है, तो तुम्हारे आनंद की फेहरिश्त बड़ी लम्बी हो जाएगी शरीर में हजारों चीजें हैं, लाखों चीजें हैं, सब ठीक चल रही हैं । मगर किसी का तुम्हें पता नहीं चल रहा है । पता तुम्हें उसका चल रहा है जो ठीक नहीं चल रही है । जहां गड़बड़ हो रही है, उसका पता चल रहा है । पता चलने का अर्थ ही यही है कि शरीर यह कह रहा है कि कुछ करो, यहां कुछ अड़चन आ गयी है, इस कांटे को अलग करो ।

अहंकार का पता चलता है, आत्मा का पता नहीं चलता । आत्मा लापता है। उसकी अनुभूति होती है, अनुभव नहीं होता । उसकी प्रतीति होती है, मगर प्रत्यक्ष

नहीं होता ।

तुम मिट जाओगे तो सुख होगा । सुख द्वंद्व में होता ही नहीं। अभी भी कभी तुम्हारे जीवन में अगर सुख की एकाध किरण उतर आती है, तो उस क्षण तुम मिट जाते हो । देखा तुमने सांझ को डूबता हुआ सूरज, आकाश में सतरंगे बादल; घर, नीड़ों को लौटते हुए पक्षी, सांझ की उतरती हुई पायलों की झंकार; अंधेरा आता है, रात उतरने लगी, सब शांत-सन्नाटा होने लगा, और तुम क्षण भर को खो गये --डूबते सूरज को देखकर, लौटते पक्षियों को देखकर, आकाश में रंगीन बादलों को भटकते देखकर, क्षण भर को तुम खो गये, क्षण भर को तुम न रहे, तभी सुख हुआ । फिर पीछे तुम कहते हो कि बड़ी सुखद सांझ थी ! बड़ा प्यारा सूरज डूब रहा था ! या एक मित्र घर आ गया, बहुत दिन का बिछड़ा प्यारा घर आ गया, तुम छाती से लग गये, क्षण भर को तुम भूल गये, क्षण भर को अहंकार न रहा, क्षण भर को विस्मरण हो गया अपना, क्षण भर को सिरदर्द न रहा । फिर पीछे तुम कहते हो--बड़ा सुख मिला ! मित्र को मिलकर बड़ा सुख मिला ! मित्र को मिलकर सुख नहीं मिला, न सूरज को डूबते देखकर सुख मिला, न कोयल के गीत की झंकार सुनकर सुख मिला, सुख मिलता है तभी जब तुम किसी भी निमित्त से अहंकार को भूल जाते हो ।

मुझे सुन रहे हो, जिन्हें मुझे सुनकर सुख मिलता है, वे जरा सोचें । सुख मिलता इसीलिए है कि मुझे सुनते-सुनते तुम अपने को भूल जाते हो । और कुछ नहीं कारण है । जो अपने को नहीं भूल पाता मुझे सुनते समय, उसे सुख नहीं मिलेगा । जिसके सिर में हजार विचार चल रहे हैं, जो सोच रहा है, विचार कर रहा है, हिसाब लगा रहा है, उसे सुख नहीं मिलेगा । जो मस्त हो गया, जो मेरे साथ एक हो गया, जो भूल ही गया कि है--तुम जब वहां मिट जाते हो, तुम जब वहां नहीं होते अहंकार की तरह, विचार की तरह, मन की तरह, जब वेदना नहीं होती तब भी तुम होते तो हो ! यहां देखते हो, सन्नाटा है । कोई अचानक पास से गुजर जाएगा, उसे पता भी न चलेगा पांच सौ लोग बैठकर यहां कुछ कर रहे हैं । जहां पांच सौ लोग होते हैं वहां तो बाजार भर जाता है !

ऐसा हुआ !

अजातशत्रु, बुद्ध के समय का एक सम्राट-- और जैसे सम्राट होते हैं, सदा भयभीत, डरा हुआ । न-मालूम कितने लोगों को मरवा डाला है उसने; अपने बाप तक को कैद में डाल दिया है; कैसे न डरेगा ? कैसे न भयभीत होगा ? कब कौन मार दे, कब कौन गोली चला दे, कब कौन छुरा भोंक दे ! उसके वजीरों ने उसे कहा, बुद्ध का आगमन हुआ है, आप भी चलेंगे सत्संग को ? उसने पूछा, कितने लोग बुद्ध के साथ आए हैं ? पता चला दस हजार भिक्षु आए हैं । कहां ठहरे हैं ? सब

उसने पता लिया, ठिकाना लिया; उसने कहा, अच्छा मैं चलूंगा।

जब वह गया तो पूछता जाता कि अभी तक आया नहीं स्थान ? तब उन्होंने कहा कि अब देखें, यह जो दूर अमराई दिखती है आमों की, बस इसी में बुद्ध ठहरे हैं। पास ही थी अमराई, थोड़े ही कदमों का फासला। अजातशत्रु ने अपनी तलवार निकाल ली ! वजीरों ने कहा, आप तलवार क्यों निकाल रहे हैं ? उसने कहा मुझे शक होता है, मुझे किसी धोखे का शक होता है। अगर दस हजार लोग यहां ठहरे हैं तो बाजार मचा होता ! न कोई आवाज है, न कोई शोरगुल है। यहां तो लगता है अमराई खाली पड़ी है। मुझे कोई चहल-पहल नहीं दिखायी पड़ती। तुम मुझे कुछ धोखा तो नहीं दे रहे हो ? तुम मझे किसी षड्यंत्र में तो नहीं डाल रहे हो ? वे वजीर हंसने लगे, उन्होंने कहा कि आप निश्चित होकर तलवार भीतर कर लें, आपको बुद्ध के पास के लोगों का पता नहीं है। वह ऐसे हैं जैसे नहीं हैं। उनकी उपस्थिति अनुपस्थिति जैसी है। यही तो रहस्य है। यही तो उनका रस है, यही उनका आनंद है कि वे मिट गये हैं। और मिटकर हो गये हैं। एक और ही ढंग है उनके होने का। उनकी शैली और है। वे ध्यान को उपलब्ध लोग हैं। आप तो तलवार भीतर कर लें, आप व्यर्थ परेशान न हों, कोई षड्यंत्र नहीं है। जरा चार कदम और —और हम पहुंचे जाते हैं अमराई में।

और अजातशत्रु अमराई में पहुंचा तो चौंक गया। तलवार उसने यद्यपि रख ली म्यान में लेकिन मुट्ठी पर उसका हाथ रहा। जब अमराई में पहुंच गया, तब उसने तलवार से हाथ छोड़ा। निश्चित ही दस हजार लोग थे। सन्नाटा था। बुद्ध के साथ चुपचाप बैठे थे। समय था ध्यान का, सब ध्यान में लीन थे। जैसे वहां एक भी व्यक्ति न हो।

तुम्हें मुझे सुन कर कभी जब सुख की थोड़ी-सी झलक मिलती है, तो वह इसलिए मिलती है कि तुम उस घड़ी में अपने को भूल गये होते हो। मिट तो नहीं जाते, तुम होते तो हो ही, मगर यह होने का नया ढंग है, नयी शैली है। एक होने का ढंग है रुग्ण, विक्षिप्त, ज्वरग्रस्त। और एक होने का ढंग है, स्वस्थ, शांत, निर्मल, ध्यानस्थ।

स्वरूपानंद, तुम्हारा प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। तुम कहते हो, मैं सुख की तलाश करता हूं। जीवन भर सुख की ही खोज करता रहा हूं। सुखी होने की आशा में ही जीता रहा हूं। लेकिन तुमने सुख पाया कहां ? जरा इस पर विचार करके देखो। जीवन भर सुख पाने के लिए जिए हो, सुख मिला कहां ? अगर जीवन भर कोई सुख पाने की तलाश करे और सुख न मिले, तो विचार तो करना चाहिए—कहीं हमारी खोज में ही बुनियादी भूल तो नहीं है। और तुम्हारी अकेले की ही बात होती तो भी ठीक था, इस जगत में किसको सुख की खोज करने से सुख मिला है ? किसी को भी नहीं। जो सुख की खोज करता है वह तो सुख पाता ही नहीं, जितनी खोज

करता है वह उतना सुख दूर होता चला जाता है। क्योंकि जितनी खोज करता है, उतना ही अहंकर। और अहंकार को बचाकर कोई कभी सुखी नहीं हो सकता।

यह तो ऐसा हुआ ही कि सिरदर्द को बचाकर तुम चाहते हो कि सिरदर्द ठीक हो जाए। यह असम्भव है। तुम चाहते हो, कांटा तो गड़ा रहे—कांटे से तुम्हें मोह हो गया है। हो सकता है कांटा सोने का हो, हीरे-जवाहरात जड़ा हो—कांटे का तुम्हें मोह हो गया है और तुम चाहते हो, पैर में जो पीड़ा होती है वह भी मिट जाए। तुम असम्भव की कामना कर रहे हो। और तुम्हीं नहीं; सारा जगत तुम्हारे जैसे ही लोगों से भरा है, स्वरूपानंद ! और यहां तुम दुखी ही दुखी लोग देखते हो। यहां कब तुम्हें सुखी आदमी मिलता है ! बड़ी मुश्किल से। और जब भी सुखी आदमी मिलेगा, वह तुमसे यही कहेगा कि मिट जाओ तो सुख हो। सुख होता ही तब है जब तुम नहीं होते। तुम्हारे और सुख के, दोनों के साथ-साथ होने का कोई उपाय नहीं, तुम कांटे हो। लेकिन फिर भी मैं तुमसे कहता हूं, तुम्हारे मिट जाने पर भी तुम्हारा एक और तरह का होना शेष रह जाता है। लेकिन वह होना बड़ा भिन्न है। उस होने का नाम ही आत्मा है।

तो होने के दो ढंग। एक अहंकार, एक आत्मा। अहंकार दुखद ढंग है होने का, नारकीय ढंग हैं होने का। आत्मा सुखद ढंग हैं होने का, आनंदपूर्ण ढंग है...होने का। अहंकार को पकड़ोगे तो आत्मा से चूकते रहोगे। अहंकार छोड़ोगे तो आत्मा की उपलब्धि तत्क्षण हो जाती है।

अहंकार को तो छोड़ना ही होगा। इसे बिना छोड़े कोई उपाय नहीं है। और छोड़ कर तुम पाओगे, मिटे नहीं, पहली दफा हुए। छोटे से बड़े हुए। जैसे बूंद सागर में गिर जाए। लगता तो ऐसा ही है कि मिट गयी बूंद, मगर यह एक तरफ से लगता है कि मिट गयी। अहंकार की तरफ से लगता है कि मिट गयी, जरा दूसरी तरफ से भी सोचो, एक और तरफ से भी द्वार खुलता है, कि बूंद सागर हो गयी।

जब बूंद सागर में गिरती है तो होता क्या है, घटना क्या घटती है ? उसकी सीमाएं टूट जाती हैं, बूंद तो नहीं टूटती। बूंद तो अब भी है। मगर अब सीमित नहीं है। वह जो क्षुद्र-सी सीमा थी, वह सीमा खो गयी। वह अब सागर की सीमा के साथ लीन हो गयी। और अब बूंद उतनी ही बड़ी है जितना बड़ा सागर है।

उतने ही बड़े तुम हो, जितना बड़ा सागर है। चाहो बूंद की तरह रहो, यह एक ढंग है अहंकार का। फिर दुखी रहोगे; क्योंकि सीमा में दुख है। क्योंकि सीमा में बंधन है। क्योंकि सीमा कारागृह है। नाचोगे कैसे ? गाओगे कैसे ? हर तरफ दीवाल आ जाती है। कहीं पंख फैलाने का मौका नहीं मिलता। आकाश नहीं मिलता उड़ने को। यह तुम्हारे जीवन भर का अनुभव है कि तुमने सुख खोजा और सुख नहीं पाया।

अब तुम कहते हो, मैं सुखी होना चाहता हूं। सभी होना चाहते हैं। मगर सभी दुखी हैं, यह ख्याल रखना। सभी सुखी होना चाहते हैं और सभी दुखी हैं! यह दुर्घटना कैसे घट रही है? जब सभी सुखी होना चाहते हैं तो अधिकतम लोग तो सुखी होने ही चाहिए। हां, कुछ लोग भूल-चूक करें, समझ में आ जाएगा। मगर हालत उलटी है। सभी सुख चाहते हैं और सभी दुखी हैं। तो कहीं ऐसा तो नहीं कि सुख की चाह में ही दुख पैदा होता है। क्योंकि जिन्होंने सुख की चाह छोड़ दी, उनके वक्तव्य बड़े भिन्न हैं। वे कहते हैं, सुख की चाह छोड़ी कि हम सुखी हो गये। इसलिए उन्होंने सुख के लिए नया नाम खोजा--आनंद; ताकि तुम्हें भ्रांति न हो। नहीं तो तुम यही समझोगे कि तुम्हारा ही सुख है।

इसलिए बुद्ध नहीं कहते कि सुख मिलेगा। क्योंकि सुख कहने से तुम्हारी पुरानी भ्रांति को कहीं बल न मिले! कहीं तुम सुख की खोज में ही न लगे रहो! तो बुद्ध कहते हैं, वासना छोड़नी होगी, कामना छोड़नी होगी, तृष्णा छोड़नी होगी। यह जो सुख की कामना है, यही तुम्हारे दुख का आधार है। जिस दिन तुम यह देख लोगे, उसी दिन धर्म का सूत्रपात होता है। लेकिन तुम तो यह कह रहे हो कि मैं जो भी करता हूं, सुखी होने की आशा में करता हूं। पर यह तो देखो कि मिलता तो दुख है, तुम्हारी आशा से क्या संबंध है; तुम ऐसा ही समझो कि तुम तो बड़ी आशा से रेत से तेल निचोड़ना चाहते हो, मगर निकलता कहां तेल! तुम्हारी आशा से रेत से तेल निकल भी नहीं सकता, तुम्हारी आशा से रेत से तेल निकलने का सम्बंध क्या है? रेत में तेल होना चाहिए तो निकले। और तुम चारों तरफ लोगों को देख रहे हो कि सब रेत को पीस रहे हैं; तेल निकालने की कोशिश में लगे हैं, तेल का कोई पता नहीं।

तुम सुख की आशा से पाए नहीं सुख! सुख की आशा में भ्रांति है। सुख की आशा से ही दुख पैदा होता है। कैसे दुख होता है सुख की आशा से, उसे समझो।

तुम सोचते हो, इस बड़े महल में आवास हो जाए तो सुख हो। अब तुमने दुख के उपाय शुरू किये। अब तुम जिस झोंपड़े में रहते हो, इसमें सुख नहीं हो सकता, पहली बात। तुलना सामने आ गयी। यह महल तुम्हें सुख का सपना दे रहा है। तुम्हारा झोंपड़ा इस महल के कारण, इस महल की तुलना में बहुत भद्दा हो गया, बहुत कुरूप हो गया, बहुत छोटा हो गया, बहुत तुच्छ हो गया। नहीं तो कोई झोंपड़ा तुच्छ नहीं है। तुलना में ही तुच्छ होता है। झोंपड़ा अपने-आप में सिर्फ झोंपड़ा है। रहने की जगह है। न अच्छा है, न बुरा है। एक सुविधा है। लेकिन जैसे ही तुमने महल पर नजर बांधी, तुम दुखी हो गये। रहोगे तो अभी झोंपड़े में, एकदम से महल में तो नहीं पहुंच जाओगे, रहोगे झोंपड़े में, लेकिन अब दुखी हो गये। अब दुखी रहोगे। तुम्हारे पास दस हजार रुपये थे और तुमने कहा, जब तक लाख न हो जाएंगे तब तक मैं कैसे सुखी हो सकता हूं। अब दस हजार में सुख नहीं मिलता, दस हजार से

पीड़ा मिलती है, कष्ट होता है कि सिर्फ दस हजार! बस दस हजार! गरीबी पता चलती है।

अमरीका का बहुत बड़ा अरबपति ऐंड्र कारनेगी मरा तो दस अरब रुपये छोड़ कर मरा। मरने के दो घंटे पहले जो व्यक्ति उसकी जीवनकथा लिख रहा था उसने पूछा, कारनेगी से कि आप तो तृप्त जा रहे होंगे? आप तो संतुष्ट जा रहे होंगे? दस अरब रुपया छोड़कर कोई आदमी नहीं मरा है! नगद! ऐंड्र कारनेगी ने आंखें खोलीं और बड़ी उदासी से कहा कि मैं एक हारा हुआ आदमी हूं, मैं पराजित जा रहा हूं, मैं दुखी जा रहा हूं, क्योंकि मेरी योजना सौ अरब रुपये कमाने की थी। नब्बे अरब से हार हुई है मेरी, कोई छोटी-मोटी हार नहीं है।

अब तुम समझो थोड़ा। दस अरब जिसके पास हैं, वह कह रहा है--नब्बे अरब से मेरी हार हुई है। कोई छोटी-मोटी हार नहीं है मेरा: अगर इस तरह से सोचो तो तुम कहीं ज्यादा सफल हो। क्योंकि नब्बे अरब से नहीं हारे हो। तुमने अगर दस हजार चाहे थे और हजार ही तुम्हारे पास हैं, तो नौ ही हजार से हारे हो। तुम्हारा दुख छोटा है। ऐंड्रू कारनेगी का दुख बड़ा है, निश्चित बड़ा है। नब्बे अरब रुपये का दुख है! छाती पर पत्थर है, हिमालय रखा है!

मगर दस अरब रुपये कष्ट दे रहे हैं उसे, यह समझो! क्योंकि सौ अरब की योजना है। तुमने अगर महल पर नजर बांध ली तो तुम झोंपड़े में दुखी हो गये, पहली बात; दुख की शुरुआत हो गयी। तुम्हारा दुख उतना ही बड़ा होगा जितना बड़ा महल तुमने अपनी कल्पना में सोचा है। उसी अनुपात में होगा तुम्हारा दुख। ख्याल रखना, ऐंड्र कारनेगी की बात कि नब्बे अरब रुपयों से हार कर जा रहा हूं। पराजित! सर्वहारा! भिखमंगा भी इस बुरी तरह नहीं मरता। क्योंकि भिखमंगे की योजना ही बड़ी नहीं होती, तो दुख बड़ा नहीं हो सकता। दुख तुम्हारी आशा के अनुकूल होता है, आशा के अनुपात में होता है। और तुम्हारी बड़ी आशाएं हैं, यह मिले, वह मिले!

जितनी तुम्हारी कामनाएं हैं, उतना बड़ा तुम्हारा दुख है। जिओगे तो तुम वहां जहां तुम हो और आशाएं तुमने बांध रखी हैं बड़ी-बड़ी, वे सब तुम्हारे आस-पास प्रेतों की तरह खड़ी हो गयी हैं। तुम्हें सताएंगी--बुरी तरह सताएंगी! इससे तुम दुखी हो रहे हो। तुम दुखी अपनी जीवन की स्थिति के कारण नहीं हो रहे हो, तुम अपनी तृष्णाओं के कारण दुखी हो रहे हो। तो जितनी बड़ी तृष्णा होगी, उतना बड़ा दुख होगा।

एक फकीर था अकबर के जमाने में। मरने के करीब आया तो उसने कहा कि मेरे पास कुछ पैसे इकट्ठे हो गये हैं--लोग फेंकते जाते हैं--मैं इस गांव के सबसे गरीब आदमी को दे देना चाहता हूं। बहुत लोग आए, गरीबी के दावेदार आए, बिल्कुल

नंगे फकीर आए, उन्होंने कहा, हमसे ज्यादा गरीब और कौन होगा, हमारे पास कपड़ा भी नहीं है। मगर उसने कहा कि ठहरो, अभी सबसे बड़े गरीब आदमी को आने दो। लोगों ने कहा, लेकिन अब और तुम किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो? अब और कौन गरीब होगा? यह देखते आदमी, लंगड़ा, लूला, कोढ़ी, नंगा, अब और क्या होगा? इसके पास कुछ नहीं है। और भी आए। कोई अंधा था, कोई कुछ था, कोई कुछ था। मगर वह आदमी कहने लगा कि नहीं, सबसे बड़ा गरीब जब आएगा।

और जिस दिन अकबर की सवारी निकली उसके झोंपड़े के सामने से, उसने पूरी थैली जाकर अकबर को भेंट कर दी। अकबर को भी खबर लग गयी थी उसकी कि वह यह घोषणा कर दिया है। अकबर ने कहा कि मामला क्या है, तुम मुझे दे रहे हो? तुमने तो घोषणा की थी, सबसे बड़े गरीब को। वह फकीर हंसने लगा उसने कहा, तुमसे बड़ा गरीब इस राजधानी में कोई और नहीं। मैं तुम्हारा दुख जानता हूं, इसलिए तुमको दे रहा हूं। हालांकि मेरी थैली से कुछ ज्यादा नहीं होगा—पत्र-पुष्प समझो, फूल की पांखुड़ी, तुम्हारी तृष्णाओं के जाल में कुछ इससे बहुत फर्क नहीं पड़ेगा—मगर मैं तुम्हें यह याद दिलाना चाहता हूं कि तुम सबसे बड़े गरीब आदमी हो यहां। क्योंकि तुम्हारी आकांक्षाएं सबसे बड़ी हैं।

आकांक्षाओं के अनुपात में आदमी गरीब होता है। उसी अनुपात में दुखी होता है। फिर तुम्हारी आकांक्षाएं बहुत हैं। सुन्दरतम देह होनी चाहिए; तो गरीब हो गये। कुरूप हो गये। धन होना चाहिए, तो निर्धन हो गये। महल होना चाहिए, तो जिस मकान में रहते थे वह झोंपड़ा हो गया। झोंपड़पट्टी हो गया। एक सुन्दर स्त्री होनी चाहिए, क्लियोपैत्रा जैसी सुन्दर हो, कि नूरजहां हो, कि मुमताज महल हो, बस तुम्हारी स्त्री एकदम कुरूप हो गयी। बेढंगी हो गयी। तुम्हारा बेटा अलबर्ट, आइंस्टीन जैसा बुद्धिमान हो, बस, अड़चन हो गयी। अब तुम्हारा बेटा बुद्धू हो गया। अब तुम दुख-ही-दुख में घिरे जा रहे हो। फिर तुम हिसाब तुम लगा सकते हो। फेहरिश्त बनाना कि क्या-क्या तुम चाहते हो, जिससे तुम सुखी होओगे? उसी के कारण तुम दुखी हो।

जरा फेहरिश्त को बिदा कर दो, तुम्हारा बेटा तुम्हारा बेटा है। अलबर्ट आइंस्टीन से क्या लेना-देना? और अगर तुम किसी से तुलना न करो—और जो आशा नहीं करता, वह तुलना नहीं करता; तुलना आशा की छाया है—तब तुम्हारा बेटा जैसा है वैसा है। जरा भी दुख देने वाला नहीं है। कोई कारण दुख का नहीं रह गया। तुम्हारे पास दस हजार रुपये हैं, तो तुम दस हजार रुपये से जो सुख ले सकते हो लोगे। क्योंकि ऐसे लोग हैं बहुत, जिनके पास दस रुपये भी नहीं हैं। और जिनके पास दस रुपये नहीं हैं, वे सोचते हैं, दस हजार हो जाएं तो सुखी हो जाएंगे। तुम जरा सोचो, तुम्हारे पास दस हजार हैं, मगर तुम सुखी कहां हो? और तुम सोचते

हो, दस अरब हो जाएं तो हम सुखी हो जाएंगे—तो ऐंड्रू कारनेगी का विचार करना। ऐंड्रू कारनेगी के पास दस अरब हैं, सुखी कहां है?

तुम्हारी तुलनाओं को विदा करके देखो और तुम अचानक पाओगे, दुख के पहाड़ कट गये, छंट गये।

बुद्ध ने कहा है, तृष्णा दुख का मूल है।

तो एक बात, तृष्णा जितनी बड़ी होगी, उतना बड़ा दुख होता चला जाता है।

दूसरी बात, तुम अगर इन तृष्णाओं को किसी तरह पूरा भी कर लो, सारी जिंदगी दुख उठा-उठा कर, नर्क झेल-झेल कर, भीख मांग-मांग कर, चोरी कर के, बेईमानी करके, सब तरह की जालसाजियां करके किसी तरह तुम महल में पहुंच जाओ, तो भी तुम सुखी नहीं हो सकोगे। क्योंकि . . . वासना का दूसरा रंग भी समझ लो।

जो मिल जाता है, वासना उसीको भूल जाती है। जो नहीं मिलता उसीको याद रखती है। दस हजार रुपये हैं तो लाख की मांग करती है। जब लाख हो जाएंगे तो दस लाख की मांग करेगी। तुम्हारी और तुम्हारी वासना का अंतर सदा उतना ही रहता है जितना पहले था—उसमें अंतर नहीं पड़ता। वासना और मनुष्य के बीच जो संबंध है, वह क्षितिज जैसा है। जैसे दूर पास ही कुछ मील चलकर आकाश जुड़ता हुआ लगता है पृथ्वी से। तुम सोचते हो, घंटे-दो घंटे चलूंगा तो पहुंच जाऊंगा जहां आकाश जमीन से मिलता है। या बहुत होगा तो सांझ, सुबह चलूंगा तो सांझ तक पहुंच जाऊंगा। मगर तुम कभी नहीं पहुंच पाओगे क्योंकि जितने तुम आगे बढ़ जाओगे उतना ही क्षितिज आगे बढ़ जाता है। क्षितिज कहीं है नहीं, सिर्फ आभास है। ऐसी ही तुम्हारी वासना बढ़ती चली जाती है। तुम झोंपड़े में हो, तो मकान मांगती है; मकान में होते हो तो महल मांगती है, महल में हो जाते हो, और बड़ा महल मांगती है। वासना का अर्थ होता है, और . . . और . . . और . . .। वह वासना का स्वरूप है। वह कभी भी नहीं कहती कि बस, पर्याप्त। पर्याप्त शब्द वासना को आता ही नहीं। वह उसकी भाषा में नहीं है।

इसलिए सुख होगा कैसे? तुम नहीं पहुंचे तब तक दुखी रहोगे और पहुंच गये तो नये दुख और नये क्षितिज निर्मित हो जाएंगे। और भी एक मजे की बात है। समझ लो कल्पना के लिए, सिर्फ उदाहरण के लिए, कि तुमने सब पा लिया जो तुम पाना चाहते थे, अब पाने को कुछ भी कहीं बचा. . . समझ लो; ऐसा कभी होता नहीं है, न कभी हुआ है, न कभी होगा, लेकिन सिर्फ विचार के लिए, काल्पनिक दृष्टान्त समझ लो, मान लो कि तुमने सब पा लिया जो तुम पाना चाहते थे—सुन्दरतम स्त्री तुम्हें मिल गयी, सुन्दरतम महल तुम्हें मिल गया, सारी सम्पदा जगत की मिल गयी, तुम चक्रवर्ती सम्राट हो गये, तो क्या तुम सोचते हो तृप्ति हो जाएगी?

मैंने सुना है, सिकन्दर जब भारत-विजय के लिए आता था, तो एक ज्योतिषी

को उसने अपना हाथ दिखाया और कहा कि मैं विश्व-विजय को निकला हूं, सारी दुनिया को जीतकर दिखलाना है, अब तक कोई आदमी यह नहीं कर पाया, मैं करके दिखाऊंगा । ज्योतिषी ने हाथ देखा, उसने कहा कि यह तो ठीक है, लेकिन तुमने इसके आगे के संबंध में सोचा ? सिकन्दर ने पूछा, आगे और क्या है ? जब पूरी दुनिया जीत ली तो आगे क्या है ? नहीं, उस ज्योतिषी ने कहा, इतना ही कहता हूं कि दूसरी कोई और दुनिया नहीं है । अगर जीत लोगे, फिर क्या करोगे ? और कहानी यह कहती है कि सिकन्दर यह सुनकर उदास हो गया कि दूसरी दुनिया नहीं है ।

अभी जीती नहीं है ।

मगर अगर जीत लोगे तो फिर क्या करोगे ? तुम्हारी सारी ऊर्जा, तुम्हारी सारी महत्त्वाकांक्षा एकदम से चारों खाने चित जमीन पर गिर पड़ेगी । फिर करोगे क्या ? एकदम उदास हो जाओगे, एकदम हार जाओगे; करने को कुछ भी न बचेगा; आत्मघात के अतिरिक्त और क्या बचेगा ? और कहते हैं, सिकन्दर उदास हो गया था यह बात सुनकर कि दूसरी कोई दुनिया नहीं । उसके हाथ-पैर शिथिल हो गये थे । अभी यह दुनिया जीती नहीं है; लेकिन अगर जीत लोगे तो फिर क्या करोगे ?

कल्पना कर लो कि तुमने सब पा लिया, फिर क्या करोगे ? एकदम छाती धक्क से रह जाएगी । क्योंकि करने की आशा में जीते रहे थे । यह करना है, वह करना है; उसी में उलझे रहे थे । अब सब मिल गया, अब कुछ करने को नहीं बचा अब तुम्हारी दौड़धूप, तुम्हारी अतीत की यात्रा, सब व्यर्थ हो गयी । अब तुम करोगे क्या ? जरा सोचो उस विषाद को जो तुम्हें घेर लेगा ! कोई आशाओं, कल्पनाओं, कामनाओं, तृष्णाओं के माध्यम से सुख तक तो पहुंचता नहीं, दुख बहुत झेलता है।

तुम पूछते हो, 'मैं सुखी होना चाहता हूं । और जो भी करता हूं, सुखी होने की आशा में ही करता हूं ।' यह तो ठीक है । यह तो सभी कर रहे हैं । दूसरी बात गौर करो; इसी कारण दुख पैदा हो रहा है । एक बार जरा क्षण भर को ऐसा सोचो कि चौबीस घंटे के लिए सारी कामना छोड़ दो—सुख की कामना भी छोड़ दो । चौबीस घंटे में कुछ हर्जा नहीं हो जाएगा, कुछ खास नुकसान नहीं हो जाएगा । ऐसे भी इतने दिन वासना कर-कर के क्या मिल गया है ? चौबीस घंटे मेरी मानो । चौबीस घंटे के लिए सारी वासना छोड़ दो । कुछ पाने की आशा मत रखो । कुछ होने की आशा मत रखो । एक क्रांति घट जाएगी चौबीस घंटे में । तुम अचानक पाओगे, जो है, परम तृप्तिदायी है । जो भी है । रूखी-सूखी रोटी भी बहुत सुस्वादु है । क्योंकि अब कोई कल्पना न रही । अब किसी कल्पना में उसकी तुलना न रही । जैसा भी है, परम तृप्तिदायी है ।

यह अस्तित्व आनंद ही आनंद से भरपूर है । पर हम इसके आनंद भोगने के एल क भी मौका ही नहीं पाते । हम दौड़े-दौड़े हैं, भागे-भागे हैं । हम ठहरते ही नहीं ।

हम कभी दो घड़ी विश्राम नहीं करते । इस विश्राम का नाम ही ध्यान है । वासना से विश्राम ध्यान है । तृष्णा से विश्राम ध्यान है । अगर तुम एक घंटा रोज सारी तृष्णा छोड़कर बैठ जाओ, कुछ न करो, बस बैठे रहो—मस्ती आ जाएगी ! आनंद छा जाएगा । रस बहने लगेगा ! धीरे-धीरे तुम्हें यह बात दिखायी पड़ने लगेगी, जब घंटे भर में रस बहने लगता है, तो फिर इसी ढंग से चौबीस घंटे क्यों न जिएं ?

लेकिन तुम एक बड़ी गलती कर रहे हो, जो सभी करते हैं । तुम कहते हो, 'अब मैं धर्म साधने आया हूं, सो भी उसी आशा से ।' बस चूक जाओगे । क्योंकि वही आशा अधर्म है । सुख पाने की वासना ही अधर्म है । इसलिए कोई धर्म के द्वारा सुख पाने की वासना करे, तो चूक गया । बात ही गलत हो गयी । हां, धर्म से सुख मिलता है, लेकिन धर्म से सुख मिलना चाहिए, ऐसी कमाना से नहीं मिलता ।

यह जरा उलझन की बात तुम्हें लगेगी । इसे तुम लक्ष्य नहीं बना सकते । यह परिणाम है । ऐसा होता है । जब सब वासना छूट जाती है, कोई आशा नहीं रह जाती तब सुख बरसता है । लेकिन तुम इस आशा में अगर बैठो कि चलो ठीक है, ध्यान करने से सुख बरसेगा, इसलिए ध्यान करें, बस चूक गये । क्योंकि वह सुख की वासना शेष है । सुख की वासना दुख पैदा करवाती है । तुम आधा घड़ी बैठोगे और करवटें बदलने लगोगे और घड़ी देखने लगोगे, कहोगे अभी तक सुख नहीं बरसा और समय जा रहा है ! इतनी देर दुकान पर ही बैठ लिये होते; कुछ और चार पैसे कमा लिये होते; यह फिजूल समय गया; यह कहां की नासमझी में पड़ गये, अभी तक तो कुछ सुख नहीं बरसा ! बार-बार आंख खोलकर देख लोगे कि अभी आता है परमात्मा कि नहीं ? दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी या नहीं ? अभी तक तो नहीं आया ! और यह घड़ी जा रही है, और यह घंटा बीता, और यह व्यर्थ गया, इतनी देर में कुछ और कमा लेते, बैंक बैलेन्स थोड़ा और बढ़ जाता; या फिल्म ही देख आते; या अखबार ही पढ़ लेते; कुछ काम तो पड़ता, यह खाली बुद्धू की तरह बैठे हैं ? यह किसलिए बैठे हैं ? इसमें क्या मिल रहा है ?

अगर तुम सुख की आशा से बैठे तो ध्यान में बैठ ही न पाओगे । ध्यान में तो बठने का अर्थ होता है, जिसने एक सत्य पहचान लिया कि सुख की कामना से सुख नहीं मिलता । जिसने सुख की कामना की व्यर्थता देख ली । अब जिसकी दौड़धूप अपने-आप शिथिल हो गयी । इसलिए कभी-कभी चुप बैठ जाता है—करने को कुछ नहीं है—बैठा है—जाने को कहीं नहीं है कुछ, खोजने को नहीं है कुछ, सन्नाटे में डूबा है—परिधि खो जाती है, केन्द्र का उदय हो जाता है, तुम तत्क्षण अपने भीतर मौजूद हो जाते हो । वही मौजूदगी, वही साक्षात्कार—और सुख बरस जाता है ।

तो मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं, ध्यान से सुख मिलता है । मगर, जो लोग ध्यान से सुख चाहते हैं, उनको नहीं मिलता । ध्यान से सुख उनको मिलता है जो

सुख पाने की सारी आकांक्षा को व्यर्थ समझ कर, कूड़ा-करकट समझ कर फेंक देते हैं। जो कहते हैं, अब सुख इत्यादि चाहिए ही नहीं। अब तो जैसे हैं ऐसे ही जिएंगे। अब कुछ मांगेंगे नहीं। रह चुके भिखमंगे बहुत। अब नहीं भीख। अब जो परमात्मा देगा, जैसा देगा, उसको वैसे ही आनंदभाव से स्वीकार करें। उसका प्रसाद जो भी बरसेगा, जैसा भी आएगा, नाचेंगे, मग्न होंगे। इस अहोभाव में तुम अपने घर लौट आते हो। और तब तुम चकित होकर देखोगे, तुम सुखी हो, सारा अस्तित्व सुखी है। कि तुम जैसे हो, वैसा ही सारा अस्तित्व हो जाता है।

नये गगन में नया सूर्य जो चमक रहा है
यह विशाल भूखण्ड आज जो दमक रहा है
मेरी भी आभा है इसमें

भीनी-भीनी खुशबूवाले
रंग-बिरंगे

यह जो इतने फूल खिले हैं
कल इनको मेरे प्राणों ने नहलाया था
कल इनको मेरे सपनों ने सहलाया था

पकी-सुनहली फसलों से जो
अबकी यह खलिहान भर गया
मेरी रग-रग के शोणित की बूंदें इसमें मुसकाती हैं

नये गगन में नया सूर्य जो चमक रहा है
यह विशाल भूखण्ड आज जो दमक रहा है
मेरी भी आभा है इसमें

तब तुम अचानक पाओगे, तुम्हारी आभा और विराट की आभा मिलन करने लगी, आलिंगन करने लगी। तुम वृक्षों में फूल खिले देखोगे और लगेगा तुम ही खिल गये। कोयल कूक उठेगी और लगेगा तुम कूक उठे। झरना बहेगा और लगेगा तुम बहे। चांद ऊगगा और लगेगा कि भीतर भी चांद ऊगा। सारा अस्तित्व एक अपूर्व आनंद से भर जाता है—बस, तुम ठहरो! ठहरने का नाम ध्यान। ठहरें पांव तो आ जाए गांव। रुकें पांव तो आ गया गांव। आशा, तृष्णा दौड़ाए रखती है, रुकते नहीं पांव, आता नहीं गांव।

तुम कहते हो, 'अब मैं धर्म करने आया हूं, सो भी उसी आशा में।' फिर तुम

चूक जाओगे। 'आप कहते हैं, अहंकार को मिटाओ। और इससे मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अहंकार को मिटाने से मैं ही मिट जाऊंगा।' ऐसा प्रतीत होता है, ऐसा सत्य नहीं है। अहंकार तुम हो नहीं, इसलिए अहंकार के मिट जाने से तुम कैसे मिट जाओगे? अहंकार तुम्हारी भ्रांति है।

ऐसा ही समझो कि एक आदमी रामलीला में राम का पार्ट अदा करता है और समझ लेता है कि मैं राम हूं, और घर आता है, लिए धनुष-बाण, मोर-मुकुट बांधे; उसकी पत्नी कहती है——उतारो, रखो यह धनुष-बाण, यह मोर-मुकुट, हो गया नाटक बहुत अब, रामलीला खतम हो गयी! वह कहता है, अगर मैं यह उतार दूंगा तो मैं ही मिट जाऊंगा। मैं राम हूं।

तुम इसको पागल कहोगे। यह अभिनय को असलियत समझ लिया है।

तुम्हारा अहंकार क्या है? इस जीवन के बड़े रंगमंच पर खेला गया अभिनय। तुम जब पैदा हुए थे, तो तुम नाम लेकर नहीं आए थे। फिर तुम्हें एक नाम दे दिया; कहा कि तुम्हारा नाम राम; बस तुम राम बन गय! आए थे बिना नाम कोरे कागज की भांति, लिख दिया औरों ने नाम कि यह रहा तुम्हारा नाम, राम हो गये तुम। तब से तुम अपने को राम ही मान रहे हो। अब कोई अगर राम को गाली दे दे, तुम झगड़ने को खड़े हो जाते हो। तुम्हें यह ख्याल ही भूल गया है कि तुम बिना नाम के हो, तुम्हारा कोई नाम नहीं था। यह तो तुम्हारे मां-बाप को सूझ गया: राम। अगर मुसलमान घर में पैदा हुए होते तो: अब्दुल्ला। ईसाई घर में होते तो: अॅलबर्ट। और अगर मेरे संन्यासी होते तो: अॅलबर्ट कृष्ण अली! यह तो संयोग की बात है। यह तो नाम कोई भी दिया जा सकता है। नाम तुम नहीं हो। नाम से अपने को समझ लिया कि यह मैं हूं?

और देह भी तुम नहीं हो। जरा गौर करो; मां के पेट में पहले दिन जब तुम थे तो नंगी आंखों से तो देखे भी नहीं जा सकते थे——वह तुम्हारी देह थी। बड़ी खुर्दबीन होती तो देखे जा सकते थे। वह तुम्हारी देह थी। आज अगर तुम्हारे सामने उस देह का कोई चित्र रख दे, क्या तुम पहचान सकोगे कि यह मेरी देह है? कोई नहीं पहचान सकेगा। फिर पहले दिन जब तुम पैदा हुए थे, अगर आज उस दिन की तस्वीर तुम्हारे सामने रख दी जाए, क्या तुम पहचान सकोगे यह मेरी तस्वीर है? यह मेरी देह थी? कितने तुम बदल गये हो; गंगा का कितना पानी बह गया! रोज तुम बदल रहे हो? आज तुम्हारी जो देह है, कल नहीं रह जाएगी। लेकिन आज इस देह को पकड़े हो, कह रहे हो, यह मैं हूं। कितनी बार देह बदल गयी? वैज्ञानिक कहते हैं सात साल में पूरी देह बदल जाती है। एक दफ़ा आदमी सत्तर साल जिए तो दस बार उसकी देह पूरी-की-पूरी बदल जाती है। मगर शृंखला जारी रहती है। शृंखला की वजह से भ्रांति हो जाती है।

बुद्ध ने कहा है, सांझ को हम दिया जलाते हैं, क्या तुम सोचते हो सुबह तुम उसी दीये को बुझाते हो ? सोचते हम यही हैं कि जो सांझ जलाया था, उसी को बुझाते हैं। लेकिन बुद्ध ने बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कही । उन्होंने कहा कि वह दीया तो रात भर बुझता रहा, नयी ज्योति जलती रही, पुरानी बुझती रही । जब तो इतना धुआं पैदा हुआ। धुआं कहां से पैदा हो रहा है ? जो ज्योति तुमने जलायी थी, वह तो बुझती जाती है । वही धुआं होती जाती है । नयी ज्योति उमगती आती है । पुरानी ज्योति की जगह नयी ज्योति ले लेती है, लेकिन झपट्टे से लेती है जगह कि तुम देख नहीं पाते । फासला नहीं दिखायी पड़ता । सुबह तुम जिस ज्योति को बुझा रहे हो यह वही ज्योति नहीं है, जो तुमने जलायी थी । हां, उसीकी संतति है । उसीकी शृंखला है। मगर वही नहीं है। तुम्हारे मां के पेट में जो तुम्हारी देह थी, तुम उसी शृंखला में हो, उसी 'क्यू' में हो मगर वही नहीं हो ।

फिर इस देह से तुमने अपना संबंध बांध लिया है कि यह मैं हूं । जरा गोरी चमड़ी हुई, तो जरा अकड़ गये। फर्क क्या है गोरी चमड़ी में और काली चमड़ी में? फर्क बहुत थोड़ा है । चार आने का रंग का फर्क है । दस-पंद्रह साल के भीतर इंजेक्शन उपलब्ध हो जाएंगे, कि लगवा लिया इंजेक्शन, काले हो गये, लगवा लिया इंजेक्शन, गोरे हो गये--क्योंकि चवन्नी का फर्क है । और ध्यान रखना, काले आदमी का तुमसे ज्यादा मूल्य है, उसके पास चार आने का ज्यादा रंग है । तुम्हारे पास चार आने का कम रंग है । तुम जरा गरीब हो । कि जरा नाक थोड़ी लम्बी, कि अकड़ गये । न तुम नाक हो, न तुम रंग हो, न तुम आंख, तुम तो भीतर बैठे हुए साक्षी हो।

जैसे-जसे तुम तोड़ते जाओगे संबंध : नाम भी नहीं, देह भी नहीं, विचार भी नहीं--क्योंकि विचार भी सब उधार हैं; दूसरों ने डाल दिये हैं। तुम विचार भी नहीं हो, तुम मन भी नहीं हो । यही है नेति-नेति की प्रक्रिया। यह भी नहीं, यह भी नहीं। फिर अंत में कौन शेष रह जाता है, जिसको इन्कार नहीं किया जा सकता ? सिर्फ़ साक्षी शेष रह जाता है । साक्षी को इंकार नहीं किया जा सकता । और सब इंकार किया जा सकता है । साक्षी में कोई अहंकार नहीं है, सिर्फ भाव है, एक चैतन्य की दशा है, एक चिन्मय स्थिति है । मगर कोई अहंकार नहीं है, 'मैं' का कोई रूप ही नहीं बनता वहां ।

ध्यान की गहराइयों में जो जाते हैं, वे पा लेते हैं जल्दी ही कि मैं तो बच जाता हूं तब भी जब सब 'मैं' मिट जाता है । 'मैं' तो सिर्फ नाटक है, 'मैं' तो अभिनय-मंच पर खेली गयी बस लीला है ।

जिस दिन तुम ऐसा समझ पाओगे, उस दिन यह भ्रांति तुम्हारी जारी नहीं रहेगी कि अगर 'मैं' मिट गया तो सुख किसको होगा ? सुख साक्षी का स्वभाव

है । होता नहीं, होने की जरूरत ही नहीं है, सुख तुम्हारा स्वभाव है । इस 'मैं' की चट्टान के कारण तुम सुख को नहीं उपलब्ध कर पाते हो, झरना नहीं बह पाता है ।

सुना है हश्र में इक हुस्ने-आलमगीर देखेंगे
खुदा जाने तुझे या अपनी ही तस्वीर देखेंगे

अपनी ही तस्वीर दिखायी पड़ेगी जब परमात्मा मिलता है । वह तुम्हारी ही आत्मा की तस्वीर है और कुछ भी नहीं । तुम ही अपने शुद्धतम रूप में परमात्मा हो। तुम्हारी ही आत्मा जब सारे अहंकारों से, सारी पर्तों से मुक्त हो जाती है और सिर्फ साक्षी मात्र, चिन मात्र शेष रह जाता है, वही परमात्म दशा है । परमात्मा का कोई साक्षात्कार थोड़े ही होता ! कि खड़े हैं और जय रामजी की, और बातचीत की और निवेदन किया और प्रार्थनाएं कीं ! परमात्मा वहां बाहर थोड़े ही मिलता है, तुम्हारे भीतर छिपा है । तुम्हारे चैतन्य में, तुम्हारी चेतना में छिपा है। तुम्हारी चेतना का ही दूसरा नाम है । अहंकार की सीमाओं के कारण चेतना प्रकट नहीं हो पा रही है। इसे प्रकट होने दो ।

अहंकार मिटता है, यह तुम्हारा अंत नहीं है, तुम्हारी वास्तविक शुरुआत है, प्रारंभ है ।

लेकिन भूलें होती हैं आदमी से । स्वरूपानंद की भूल सभी की भूल है। इसलिए मैंने सोचा, यह प्रश्न सब के लिए उपयोगी होगा ।

एक कहानी मैंने सुनी है--

एक बादशाह, बड़ा सम्राट शिकार करते हुए भटक गया । साथियों से छूट गया। शिकार तो कुछ हाथ न लगा, मित्र भी कहां गये जंगल में, पता न चला । थका-मांदा, भूखा-प्यासा एक किसान के झोंपड़े पर पहुंचा। किसान ने बड़ा स्वागत किया । नहीं उसे पता है कि सम्राट है यह । अपनी चारपाई पर बिठाया, सूखी-रूखी रोटी खिलायी, ठंडा पानी पिलाया, बगीचे से फल तोड़ लाया। सम्राट चकित हुआ ! सुस्वादु भोजनों का आदी था, मगर ऐसा स्वाद कभी न मिला था । सच तो यह थी, सम्राट होने के कारण भूख ही कभी ठीक से न लगी थी । भूख लगने का मौका ही नहीं आता । भूख के पहले ही भोजन मिल जाता है । आज भूख लगी थी ! श्रम किया था, जंगल में भटका था । रोज तो अपेक्षा थी--ऐसा मिले, वैसा मिले--आज कोई अपेक्षा ही नहीं थी । आज तो हालत यह थी कि कुछ मिलेगा भी, इसकी भी सम्भावना नहीं थी । बिना अपेक्षा का मिला । और किसान ने ऐसे प्यार से ...यद्यपि वह चारपाई गंदी थी-- गरीब की चारपाई थी । मगर उस पर बैठा, ऐसा सुख पाया जैसा सिंहासन पर स्वर्ण के भी कभी न मिला था। दो आम तोड़ लाया था किसान, कुएं से ठंडा पानी भर लाया था।

सम्राट बड़ा तृप्त हुआ ।

बात की किसान से; कहा कि तेरा सम्राट कौन है ? क्योंकि दिखायी पड़ गया सम्राट को कि वह उसे पहचान नहीं रहा है कि वह सम्राट है। तो उस किसान ने कहा कि नाम तो मुझे पता नहीं, मगर सुना है मैंने कि बड़े दयालु हैं, बड़े सुन्दर हैं, बड़े बलशाली हैं । सम्राट ने कहा, तू देखना चाहेगा सम्राट को ? किसान ने कहा, मेरे धन्यभाग अगर दर्शन हो जाएं कभी ! मगर नहीं, कैसे हो सकेंगे ? सम्राट ने कहा, तू आ, मेरे साथ घोड़े पर बैठ जा, मुझे राह भी बता देना राजधानी की––रास्ते के भी जानने की तो जरूरत थी ही, उसे किसी को साथ ले जाना था––तू राह भी बता देना मुझे और मैं तेरा सम्राट से दर्शन भी करवा दूंगा, महल में तुझे ठहरवा भी दूंगा । सम्राट ने सोचा कि इसे भी चकित करूं ।

किसान बैठ गया घोड़े पर सम्राट के साथ, चल पड़े दोनों । रास्ते में किसान ने पूछा : एक बात पूछूं ? राजधानी तो मैं कभी गया नहीं, बड़ी राजधानी, वहां वजीर भी होंगे, सेनापति भी होंगे दरबार में, बड़े-बड़े लोग होंगे, मैं पहचानूंगा कैसे कि सम्राट कौन है ? सम्राट मैंने कभी देखा भी नहीं । मैं पहचानूंगा कैसे कि सम्राट कौन है ? सम्राट ने कहा, फिकर मत कर ! जैसे ही हम राजधानी में प्रवेश करेंगे, जिस व्यक्ति को सभी लोग अपनी-अपनी टोपियां और पगड़ियां उतार कर नमस्कार करें और जो अपनी पगड़ी न उतारे, टोपी न उतारे, समझ लेना वही सम्राट है । सम्राट जानता था कि जैसे ही हम प्रवेश करगे लोग नमस्कार करना शुरू करेंगे सम्राट को, अपनी-अपनी पगड़ियां उतार कर, सिर झुका कर; किसान पहचान जाएगा और चकित होगा जानकर कि मैं सम्राट के साथ घोड़े पर बैठा हूं ! आनंदमग्न हो जाएगा । जैसा आनंद इसने मुझे दिया है, उससे हजार गुना आनंद मैं इसे दे दूंगा ।

राजधानी आ गयी, शहर में प्रवेश भी हो गया और लोग पगड़ियां और टोपियां उतार-उतारकर नमस्कार भी करने लगे; लेकिन किसान कुछ बोला नहीं । चुप्पी साधे रहा । सम्राट ने पूछा कि बात क्या है ? समझ में आया कि नहीं ? उसने कहा, मैं मुश्किल में पड़ गया हूं, आप भी पगड़ी नहीं उतारते, मैं भी पगड़ी नहीं उतारता, पता नहीं सम्राट कौन है ? आप हैं कि मैं हूं ? यह तो बड़ी झंझट हो गयी।

अहंकार ऐसी ही भ्रांति है । अहंकार को भ्रांति है आत्मा होने की । अहंकार आत्मा नहीं है । मगर एक ही घोड़े पर दोनों सवार हैं । बहुत करीब-करीब एक ही घोड़े पर सवार हैं । जसे आदमी घोड़े पर सवार हो, तो उसकी छाया भी तो घोड़े पर सवार होती है । बस, ऐसे ही आत्मा के साथ अहंकार की छाया घोड़े पर सवार है । न आत्मा अपनी टोपी उतारती, तो छाया की कैसे उतरेगी ? छाया की भी टोपी लगी हुई है । छाया भी अकड़ी हुई है । छाया पूरा मजा ले रही है । तुम छाया को समझ लिये हो कि यही मैं हूं । छाया के मिटने से तुम न मिटोगे । और छाया तो

खोनी ही पड़ेगी अगर प्रकाश में जाना है, अगर परम प्रकाश में जाना है तो छाया तो मिट ही जाएगी । छाया नहीं बच सकती ।

तुमने यह लोकोक्ति सुनी है कि देवताओं की छाया नहीं बनती ? यह प्रतीक है, कि जो परमात्मा के निकट हैं उनकी छाया नहीं बन सकती, उनका अहंकार नहीं बन सकता । इसलिए स्वर्ग में देवताओं की छाया नहीं बनती । वे चलते तो हैं, मगर उनकी छाया नहीं बनती । छाया तो अज्ञान में बनती है, अंधकार में बनती है, मूर्छा में बनती है । अहंकार मूर्छा की छाया है ।

मैंने सुना है, एक लोमड़ी सुबह-सुबह उठी और जब बाहर आयी अपनी मांद के, सूरज ऊग रहा था और उसने देखा लौटकर तो उसकी बड़ी छाया बन रही थी ! सुबह का सूरज, लोमड़ी की बड़ी लम्बी छाया बन रही थी ! लोमड़ी ने कहा आज तो लगता है हाथी मिले नाश्ते के लिए तो काम चले ! छाया इतनी लम्बी थी ! छाया ही से तो जानती है लोमड़ी––और कैसे जाने ? उसके पास कोई दर्पण भी तो नहीं है और फिर दर्पण भी क्या है ? उसमें भी तो छाया ही है । लोमड़ी पर हंसना मत, वही तुम्हारी हालत है, वही सबकी हालत है ।

लोमड़ी से कुछ भिन्न हालत नहीं है । लोमड़ी भी क्या करे, छाया देखकर उसे लगा कि इतना बड़ा पेट, इतना बड़ा मेरा रूप, हाथी मिले नाश्ते में तो काम चले ।

दोपहर तक हाथी खोजती रही । अब लोमड़ी को हाथी मिल भी जाए तो करेगी क्या ? और हाथ से जान जाएगी ! नहीं मिला तो अच्छा ही हुआ । ऐसे ही तुम सुख खोज रहे हो––वह हाथी की तलाश है । नहीं मिला सो अच्छा ही हुआ । मिल जाए तो उसी के नीचे दबकर मरोगे ।

दोपहर तक हाथी मिला नहीं; मिल सकता भी नहीं था, मिलने से कोई अर्थ भी न था । लोमड़ी करती भी क्या ? भूख बहुत जोर से लग रही थी । उसने फिर दुबारा छाया की तरफ देखा, क्योंकि वही उसके पास एक मात्र मापदंड है कि मैं, हालत क्या है मेरी ? पेट सिकुड़ गया होगा, सोचा । पेट ही नहीं सिकुड़ा था, छाया ही बिलकुल सिकुड़ गयी थी––सूरज सिरपर आ गया था । छाया इतनी छोटी हो गयी थी कि लोमड़ी हंसी, उसने कहा––अब तो चींटी भी मिल जाए तो भी पर्याप्त होगा ।

तुम छाया से ही जो रहे हो ।

और लोमड़ियों पर हंसना मत, लोमड़ियां भी बड़ी होशियार होती हैं । आदमी जैसी ही होशियार । तुमने ईसप की कहानी पढ़ी है न, कि एक लोमड़ी अंगूर के गुच्छों की तरफ छलांग लगा रही है । गुच्छे दूर हैं, और छलांग उसकी छोटी पड़ जाती है । कई बार गिरी । चारों तरफ देखा कोई देख नहीं रहा है, झटकार कर फिर छलांग लगायी । मगर एक खरगोश छुपा एक झाड़ी में देख रहा था, वह हंसने लगा ।

उसकी हंसी की आवाज सुनकर लोमड़ी अपना झाड़कर शरीर चलने लगी, अकड़ कर। खरगोश ने कहा, चाची, क्या माजरा है ? लोमड़ी ने कहा, माज़रा कुछ भी नहीं है ? अंगूर खट्टे हैं।

यह ईसप की प्रसिद्ध कथा है।

फिर मैंने और एक कहानी सुनी है। अब तो जमाना बदल गया है। सार्वभौम शिक्षा का जमाना, तो लोमड़ियों की भी प्रौढ़ पाठशालाएं हैं। तो एक लोमड़ी प्रौढ़ पाठशाला में पढ़ने गयी। उसने वहां ईसप की कहानी सुनी, वह बहुत गुस्से से भर गयी। यह तो लोमड़ियों का अपमान हो गया। यह ईसप का बच्चा कहीं मिल जाए, तो इसे पाठ पढ़ा दूं ! मिल गये ईसप टहलते एक दिन जंगल में—गये होंगे और लोमड़ियों को देखने कि कोई छलांग लगाए ! लोमड़ी ने झपट्टा मार कर ईसप के कंधे से मांस का एक लोथड़ा खींच लिया। ईसप तो चीख-पुकार करने लगे। उसने चखा और पटक कर कहा, खट्टा है !! अब लिखना कहानी !

लोमड़ियां भी कुछ कम होशियार नहीं। लोमड़ी पर मत हंसना। और ईसप ने लोमड़ी की कहानी लिखी भी नहीं है, आदमी की कहानी है।

आदमी चालाक बहुत है। मगर चालाकी में ही उसी शाखा पर बैठ कर उसी शाखा को काटता रहता है। और एक दिन गिरता है बुरी तरह। धूल-धूसरित। मृत्यु ही हाथ लगती है, इस सारी सुख की खोज में, और कुछ हाथ नहीं लगता।

छोड़ो भी इस खोज को ! स्वरूपानंद, जैसा तुम्हारा नाम है, कुछ उस नाम पर विचार करो। स्वरूप में ही आनंद है। आनंद स्वरूप है। स्वयं में उतरो। स्वयं में पूरी तरह प्रतिष्ठित हो जाओ। वहीं से आनंद का आविर्भाव होता है।

सुख की आशा से सुख नहीं मिलता, स्वयं में प्रतिष्ठा से सुख मिलता है।

दूसरा प्रश्न : संतों में किसीने उस परम अनुभूति को प्रकाश कहा है, किसी ने रंगों की होली, और किसीने अमृत का स्वाद। यह भेद क्यों है ?

भेद उस परम अवस्था का नहीं है, लेकिन भेद उस परम अवस्था को पहुंचनेवाले व्यक्ति की अनुभूति-प्रवणता का है। सब की अलग-अलग अनुभूति-प्रवणता होती है। अब जैसे अंधे आदमी को भी परमात्मा का अनुभव हो सकता है—कोई अंधेपन से परमात्मा के अनुभव में बाधा नहीं। न तो तुम्हारी आंखों से परमात्मा का अनुभव हो रहा है, न तुम्हारी आंखों के न होने से परमात्मा का अनुभव रुकेगा। आंख से कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन अगर अंधे आदमी को परमात्मा का अनुभव हो—समझो कि सूरदास को परमात्मा का अनुभव हुआ—तो वह अनुभव प्रकाश का तो नहीं होगा। क्योंकि अंधे के पास प्रकाश शब्द है ही नहीं। उसकी प्रतीति में कहीं नहीं है। उसके भाषाकोश में कहीं नहीं है।

लेकिन अंधे आदमी के कान बड़े प्रवण होते हैं। आंखों से जितनी शक्ति बहती है, वह शक्ति भी कानों को मिल जाती है। आंखों से अस्सी प्रतिशत शक्ति बहती है हमारे शरीर की। इसलिए आंखें हमारे शरीर के सर्वाधिक जीवंत अंग हैं। और इसलिए अंधे पर बहुत दया आती है। इतनी बहरे पर दया नहीं आती; लंगड़े पर दया नहीं आती, लूले पर दया नहीं आती, गूंगे पर भी दया नहीं आती, मगर अंधे पर बड़ी दया आती है। उसका कारण यह है कि उसका अस्सी प्रतिशत जीवन अवरुद्ध है। उसने प्रकाश नहीं देखा, रंग नहीं देखा। यह जो जगजीवन ने होली की बात कही, यह कोई अंधा आदमी नहीं कह सकता। उसे रंगों का पता ही नहीं है। लेकिन अंधा कहेगा—अनाहत नाद की बात। उसे संगीत सुनायी पड़ेगा, क्योंकि उसके कान दोनों काम करते हैं। उसके कान सुनते भी हैं और देखते भी हैं। उसके पास कान ही हैं उसकी आंख भी और उसके कान भी। इसलिए अंधे अक्सर संगीत में प्रवीण हो जाते हैं। गहरे उतर जाते हैं। उनका ध्वनि-बोध गहरा होता है।

अंधा आदमी तुम्हें तो नहीं देख सकता, लेकिन तुम्हारी आवाज सुनकर पहचान लेता है कि तुम कौन हो। आंख वाला नहीं पहचान सकता। आंख वाले को जरूरत ही नहीं पड़ी कभी इस तरह से पहचानने की। अंधा आदमी तो तुम्हारे पैर की आवाज सुनकर भी पहचानता है कि कौन आ रहा है। आंख वाले को कभी होश ही नहीं होता इस बात का कि कौन आ रहा है—पैर की आवाज कौन सुनता है ! पति नहीं पहचान सकता आंख बंद करके बैठकर कि यह पत्नी के पैर की आवाज है। वर्षों से साथ रह रहे हैं ! लेकिन अंधा आदमी पैर की आवाज भी सुनता है। क्योंकि वे ही उसके जानने के स्रोत हैं, पहचानने के स्रोत हैं। तुम्हारी आवाज भी सुनता है। सुनने के माध्यम से ही परिचय बनाता है।

तो जब अंधे को परमात्मा का अनुभव होगा, तो अनुभव होगा स्वर का, संगीत का, नाद का। उसके भीतर अनाहत की प्रतीति होगी।

हमारे व्यक्तित्व अलग-अलग हैं। सबके अलग-अलग हैं। कुछ लोग हैं, जिनके जीवन में स्वाद की बड़ी गहराई है। तुमने देखा कभी, शराब की परख करने वाले लोग देखे ? सिर्फ शराब का एक घूंट मुंह में लेकर वे बता सकते हैं कि शराब किस देश की बनी हुई है। तुम न बता सकोगे। न केवल यह कि किस देश की बनी है, बल्कि किस कंपनी की बनी है। न केवल इतना कि किस कंपनी की बनी है बल्कि यह भी बता सकते हैं कि कितनी पुरानी है। सौ साल पुरानी, कि दो सौ साल पुरानी, तीन सौ साल पुरानी ? ऐसे आदमी को अगर परमात्मा का अनुभव होगा, तो स्वाद का अनुभव होगा उसे, परमात्मा स्वाद की तरह आएगा। क्योंकि उसकी जीवनऊर्जा स्वाद में ही प्रतिष्ठित है। वह जानेगा अमृत-रस। जैसे किसी ने उसके गले में, कंठ में अमृत उतार दिया।

इसलिए भेद पड़ जाता है। भेद अनुभव में नहीं है, अनुभव करने वाले व्यक्तित्व में भेद है।

मैं कबसे ढूंढ़ रहा हूं
अपने प्रकाश की रेखा
तम के तट पर अंकित है
निःसीम नियति का लेखा
देने वाले को अब तक
मैं देख नहीं पाया हूं।
पर पल-भर सुख भी देखा
फिर पल-भर दुख भी देखा

किसका आलोक गगन से
रवि-शशि-उडुगन बिखराते ?
किस अंधकार को लेकर
काले बादल घिर आते ?
उस चित्रकार को अब तक
मैं देख नहीं पाया हूं।
पर देखा है चित्रों को
बन-बनकर मिट-मिट जाते !

फिर उठना, फिर गिर पड़ना,
आशा है, वहीं निराशा !
क्या आदि-अंत संसृति का
अभिलाषा ही अभिलाषा ?
अज्ञात देश से आना
अज्ञात देश को जाना
अज्ञात ! अरे क्या इतनी
है हम सबकी परिभाषा ?

पल-भर परिचित वन-उपवन
परिचित है जग का प्रति कन
फिर पल में वही अपरिचित
हम-तुम, सुख-सुषमा, जीवन !
है क्या रहस्य बनने में ?

है कौन सत्य मिटने में ?
मेरे प्रकाश, दिखला दो
मेरा खोया अपनापन !
मेरे प्रकाश दिखला दो...

अब यह जो व्यक्ति ऐसी प्रार्थना कर रहा है : 'मेरे प्रकाश दिखला दो,' इसकी आंखें संवेदनशील हैं। इसे परमात्मा नाद की तरह नहीं आएगा। इसे प्रकाश की तरह आएगा। ज्योतिर्मय! हजार-हजार सूरज ऊग आए हैं एकसाथ, ऐसा आएगा। आलोक-ही-आलोक फैल जाएगा। भीतर-बाहर आलोक-ही-आलोक का सागर लहराएगा, ऐसा आएगा। 'मेरे प्रकाश दिखला दो, मेरा खोया अपनापन'!

या--

मुझको रंगों से मोह, नहीं फूलों से।
जब उषा सुनहली जीवन श्री बिखराती
जब रात रुपहली गीत प्रणय के गाती
जब नील गगन में आन्दोलित तन्मयता
जब हरित प्रकृति में नव सुषमा मुसकाती
तब जग पड़ते हैं इन नयनों में सपने;
मुझको रंगों से मोह, नहीं फूलों से।
जब भरे-भरे से बादल हैं घिर आते,
गति की हलचल से जब सागर लहराते
विद्युत के उर में रह-रह तड़पन होती
उच्छ्वास-भरे तूफान कि जब टकराते,
तब बढ़ जाती है मेरे उर की धड़कन,
मुझको धारा से प्रीति, नहीं कूलों से।
जब मुग्ध भावना मलय-भार से कंपित
जब विसुध चेतना सौरभ से अनुरंजित,
जब अलस लास्य से हंस पड़ता है मधुवन
तब हो उठता है मेरा मन-आशंकित
चुभ जाएं न मेरे वज्र सदृश चरणों में
मैं कलियों से भयभीत, नहीं फूलों से।
जब मैं सुनता हूं कठिन सत्य की बातें,
जब रो पड़ती हैं अपवादों की रातें
निर्बन्ध मुक्त मानव के आगे सहसा
जब अड़ जाती हैं मर्यादा की पांतें,

जो सीमा से संकुचित और लांछित हैं,
मैं उसी ज्ञान से त्रस्त, नहीं भूलों से ।
मुझको रंगों से मोह, नहीं फूलों से ।

कुछ लोग है जिन्हें फूलों से मोह हैं; उन्हें परमात्मा गंध की तरह आएगा। मोहम्मद को जरूर परमात्मा गंध की तरह आया होगा । इसलिए इस्लाम में गंध की महिमा हो गयी । इत्र बहुमूल्य हो गया । यह मोहम्मद के कारण । यह मोहम्मद को परमात्मा जरूर गंध के रूप में आया होगा । मोहम्मद के नासापुट प्रगाढ़ संवेदनशील रहे होंगे । 'मुझको रंगों से मोह, नहीं फूलों से,' कुछ हैं, जिन्हें फूलों से मोह है। जिन्हें फूलों से मोह है, उन्हें परमात्मा सहस्त्रदल कमल की भांति खिलेगा ।

और कुछ हैं, जिन्हें रंगों से मोह है । जगजीवन को रंगों से मोह रहा होगा । इसलिए परमात्मा के आगमन पर, 'कैसे होली खेलूं,' इसका भाव उठा । कैसे रंग बिखेरूं, कैसे पिचकारी चलाऊं, कैसे गुलाल उड़ाऊं ?

प्रत्येक व्यक्ति की अलग संवेदनशीलता है । इसलिए दुनिया के संतों के वक्तव्यों म भेद पड़ गये । धर्म तो एक है, सत्य एक है, लेकिन उसकी अनुभूतियां बड़ी भिन्न-भिन्न हो जाती हैं । जैसे आकाश में चांद उगता है, तो सागर में भी उसका प्रतिबिम्ब बनता है, नदी-नालों में भी प्रतिबिम्ब बनता है , कुओं में भी प्रतिबिम्ब बनता है, तालाबों में भी प्रतिबिम्ब बनता है, लेकिन सब जगह उसके प्रतिबिम्ब में थोड़ा-थोड़ा भेद हो जाएगा । जिस माध्यम में प्रतिबिम्ब बनेगा, उस माध्यम का थोड़ा कुछ प्रतिबिंब में समाविष्ट हो जाएगा । सागर में बना प्रतिबिम्ब थोड़ा खारा हो जाएगा । मीठा नहीं हो सकता ।

अनंत-अनंत लोगों ने परमात्मा जाना है, लेकिन लोग तो छोटे-छोटे पोखर हैं, छोटे-छोटे दर्पण हैं, उसमें परमात्मा की छाया बनती है । हमारा दर्पण जो कर सकता है प्रगट, उतना ही करेगा ।

प्रतीक्षा थी, आस थी, विश्वास था
और, प्रियतम, जले हिय पर लदा
वेदनाओं का विकट इतिहास था !
कंठगत थे प्राण तेरे ध्यान में
निठुर जग तो ले रहा था रस यहां
'पी कहां' की मर्मवेधक तान में

सुहाई मुझको न काली घन-घटा
सुहाई मुझको न पावस की छटा
जलधि सातों ही मुझे खारे लगे

लगीं फीकी उमड़ती नदियां सभी
चित्त पर मेरे न चढ़ पाया कभी
वह सरोवर भी धवल कैलास का
टुकड़ियों में बंटे, औ बिखरे हुए
धन्य ! स्वाती के जलद, तुम धन्य हो

विकल थी चिर प्यास से यह चातकी
आ गये तुम, कमी अब किस बात की
किया दर्शन, नयन शीतल हो गये
उपालंभक भाव थे, सब सो गये
आ गई है जान में अब जान रे
कर लिया मैंने अमृत का पान रे
(चार बूंदें ही मुझे पर्याप्त थीं)

फिर किसी को परमात्मा स्वाद की तरह आता है; 'कंठगत थे प्राण तेरे ध्यान में,' किसी का ध्यान कंठ में ही समाविष्ट हो जाता है ।

कंठगत थे प्राण तेरे ध्यान में
कर लिया मैंने अमृत का पान रे
आ गई है जान में अब जान रे,
(चार बूंदें ही मुझे पर्याप्त थीं)

इस भेद के कारण इतने धर्म पैदा हो गये दुनिया में । और इतना झगड़ा, इतना विवाद पैदा हो गया । जरूर मुहम्मद भिन्न हैं महावीर से, निश्चित भिन्न हैं; और क्राइस्ट कृष्ण से भिन्न हैं, और बुद्ध जरथुस्त्र से, लाओत्सू कबीर से, नानक जगजीवन से; जगजीवन मीरा से, सब भिन्न हैं, स्वभावतः इनकी अभिव्यक्ति भिन्न होगी । लेकिन जो जानते हैं, जो जागते हैं, वे जानते हैं कि चांद तो एक है, फिर कितने ही नदी-नालों में, सागर-सरोवरों में उसका प्रतिबिम्ब बने, इससे भेद नहीं पड़ता ।

इसलिए मैं तुमसे कह रहा हूं कि सारे शास्त्रों में उस एक की ही कथा है । बड़ी भिन्न-भिन्न हैं । और इस भिन्नता से मुझे विरोध नहीं है, इस भिन्नता का मुझे स्वागत है । क्योंकि वैविध्य रसपूर्ण है। एकरसता हो जाती । जरा सोचो, महावीर ही महावीर जैसे लोग होते, बड़ी एकरसता हो जाती ! सुन्दर है कि कोई कृष्ण भी होता । कृष्ण ही कृष्ण जैसे लोग होते, बड़ी एकरसता हो जाती । सुन्दर है कि कोई क्राइस्ट जैसा व्यक्ति भी होता । जगत विविध है और विविध होने के कारण समृद्ध है । सोचो जरा, एक से ही फूल खिलते, बस गुलाब ही गुलाब के फूल होते--गुलाब

प्यारा फूल है, मगर सोचो कि सारी पृथ्वी गुलाब की ही झाड़ियों से भरी होती, तो गुलाब का सारा सौन्दर्य चला जाता। कौन देखता गुलाब को ! लेकिन जुही भी है, और चमेली भी है, और चम्पा भी है, और बेला भी है, और हजार-हजार फूल हैं, और सब फूल अपनी-अपनी मस्ती से फूले हैं, अपने-अपने रंग में डोले हैं, सब फूलों ने उसको ही प्रगट किया है क्योंकि वही सब में फूला है, मगर नये रंग, नये ढंग, नयी अभिव्यक्ति, नयी सजावट, नया शृंगार। जगत विविध होने के कारण समृद्ध है।

इसीलिए मैं तुमसे कहता हूं, सारे धर्मों में एक की ही चर्चा है, फिर भी भिन्न-भिन्न हैं। गीता गीता है, कुरान कुरान है। न तो गीता कुरान है, न कुरान गीता है। और मैं नहीं चाहूंगा कि कोई एक-दूसरे में लीन हो जाए। कुरान बचनी चाहिए कुरान की तरह। उसका रस और है, उसका तरन्नुम और है। उसकी अदा और है, उसका मजा और है।

सुना है कुरान को किसीको गुनगुनाते ? न समझो भाषा, मगर हृदय में कुछ डोलने लगता है। लहर कुरान की ऐसी है ! सुसंस्कृत नहीं है कुरान, कोई बहुत पढ़े-लिखे मनुष्य का वक्तव्य नहीं है, मोहम्मद तो ग़ैरपढ़े-लिखे थे, मगर ग़ैरपढ़े-लिखे आदमी में एक सादगी होती है जो कुरान में है। जो गीता में नहीं है। ग़ैरपढ़ा-लिखा आदमी सादा होता है, सीधा होता है, साफ-सुथरा होता है। उसके पास बड़े शब्द नहीं होते, उसके पास दर्शनशास्त्र नहीं होता, उसके पास प्रतीक भी जीवन के होते हैं। मगर खूब रस सीधे-साधे गीतों में है। गीता की अपनी खूबी है। उसका अपना सौष्ठव है। उसमें दर्शन की ऊंचाइयां हैं। उसमें बड़ी बारीक ऊंचाइयां हैं। उसमें रहस्यों के परदे पर परदे उठाने की कोशिश की गयी है। सुसंस्कृत मनुष्य का वक्तव्य है।

दोनों की जरूरत है। दुनिया खाली होगी कुरान न होगा तो। गीता न होगी तो दुनिया का कुछ वंचित हो जाएगा। दुनिया के सारे शास्त्र अद्भुत हैं, अनूठे हैं, सभी बचने चाहिए, सभी मनुष्य की सम्पदा है।

और मैं चाहता हूं कि मेरा संन्यासी हकदार अपने को घोषित करे सबका। किसी को भी इंकार न करे--इंकार क्या करना, इंकार करनेवाला आदमी छोटे दिल का होता है। जरा सोचो, जो कहता है, मैं तो महावीर को ही स्वीकार करूंगा, कितना छोटे दिल का हो गया ! और यह आदमी गरीब रह जाए तो आश्चर्य क्या ? आध्यात्मिक रूप से गरीब रह जाएगा। जो कहता है, मैं तो सिर्फ कबीर को ही स्वीकार करूंगा, यह गरीब रह जाएगा। और कबीर बड़े प्यारे हैं ! मगर यह आदमी गरीब रह जाएगा।

सारी सम्पदा हमारी है। प्रत्येक मनुष्य इस मनुष्यजाति के पूरे इतिहास का

वसीयतदार है। मेरा संन्यासी सारे धर्मों का वसीयतदार है। इसलिए मैं सारे धर्मों पर, अलग-अलग संतों पर बोल रहा हूं। ताकि तुम्हें सब तरह की छटाएं थोड़ी-थोड़ी अनुभव में आ जाएं -- भिन्न-भिन्न द्वारों से कैसा परमात्मा देखा गया है, भिन्न-भिन्न झरोखों से कैसी उसकी छवि उभरी है, भिन्न-भिन्न लोगों ने कैसा रसपूर्ण उसका वर्णन किया है ? किसी ने प्रकाशरूप, किसी ने गंधरूप, किसीने रसरूप; किसी ने स्वाद, किसी ने स्वर। ये सब तुम्हारे हैं, इसमें से किसी को भी इंकार मत करना। क्योंकि जिसको तुम इंकार कर दोगे, उतने ही तुम कम हो जाओगे, उतने ही तुम छोटे हो जाओगे। और होना है विस्तीर्ण, और फैलना है आकाश जैसा।

आकाश किसी को इंकार नहीं करता है--चमेली को भी स्वीकार करता है, चंपा को भी। और आकाश चंपा को भी आनंद से, गुलाब को भी आनंद से, कमल को भी आनंद से अंगीकार किये है, आलिंगन किये है। इसलिए आकाश समृद्ध है। सभी फूलों की गंध उसमें समाती है, सारे फूलों के रंग उसमें समाते हैं, सारे स्वर उसमें गूंजते, सारा संगीत उसका है, सारा सौन्दर्य उसका है।

ऐसे ही तुम भी बनो, ऐसा मेरा संन्यासी हो। उसका कोई अपना धर्म न हो, सारे धर्म उसके अपने हों। फिर भी जो उसे अनुकूल लगे, उसे वह साधे। साधना सबकी नहीं हो सकती। स्वीकार सबका हो सकता है। साधना तो एक की ही करनी होगी। जो उसे उचित लगे, उसे साधे। लेकिन, तुम्हारी साधना के कारण तुम्हें शेष को इन्कार करने की कोई जरूरत नहीं है। तुम्हें प्यारे लगते हैं गुलाब, तो गुलाब की खेती करो। तुम्हारी बगिया में गुलाब-ही-गुलाब लगा लो, मगर यह मत कहना कि जुही के फूल फूल नहीं हैं। यह मत कहना कि चमेली के फूलों में गंध नहीं होती। यह मत कहना कि बेला झूठा है, मिथ्या है। यह क्यों कहोगे ? यह कहने की क्या जरूरत है ? तुम्हारे पड़ोसी को बेला प्रीतिकर है, उसने बेला लगाया हुआ है। और कभी-कभी सुन्दर होगा कि बेले की बगिया में भी जाओ। इससे तुम्हारा गुलाब के प्रति रस घटेगा नहीं, बढ़ेगा। कभी-कभी अच्छा होगा कि चमेली से भी पहचान करो, जुही से भी संबंध जोड़ो। इससे तुम्हारा गुलाब के प्रति रस घटेगा नहीं, गुलाब के प्रति जो एकरसता पैदा हो रही थी, वह कम हो जाएगी। फिर-फिर, पुनः-पुनः तुम्हें गुलाब में रस आने लगेगा। लौट-लौटकर तुम फिर-फिर गुलाब के हो जाओगे।

इसलिए साधो एक, मगर स्वीकार सब करो।

यह मैं तुम्हें नया सूत्र दे रहा हूं। ऐसा सूत्र कभी पृथ्वी पर दिया नहीं गया था। क्योंकि पहले लोगों ने कहा था कि जो साधो, उसी को स्वीकार करो, शेष को इन्कार करो। शेष से बड़ा भय था, बड़ा डर था, बड़ी घबड़ाहट थी। यह भय आदमी

को छोटा कर गया है, संकीर्ण कर गया, है, किसी को हिन्दू कर गया है, किसी को मुसलमान कर गया, किसी को ईसाई कर गया, आदमीयत सब की खो गयी। छोटे-छोटे टुकड़े होकर रह गये। यह आदमी को खंडित कर गया। एक अखंड मनुष्य चाहिए। पृथ्वी अखंड होनी चाहिए। यहां सारे भेद गिर जाने चाहिए। यहां अभेद का साम्राज्य होना चाहिए। तो ही पृथ्वी पर गान उठेगा परमात्मा का। नहीं तो हिन्दू-मुसलमान लड़ते हैं और काटते हैं एक-दूसरे को। और जैन और बौद्ध विवाद करते हैं और तर्कजाल फैलाते हैं और इसी में सब उलझ जाता है। धर्म सुलझाने को चला था, उलटा उलझा दिया। सुलझ सकती है बात फिर; यह गांठ खुल सकती है, अगर तुम खोलो। यह खुलेगी तुम्हारे हृदय में। यह हृदय-हृदय में खोलनी होगी।

इसलिए जब मेरे संन्यासी से कोई पूछे कि तुम्हारा क्या धर्म? तो कहना : सब धर्म मेरे। धर्म मात्र मेरा है। मैं सबको अपने हृदय में समाता हूं। सबका संगीत मेरा संगीत है। मैं किसी को इन्कार नहीं करता। क्योंकि इन्कार करके मैं ही छोटा हो जाऊंगा, मैं ही कमजोर हो जाऊंगा।

ख़्वाब भी सबके अलग, ख़्वाब की ताबीर अलग
प्यार की बात अलग, इश्क़ की तफ़सीर अलग
ज़ख्मे-दामां भी अलग, नाखुने-तदबीर अलग
दिल अलग, दिल की तरफ़ आते हुए तीर अलग

लोग भिन्न हैं। लोग भिन्न-भिन्न हैं। और सुन्दर है यह। यह बड़ा सुन्दर है। अपनी मैत्री फैलाओ! तुम्हारे मित्रों में अगर मुसलमान नहीं है कोई, तो तुम किसी चीज से वंचित हो। कौन तुम्हें कुरान सुनाएगा? तुम्हारे मित्रों में अगर कोई ईसाई नहीं है, तो तुम्हें कौन उस अद्भुत जीसस से परिचित कराएगा? तुम्हारे मित्रों में अगर कोई बौद्ध नहीं है, तो कौन तुम्हें खबर लाएगा धम्मपद के स्वरों की? मैत्री फैलाओ! कभी मंदिर भी जाओ, कभी मस्जिद भी, कभी गुरुद्वारा भी--वे सब तुम्हारे हैं। मेरा संन्यासी सारे मंदिरों पर कब्जा कर ले! मस्जिद में भी जाए, गुरुद्वारे में भी जाए, गिरजे में भी जाए। चौंकेंगे लोग बहुत देखकर, क्योंकि लोग कहेंगे कि भई, एक जगह कहीं! क्योंकि पुराने दिनों में यही धारणा रही है कि एक जगह कहीं। सारा अस्तित्व हमारा है, क्यों एक जगह? जो करीब होगा, जो जब उपलब्ध होगा। नहीं तो इन सब बातों के कारण बड़ी छोटी बातें हो गयी हैं।

मैंने सुना एक गांव में एक केथॉलिक ईसाई आया। उस गांव में कोई केथॉलिक ईसाईयों का चर्च नहीं था। रविवार का दिन, चर्च जाने की उसकी पुरानी आदत। न जाए तो बेचैनी! सारे गांव में घूमा, लेकिन कोई केथॉलिक ईसाइयों का चर्च था ही नहीं; कोई केथॉलिक ईसाई ही नहीं था गांव में। तो मजबूरी में उसने सोचा न जाने से यही बेहतर है कि प्रोटेस्टेन्टों के चर्च में ही चला जाऊं। है तो उसी जीसस का! बाइबिल तो वही पढ़ी जाएगी। प्रशंसा में तो जीसस के ही गीत गाए जाएंगे। माना अपना नहीं है, मगर न होने से तो बेहतर है। कहीं न जाने से तो बेहतर है; किसी होटल में बैठा रहूं उससे तो यही चर्च बेहतर है। तो चला गया। पीछे बैठ गया।

जो ईसाई पादरी प्रवचन दे रहा था--बड़ा आग्नेय प्रवचन था, जैसे अग्नि बरसा रहा हो। यही काम करते रहे हैं लोग, डराते रहे हैं लोगों को। नर्क का ऐसा उसने बीभत्स वर्णन किया कि किसी के भी रोंगटे खड़े हो जाएं। छोटे बच्चे रोने लगे, दो-तीन स्त्रियां बेहोश हो गयीं, बूढ़े कंपने लगे--उसने वर्णन ऐसा किया नर्क का! और अखीर में उसने कहा कि सुन लो, जितने लोग यहां बैठे हो, सब नर्क में सड़ोगे, अगर अभी तक जाग नहीं जाते। अभी भी समय है। इस समारोह में सम्मिलित प्रत्येक व्यक्ति सजग हो जाए, नहीं तो नर्क में पड़ेगा। सारे लोग हैं, किसी के आंसू बह रहे हैं, कोई बेहोश स्त्री पड़ी है, बच्चे चिल्ला रहे हैं, बूढ़े कंप रहे हैं--क्योंकि उसने बात ही इतनी कठिनाई की कही थी।

नर्क के वर्णन ऐसे किये जाते हैं। उसने वर्णन किया था कि आग में डाले जाओगे, जलोगे और मरोगे नहीं। मरने की भी सुविधा नहीं देते वे। जलते रहोगे--अनंत काल तक--मरोगे नहीं। पानी सामने होगा, मगर पी न सकोगे। क्योंकि होंठ सी दिये जाएंगे। प्यास भीतर होगी--अनंत काल तक--पानी सामने होगा, कलकल नाद पानी का सुनायी पड़ेगा, मगर पी न सकोगे क्योंकि ओंठ सी दिये जाएंगे। कीड़े-मकोड़े शरीर में छेद कर लेंगे। सब तरफ से छेद कर-करके निकलेंगे, इधर से जाएंगे, उधर से निकलेंगे, और तुम कुछ भी न कर सकोगे--और अनंत काल तक। और ऐसी ठंढ पड़ेगी कि दांत कटकटाएंगे--अनंत काल तक।

एक बुढ़िया खड़ी हो गयी, उसने कहा, मेरे तो दांत ही नहीं हैं। तो उस पादरी ने कहा कि तू बैठ, दांत दिये जाएंगे। जिनके दांत नहीं हैं उनको नकली दांत दिये जाएंगे मगर सर्दी तो ऐसी पड़ेगी कि दांत कटकटाने ही पड़ेंगे! तू फिकर मत कर! ऐसा इंतजाम करके रखा है कि अगर नहीं होंगे दांत तो दिये जाएंगे।

ये सारे लोग घबड़ा रहे थे और बेचैन हो रहे थे, मगर वह आदमी जो केथॉलिक था, वह मस्त बैठा हंस रहा था, मुस्कुरा रहा था। पादरी ने देखा कि यह आदमी क्यों मुस्कुरा रहा है? पादरी ने उससे पूछा कि भाई मेरे, सारे लोग नरक का वर्णन सुनकर कंप रहे हैं, भयभीत हो रहे हैं, पश्चात्ताप कर रहे हैं, तू क्यों मुस्करा रहा है? उसने कहा कि हम इस चर्च के सदस्य ही नहीं हैं। हमें क्या डर! हमारा दूसरा चर्च है। हम तो ऐसे ही घूमते-घामते आ गये। ये बिचारों की हालत बड़ी खराब होगी, यह हमें समझ में आ रहा है।

स्वाभाविक; प्रोटेस्टेन्टों का चर्च, तो जिस नरक का वर्णन हो रहा है, वह भी प्रोटेस्टेन्टों का नर्क होगा। नरकों में भी अलग-अलग हैं। स्वर्गों में भी अलग-

अलग हैं। जैसे जीवन की आधारशिलाएं अलग-अलग हैं!

एक आदमी मरा, जर्मनी में, हिन्दुस्तानी था, कहीं नौकरी करता था। मरने के पहले बड़ा घबड़ाया हुआ था। क्योंकि कोई पंडित-पुजारी नहीं, जो मरते वक्त गंगाजल पिला दे। गंगाजल भी नहीं, कोई मंत्र ही कान में बोल दे--वह भी नहीं। बड़ा भयभीत मरा। डरता हुआ मरा कि नर्क जाना निश्चित है। स्वर्ग जाने का कोई उपाय ही नहीं! और जैसे ही मरकर उसने आंख खोली कि नरक के दरवाजे पर पाया। अंदर ले जाया गया। बिठाया गया। पूछा गया कि भाई, किस नर्क में तू जाना चाहता है? हिन्दुओं के नर्क में जाना चाहता है?-- हिन्दुस्तानियों के नर्क में जाना चाहता है? कि जर्मन नर्क में जाना चाहता है? क्योंकि तू जरा झंझट में है, तू रहा तो जर्मनी में, है हिन्दुस्तानी, तुझे चुनाव का मौका है। तू चाहे तो हिन्दुस्तानियों के नर्क में चला जाए, चाहे तो जर्मनों के नर्क में चला जाए।

उस आदमी ने कहा, मैं पहले फर्क तो समझ लूं कि दोनों नर्कों में फर्क क्या है? बतानेवाले ने बताया कि फर्क कोई भी नहीं है। वही कष्ट हिन्दुस्तानी नर्क में दिये जाएंगे, वही कष्ट जर्मन नर्क में दिये जाएंगे। फिर भी उसने पूछा कि फिर भेद करने का सवाल ही क्या है? फिर हिन्दुस्तानी और जर्मनी का क्या सवाल है, भेज दो कहीं, फिर भेद क्या है? मगर उसने कहा--एक बात ख्याल रखना, जर्मन नर्क में काम जर्मन कुशलता से किया जाता है। हिन्दुस्तानी नर्क में हिन्दुस्तानी ढंग से किया जाता है। जिसको आना चाहिए आग जलाने, वह सुबह नहीं आया, बारह बजे आया। उतनी देर फुर्सत मिल गयी। कीड़े-मकोड़े भी हिन्दुस्तानी हैं, सोए ही पड़े हैं! जर्मन नर्क! जर्मन कुशलता, व्यवस्था से किया जाता है। तो वह सोच लो! उसने कहा, मुझे हिन्दुस्तानी नर्क में आना है, मुझे नहीं जाना जर्मन नर्क में।

मैं भी तुमसे कहता हूं, अगर स्वर्ग जाओ तो जर्मन चुनना। और नर्क जाओ तो हिन्दुस्तानी चुनना।

जीवन के नियम अलग-अलग नहीं हैं। जीवन का नियम तो एक है। जीवन का शाश्वत धर्म तो एक है। सिर्फ उसकी अभिव्यक्तियां अलग हैं। अलग-अलग लोगों के जीवन में अलग-अलग संवेदनशीलताओं के कारण वे भेद पड़े हैं। बुद्ध बुद्ध की तरह बोलते हैं, कृष्ण कृष्ण की तरह बोलते हैं। बस बोलने में ही भेद है, जो बोला गया है, वह एक है।

आखिरी प्रश्न: भगवान, जगजीवन के साथ मेरे जीवन का अंतिम मोड़ आ चुका है। आपके चरण में लपटाई रहूं, यही प्रार्थना है!

अजमेर वाले बाबा ने गाया है--

मैलो-मैलो सब कहें, उजली कहे न कोय।

साईं आप उजली कहो, तो लोग कहें सब कोय॥

तरु! कोई काला नहीं है। सब उजले हैं। कोई अपवित्र नहीं है। सब पवित्र हैं। अपवित्रता भ्रांति है। वह भ्रांति छाया के साथ संबंध जोड़ लेने से पैदा हो गयी है। छाया के कारण हम मैले-मैले लग रहे हैं। हां, हमारे वस्त्र मैले हो गये हैं, सच है, और हमारी देह पर धूल-ध्वांस जम गयी है, सच है, और हमारा मन भी न स्वस्थ है न सुन्दर है, मगर हमारे भीतर हमारा असली स्वरूप है, वह वैसा-का-वैसा क्वांरा है। वह कमल के फूल की तरह अलिप्त है।

मैं तुम्हें याद उसी की दिलाना चाहता हूं, बाकी सब बातें गौण हैं। बाकी सब बातें तो व्यर्थ हैं।

तुम्हारे पंडित-पुरोहित तुम्हें उन्हीं की बातें कर रहे हैं--ऐसा करो, वैसा करो; यह बुरा, वह शुभ; तुम्हारे कर्मों की अतिशय ही चर्चा कर रहे हैं, तुम्हारे अस्तित्व की नहीं। और उनके कर्मों की अतिशय चर्चा के कारण लोग बड़े आत्मनिंदित हो गये हैं। उनका चित्त बड़ी आत्मनिंदा से भर गया है। वे घबड़ा गये हैं! उनको लग रहा है कि हम तो डूबे! हमारा उबरने का कोई उपाय नहीं है। और पंडित-पुरोहित इसका शोषण कर रहे हैं। क्योंकि तुम्हें जितना घबड़ा दिया जाए, उतनी ही आसानी से तुम्हारा शोषण हो सकता है।

डरा हुआ आदमी कुछ भी करने को राजी हो जाता है। उससे कहो, सत्यनारायण की कथा करो, तो वह सत्नारायण की कथा करता। उससे कहो, यज्ञ करो, तो वह यज्ञ करता है। उससे कहो, इस में घी डालो--उसको समझ में भी आता है कि घी आग में नष्ट हो रहा है, घी लोगों को मिल नहीं रहा है, खाने को--मगर भयभीत आदमी कुछ भी करने को राजी हो जाता है; उससे कोई भी मूढ़ता करवा लो।

यज्ञों के नाम पर मूढ़ता हो रही है। पूजा-पत्री के नाम पर मूढ़ता हो रही है। भयभीत आदमी को कहीं भी झुका लो। झुकाने के पहले उसको भयभीत करना जरूरी है; नहीं तो वह झुकेगा ही नहीं। उसको कहो, यह पत्थर की मूर्ति भगवान है, झुको, वह तत्क्षण झुक जाएगा। वह भयभीत है, वह डर रहा है, वह किसी तरह अपने भय के ऊपर उठना चाहता है। मगर पुजारी तुम्हें भय से ऊपर नहीं उठने दे सकता। क्योंकि तुम भय के ऊपर उठ जाओ तो तुम पुजारी के घेरे के बाहर हो जाओगे। पुजारी के व्यवसाय का नियम ही यही है कि तुम्हें भयभीत रखे। इसलिए वह तुम्हें कहता है; 'मैली-मैली सब 'कहें'। वह तो तुम्हें, तुम्हारी छोटी-छोटी बातों को पकड़ लेता है। यह पाप, यह बुरा; उसका सारा हिसाब-किताब यही है कि तुममें क्या-क्या बुरा है, उसकी फेहरिश्त तुम्हारे सामने अतिशय करके खड़ी कर दी जाए। ताकि तुम कंप जाओ।

मेरी चेष्टा बिलकुल भिन्न है। मैं तुम्हें पुजारी से मुक्त करना चाहता हूं।

मैं तुम्हें पंडित से मुक्त करना चाहता हूं। मैं तुम्हें मुक्त करना चाहता हूं। इसलिए मैं तुम्हें याद दिला रहा हूं कि तुम्हारे कर्म तो सब बाहर-बाहर हैं--अच्छे भी और बुरे भी, सब बाहर-बाहर हैं। उनका कोई आत्यंतिक मूल्य नहीं है। तुम परम पवित्र हो। तुम्हारे भीतर परमात्मा विराजमान है। तुम उजले हो। तुम मैले हो ही नहीं सकते ! तुम्हारे मैले होने का कोई उपाय ही नहीं है--तुम मैले हो जाओगे तो फिर उजले होने का कोई उपाय नहीं। फिर कोई साबुन धो न सकेगी। आत्मा मैली हो जाएगी तो कौन साबुन धो सकेगी ? और आत्मा मैली हो जाएगी, तो फिर किसी के हाथ की बात न रही।

आत्मा मैली होती ही नहीं।

आत्मा का मैला होना ऐसा ही असम्भव है जैसा आकाश का मैला होना। बादल आते हैं, चले जाते हैं, आकाश मैला थोड़े ही होता है। धूल-धवांस उठती है, आंधी उठती है, चली जाती हैं, फिर आकाश उजला-का-उजला हो जाता है। आकाश कभी मैला नहीं होता। ऐसा ही तुम्हारा अंतर-आकाश है। मैं तुम्हें उसकी ही याद दिला रहा हूं। और उसकी तुम्हें याद आ जाए तो एक क्रांति घट जाती है। उसकी याद आते ही तुम्हारे कृत्य भी उजले होने लगते हैं। क्योंकि जिसको अपने भीतर का उजलापन दिखायी पड़ गया, फिर असम्भव हो जाता है : कृत्य और मैला हो! जिसको भीतर का उजलापन दिखायी पड़ गया, उसके व्यक्तित्व में और जीवन में उजलापन बहने लगता है; उसकी धारा प्रवाहित हो जाती है। भीतर तुम्हारे एक वीणा पड़ी है, मैं उसी की तुम्हें याद दिलाता हूं।

> इस अंधेरे के सुनसान जंगल में हम डगमगाते रहे, मुसकुराते रहे
> लौ की मानिन्द हम लड़खड़ाते रहे, पर क़दम अपने आगे बढ़ाते रहे
>
> अजनबी शहर में अजनबी रास्ते, मेरी तनहाई पर मुसकुराते रहे
> मैं बहुत देर तक यूंहि चलता रहा, तुम बहुत देर तक याद आते रहे
>
> कल कुछ ऐसा हुआ, मैं बहुत थक गया, इसलिए सुनके भी
> अनसुनी कर गया।
> कितनी यादों के भटके हुए कारवां, दिल के ज़ख्मों के दर
> खटखटाते रहे
>
> ज़हर मिलता रहा, ज़हर पीते रहे, रोज़ मरते रहे रोज़ जीते रहे
> जिंदगी भी हमें आज़माती रही, और हम भी उसे आज़माते रहे
>
> सख्त हालात के तेज़ तूफान में घिर गया था हमारा जुनूने-वफा
> वो चिराग़े-तमन्ना बुझाता रहा, हम चिराग़े-तमन्ना जलाते रहे

> जख्म जब भी कोई मेरे दिल पर लगा, जिन्दगी की तरफ़ एक
> दरीचा खुला
> हम भी गोया किसी साज़ के तार हैं, चोट खाते रहे, गुनगुनाते रहे

कितने ही पाप किये हों, और कितने ही भटके होओ, और कितने ही जीवन में दुर्दिन और दुर्घटनाएं घटी हों, कुछ भी हुआ हो . . .

> जख्म जब भी कोई मेरे दिल पर लगा, जिन्दगी की तरफ़ एक
> दरीचा खुला
> हम भी गोया किसी साज़ के तार हैं, चोट खाते रहे, गुनगुनाते रहे

. . . तुम्हारी गुनगुनाहट नहीं मिटी है, तुम्हारा गीत नहीं मिटा है—मिट नहीं सकता। तुम्हारे भीतर शाश्वत संगीत है। मैं उसी की तुम्हें याद दिला रहा हूं। याद आनी शुरू हो जाएगी और तुम्हारी दृष्टि बदलने लगेगी। और तुम्हारी दृष्टि बदली कि सृष्टि बदली।

> तुझी से इब्तिदा है, तू ही इक दिन इंतिहा होगा
> सदा-ए-साज़ होगी और न साज़े-बेसदा होगा

सब शून्य हो जाएगा, उस स्वर को सुनते-सुनते। क्योंकि वह संगीत शून्य का संगीत है।

> सदा-ए-साज़ होगी और न साज़े-बेसदा होगा
> तुझी से इब्तिदा है, तू ही इक दिन इंतिहा होगा

उसी परमात्मा से प्रारम्भ है। उसी परमात्मा में अंत है। बीच सारा सपना है। सुख का, दुख का; गिरने का, उठने का; पाप का, पुण्य का, सब सपना है। सपने से कहीं कोई मैला हुआ ! सपने कहीं मैले कर सकते हैं !

मैं तुम्हें जगा रहा हूं। तुम्हारे तथाकथित नैतिक धर्मगुरु केवल तुम्हारे सपनों को बदलने की कोशिश में लगे रहते हैं। वे कहते हैं, अच्छे सपने देखो; बुरे मत देखो। मगर जो आदमी बेहोश है, वह क्या अच्छा देखे, क्या बुरा देखे ? सपनों का वह मालिक थोड़े ही है ! तुम्हारे हाथ में थोड़े ही है अच्छे सपने देखना। कि रात सो गये कह के कि अच्छे सपने देखेंगे !

अक्सर ऐसा हो जाएगा, जो अच्छे सपने देखना चाहते हैं, वे बुरे सपने देखते हैं। क्योंकि दिन भर बुराइयों को दबाते बैठे रहे। फिर रात वे ही दबायी हुई बुराइयां सपनों की तरह प्रगट होने लगती हैं। अक्सर ऐसा हो जाता है कि बुरे आदमी रात अच्छे सपने देखते हैं। क्योंकि वे अच्छाइयों को दबाते हैं। जो दबा रहता है, वही सपने में उभर आता है। सपनों पर तुम्हारा बस क्या है ?

इसलिए मैं नहीं कहता कि सपने बदलो; मैं नहीं कहता, आचरण बदलो; मैं कहता हूं, अंतस् को जगाओ ! जागो, सपने वगैरह बदलने से कुछ भी न होगा।

अच्छा भी सपना देखा तो सपना ही है। सपने में साधु हो गये, क्या लाभ? कि चोर हो गये, क्या हानि? न सपने से कोई मैला होता है न कोई उजला होता है— सपने तो सपने हैं, आते हैं, चले जाते हैं। यह सारा संसार सपना है।

तरु, मैं इतनी ही बात तुम्हें याद दिला रहा हूं, रोज-रोज, अनेक-अनेक ढंगों से, अनेक-अनेक इशारों से कि जागो! तुम उजले हो। तुम परम पवित्र। तुम स्वय परमात्मा हो। थोड़ी खोज करो, यह केंद्र दूर नहीं है। जरा-सा फासला है। सिर और हृदय का फासला ही आदमी और परमात्मा का फासला है। ज्यादा नहीं है, कुछ ही इंचों का है।

बुद्धि में भटके रहे, तो संसार। हृदय में आ गये, भाव में आ गये तो भक्ति। भक्ति में आ गये तो भगवान दूर कहां!

सब गये हैं सामने के शोर तक,
कौन जाता है किसी के छोर तक।
कब मिला सूरज निशा के बीच में
ढूंढ़ना उसको पड़ा है भोर तक।

सुबह तक खोजोगे तो ही मिल पाएगा सूरज! सूरज है, सुबह भी है, मगर लोग विचारों की, सपनों की तंद्रा में, मूर्छा में खोए हैं, नींद में खोए हैं। कुछ लोग बुरे सपने देख रहे हैं, कुछ लोग अच्छे सपने देख रहे हैं। बस तुम्हारे साधु-असाधु में इतना ही फर्क है।

मैं तुम्हें चाहता हूं: न साधु, न असाधु। तुम्हारे भीतर भगवत्ता का उदय हो। इसलिए याद दिलाता हूं: तुम उजले हो, तुम क्वांरे हो। तुमसे कभी कुछ न भूल हुई है, न हो सकती है, क्योंकि तुम कर्ता नहीं हो, साक्षी हो।

आज इतना ही।
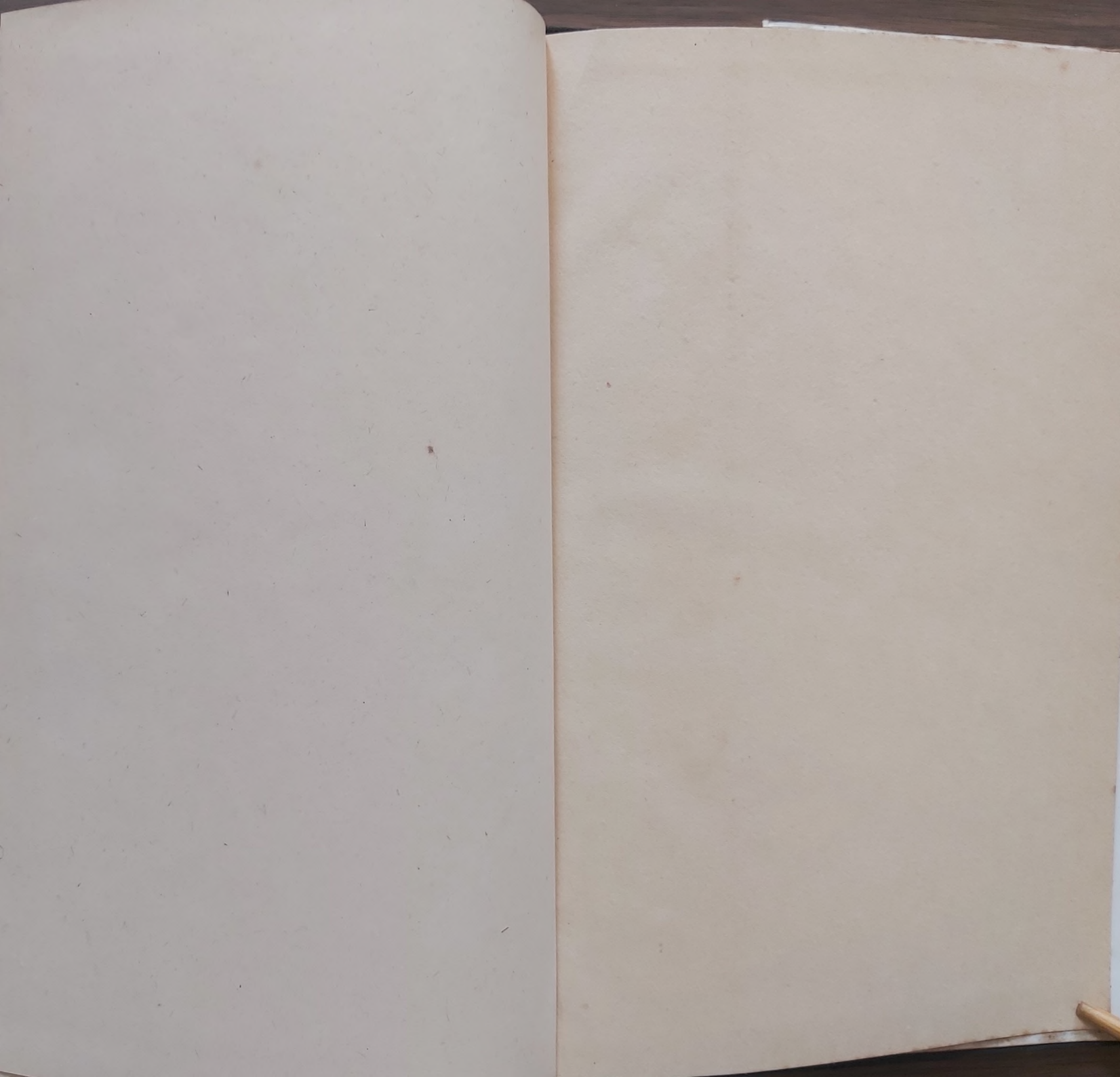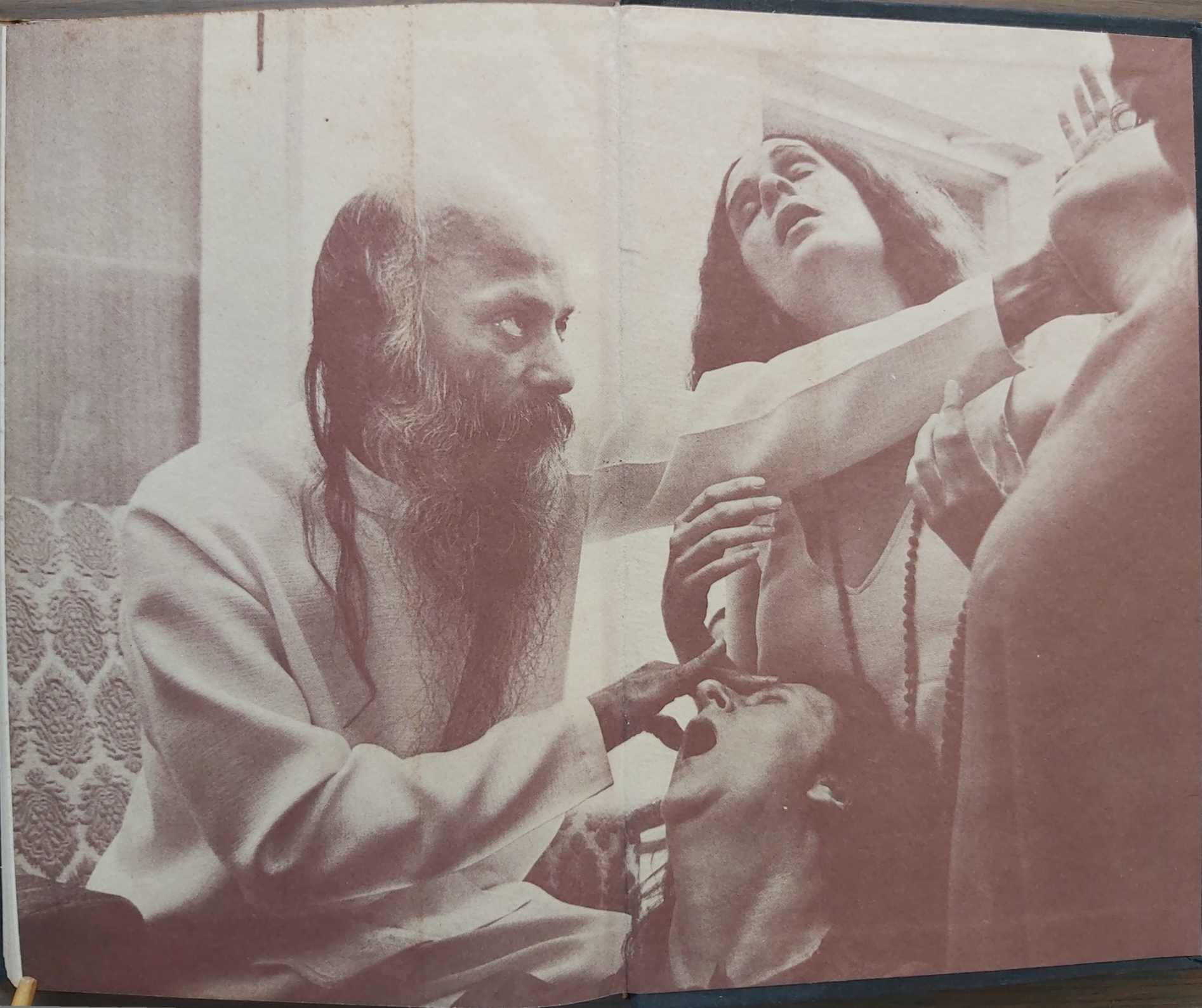
थोड़ा मस्त होओ, थोड़ा डगमगाओ, थोड़ा नाचो। थोड़ी मस्ती को उतरने दो ! वही है असली सार। थोड़ा डोलो आनंदमग्न होकर। जो मिला है उसके लिए धन्यवाद दो। और जो मिला है, काफी है; तुम्हारी पात्रता से बहुत ज्यादा है ! तुम्हारा पात्र बहुत छोटा है और सागर-का-सागर तुम पर बरस पड़ा है। नाचो, गुनगुनाओ—मैं तुम्हें एक उत्सव का धर्म देना चाहता हूं—तो तुम्हारा संताप मिट जाए।

ऐसे मस्त हो जाओ कि न पता चले जिंदगी का, न पता चले मौत का। ऐसे मस्त हो जाओ कि जिंदगी और मौत सब बराबर। ऐसे मस्त हो जाओ कि मौत आए तो नाचता हुआ पाए। ऐसे मस्त हो जाओ कि मौत भी उदास न कर सके। तुम्हारा गीत गूंजता ही रहे। अगर मौत के क्षण में भी तुम्हारा गीत गूंजता रहे तो तुम जीत गये। तुमने मौत को पराजित कर दिया।

और अगर तुम तूफ़ानों में जीने के आदी हो जाओ, और अगर तुम जिंदगी और मौत को खेल समझने लगो, तो ज्यादा देर न लगेगी, उसके चरण तुम्हारे निकट आने लगेंगे, उसकी आहट तुम्हें सुनायी पड़ने लगेगी।

संताप एक ही है: सिकुड़े-सिकुड़े मर जाना। और सुख एक ही है—महासुख—फैलना और फैलते जाना।

भगवान श्री रजनीश

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है । परमात्मा है खुला आकाश । परमात्मा है स्पेस--चारों तरफ । आप कूद जायें, वह आकाश आपको लीन करने में सदा तत्पर है । आप खड़े रहें, तो वह आकाश आपको खींच कर जबर्दस्ती लीन नहीं करना चाहता है । क्योंकि उतनी हिंसा भी अस्तित्व को स्वीकार नहीं है । आप स्वतंत्र हैं रुकने को, कूद जाने को । सागर मौजूद है, नदियों को निमंत्रण भी नहीं देता, बुलाता भी नहीं । नदियां स्वतंत्र हैं--रुक जायें, तालाब बन जायें, छलांग लेलें, सागर में खो जायें ।

भगवान श्री रजनीश